तत्त्व-मीमांसाका सूचीपत्र ।

सृष्टि तत्त्व ।

ईश्वर तत्त्व।

अवतार तत्त्व ।

धर्म्म तत्त्व ।

ज्ञान तत्त्व ।

योग तत्त्व ।

उपदेश।

तत्त्व-मीमांसा का

शुद्धाशुद्धि पत्र ।

पृष्ठा]		[पंक्ति	अशुद्ध]	[शुद्ध
६	...	११	अभाव	... भाव
६	...	११	कामभाव	... कामो कामभाव
११	...	२५	पञ्चीकरण	... पञ्चीकरण
१२	...	५	प्राप्त	... व्याप्त
१२	...	७	सुख भोगस्वरूपसे	... सुखभोग स्वरूपसे
१२	...	१८	मोहिनी	... मायाकी मोहिनी
१४	...	१०	उपाना ...	... उपासना
१४	...	१०	परितोषणकारी	... परितोषणकारी कर्म्म
१४	...	१२	ष्कास ...	... निष्काम
१४	...	२३	निष्काककर्म	... निष्कामकर्म्म
१६	...	१	निरिध्यासन	... निदिध्यासन
१६	...	५	निरध्यासन	... निदिध्यासन
१७	...	१६	लोनोंको	... लोगोंको
१८	...	३	आशद्ध	... आवद्ध
२०	...	२	पालकारी	... पालनकारी
२०	...	२२	नित्त	... स्वीय नित्य.
२१	...	१२	गही	... नहीं
२१	...	१६	समनेसे	... सकनेसे
२३	...	१०	उन्मत्त	... उन्मत्त होकर

पृष्ठा]		[पंक्ति	अशुद्ध]		[शुद्ध
२५	...	११	आत्मभाव	...	आत्माभाव
२५	...	१७	जीवसृष्टि	...	जीव और सृष्टि
२७	...	१६	भूतांश	...	पृथिव्यांश
२८	...	११	पञ्चस	...	पञ्चसे
२९	...	७	प्रसाणसे	...	प्रमाणसे
३०	...	२	इच्छामय	...	इच्छारूप
३१	...	२४	रजोगुण	...	रजोगुणसे
३२	...	२	स्वयं ही प्रतिविम्बित		स्वयं ही इन तीनों गुणोंमें प्रतिविम्बित
३२	...	२४	तमोगुण	...	तमोगुणमें
३३	...	१२	आकर्षणसे	...	आकर्षण
३३	...	१४	चोभण	...	चोभणसे
३३	...	२२	शक्ति	...	शक्ति प्रथममें
३४	...	९	है	...	वर्त्तमान है
३५	...	२	भुः, स्वः	...	भुः, भुवः, स्वः
३५	...	२२	प्रवर्त्तित	...	परिवर्त्तित
३७	...	१६	सूक्ष्म स्वरूपरूपी	...	सूक्ष्मरूपरूपी
४२	...	२०	वस्तु	...	वस्तुका
४२	...	२२	एक एक	...	एक
४३	...	५	के जीवोंमें	...	जीवोंमें
४४	...	६	वल्कि	...	वल्कि
४४	...	२३	जल और	...	जलको भी
४५	...	२४	अग्निको	...	अग्निसे
४५	...	९	सूक्ष्मरूपको	...	सूक्ष्मवस्तुको
५१	...	५	प्रभुत्व	...	ये जो मायाके प्रभुत्व

पृष्ठा]		[पंक्ति	अशुद्ध]		[शुद्ध
५७	...	१०	देह व्यवहार	...	देहव्यवहार
५७	...	१६	सत्	...	सं
६०	...	१२	प्यास	...	प्यास
६२	...	६	चेष्टा है	...	चेष्टा वृथा है
६३	...	१३	धारण	...	वहन
८३	...	१३	सुख	...	सुख दुःख
८७	...	१८	कुछ	...	कुछ खानेको वस्तु
९३	...	१६	वृत्ति	...	भक्ति
९३	...	१७	वृत्ति	...	भक्ति
९३	...	२५	तिविध	...	त्रिविध
९८	...	७	कर्मसे	...	कर्मफलसे
१०१	...	८	के ादेखकर	...	को देखकर
१०६	...	१६	ब्रह्मपद	...	ब्रह्मपद्म
१०७	...	१८	अव्यक्तके	...	अवन्तरके
११०	...	३	एक	...	एक जीव
१११	...	५	चतुर्विंशति	...	त्रयोविंशति
११३	...	४	प्रकाशक	...	प्रकाश
११६	...	२२	व्याप्तधर्म	...	व्याप्त अधर्म
१२१	...	६	नहीं होता	...	होता
१२४	...	९	धाण	...	धारण
१२४	...	२३	मनुष्यादिको	...	मनुष्यादि
१२७	...	२६	पृष्ठकोष	...	पञ्चकोष
१३०	...	५	विभक्त	...	विभिन्न
१३३	...	१०	नित्यवस्तु	...	नित्यानित्य वस्तु
१३३	...	१६	अन्तरको	...	अन्तर इन्द्रियको

पृष्ठा]		[पंक्ति	अशुद्ध]		[शुद्ध
१३३	...	१८	त्याग	...	त्याग और
१३४	...	१	चेष्टा	...	चिन्ता
१३४	...	३	अपेक्षा	...	अपेक्षा शान्ति
१३७	...	१८	सर्वांश	...	सर्वांश
१३८	...	३	स्वभाव	...	ज्ञान स्वभाव
१४२	...	२८	परिमाण	...	परिणाम
१४४	...	१०	होगा	...	न होगा
१४६	...	३	चैतन्यप्रदस रस	...	चैतन्यप्रद रस
१४७	...	२२	प्रयोजनीय	...	अप्रयोजनीय
१४८	...	२३	प्रमाणसाध्य	...	प्रमाणासाध्य
१५५	...	८	हरिपद पादपद्म	...	हरिपादपद्म
१६०	...	१७	चञ्चता	...	चञ्चलता
१६०	...	२६	वाह्यज्ञानवोध	...	वाह्यज्ञानरोध
१६३	...	४	संवोध	...	सत्‌वोध
१७०	...	३	प्रकाशित	...	प्रमाणित
१७०	...	१८	चैतन्यमय	...	चैतन्यमय वस्तुको
१७१	...	१२	सगुण	...	सगुणभाव
१७१	...	१४	निलोगमतसे	...	नियोगमतसे
१७१	...	१८	इन्द्रियादि	...	इन्द्रियादिमय
१७३	...	८	ईश्वरत्व	...	ईश्वरतत्त्व
१७३	...	८	ईश्वरत्व	...	ईश्वरतत्त्व
१७४	...	१८	चैतन्यक	...	चैतन्यमय
१७७	...	३	अर्द्धभागमें	...	अर्द्ध सात भागमें
१८८	...	११	पद्म चिन्ताका	...	पद्ममें चिन्ताका
१८८	...	८	हो	...	हो प्रथममें

पृष्ठा]	[पंक्ति	अशुद्ध]	[शुद्ध
२०० ...	२६	साधक ...	साधन
२०७ ...	७	आत्मसम ...	आत्म
२०७ ...	१७	अष्टाधिपत्य ...	अष्टाधिपत्यसिद्ध
२०८ ...	९	स्थानभद ...	स्थानभेद
२०८ ...	१८	ब्रह्माण्डरूपी ...	महाब्रह्माण्डरूपी
२०८ ...	१८	महाविश्वदेह ...	विश्वदेह
२०८ ...	१८	जीव ...	जीवरूपी
२१० ...	२५	सदेह ...	सदेहमें
२२० ...	१९	भाग भी ...	भाग और
२२० ...	१८	कार्य्य और ...	कार्य्य
२२१ ...	११	स्पर्श नहीं ...	स्पर्श
२२५ ...	१३	ज्ञान इ ...	ज्ञान इस
२२५ ...	१४	जगतस ...	जगत
२२६ ...	४	स्वभावानुभव ...	स्वरूपानुभव
२२७ ...	१०	न हो ...	न होने
२२८ ...	७	रसना ...	रसनाके अर्थात् जिस
२३२ ...	११	पूर्णनिर्वारण ...	पूर्ण निर्वाण
२३४ ...	९	तक ...	तब
२३७ ...	४	नहीं होता ...	न हो सके
२४० ...	१८	अन्वेषण करके ...	अन्वेषण न करके
२४४ ...	२	साधकभावमें जो	साधक चिन्तन करे कि
२४४ ...	१५	ऐहिक ...	ऐहिकमें
२४७ ...	७	बीच ...	बीचमें
२५४ ...	६	भगवतप्राप्तिको ...	भगवतप्राप्ति
२५८ ...	११	शब्दांश ...	सूक्ष्मांश

पृष्ठा]	[पंक्ति	अशुद्ध]		[शुद्ध
२६५ ...	१२	देखकर	...	न देखकर
२६७ ...	८	लीन	...	चैतन्यमें लीन
२७६ ...	२	सम्बन्धी	...	सम्बन्धीभूत
२७६ ...	५	अलच्य गतगति	...	अलच्यगति
२८२ ...	८	पदार्थ	...	परमार्थ
२८८ ...	१८	विलयमें	...	विलयमें क्रन्दनसे
२८० ...	१४	आश्र	...	आश्रय
२८० ...	२१	प्रपञ्च	...	चैतन्य
२८८ ...	१६	श्र रनेमें	...	करनेमें
३०० ...	१३	रजोधिक्यसे	...	रजोगुणाधिक्यसे
३०२ ...	२३	चिरनियत्व	...	चिरनित्यत्व
३०४ ...	२४	निश्चयात्मम	...	निश्चयात्मक
३०५ ...	२०	पूर्व्वभावका	...	पूर्णस्वभावका
३११ ...	६	आलुप्त	...	आप्लुत
३११ ...	८	आलुप्त	...	आप्लुत
३१२ ...	१	करती है।	...	करती है ?
३१२ ...	७	शक्तिहीन	...	शक्तिहीन होने पर
३१८ ...	७	आत्मसत्तासे	...	आत्मसाक्षात्से
३२० ...	१७	वर्त्तमसान	...	वर्त्तमान
३२० ...	२६	मनवुद्धिसे	...	मन
३३१ ...	२	ब्रह्माण्डमय	...	ब्रह्माण्डमय कहके
३३३ ...	२३	वशवर्त्ती	...	मध्यवर्त्ती
३३६ ...	२५	स्वत्मावमें	...	स्वभावमें
३३६ ...	४	कियापर	...	क्रियापर
३३७ ...	८	अनुमति	...	अनुमित

पृष्ठा]		[पंक्ति	अशुद्ध]		[शुद्ध
३४४	...	२०	सूक्ष्मरचना	...	सूक्ष्मरचना
३४५	...	१९	अनुसार	...	अनुसार ब्रह्माण्डमें
३४७	...	३	सूक्ष्म	...	सुम्न
३४८	...	२	जो	...	जो दो
३५१	...	१९	अवस्थान	...	अवस्था
३५९	...	२०	चतुर्विंशति	...	त्रयोविंशति
३६२	...	३	सहारे	...	सहारे बाह्य
३६४	...	१३	भावका	...	स्थानका
३६६	...	७	देवतागत	...	देवतागण
३७०	...	१९	ही	...	ही देहकी
३७४	...	२	सधित	...	साधित
३७५	...	४	रत्नसेसे	...	रत्नेसे
३७५	...	११	कारते	...	काहते
३७५	...	१९	(चौवीस)।	...	(चौवीस)
३७८	...	११	सकर्षण	...	संकर्षण
३८०	...	२०	अपसो	...	अपनी
३९०	...	१४	संक्षेप	...	संलेप
३९७	...	१२	सहारे	...	सहारे भु (भी) के
३९८	...	२२	वाईस	...	वत्तीस
४०५	...	२५	अदिरच्चित	...	अदिच्चित
४०८	...	८	आप्यायन	}	आप्यायन करानेसे आप्यायन
४१०	...	१२	देह	...	सभी

४१०	...	२२	चौवीस तत्त्व	... चौवीस तत्त्व विलीन
४१४	...	३	करके	... करके राग द्वेषादिरूप

॥ इति ॥

तत्त्व-मीमांसा का शुद्धाशुद्धि पत्र समाप्त ।

मङ्गलाचरण ।

जिसे जाननेसे और कुछ भी जानना नहीं होता, जिसे देखनेसे और कुछ भी देखना नहीं होता; जिसे चिन्तन करनेसे अन्य कुछ भी चिन्तन करना नहीं होता तथा जिसे पाने से और कुछ भी पानेकी अपेक्षा वा प्रयोजन नहीं होता, उसी सत्यस्वरूप आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका ध्यान करते हैं।

भूमिका ।

हे मनुष्यो! तुम लोगोंने बहुत पुण्यसे यह दुर्लभ-मनुष्यदेह पाया है; विफल विषयामोदमें मत्त होकर परमार्थतत्त्व भूलकर इसे भ्रष्ट मत करो।

यह देखो ! मृत्यु तुम्हारी अपेक्षा करती है ; वह किस दिन किस समय धूर्त्त भेड़िया की भांति तुम्हें असहाय छागवत् कहां ले जायगी—जानने वा निषेध करने न सकोगे। उस समय तुम्हारा क्या होगा ? वह भयङ्कर दिन स्मरण करो, जिस दिन कोई भी तुम्हारे सहाय न होंगे। पिता माता पुत्र कलत्र वन्धुवान्धव तथा अन्यान्य आत्मीय स्वजन सब ही उस दिन तुम्हें त्याग करेंगे। तब तुम क्या सोचकर और क्या समझकर किस आशय तथा किस विश्वाससे निश्चिन्त बैठे हो ? और किस प्रकारसे असार संसारके असार स्नेह ममतामें मतवारे तथा विस्मृत होकर तुम पाप-जीवनको और भी कलुषित तथा भाराक्रान्त करते हो ! यथार्थमें धर्मके सिवाय संसारमें कोई भी प्रकृतवन्धु वा सहाय नहीं है।

यथार्थमें ही संसारमें सुख नहीं है। आहारकी चिन्तामें सब सुख दूर हुए हैं, उसके ऊपर इन्द्रिय-गणोंके दारुण उपद्रव, कामकी दुःसह ताड़ना, तृष्णाका गुरुतर आघात, क्रोधका विषम शासन और लोभका अविसह्य पराक्रम इत्यादि विविध उप-द्रवोंसे भी गृही लोगोंके सुख स्वप्नवत् और अलीक

असार हो गये हैं। सब कोई सुखके लिये व्यस्त तथा उस ही निमित्त दिनरात यत्नवान हैं; किन्तु किसीके भाग्यमें सुख प्रसन्न नहीं है। दैवात् प्रसन्न होने पर उन्हें थोड़े समयके लिये मत्त, प्रमत्त और उन्मत्तमात्र किया करता है। इन सबका क्या कारण है? और किस लिये तथा किस प्रकारसे संसारमें रोग, शोक, परिताप, वध, बन्धन, भय, शङ्का, सन्देह, मोह और व्यामोह प्रभृति दुःखोंकी सृष्टि तथा विस्तृति हुई; इत्यादि सब सारतत्त्व इस तत्त्वमीमांसामें वर्णित हैं।

कलियुगमें मनुष्य अल्पायु और अल्पवीर्य्य होंगे, ऐसा विचारकर महामना श्रीव्यासदेवजीने उनके सुखबोधके निमित्त समस्त वेद, उपनिषद तथा अन्यान्य मोक्षशास्त्रोंका सार संग्रहपूर्वक संक्षेपमें वर्णना किया है। हमने दश वर्ष तक नियत परि-श्रम करके बहुत कष्टसे उन सब सारतत्त्वोंका सारांश संग्रह किया है। इस तत्त्व-मीमांसामें सृष्टितत्त्व अति सुचारुरूपसे वर्णित है। चिर-सुहृत् धर्म्मकी सविस्तार वर्णना है। किस प्रकारसे देहशुद्धि, आत्मशुद्धि और चित्तशुद्धि होकर चरममें परमपद

मोक्षपद लाभ होता है, उन्हीं तत्त्वोंकी अति सूक्ष्म-मीमांसा है। स्वर्ग और अपवर्ग लाभकी उपाय विवृत हैं। योगकी विविध कथा हैं, जो कि, योगियों को गोपनीय और आदरकी धन हैं। हे ज्ञान-विज्ञान पारदर्शी महोदयगण! जब तक मुक्ति न हो, तब तक अनुरक्ति सहित इस मोक्षशास्त्रके सारसंग्रहरूपी "तत्त्व-मीमांसा" की आलोचना करो।

श्रीराधारमण मित्र।

९ नं० श्यामबाजार ष्ट्रीट,

कलकत्ता।
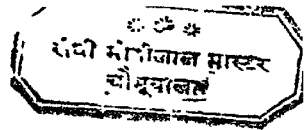
तत्त्व-मीमांसा।

गुरुशिष्य-सम्वाद।

शिष्य। गुरु! मन किसे कहते हैं?

गुरु। सूक्ष्मकार्य ही मन है; मनको सूक्ष्मभावसे महत्तत्त्व कहते हैं। ऐसी शक्ति, सत्त्वसंयुक्त वा स्वच्छप्रकृतिसंयुक्त चैतन्य, जिसके द्वारा स्वभाव प्रकाश होता है और जिस तेजकी सामर्थ्यसे सुखदुःखादिका अनुभव होता है, उसे मन कहते हैं।

शि०। सुख दुःख क्या है?

गु०। शत्रुके वशीभूत होकर आहारादि स्वभावको कलुषित करनेको ही ग्राम्यसुख कहते हैं। इस ग्राम्यरतिको ही तुच्छ विषयसुख कहते हैं। पाप दुःख कहाता है अर्थात् वासनाकी अपरिशुद्धताको दुःख कहते हैं।

शि०। सुख दुःख कौन उत्पन्न करता है?

गु०। इस देहमें मन कर्त्ता है। उसके मतानुसार ज्ञानेन्द्रियां कर्म्म करके इस शरीरके सुख दुःखको उत्पन्न करती हैं।

शि०। कैसा कर्म्म करनेसे सुख और कैसा कार्य्य करनेसे दुःख अनुभव होता है?

गु०। बहिरेन्द्रिय अर्थात् कर्मेन्द्रियां यदि ज्ञानेन्द्रियोंके साथ मिलकर मनकी आज्ञासे कार्य करती हैं, तो सुख होता है। और कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय जब रिपुगणोंसे आक्रान्त होकर मनको पराजित करके उसके द्वारा कार्य करती हैं, तो पद पदमें विपद होती है।

शि०। कर्मेन्द्रिय किसे कहते हैं?

गु०। वाक्, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ, येही कर्मेन्द्रिय हैं।

शि०। रिपुगण किसे कहते हैं?

गु०। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य अर्थात् इन्द्रियोंको जो सब क्रिया मायासे मुग्ध होकर जगत्में प्रकाशित होती हैं, उसे रिपु कहते हैं। संसारी लोगोंको उक्त पांचो कर्म्मेन्द्रियों तथा इन छ रिपुगणोंके हाथसे छुटकारा पाना बहुत सहज नहीं है। इसीलिये ज्ञानमय-चित्त होनेके निमित्त योगमार्गको सृष्टि हुई है।

शि०। ज्ञानदृष्टि किस प्रकार होती है?

गु०। जब अहङ्कार बुद्धिमें और बुद्धि चित्तमें स्थिर हो, तबही ज्ञानदृष्टि होती है; अर्थात् वासनासे इन्द्रियोंको आकर्षित करके मायासे उत्पन्न विद्याकी सहायसे आत्मस्वरूपमें लाना। प्रेममें मग्न होकर आत्मज्ञान होनेसे दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

शि०। क्या मन अकेलाही इस देहका कर्त्ता है?

गु०। हां यह बात सत्य है, परन्तु मन चार अंशमें निर्म्मित है,—मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार।

शि०। चित्त, बुद्धि, अहङ्कार ये कैसे हैं?

गु०। चित्तकी विक्षिप्त, क्षिप्त, मूढ़, स्तम्भित प्रभृति अनेक अवस्था हैं। जिस शक्तिसे सत्यासत्य-विवेचना स्थिर हो, उसे बुद्धि कहते हैं;—यही ज्ञानकक्षामें पहुंचनेका द्वार है। जिस शक्तिमें "हमारा" "तुम्हारा" बोध होता है, उसे अहङ्कार कहते हैं। इन चारों शक्तियोंको लेकर मनने प्रति-जीवनको मुग्ध कर रक्खा है।

शि०। चित्त, बुद्धि, अहङ्कार, इनके बीच कौन बलवान है?

गु०। अहङ्कारही देहके बीच सबसे बलवान है। इस अहङ्कारके बलसे ही बुद्धिमें ब्रह्म-साक्षात होता है; और इसके द्वारा

जो लोग मायाके वशमें होकर "तेरा" "मेरा" रूपसेहसे मण्डित होकर सांसारिकपीड़ा सहते हैं। इस अहङ्कारसे ही सकामक्रिया हुआ करती हैं। दान, तपस्या प्रभृति कार्य्योंसे ज्ञानप्राप्ति हुआ करती है, यदि ये सब क्रिया निष्काम हों। यदि किसीको अहङ्कारसे ज्ञानोत्पत्ति होवे, तो वह ज्ञानही आत्मज्ञान है; आत्मज्ञानसे अहंकार नाश होनेसे लोग आत्माको जो परमात्ममय देखते हैं, वही स्वर्ग, मर्त्य, पाताल है।

शि०। इस स्थलमें स्वर्ग, मर्त्य, पाताल कैसा है?

गु०। ज्ञाननिवास, इन्द्रिययोगनिवास और रिपुयोगनिवास। संसारको रिपु-योग-निवास, तपस्याको इन्द्रिय-योग-निवास और आत्मज्ञान-पूर्णब्रह्मावस्थाको ज्ञाननिवास कहते हैं। इन्हींके रूपान्तरको स्वर्ग, मर्त्य और पाताल कहते हैं।

शि०। किस प्रकार परमात्माकी प्राप्ति होती है?

गु०। योगशास्त्रके नियम अनुसार मृत्युकालीन-वासनाभेदसे जीवोंका जन्म होता है। वासनाको ही आत्मा ग्रहण करता है और भूतादि समवेष्टित होकर भिन्नरूपसे जीवका जन्म होता है। आत्मा यदि वासनासे छूट सके, तो परमात्माकी प्राप्ति होती है वा परमात्मामय होता है।

शि०। किस उपायसे वासनारहित होना होता है?

गु०। मनसे ही वासनाकी उत्पत्ति है। मनको स्थिर कर सकनेसे वासनारहित हो सकते हैं। विश्वासके विना मनको स्थिर नहीं किया जा सकता। पहिले उपदेशमें रति वा मति चाहिये। फिर श्रद्धा, श्रद्धासे भक्ति, भक्ति स्थिर होनेसे ही विश्वास होता है। विश्वासके अनन्तर पवित्र प्रेमका साक्षात् होता है। प्रेम और ज्ञान दोनों उपायोंकी साधना करनी आवश्यक है।

शि०। प्रेम और ज्ञान क्या है?

गु०। जिस शक्तिसे ईश्वर और आत्माके संयोगमें जगत् संसार जाना जाय, उसे ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान समूहबोधक शब्द है। इसकी चार क्रिया हैं—ज्ञान, वैराग्य, विवेक, विज्ञान। जिस ज्ञानसे प्रेम मिलनेसे ब्रह्मलाभ होता है, उसी ही ज्ञानको विज्ञानक्रिया (जो तुरीय अवस्था है) कहते हैं। विज्ञान-लाभ होनेसे ही मनकी क्रियारूपी अहङ्कार बुद्धिमें, बुद्धि चित्तमें और चित्त मनमें प्रवेश करता है। उससे प्राणी रिपुप्राबल्य हीन होके घ्राणेन्द्रिय प्रभृतिके द्वारा अन्तरदृष्टि प्राप्त करते हैं। उस दृष्टिबलसे व्यक्तिगण जो क्या कष्ट भोग करते हैं, उसे जान सकते हैं। ज्ञानके लिये—योगरूप कर्म्म और प्रेमके लिये—धर्म्मोपदेश में रति होनी चाहिये।

शि०। धर्म्म किसे कहते हैं?

गु०। जिस उपायसे संसारमें रहके सांसारिक क्रियावशसे आत्मा को सुख वा स्वस्थ्य रक्खा जाता है, उसे धर्म्म कहते हैं। धर्म्मके दो लक्षण हैं। एक परमधर्म्म वा निवृत्ति, दूसरा अपर-धर्म्म वा प्रवृत्ति।

शि०। परमधर्म्म कैसा है?

गु०। ईश्वरमें भक्ति, जिस धर्म्मसे आत्माको स्वस्थ्य रखकर परमात्मामें मिलाया जा सके। इस धर्म्मसे भोगकामना उत्पन्न होती है। इसे ईश्वरप्रेम-सम्भोगकामना कहते हैं। इस सम्भोगसे भी इन्द्रियसुख फल उत्पन्न होता है। वह कैसा? नहीं,—जब हृदयपथमें मन स्थिर हुआ, तब वाहिरीदृष्टिने अन्तरमें जाकर परमात्माका आविर्भाव तथा अपूर्व्वज्योतिसम्पन्न परमात्माको देखा। तब नेत्रोंने प्रेमाश्रु बहाया, बुद्धि और इन्द्रियां स्थिर होकर चरितार्थ हुईं। तब योगी प्राणायाममें ही रहे वा प्रेममें ही रहे, मुक्त हुआ।

शि०। अपरधर्म्म कैसा है?

गु०। फलकामना करके श्रेय वा स्वार्थलाभ करनेको जो धर्म्म उपदिष्ट होता है,-वही अपर धर्म्म वा प्रवृत्ति है। इसप्रवृत्तिलक्षणसे ही जीवोंको संसारमें मति होती है। माया आच्छन्न कर देती है और उससेही पाप पुण्यका पथिक होना होता है। इस धर्म्मसे संसारमें मुग्ध होके सांसारिक नियमोंमें वाध्य होकर ऐहिक-सुखमें आत्माको रक्खा जाता है। जीवोंके जीवन वितानेको उपाय जो अर्थ और आहारादिसे उत्पन्न कामना है, वह केवल देहार्थ इन्द्रियों की चरितार्थता लाभ करनेको इच्छा करती है। इस अवस्थामें कलुषित-मनको वासनाकी सहायसे निवृत्ति मार्गमें विना लौटाये कदापि मुक्ति नहीं होती। इसलिये जीवोंके पक्षमें धर्म्मानुष्ठान करना ही श्रेय (कल्याणकर) है।

शि०। किस उपायसे धर्म्मानुष्ठान किया जाता है?

गु०। ईश्वर पक्षमें अनुष्ठान अर्थात् "तत्त्व-जिज्ञासा"।

शि०। तत्त्व क्या है?

गु०। ईश्वरानुष्ठान-वासनाका नामही तत्त्व है और उस तत्त्व को ही ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान कहा जाता है।

शि०। तत्त्वको ब्रह्म वा भगवान क्यों कहा?

गु०। जीवात्मा, इन्द्रियां और रिपुगण ये मन नाम कर्त्ताके अधीन हैं। मनका एक मन्त्री है, उसका नाम "वासना" है। यह वासनाही मनको अच्छी सलाहके बलसे परम-तत्त्वके अधीन कराती है। यदि मन तत्त्व-कथासे मुग्ध हुआ तब फिर रिपुगणों को कौन प्रबल करेगा? रिपु अवश्यही मनके दास होंगे। रिपुओं के नष्ट होनेसे मन स्वाधीन होकर वैराग्यमें मग्न होगा। उस तत्त्वसे ही मन ब्रह्मका स्वरूप पावेगा। ऐसे तत्त्वको ही वेदादिमें ब्रह्म कहके निर्द्देश किया है।

शि०। धर्म्मका क्या अर्थ है ?

गु०। धर्म्म शब्दका अर्थ धातु मतानुसार आकर्षण है। लघु वस्तु आत्मत्राणके लिये हहत् वस्तुकी शक्ति धारण करनेकी कोशिश करती हैं,—यह स्वाभाविक नियम है। इस नियमको ही आकर्षण शक्ति कहते हैं। जीव जिस भावसे आत्मत्राणके लिये ईश्वरको जाननेकी चेष्टा करता है, उसी पवित्र भावका नाम धर्म्म है। यह धर्म्म काल्पनिक-वस्तु नहीं है प्रत्येक जीवके स्वभावमें यह भाव है। इसीसे वासना अन्य वस्तुमें आकृष्ट होकर तद्धर्म्मी हुआ करती है।

शि०। जीवदेहमें सुख दुःख कौन भोग करता है ?

गु०। उपाधिगत अर्थात् मायामध्यवर्त्ती कर्म्मके अन्तर्गत आत्मा वा ब्रह्मसत्ताको जीव कहते हैं। उस जीवके अङ्ग वा स्वभाव में कष्ट दुःख अहङ्कार आदि कुछ भी नहीं हैं। तब उनमें उपाधि का मेल होनेसे अनेक कष्टका बोधमात्र होता है। यह जो माया-गत उपाधि वा जीवको अध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक कष्ट हैं, इनको परीक्षा करनेमें अनेक प्रकारसे विज्ञानविद् ऋषियों ने चेष्टा करके अनेक उदाहरण और युक्तिसे यही दिखाया है कि जीव और उपाधि दोनोंके यदि पृथक् स्वभाव न होते, तो कदापि परस्परका बोध न होता। जैसे गृहस्थित स्वाधीनपुरुषको किसी कारागारमें रखनेसे उसको कारण उपाधि जो कष्टदायक है, उसे वह जान सकता है। पर एक पुरुषको बाल्यावस्थामे ही कारावास करानेसे उसे कैदखानेका दुःख कष्टका हेतु कहके नहीं बोध होता। वैसेही जीवका भी माया वा देहगत उपाधिसे भिन्न स्वभाव है ; इस लिये जानना चाहिये कि जीव उस उपाधिके सुख दुःख परिवर्त्तन मतसे जिसमें सुख रहता है, उसमें आनन्दित होता है और जिसमें दुःख पाता है, उसमें दुःखित होता है।

शि०। माया किसे कहते हैं ?

गु०। मायाको विष्णुकी मोहिनीमूर्त्ति कहते हैं ; तथा जिस मूर्त्तिको देखकर संसारवासी लोग रिपुवशसे वशीभूत होकर संसारमें दुःखानुभव करनेमें असमर्थ हुआ करते हैं, अर्थात् माया केवल अपने रूप या मायामय-भावको दिखाकर भुला रखती है। और योगी इन्द्रियबलसे आत्मज्ञान प्राप्त करके रिपुगणोंको मुग्ध करता है। क्योंकि रिपुहीन इन्द्रियोंको वासना नहीं होती। वासना रहित होनेसे योगी सिद्ध होता है। सिद्ध-योगियोंको देवतारूप वर्णन किया जाता है।

शि०। वासना किसे कहते हैं ?

गु०। इन माया-उपाधियोंको विचार करनेके लिये मन और दश-इन्द्रियां तथा दश-इन्द्रिय शक्तिको लेकर विज्ञानविद् ऋषियोंने अनेक आलोचनासे स्थिर किया है कि, मन एक ऐसा स्वभाव है कि जिससे केवल अनुभूत होता है। इन्द्रियां एक ऐसी भूतमय स्थान हैं कि, जिनमें मनशक्ति वा इन्द्रियशक्तियां सक्रिय हुआ करती हैं। उस समय मन और इन्द्रियोंको अतीत एक ऐसी अवस्था है कि, जिसको सामर्थ्यसे ये सब सक्रिय मात्रमें कर्म्म किया करती हैं,—उसी सामर्थ्यको "वासना" कहते हैं। उस शक्तिसे ही शुभ और अशुभ कोईएक कर्म्म प्रकाश होकर जीवको कर्म्मी करते हैं। कर्म्म करके शुभाशुभ-कर्म्मसतसे मन और इन्द्रियादियुक्त तेज कर्म्मजनित-फल भोग करता है। ऐसे विचारस्थलमें बहुत विचार द्वारा स्थिर हुआ है कि, जैसे मद्यको मादकताशक्ति इन्द्रियों तथा मनको आकर्षण करती है वैसे ही जीव उन इन्द्रियादिउपाधिहेतुसे आच्छन्न रहता है। उसी प्रकार कर्म्मगत शुभाशुभ फल द्वारा जीव निश्चय ही आच्छन्न रहता है। वह वासनामूलक शुभाशुभ कर्म्म-फलही शोक, मोह भय, लोभादि नामसे जगत्में सर्व्वत्र परिचित है। सत्वतुरीय तत्त्व, अन्तःकरण वृत्तिके स्वभावको अतीतावस्थाको कहते हैं। आहार,

निद्रा , भय, क्रोध, मैथुन, ये पांचो जीवभावके स्वभाव हैं। जिस अतीतशक्तिसे ये पांचो बोध होते हैं, उसेही अन्तःकरणवृत्ति वा वासना कहते हैं।

शि०। शोक किसे कहते हैं ?

गु०। वासनाके आकर्षण मतसे आत्मासे भिन्न अन्य वस्तुमें जो प्रेम वा पूर्णशक्ति उत्पन्न होती है, उसके नष्ट होनेसे इस आसक्ति वा प्रेमका विच्छेदभाव उपस्थित होता है, उसे ही "शोक" कहते हैं। जैसे पुत्रको स्वभाविकस्नेह-धर्ममें आकृष्ट रखते रखते जब उस पुत्रकी विपद वा मृत्यु होती है, तब पूर्णशक्तिका महाविच्छेद उपस्थित होता है, इसी निमित्त उस वासनाके वैलक्षण्य-स्वभाव को शोक कहते हैं। उस ही लिये शास्त्रकारोंने आत्मीय वियोग जनित दुःखको शोक कहा है। प्रणयके अपलापजनित दुःखको विरह कहते हैं।

शि०। भय किसे कहते हैं ?

गु०। जिससे चतन्य स्तम्भित और स्मृति मूर्छित होती है। ऐसे आकस्मिक विस्मयको भय कहते हैं। भय, निद्रा, आहार, क्रोध और मैथुन,—ये पांचो वासनाके स्वभाव हैं। मनराज्यमें भय अति उत्तम पदार्थ तेज है। भयसे जीव अपनी रक्षा कर सकते हैं। भय दो प्रकारकी है, एक इन्द्रियचेष्टा-विरत और दूसरी इन्द्रिय चेष्टा-निरत,—पहलीको लौकिकमें साहसहीनता कहते हैं। दूसरीको साहस कहते हैं। साहसहीनतासे रिपुप्रबलता व्यादि होनेसे जीव दुःख भोग करते हैं। साहससे इन्द्राधिपत्य पाके जीव अतुलसुख भोग करते हैं। लौकिकमें यह भाव प्रकाश है, समझनेसे ही दीखता है।

शि०। स्नेह किसे कहते हैं ?

गु०। अन्तःकरणकी प्रसन्नतायुक्त द्रवभावको स्नेह कहते हैं।

शि०। स्पृहा किसे कहते हैं।

गु०। वासना द्वारा अपर स्वभावाकर्षणको स्पृहा कहते हैं? अर्थात् एक व्यक्तिको बढ़ियां पोषाक पहननेसे उत्तम आकृति हुई है—उसी स्वभावसे हमारी भी आकृति उत्तम होगी, ऐसी चिन्ता वा वासनाको स्पृहा कहते हैं।

शि०। क्रोध किसे कहते हैं?

गु०। हिंसा परवश होकर मनके सङ्कल्पको जो भाव उत्तेजित करता है, उसे क्रोध कहते हैं। उस क्रोध स्वभावसे द्वेषभाव प्रकाश होकर जीवको परस्पर अनैक्य किया करता है। विज्ञानसे यह विशेष परिचित है कि, क्रुद्धभाव वा शान्तभावसे जो जैसी भावना करता है, वह उसेही पाता है। नहीं तो क्रोधी क्रोध-अभाव और कामभाव कहांसे पावेगा?

शि०। लोभ किसे कहते हैं?

गु०। विपुल लोभ उसे कहते हैं कि, दूसरेकी अवस्था पर ईर्षायुक्त होकर स्वार्थको पूरण करनेके लिये वासना जिस स्वभाव-मय होती है, उसे लोभ कहते हैं। जैसे हमारे पास धन न रहनेसे हम अच्छी अवस्थामें नहीं रह सकते हैं, इसलिये जिसकी अच्छी अवस्था है, उसके सम्बन्धमें ईर्षापरवश होकर निज स्वार्थ पूरा करनेके लिये उस धनीके धनको कौशलद्वारा अपहरणकारी कर्म्ममें जिस स्वभावसे वासनाको कर्म्मपरायण होना होता है, उसे लोभ कहतेहैं। इसी प्रकार विचारकर देखनेसे एक वासना और एक कर्म्मफल वा शोकादि उदयहेतुक भावसमूह वर्त्तमान हैं। उस समय विचार करनेसे भावोंको कर्म्म वा अवस्थाके बीच देखा जाता है और वे भाव वासनासे आकर्षित होकर इन्द्रियादि स्वभाव संयोगसे जीव को दुःखित करते हैं, यह भी दीखता है।

शि०। विज्ञानमें दुःखी किसे कहते हैं?

गु०। उपदेशसे भी जो पुरुष हरिको नहीं समझ सकते वा

पूर्व जन्मके पापसे जड़बुद्धि होनेपर जो लोग ईश्वरको नहीं जान सकते वे दोनोंही स्वभाविक दुःखोसे भी दुःखी होते हैं।

शि०। स्वभाविक दुःखी किसे कहते हैं?

गु०। पूर्व्वकर्म्म वशसे जिनका चित्त एकवारगी जड़ है, उन्हे स्वभाविक पापी वा दुःखी कहते हैं। इन्हे स्वभाविक दुःखी कहनेका तात्पर्य्य यह है कि,—इन लोगोंने कुछ उपदेश न पाया, इसी लिये ये दुःखी हैं। किन्तु उपदेश पाके भी जो लोग ईश्वरको नहीं जान सकते, उनकी भांति दुःखी और कौन हो सकता है?

शि०। शोक, भय, लोभादि दुःखसे शान्तिलाभ होनेकी क्या उपाय है?

गु०। इस सुख और दुःखको प्रत्येक चैतन्य वा मनोमय जीव निश्चय कर सकते हैं। उनके बीच जिन जीवोंको ज्ञान है, वे ज्यादे अनुभव कर सकते हैं। इसी लिये मनुष्योंके पक्षमें इन शोक, हर्ष, भय, लोभादिको ही मायागत उपाधि और जीवको पीड़ादायक अवस्था कहते हैं। इस अवस्थासे ज्ञानमय जीव यदि अतीतभाव धारण कर सकें, तो वे जीव शान्तिलाभ कर सकेंगे। अर्थात् ज्ञानमय जीव यदि विज्ञान तत्त्वको जानकर उस विज्ञानाधारको समझ सकें, तो ज्ञानके तेजसे मायामध्यगत रहके भी वे माया धर्म्ममें आकर्षित नहीं होते। धीरे धीरे मायाधर्म्मसे ईश्वरधर्म्ममें रहते रहते शुद्धस्वभाव प्रकाश होकर उत्तापगत शीतल वस्तुकी उत्तापमय अवस्थाकी भांति जीव ईश्वरमय हो जाता है।

शि० ज्ञान किसे कहते हैं?

गु०। सत्‌शक्तिके स्वभावमें चैतन्यके मिलनेसे मायामें जो सत्त्व-गुणका प्रकाश हुआ था, उस सत्त्वगुणके सहित काल, कर्म्म, स्वभावने मिलकर ज्ञान प्रकाश किया था, चैतन्यमय अनुभवकारी शक्तिको ज्ञान कहते हैं।

शि०। विज्ञान किसे कहते हैं?

गु०। जो शक्ति अज्ञानसे ज्ञानपथमें लेजाय, उसे विज्ञान कहते हैं। अज्ञानको विज्ञानशक्ति सदाही दूर किया करती है। यह विज्ञानशक्ति ईश्वरको साधर्मीय है। क्योंकि ज्ञानादि आत्मा सहित नित्य हैं। आत्मा इस लीलागत आत्मअनुभवके लिये जिस शक्तिको अवलम्बन करके उपभोग करता है, उसे विज्ञान कहते हैं। ईश्वरानुभववात्मक अन्तःकरणवृत्ति विशेषको तत्त्वग्राही शक्ति कहते हैं। बुद्धि प्रभृति उसही शक्तिकी अनुयायी होनेसे विज्ञान सदैव अन्तःकरणमें उदय हुआ करता है।

शि०। आत्मा किसे कहते हैं?

गु०। शक्ति और इन्द्रियसंयुक्त भोक्ताको आत्मा कहते हैं।

शि०। किस प्रकार विज्ञान प्रकाश होता है?

गु०। देहके मध्यस्थित जो आज्ञाचक्र है, उसके दाहिने सूर्य्य और बायें चन्द्रमा है। चन्द्रमासे मनकी और सूर्य्यसे ज्ञानकी उत्पत्ति है। इस आज्ञाचक्रको धारणा कहते हैं; धारणा ज्ञानसे विगलित होनेपर वैराग्य होता है। वैराग्यसे ज्ञानका शासन होकर विज्ञान प्रकाश हुआ करता है।

शि०। विवेकशक्ति किसे कहते हैं?

गु०। ईश्वरमें विद्या और अविद्याशक्तियुक्त माया भी है। जिस शक्तिकी सहायसे जीवात्मा उस विद्या और अविद्याको जान सकता है, उसे विवेकशक्ति कहते हैं। ईश्वरको जब आत्मरूपमें आरोप करके मानवीयआत्मामें लाया जाता है, उस समय जीवात्मा जिससे उन्नतपथमें गमन करे ऐसा बोध वह (ईश्वर) हाथमें करके जीवको संसारी करते हैं कहना होगा, ऐसा न होनेसे वह पक्षपाती होते। उस बोधकोही पचीकरणशक्तिबोधक विवेकशक्ति कहते हैं।

शि०। आत्मज्ञान किस प्रकार होता है?

गु०। हृदयमें मन स्थिर होनेसे बुद्धि ज्ञानपथमें जाकर आत्म-ज्ञान प्रकाश करती है। उस अवस्थाको साधकके सिवाय प्रकाश नहीं कर सकते। तब प्रमाणके निमित्त इतना कहते हैं कि, निद्रित व्यक्तिका मन यथार्थही निरुद्ध होता है। निद्रामें बाह्य जगत्से बुद्धिकी निवृत्ति होकर अन्तर जगत्में प्राप्त रहती है। नेत्र मूंदनेसे इन्द्रियक्रिया बाह्यकर्मरहित होनेपर उनकी क्रिया अन्तरमें प्रबल होती है। जीव निद्रामें वह सुख भोगस्वरूपसे भोग किया करता है। इसीलिये सपनेमें जो देखाजाता है, उसमें जीव जो संलिप्त रहता है, वह भलीभांति बोध होता है। उसी प्रकार निद्रितकी भांति आत्मज्ञानीकी भीतरी और बाहिरीदृष्टि समान होती है। उसमें जीव जो परमात्मामें संलिप्त होगा, इसमें विचित्रता ही क्या है?

शि० अविद्या किसे कहते हैं?

गु०। स्वभावकी जिस सामर्थसे लोग मायासे मोहित होकर संसारके अनुकरणमें प्रविष्ट होते और सुख दुःख भोग करके कालके हाथमें किये हुये कर्मका फल पाते हैं, उसे अविद्या कहते हैं।

शि०। विद्या किसे कहते हैं।

गु०। संसारको जिस सामर्थसे लोग संसारमें रहके भी मोहिनी शक्तिमें न भूलकर जैसे नासिका सब तरहके सुगन्धको सूंघती है, परन्तु किसीमें अनुरक्त नहीं होती, उसही भावसे निसङ्ग रहके ईश्वरमें मग्न होते हैं, उसे विद्या कहते हैं। अविद्याके बलसे कार्य्य करनेसे उसका फल उसी काल द्वारा प्राप्त होता है, विद्याके द्वारा कार्य्य करनेसे वह व्यक्ति कालके वशीभूत होकर भी काल द्वारा आराधित होता है। मद्यपान करनेसे कालके स्वभावसे उसे जिस प्रकार मतवाला होना होता है, वैसेही अविद्याजनित पापी काल-स्वभावसे स्वयंही पापका दण्ड पाता है। किन्तु ईश्वर किसी

विषयमें लिप्त नहीं है, वह सबका साक्षीस्वरूप है। उसके निकट सब समानभावसे दीखता है।

शि०। मायाका कार्य्य क्या है?

गु०। मायाका कार्य्य यही है कि, जीव त्रिगुणात्मक आवरण-से आवृत्त अर्थात् मायासे मोहित होकर अपनेको अभिमानी करके सुख दुःख बोध करते हैं। मान, ऐश्वर्य्य, विपद, सम्पदमें दुःख और सुखानुभव हुआ करता है। अभिमानीको कर्त्ता कहते हैं। कोई पुरुष अपनी सम्पत्तिके ऊपर अभिमानी होकर "मैं महाधनी हूं" यदि ऐसा अभिमान करे, तो वह अपनेसे अधिक धनवानको देखकर अवश्यही कातर होगा भी होगा। तब सम्पत्ति रहनेसे ही अभिमानीको सुख कहां हुआ? कोई किसीको नीच मानके अपने को ऊंचा जानकर अभिमान करे, तो यदि वह नीच-निरूपितव्यक्ति उसका मान्य न करे, तो वह अभिमानी पुरुष रिपु-परवशसे क्रोध और हिंसा रूपी दुःखसे जला करता है। यदि कोई आत्मीय जनों के ऊपर अभिमानी हो, अर्थात् हमारे पुत्र, हमारी कन्या, हमारी स्त्री, हमारी माता इत्यादि भावसे अभिमानी हो; उससे आत्मीय जनोंके विनाशसे महाशोक रूपी दुःख भोग करना होता है। सब ही मायाका खेल है। जो पुरुष सबके बीचमें रहके असङ्ग भावसे निवास करता है, उसे दुःख सुख भोग करना नहीं होता।

शि०। "हम" किसे कहते हैं?

गु०। स्वयं श्रीकृष्णने गीतामें अर्ज्जुनको कहा है; जैसे,—"हे कौन्तेय! जो कुछ कार्य्यकरो, जो कुछ आहार करो और जो कुछ तपस्या करो, वह सबही मुझे अर्पण करना, मैं शब्दसे परमात्मा है अर्थात् जो ज्ञानी मुझे जाननेकी इच्छा करे, वह अपने किये हुये कर्म्म तपस्यादि मुझे अर्पण करनेसे वा मेरी अनुमति अनुसार करता है, ऐसी भावनासे साधन करनेसे उस कर्म्मके द्वारा माया

उपस्थित नहीं होती।

नाभिसरोजादि पञ्चक इसे कहते हैं, जैसे—नाभिपद्म अर्थात् सूक्ष्म ब्रह्माण्ड, आत्मा वा अहङ्कार वा वासनायुक्त मन और आत्म सत्ता जिसकी सत्त्वसे जीव "मैं हूं; मेरा यह स्वभाव है;" बोध कर सकते हैं।

शि०। कौन कर्म्म ईश्वरको अर्पण करना होता है? वह कर्म्म कैसा है?

गु०। संसारीको उस विष्णुमय होना हो, तो आत्मज्ञानकी आवश्यकता हुआ करती है। लेकिन वह ज्ञान फिर उपासनाके अधीन, और उपाना कर्म्मके अधीन होता है। इसलिये ईश्वर परितोषणकारी करनेसे उससे ज्ञानलाभ हुआ करता है। निष्काम कर्म्म करना उचित है

शि०। ष्काम कर्म्म कैसा है?

गु०। कोई व्रतादि वा यज्ञादि आरम्भ करके सात्त्विक भावसे आचरण करनेसे उससे ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है। उसे ईश्वर परितोषकारी निष्कामकर्म्म कहते हैं, सकाम कर्म्मसे निष्काम कर्म्म का अभ्यास करना होता है। निष्काम कर्म्मसे ज्ञान आहरण करके कर्म्म द्वारा कर्म्मको त्याग करना होता है। जैसे जल लेनेके उद्देश्य से किसीने भूमि खोदना आरम्भ किया; यहांपर भूमि खोदनेको सकामकर्म्म कहते हैं। उस भूमि खोदनेके उद्देश्य सिद्धिका फल स्वरूप भूतलसे जल प्रकाशित होनेसे जैसे और खोदनेका प्रयोजन नहीं होता, वैसेही सकामसे निष्काम कर्म्मकी उपासना प्राप्ति स्थिर होनेसे फिर सकाम कर्म्मकी आवश्यकता नहीं रहती। उपासना वा निष्काककर्म्मके आधीन ज्ञान रहता है। उसे आहरण करनेसे जैसे निर्म्मल्यरूपी मला जलके मलाको लेकर एकत्र होकर नीचे पड़ा करती है; उससे जल परिशुद्ध होजाता है; उसही प्रकार ज्ञान प्रकाशसे वह निष्काम कर्म्म और उपासना लयको प्राप्त होती

है। उस आत्मज्ञानसे "तत्त्वमसि" भाव विदित होनेसे जीव ब्रह्म होता है। इसीलिये कर्म करना उचित है।

शि०। भगवानको किस प्रकार कर्म समर्पण करना होता है।

गु०। ईश्वरने ही इस मायाशक्तिद्वारा हम लोगोंको इन्द्रिय और स्वभाव प्रदान किया है और वह भी चैतन्य रूपसे अन्तरमें है; चैतन्य तथा स्वभावके सिवाय जब कोई क्रिया होनेकी उपाय नहीं है, तब सब क्रियाओंको ही तत्कृत कहके समझना होगा। ऐसा समझके हृदयस्थ भावना मतसे भक्ति योग सहित कर्म करनेसे उससे तमोगुणकी उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि, ईश्वर-द्रष्टा मायासे मोहित नहीं होता; वह जिस कार्य्यको ईश्वरकी परितोष निमित्त निष्काम भावसे आलोचना करेगा, उसेही भगवानको अर्पित कहके विवेचना करना।

शि०। किस उपायसे ईश्वरपथका पथिक होना होता है?

गु०। पहिले भक्ति संग्रह करनी आवश्यक है। वह भक्ति ईश्वरकी महिमा सुननेसे होती है। फिर उसके गुण कीर्त्तन रूपी कर्म करना उचित है। इसही कर्म द्वारा उपासनाकी उपाय होती है अर्थात् ईश्वरको हृदयमें धारण करनेकी सामर्थ होती है उस सामर्थको साध्यायत्त्व करनेके लिये ध्यान और पूजाका प्रयोजन है।

शि०। निराकार ईश्वरको किस प्रकार ध्यान पूजन वा हृदयमें धारण करे?

गु०। जिससे ईश्वरका प्रभाव जाना जाय, ऐसी साकार मूर्त्ति को चित्तमें धारण करके ध्यान करते करते हृदय स्थिर किया जा सकता है, नहीं तो संसारमुग्ध मन बहुत चञ्चल है, अन्य उपायसे अभीष्ट सिद्ध नहीं होता। ईश्वरकी साकार देवमूर्त्ति संसारमें व्यक्त है। वह साकार मूर्त्ति मनकी स्थिरता सहित हृदयमें इत

होनेसे निरिध्यासन नाम पांचवी उपाय उपस्थित होती है। उससे आत्माका दर्शन होता है, आत्माके बलसे परमात्माका दर्शन होता है ; इसे ही जीवन मुक्ति कहते हैं। भगवानकी आराधना वा साधना करनी हो, तो पांच प्रकारके नियम हैं ; जैसे,—श्रवणशक्ति कीर्त्तन, पूजन, ध्यान और निरध्यासन।

शि०। भक्तिके अतिरिक्त किसी कार्य्यसे भी ऐश्वरीय श्रेयलाभ नहीं होता, किन्तु वह भक्ति कैसी है ?

गु०। भक्ति दो प्रकारकी है ; एक अन्तर प्रकाश्य और दूसरी अनुध्यान प्रकाश्य। किसी वस्तुके ऊपर भक्ति होनेसे कारणवशसे भीतरही भीतर भक्ति हुआ करती है। आन्तरिक भक्ति यद्यपि विशुद्ध भाव सम्पन्न होती है। पर ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्म्मेन्द्रिय ये दोनों एकत्र होकर जिस कार्य्यको नहीं करती, वह चणिककी कारण होती है। यह मायाका स्वधर्म्म है। इस ही लिये योगी लोग वहिरेन्द्रियको हठयोगसे और अन्तरेन्द्रियको ज्ञानयोगसे आवद्ध करते हैं, फिर मनको स्थिर करके ब्रह्मज्ञानसे पूर्ण होते हैं। उस अन्तरमें वहिरेन्द्रियके एकत्र मिलनेसे मनसे जो प्रसाद गुण परिपूर्ण भक्ति चिन्ह प्रकाशित होता है, उसे अनुध्यान प्रकाश्य भक्ति कहाजाता हैं। उस भक्तिसे यदि हरिको जाननेकी इच्छा हो, तो ज्ञानप्राप्ति होकर संसारग्रन्थिसे आवद्धजीव स्वाधीनता लाभ कर सकता है। उससे मनको शान्ति होने पर ईश्वरको हृदयमें अनुभव कर सकनेसे आत्मा को ईश्वरमय किया जाता है। आत्माके परमात्मामय होनेसे सच्चा मुक्तिलाभ होती है।

शि०। आत्मा जो ईश्वरमें मिलनेसे परमात्मामय होगा, उसका लक्षण क्या है ?

गु०। भक्त लोग ज्ञान और प्रेममें मग्न होकर आत्मदर्शन पानेसे उसके द्वाराही ईश्वरको प्रत्यक्ष करनेकी उपाय पाते हैं।

वह उपाय स्वाभाविक और अन्तरस्थ है, उसे वचनसे कहने और कार्य्यसे प्रमाण नहीं किया जा सकता; तब कई एक लक्षणोंसे जाना जाता है। उनके बीच एक लक्षण यह है कि,—हृदय जिन सांसारिक ग्रन्थियोंसे आबद्ध हो, उससे छूटना।

शि०। सांसारिक ग्रन्थि कैसी है?

गु०। जिस ग्रन्थिसे हृदय अर्थात् मनका आवास आवद्ध है, वही चित्तका जड़ता रूपी बन्धन है। चित्त जब जड़ताभाव अवलम्बन करता है, तब मायामें मनको एकबारगी उन्मत्त करता है। चित्तके शासनसे ही अहङ्कार * शासित रहता है। चित्तको जड़ भावसे रहते देखकर अहङ्कार प्रबल सामर्थ्य प्रकाश करता है। चित्त की जड़ता और अहङ्कार एकत्र होनेसे किसीको स्नेहकी अधिकता होती है; किसीको "मैं बड़ा हूं" ऐसी विवेचना होती है; किसीको अस्थिर बुद्धि होती है; पुत्र मरनेसे कोइ कोई स्नेह बिरहसे उन्मत्त होते हैं; पार्थिव धनी न होनेपर कोई छोटा कहनेसे लोगों को जीवन त्यागका अभिमान होता है। अनित्य प्रेम, अनित्य विश्वास प्रभृति अस्थिर बुद्धिमें उत्पन्न होकर लोगोंको अनेक विपदापन्न करते हैं।

शि०। क्या मन सांसारिक ग्रन्थिमें आबद्ध रहता है?

गु०। हृदय अर्थात् मनही देहका कर्त्ता है। वह कर्त्ता यदि इन अनित्य गुण रूपी ग्रन्थियोंमें आवद्ध रहे, तो ब्रह्म और संसारमें भिन्न क्या है? इसही कारणसे जो लोग आत्मामें ईश्वरानुभव करते हैं, उनके लक्षण जानना हो, तो देखे कि, उनके हृदयकी ये सब सांसारिक ग्रन्थि छूटी हैं।

शि०। मनका क्या और कोई बन्धन है?

---

* अहङ्कार अर्थात् "हमारा" "तुम्हारा" इसही प्रकारका ज्ञान।

गु०। मनका और एक बन्धन है, उसका नाम संशय है। इस संशयसे बुद्धिको निश्चय नहीं किया जाता। बुद्धि निश्चित न होनेसे पापरूप मायामय आग्रह रहना होता है। केवल संशय उस ज्ञानपथ प्रदर्शिनी बुद्धिको ऐसा जो पीड़ामय संसार है, उसे अच्छा दिखाता है। आत्मज्ञानी विश्वासी पुरुषको संशय होना सम्भव नहीं है।

शि०। बहुतेरे लोग धर्म्मसतसे फलकामना करके क्यों यज्ञादि कर्म्म किया करते हैं?

गु०। फल कामना करके हो, वा न हो, जो कुछ कर्म्म किया जाता है, उस कर्म्मकारीको कदापि आत्मज्ञानी नहीं कह सकते। कर्म्मद्वारा बिना विज्ञानकी प्राप्ति हुए कदापि आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होता। इसलिये कर्म्मादि यज्ञ प्रभृति जो लोग ईश्वर प्राप्तिका अभ्यास करते हैं, उनके लिये है, जिन्हें ईश्वरप्राप्ति हुई है, उनके लिये नहीं। इसलिये आत्मज्ञानी होनेसे कर्म्मक्षय ही उनका मुख्य लक्षण है। क्योंकि पहाड़के शिखरपर जो चढ़ता है वह अगल बगलके नगर ग्राम आदिको तुच्छ देखता है, शिखरके ऊपरी पर्वत शृङ्गको बड़ा देखता है।

शि०। इस जगत्‌काण्डको समझनेका क्या उपाय है?

गु०। जगत्‌को जानना हो, तो पहिले ईश्वरको समझना चाहिये।

शि०। ईश्वर कैसा है?

गु०। ईश्वर कैसा है—उसको कोई स्थिर करके अन्तरसे प्रकाश नहीं कर सकता। ईश्वरने वह सामर्थ्य मनुष्य बुद्धिमें नहीं दी है।

शि०। जब ईश्वरको मूर्त्ति स्थिर नहीं हुई है, तब किस प्रकार उसकी उपासना करें?

गु०। न्यायमतसे वस्तुद्वारा कर्त्ताको सापेक्ष करना हो, तो क्रिया देखकर कर्त्ताको क्रियावान करलेना होता है। मनुष्य साकार पदार्थ है। साकार पदार्थ विचारनेके समय कोई वस्तुको विचारकृत करना हो, तो साकार भावके सिवाय विचार नहीं होता इसी निमित्त साकार बुद्धिसे इस साकार जगत् स्रष्टाको समझना हो, तो उसको भी साकारत्व अर्पण करना होता है; नहीं तो मीमांसा नहीं होती।

शि०। क्या एक ईश्वरसे ही इस जगत्की सृष्टि हुई है?

गु०। यद्यपि परमेश्वर एक और अद्वितीय हैं; तथापि एक होकर भी वह सृजन, पालन, हरण आदि इस जगत्के कार्य्यको करनेके लिये सत्त्व, रज और तमोगुणयुक्त हैं।

शि०। सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंको ईश्वरने किसके निकटसे लिया?

गु०। माया प्रकृतिसे वह इन गुणोंको ग्रहण करके स्वयं ही इन तीनों गुणोंको मण्डित हुए।

शि०। माया प्रकृति कौन है?

गु०। जिस स्थानमें निर्गुण ईश्वर सगुण होकर चैतन्य और सत् इस त्रिशक्तियुक्त हुए हैं, उसे त्रिसामासदन कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम प्रधान अवस्था माया है। इसी अवस्थासे जगत् प्रकाश हुआ करता है। माया ईश्वरके चैतन्यसे चैतन्यवान कारणों कोलेकर ईश्वरसे ही उत्पन्न होती है। माया प्रकाश होनेसे उसमें कालशक्ति * प्रवेश करनेसे माया और काल त्रिगुणमय हुए। इस ही हेतु सम्पूर्ण माया और कालोत्पन्न जीव तथा भूत त्रिगुणमय हुआ करते हैं। ईश्वरने अपना रूप पूरो रीतिसे मायाको न देकर

---

* कालशक्ति—इसे रुद्रशक्ति कहते हैं।

मायासे इन तीनों गुणोंको लेकर आवृत किया। उससे उनकी यथार्थ मूर्त्तिका तीन भागमें रूपान्तर हुआ। प्रकृतिको पालकारी सत्त्वगुणसे हरि (विष्णु) मूर्त्ति; सृजनकारी रजोगुणसे विरचि (ब्रह्मा) मूर्त्ति और हरणकारी तमोगुणसे हर (महादेव) मूर्त्ति प्रकाशित हुई। ये तीनों जो प्रकाशरूप नहीं हैं। केवल जगद्विचारके निमित्त रूपान्तर मात्र किया गया।

शि०। सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंकी क्रिया कैसी है?

गु०। तमोगुणसे रजोगुण और रजोगुणसे सत्त्वगुणकी उत्पत्ति होती है; और उस सत्त्वगुणसे ब्रह्मदर्शन हुआ करता है।

शि०। क्या मनुष्यदेहमें सत्त्व, रज और तमोगुण है?

गु०। हां पहली अवस्थामें देहीमात्र ही देह स्वधर्म्ममें (ज्ञान स्वधर्म्ममें नहीं) तमोगुणी हैं। इस तमोगुणमय देहमें रज और सत्त्वगुण है। क्या वृक्ष, क्या पत्थर, क्या मनुष्य सबही तमोगुणी हैं। जैसे काठ घिसनेसे उससे धुआं निकलता है, फिर उस धूआंसे अग्नि प्रकाशित हुआ करती है, पर प्रकाशके पहिले उस काठमें अग्नि और अग्नि प्रकाशक धूआं स्फुटभावसे रहता है; चेष्टा न करनेसे प्रकाश नहीं होता; वैसेही इस तमोगुणमय देहमें रज और सत्त्वगुण हैं। बुद्धिद्वारा विचार करनेसे मनकी सहायसे धीरे धीरे सत्त्वगुणकी प्राप्ति होनेसे मायाका सब कुछ समझा जाता है। मायाको जानके उसे परित्याग करते ही ब्रह्मदर्शन होता है।

शि०। ईश्वरने नित्त चैतन्यको त्रिगुणमय करके त्रिदेव कल्पना किया, तो क्या वे (त्रिदेव) पूर्ण भगवान हैं?

गु०। वे पूर्ण ईश्वर नहीं हैं, किन्तु ईश्वरके कलांश हैं। ईश्वरकी सामर्थ्यको वेही प्रकाश करते हैं।

शि०। इन त्रिदेवकी उपासना करनेसे क्या लाभ है?

गु०। त्रिदेव कहनेसे हरि, हर और ब्रह्मा जानो। प्रकृति जगत्‌को उत्पन्न करती है, इसीलिये उसके तेजको ब्रह्म वा प्रजापति कहते हैं। और कालद्वारा सबका विनाश होता है, इसीसे उसके तेजको हर या भूतपति कहते हैं। इन दोनों मूर्त्तियोंकी पूजा करनेसे दर्शन तथा प्राकृतिक विज्ञानप्राप्तिमात्र हुआ करती है। उनकी सामर्थ जानी जाती है। उनकी क्षमता संसारमें विन्यस्त है। इसलिये उनकी पूजा करनेवाले परमात्माको न पाकर संसारको भलीभांति समझ सकते हैं। संसारमें जो लोग ऐश्वर्य पुत्र और रूपादिकी कामना करते हैं, वेही रजोगुण और तमोगुणावलम्बी देवगणोंकी पूजा किया करते हैं। और जो लोग मुक्तिपथके पथिक होनेकी इच्छा करते हैं, वे केवल उन वासुदेव हरिमें भक्ति किया करते हैं। क्योंकि सत्त्वगुण न होनेसे मुक्ति नहीं मिलती। हरिनाम कीर्त्तनसे यह कलुषित मन सत्त्वगुण धारण कर सकता है। विशुद्ध सत्त्वगुण प्राप्त होनेसे अष्टसिद्धि * मिलती है। अष्टसिद्धि मिलनेसे आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आत्माकी सहायसे परमात्माको अनुभव कर सकनेसे जीवोंको मुक्तिलाभ हुआ करती है।

शि०। क्या हरिनाम कीर्त्तन और हरिसेवा करनी ही उचित है?

गु०। वासुदेवसेवा जो सबसे ही प्रधान है, उसे और दूसरी कथा क्या कहें। सम्पूर्ण श्रुतिका तात्पर्य्य ही एक मात्र वह वासुदेव हैं यज्ञके आराध्य मन्त्रही वासुदेव हैं। सब प्रकार योगाङ्ग और समाधि प्रभृतिके एक मात्र अन्वेषणीय वस्तु हो वासुदेव हैं। समाधिसाधन करनेके लिये जो सब वीजमन्त्र, धारणादिकी क्रिया प्रभृति हैं, उनके भीतर तात्पर्य्य वासुदेव हैं। सब ज्ञान-

---

* अनिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशितश्च वशितश्च तथा कामा वशायिता॥

शास्त्रों, सब प्रकारको तपस्या सब प्रकारके धर्म और सब तरहके गतिके एकमात्र प्रधान उद्देश्य उनके सिवाय और कुछ नहीं है।

शि०। ईश्वर सगुण हैं वा निर्गुण?

गु०। ईश्वर सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं।

शि०। जब ईश्वर क्रियावान हैं, तब निर्गुण किस प्रकार कहें?

गु०। वह स्वयं स्वभावसे ही निर्गुण रहते हैं, केवल जगत्सृष्टि करनेके निमित्त सत्त्वादिगुणयुक्त होते हैं। उन्होंकी विरचित यह माया और गुणमय जगत् पदार्थ है और वह अपने तेजसे सबके अन्तरमें प्रविष्ट हैं, इसीसे उन्हें गुणवान कहके बोध होता है। वह अपनेसे आपही विज्ञान स्वरूप हैं। उनकी चेतनशक्ति सब क्रिया करती है। उनके न होनेसे कुछ भी नहीं चलता और वह किसी में लिप्त नहीं है। जैसे राजाकी आज्ञासे सेना युद्ध करने जाती है, लोग कहते हैं राजा युद्ध करता है।

शि०। यद्यपि ईश्वर एक और अद्वितीय है, ऐसा होनेसे उनका स्वरूप जो आत्मा है, वह भी एक और अद्वितीय होगा; किन्तु तो भी भिन्न भिन्न जीवोंको भिन्न भिन्न आत्मा भिन्न भिन्न रीतिसे कार्य्य क्यों करती है?

गु०। जगतकी आत्मारूपी भगवान प्रति भूतके अन्तरमें प्रविष्ट हैं। किन्तु भूत क्रिया देखकर लोग उन्हें भिन्न भिन्न कहके मानते हैं। विज्ञान मतसे सम्पूर्ण भूतशक्ति एकके सिवाय दूसरी नहीं है, उसी मत अनुसार तेज भी एक है। तेज क्रियाको ही अग्नि कहते हैं। सबके अन्तरमें समान भावसे अग्नि है। भूतसे उत्पन्न होनेसे उसमें भूत चमताको निहित जानना। आत्मा भी ईश्वरका स्वरूप है, वह वेदादिमतसे एक है। तुममें, मुझमें, व्याघ्रमें, उद्भिज्जोंमें

तथा सबमें ही आत्मा है । यह उनको जीवितशक्ति देखनेसे ही प्रमाण किया जाता है । इसलिये हम, तुम, व्याघ्र, वृक्ष सब ही सबसे भिन्न हैं, किन्तु आत्मा भिन्न नहीं है। जैसे प्रति वस्तुमें अग्नि रहनेसे अग्नि एकके सिवाय दूसरी नहीं है, वैसे ही आत्मा प्रति-प्राणीमें रहनेसे भी वह एकके सिवाय दूसरा नहीं है। यह विज्ञान मीमांसा है ।

शि० । मनुष्य, गो, वृक्ष इन सबकी विभिन्न सृष्टि है और प्रति सृष्टिकी विभिन्न क्रिया क्यों होती है ? और यह जो सृष्टि है, इसे बनानेसे ईश्वरका क्या प्रयोजन पूर्ण हुआ ?

गु० । लोग मायाके वशमें अहङ्कारमें उन्मत्त स्वच्छन्दता पूर्वक कहते हैं, मैं मनुष्य हूं; ये पशु और वृक्ष हैं, किन्तु कहो तो सही इस मनुष्यदेहका कौन अंग मनुष्य है ? इसे अब तक कोई निर्णय नहीं कर सका सब अङ्ग ही ईश्वरके लीला खेलके स्थल हैं। पञ्च-भूत, इन्द्रिय और बुद्धिद्वारा निर्मित देहधारीमात्रको प्राणी कहा जाता है। विज्ञानमतसे चार प्रकारके प्राणी हैं,—जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज । इन सबको ही आत्माके घट रूपसे वर्णन किया गया है । परमात्मा निज उपभोगस्थलरूपी जगत् बनाकर आत्मारूपसे चारि प्राणी देहरूपी घटके बीच रहकर सब उपभोग करता है।

शि०। ईश्वर जीव देहमें आत्मारूपसे रहकर उपभोग करते हैं; किन्तु स्वयं उनने क्यों नहीं उपभोग किया ?

गु०। उसका कारण यह है, जैसे एक राजा पालन, शासन, भ्रमण प्रभृति विविध कार्य्य सामर्थ्यद्वारा ही शेष करता है, वैसेही यदि स्वयं ईश्वर उपभोगमें उन्मत्त हों, तो अन्यान्य क्षमता कौन प्रदान करेगा ? इसही हेतु ईश्वरने किसीमें भी संलिप्त न रहके आत्माद्वारा उपभोग करनेके लिये इस जगत्को बनाया है। पर

वह स्वयं निर्गुणरूपी होकर विराजते हैं। मायासे हम तुम चिन्ता करते हैं। किन्तु मायाको त्यागनेसे कोई कुछ भी नहीं है, सबही उस एक ईश्वरको लीला खेल कहके बोध होती है। हम सब उसके क्रीड़ाके उपाय मात्र हैं।

शि०। प्रयोजनके सिवाय कार्य्य नहीं होता ; ईश्वरके किस प्रयोजनसे यह जगत् कार्य्य प्रकाशित हुआ ?

गु० जैसे अपनी इन्द्रियोंको चरितार्थ करनी हो, तो सम्भोग वस्तु संग्रह करना होती है ; आहार करना हो, तो आहारीय वस्तु संग्रह करनी होती है ; वैसेही इस जगदीय लोगों और लोकपालों-को उनके उपहारका कारण ईश्वरनेही बनाया है।

शि०। यदि ईश्वरने लोक और लोकपालोंको उनके उपहार का कारण बनाया है, तो उससे उनकी इच्छा प्रकाश होती है ?

गु०। वह इच्छा कैसी है,—जैसे क्रीड़ा करना यद्यपि इच्छा-के वशीभूत है ; तथापि उससे आन्तरिक आशक्ति नहीं होती ; अर्थात् क्रीड़ा न होनेसे नहीं रह सकूंगा, ऐसा भाव नहीं होता। वैसेही ईश्वरने इस जगत्‌को निज क्रीड़ा निमित्त बनाया है; जगत-के जीव गण तथा सब वस्तुएं उसके क्रीड़ाकी उपकरण स्वरूप हैं। लोग वाल्यावस्थामें बालकोंको खेलनेकी सामग्री देते हैं, लड़के स्थिर मनसे क्षण भरके लिये क्रीड़ा (खेल) की सामग्रियोंको लेकर हर्ष प्रकाश करते हैं, फिर उसे तोड़ भी डालते हैं। यदि उसमें बालककी आशक्ति रहती, तो वह उसे कदापि न तोड़ता। उसी उसी भांति ईश्वर क्रीड़ाके लिये इस जगत्‌को बनाते हैं ; किन्तु उसमें आशक्त नहीं होते ; उसका चिन्ह स्वरूप वह स्वयं ही इसे विनाश करते हैं। इसलिये मनुष्य उनकी जागतिक वस्तुओंके बीच गण्य होनेसे उसही स्वभावापन्न हुए हैं।

शि०। ईश्वर किस उद्देश्यसे आत्मारूपसे प्रत्येक जीव देहमें

निवास करते हैं ?

गु०। यह शरीर दो भागमें विभक्त है। एक मनोमय, दूसरी भूतमय। स्थूलभावसे जो सर्व्वदा देखा जाता है, उसे भूतमय कहते हैं। सूक्ष्मभावसे जो स्थूलभावका प्रयोजक होकर अदृश्य है, उसे मनोमय कहते हैं। सपनेमें इस मनोमय देहका कुछ अनुभव होता है। ये दोनो देह चैतन्यमय हैं। ये दोनो देह षोड़शगुणमें विभक्त हैं। एकादश इन्द्रिय अर्थात् दश इन्द्रिय तथा मनोमय देहके गुण और पञ्चभूत। चैतन्य इस षोड़श जीवत्व प्रदानकारी और उनके कृतगुणोंका उपभोगकारी है। उस चैतन्यका सत्‌भावही जीवात्मा है, इसलिये जीव उपभोक्ता मात्र है, ईश्वररूपी परमात्मा उसका साक्षी स्वरूप है। साक्षीभावसे ईश्वरका उद्देश्य और आत्मभाव से लीला प्रकाश हुई, इससे वह सर्वज्ञ प्रमाणित हुए।

शि०। भगवानकी इच्छासे क्या केवल सृष्टि ही हुआ करती है ?

गु०। भगवानकी सिसृक्षु, लिलिप्सु और जिहिर्षु, येही तीन इच्छा हैं। सिसृक्षु इच्छासे आपही सृष्टिरूपसे रूपान्तरित होते हैं। लिलिप्सु इच्छासे स्वयं ही लीलामय होते हैं। जिहिर्षु इच्छा से आपही अपने अंशरूपी लीला हेतुसे जीवसृष्टिके निमित्त ब्रह्माण्ड हरण करते हैं।

शि०। ईश्वरकी साकार मूर्त्ति कैसी है ?

गु०। ईश्वरको विराट पुरुषभावसे धारण करना होता है।

शि०। वह विराट मूर्त्ति क्या है ?

गु०। वह महदादि, भूतादि और षोड़श कलांश आदिसे जगदोत्पत्तिके कारणरूपसे बनी हुई है।

शि०। महदादि भूतादि और कलांश किसे कहते हैं ?

गु०। बुद्धि, अहङ्कार और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रभृति को महदादि कहते हैं। पञ्चभूतको भूतादि कहते हैं। एकादश

इन्द्रिय और इन पञ्चमहाभूतोंके मिलनेसे षोड़श कला होती है। ये सब मिलकर जिस रूपमें तैयार होते हैं, वही भगवानकी विराट देह है अर्थात् जगत्प्रकाशक प्रकृतिको ईश्वरकी विराटदेह कहते हैं। जिस उपाय से जगदीय हम, तुम, जन्तु, वृक्ष आदि सृष्ट हुए, उसके स्वरूप भावको विराट पुरुष कहते हैं उसकी भावनाको विराटपूजा कहते हैं। विराट शब्दका अर्थ विशेषरूपसे शोभित है। यह प्रति-जीवदेह जिस पदार्थको लेकर विशेषरूपसे शोभित है, उसीको भगवानकी विराट देह कहते हैं।

शि०। विराट अवस्था किसे कहते हैं ?

गु०। कार्य्यशक्ति और कार्य्यकी उपादानमय समष्टिवाचक अवस्थाको विराट अवस्था कहते हैं। यह विराटभाव ही ब्रह्माण्ड-का पूर्वभाव है।

शि०। इस जगत्प्रकाशके पहिले ईश्वरकी विराटमूर्त्ति किस स्थानमें और किस अवस्थामें थी ?

गु०। जब प्रलयमें समस्त पृथिवी जलमें डूब गई, तब भगवान योगनिद्रामें उसके ऊपर सोये थे।

शि०। शयन क्या है और योगनिद्राही क्या है ?

गु०। निश्चेष्ट भावसे रहकर इन्द्रियोंको विश्राम करने देनेका नाम शयन है। और अन्तरमें इच्छा वा धारणा करके अन्तरदृष्टि मनमें प्रदान करनेसे उसे योगनिद्रा कहते हैं।

शि०। प्रलय होनेका कारण क्या है ?

गु०। भगवान इस जगतको एक समयमें प्रलयद्वारा विनाशित करके अपने लीलामय परिश्रमसे शान्तिलाभ किया करते हैं। यह वेदादिके मतसे तथा प्रलयविज्ञानसे प्रमाणित हुआ करता है।

शि०। प्रलय किसे कहते हैं ?

गु०। प्रलय तीन प्रकारकी है,—नित्यप्रलय, खण्डप्रलय और

महाप्रलय। मृत और निद्रित अवस्थाको नित्यप्रलय कहते हैं। देशका कुछ अंश दुर्भिक्ष, भूकम्प, वृष्टि अथवा समुद्र नद्यादिके जल से विनष्ट होनेसे उसे खण्डप्रलय कहते हैं। समस्त पृथिवी जलमय होनेसे महाप्रलय कहते हैं।

शि०। क्या महाप्रलयका निर्दिष्ट समय है?

गु०। हां प्रत्येक चतुर्युगोके शेषमें हुआ करती है। ईश्वर चतुर्युगोके शेषमें अपनी चैतन्यशक्ति, मायाशक्ति, कार्य्यशक्ति और कारणसमूहको निश्चेष्टभावसे विश्राम करानेके निमित्त महाप्रलय करते हैं।

शि०। महाप्रलय किस प्रकार होती है?

गु०। पृथिवी चन्द्रमाके आकर्षण और सूर्य्यके आकर्षणसे सौर-क्षेत्रमें अपने मार्गसे समान भावसे घूमती है। चन्द्रमाका क्रमसे तेज घटने पर वह मृतग्रह होता है, उसी समयमें उसकी आकर्षणी शक्ति घटती है। सूर्य्यकी आकर्षणशक्ति बढ़नेसे पृथिवी और चन्द्रमा दोनो ही अपने अपने मार्गसे भ्रष्ट होकर सूर्य्यके निकटवर्त्ती होते हैं। जितना ही ये दोनों निकटवर्त्ती होते हैं, उतनाही तेज (उत्ताप) बल से सम्पूर्ण भूतांश रससे विकारित और समस्त भूतांश रससे परिपूरित होनेसे समुद्रका जल बढ़कर पृथिवीको सब ओरसे जलमें डुबाया करता है। पृथिवी की गति निज मार्गको अतिक्रम करनेसे अन्यान्य ग्रहगण अपने अपने स्थानसे स्खलित होकर सूर्य्यके ऊपर गिरते हैं। जैसे अग्निमें मक्खन गल कर घृतरूपसे परिणत होता है, वैसेही सम्पूर्ण ग्रहपिण्ड सूर्य्य तेजसे गल जाते हैं। वे तेजनाम भूतगण वायुमें गमन करते हैं और वायु आकाशमें प्रवेश करता है। एक प्रकृतिके लोप होनेसे सब विलुप्त होकर केवल एक मात्र शून्य (आकाश) ही रहता है। उसी महाप्रलयमें ईश्वर निज चित्तशक्तिको ग्रहण करके सम्पूर्ण कारण

माया और कालशक्तिको अपने गर्भमें रखके स्वयंही उस प्रलयवारिमें निश्चेष्टभावसे शयन करते हैं ।

शि० । क्या ईश्वर प्रलयवारिमें निश्चेष्टभावसे ही शयन किया करते हैं ?

गु० । कालक्रमसे जब ईश्वर प्रवुद्ध होकर सृष्टिकी इच्छा करते हैं ; तब वह कालशक्तिद्वारा कारण समूहको चैतन्यवान करके निज नाभिसे एक पद्म (कमल)प्रकाश करते हैं। उस पद्म को त्रिलोकका कोष कहते हैं। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल इन तीनों लोकोंके प्रकाशित होनेसे उनके आधारस्थानको पद्म कहते हैं। प्रलयके अनन्तर जगत्के आधार स्थानको पद्म कहके अलङ्कार शब्द दिया गया ; क्योंकि जलमें पद्म कदापि नहीं डूबता। उस पद्मर स्वयंही भगवान पूर्वकालमें पुनर्वार जगत्की सृष्टि करनेके कारण जगतके आधारसे पहिले प्रकृतिके तेज अर्थात ब्रह्मरूपसे प्रकाशित हुए ; भगवानका यह एक अवतारस्वरूप है।

शि० । महतत्त्वकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई ?

गु० । मायामें जिस भावसे तीनों गुणोंका प्रकाश होता है, उन तीनों गुणोंके मायामें परिणत होनेसे काल उनकी साम्यावस्था को क्षुभित किया करता है। कालके क्षोभणसे ऐशिकस्वभावसे इन गुणोंका एक प्रकार परिणाम होता है। वह परिणत अवस्था ईश्वरकी इच्छानुरूप अदृष्ट (प्रारब्ध) नाम कर्म्म द्वारा और एक रूप तथा अवस्थामें प्रकाश होती है, इस प्रकाश्य अवस्थाको ही महतत्त्व कहते हैं। विज्ञानवेत्ता लोग कहते हैं कि, क्षुद्र वस्तुओंकी जिस भावसे उत्पत्ति होती है, महत् वस्तुओंकी उत्पत्ति भी उसी भावसे होती है। ईश्वरके कर्म्म वा अदृष्टको मायाके बीचमें रखकर उसके मेलसे प्रकाश करना हो, तो कालद्वारा मायासे उत्पन्न तीनों गुणोंके क्षोभ और स्वभावद्वारा उनका परिणाम दिखाना होता है। इसी

प्रकार जिस अवस्थामें कारणसृष्टि रूपान्तरित होती है, उसे महत्तत्त्व कहते हैं।

कोयलेमें अग्नि डालके फूंकनेसे फूंकके वायु और अग्निके प्रभावसे कोयला अग्निमय हुआ। पर अग्निमय होनेसे पूर्वदत्त अग्नि वा फूंकनेका प्रयोजन नहीं रहता। वैसेही सदसत्‌शक्ति जगत्‌की सूक्ष्म कारण है। उसकी सहायसे अन्यान्य ऐशिकशक्तियां क्रियावान हुआ करती हैं। इसही प्रमाणसे देखा जाता है कि सत् रहित चैतन्य और कालका क्षोभ होनेसे ईश्वरका समस्त चेतन्य वा सब कालशक्ति सत्‌के बीच न रही। सत्‌को क्रियावान करके ईश्वरीय शक्ति ईश्वरमें ही रही। इसही प्रमाणसे एक सत् उनके परिवर्त्तन से माया और मायाके परिवर्त्तनसे तीनों गुण हैं। इस मतसे सत्, माया तीनोंगुण इस पांच विकारीकृत कारण अवस्थाके प्रकाश होने पर उसमें और तीन—काल, कर्म्म, स्वभाव नाम ऐशिकशक्ति मिश्रित हुई। उसमें वे पांच और ये तीन सब आठ कारण अवस्था मिलकर महत्तत्त्व प्रकाशित हुई।

शि०। इस जगत सृष्टिके पहिले क्या क्या वस्तु थी?

गु०। पहिले ब्रह्म, उसकी सदसदात्मिकाशक्ति, काल, चैतन्य और उनकी इच्छाशक्ति थी। भूत चैतन्यमय जगतके सूक्ष्म कारणों को सदसदात्मिकाशक्ति कहते हैं। प्रकाशक और निरोधकशक्ति को काल कहते हैं। सबको सजीव रखनेवाले तेजको चेतन्य कहते हैं। कर्त्तव्याकर्त्तव्यबोधकशक्तिको इच्छाशक्ति कहते हैं। यह इच्छाशक्ति जब ईश्वरमें सम्मिलित रहती है, तब वह विशुद्ध माया नामसे कही जाती है; जब कालके क्षोभणसे मिश्रित होती है, तब वह अपरिशुद्धा माया नामको धारण किया करती है।

शि०। अपरिशुद्धा माया कैसी है?

गु०। जब ब्रह्म स्वरूपमें रहते हैं, तब उनको कर्त्तव्यवस्तु

जगत उनमें पूर्वोक्त सूक्ष्मांशसे लीन रहता है। उस समय उनकी कर्त्तव्य इच्छामय माया प्रकाश होती है। वह कर्त्तव्य इच्छाशक्ति के प्रभावसे काल कर्त्तव्य प्रकाश करनेके लिये भूत चैतन्यमय जगत् की सूक्ष्म कारणरूपिणी सदसदात्मिका शक्तिको क्रियावान करनेकी चेष्टा करता है। जिस समय काल क्रियावान होकर सदसदात्मिका-शक्तिको क्षुभित करता है, उसी समय उसका अवस्थान्तर होता है। इसी अवस्थाको क्रियावान अवस्था वा प्रधानावस्था कहते हैं। जैसे कोयलेमें अग्नि डालकर फूंकनेसे कोयलेको अग्नित्व प्राप्त होनेके पहिले एक प्रकारकी अवस्था होती है, वैसेही इच्छाशक्ति के पीड़नसे कालरूपी फुत्कार अंगाररूपी सत्‌शक्ति को चैतन्यरूपी अग्निमय करनेकी पहिली अवस्थाको प्रधान कहते हैं। अग्निके मेलसे जैसे कोयला निज गुण क्रिया सहित अग्निके गुण क्रियाको धारण करके अग्नि प्रभाव प्रकाश करते हुये अग्निमें लय हो जाता है। वैसेही कालद्वारा चैतन्य लाभ करके सत्‌शक्ति जब चैतन्यमय होती है, तबही महतत्त्व प्रकृति वा अविशुद्ध माया प्रकाशित होती है।

शि०। इस महतत्त्वका क्या गुण है?

गु०। ब्रह्माण्डपञ्चमें प्रथमावस्थाको ही महतत्त्वावस्था कहते हैं। जिस किसी तत्त्वको विचार करके देखा जाता है, तो उसके पूर्वलक्षण अनुभव होनेसे उन लक्षणोंका एक ऐसा साम्यभाव संग्रहीत होता है कि, उसे किसी प्रकारसे प्रमाण नहीं किया जाता। किन्तु वह अवस्था जो निश्चित है, वह बोध होता है। उसी सूक्ष्म अवस्थाको महतत्त्व कहते हैं। तत्त्व अर्थात् बुद्धिके विचारसे समर्थ होके भी जिस भागको महत् अर्थात् अतीत कहके बोध होता है, उसी अविच्छिन्न सूक्ष्म वस्तुकी सत्‌मात्राको महतत्त्व कहते हैं। यह महतत्त्व अवस्था कैसी है?—काल द्वारा क्रिया-

वान होकर अव्यक्त मायासे पुरुष सहयोग द्वारा जो अवस्था प्रकाश हुई, वही महतत्त्व है।

इस महतत्त्वमें प्रधान तीन वस्तु रहीं, एक—काल, दूसरी चैतन्य और तीसरी सदसत्। सदसत् कहसे सूक्ष्म तथा कारण भावापन्न पदार्थ हैं। जिनसे जड़भाव और जड़ जगतके सब उपादान प्रकाश होते हैं, जब काल और चैतन्य उससे विच्छिन्न होते हैं तब वह निरोधरूपसे अर्थात् प्रलयभावसे अपनेरूपमें स्वयं ही लय होती है। इसही लिये इसमें निरोधात्मक तथा भूतोपदानात्मकगुण होनेसे महतत्त्वमें तमो अर्थात् निरोध वा अप्रकाश नाम गुण प्रकाशित होता है। महतत्त्वमें कालशक्ति रहनेसे उसकी सामर्थसे सदसत् सृष्टिका उपादान प्रकाश होता है। उसही निमित्त कालसे मह-तत्त्वमें जो गुण रहता है, उसे रजोगुण वा प्रकाशकगुण कहते हैं। महतत्त्वमें चैतन्य रहनेसे उसके द्वारा सदसत्, सजीवत्व और विलुप्त भाव उत्पन्नकारीशक्ति प्रकाश होनेसे उसे सत्त्वगुण कहते हैं।

किसी एक वस्तुके कार्य्य स्वभावको गुण कहते हैं। काल, चैतन्य आदि जो केवल मायामें ही व्याप्त रहे, ऐसा नहीं है;— केवल उनके कार्य्य स्वभाव मायामें व्याप्त हुए। इसीलिये उनके प्रकाश्य स्वभावको वैज्ञानिकोंने मायाश्रितगुण कहके निर्द्देश किया है।

इन तीनों गुणोंसे युक्त प्रकृतिसे जगत्की द्रव्य, ज्ञान और क्रिया,—येही अनित्य स्वभाव प्रकाश होते हैं। जिनके कारण नित्य हैं, किन्तु प्रकाश्यभावसे परिवर्त्तन होता है; उन प्रकाश्य वस्तुओंको शास्त्रमें अनित्य कहके निर्द्देश किया है। विश्व प्रकाशक कालके तेजसे उत्पन्न रजोगुण क्रियाका प्रकाश होता है, विश्वके पूर्वस्वभावज्ञापक और सजीवकी उपाय-स्वरूप चैतन्यसे उत्पन्न सत्त्वगुणसे ज्ञान प्रकाश होता है। विश्वप्रकाशक उपादानरूप

भूतादि उद्भावक सदसत् शक्तिसे उत्पन्न रजोगुणसे द्रव्यका प्रकाश होता है। ब्रह्म विश्वलीला करनेके लिये कर्म्म और स्वभाव सहित स्वयं ही प्रतिविम्बित होते हैं। ईश्वरकी इच्छा कर्त्तव्य-साधनको कार्य्य कहते हैं और उसी प्रकाशक तेजको स्वभाव कहते हैं। इस कर्म्म और स्वभावके मेलसे द्रव्य, ज्ञान, क्रिया संयोजित होती हैं। काल भी अपने गुणसे उन्हें क्रियमाण करता है। इसी मतसे ईश्वरसे उत्पन्न नित्य काल, कर्म्म, स्वभाव और महतत्त्वस्वरूप मायासे उत्पन्न द्रव्य, ज्ञान और क्रिया; इन्हीं षट्सम्पत्तियोंका मिलन होता है। द्रव्यसे जगत्का उपादान प्रकाश होता है, क्रिया उसे रूपान्तरमें प्रकाश करती हैं; ज्ञान चैतन्यमय भावसे सूक्ष्मभावको विकसित करके नियमित संसारकार्य्य करता है। काल इनका परिवर्त्तन करता है, कर्म्म पूर्वभावरूप ईश्वरकी इच्छा नाम कर्त्तव्य प्रकाश करता है; स्वभाव सबके प्रकाशकरूपसे सब कुछ प्रत्यक्ष कराता है। यही जगत्का उपादान सूक्ष्म कारण रूपसे सांख्यमें विचारीकृत हुआ है।

शि०। चैतन्यमय जगत् किस प्रकार प्रकाश हुआ?

गु०। ईश्वरका कर्त्तव्य कार्य्य ही जगल्लीला है। ईश्वर लीला करनेकी कांक्षा करके निज शक्ति सहित जब द्रव्य, ज्ञान, क्रियात्मक पदार्थरूपी महतत्त्वमें मिलित हुए, तबही सबकी संज्ञा बोध हुई; उसे अहङ्कार कहते हैं। अहङ्कार कहनेमें सत्ता अर्थात् सजीव भावसे क्रियावान तेज है। मायासे जिन तीन गुणोंका परिचय दिया है, वे पूर्व्वोक्त छः शक्तियोंके बलसे अहङ्कारमें मिश्रित हुए। सत्ता तेजरूपी अहङ्कारके जो अंश तमोगुणमें मिश्रित हुए, उसीसे भूतादिकोंका उत्पन्न होना आरम्भ हुआ। क्योंकि, तमोगुण जड़ भावापन्न जगत्का सूक्ष्म कारण था, इस समय सत्ता पाकर उसके तेजसे अपने विलुप्तभावरूप द्रव्यादि अर्थात् भूतादि, काल, कर्म्म

और स्वभाववशसे प्रकाश करने लगा। अहङ्कारके जिस अंशमें रजोगुण आकार मिला, उसीने काल, कर्म और स्वभाववशसे इन भूतोंको क्रियावान किया ; क्योंकि मायाकी क्रियाशक्ति रजोगुणसे प्रकाश होती है, उसे पहिले प्रमाणित किया है। अहङ्कारका जो अंश सत्त्वगुणमें मिश्रित हुआ, उससे भूतजगत्‌में ज्ञान प्रकाश हुआ। उससे स्वयं ही चैतन्यसे आकर्षित काल, कर्म, स्वभाव प्रतिफलित होकर द्रव्य और क्रिया सहित मिश्रित होने लगे। इसही प्रकार चैतन्यमय जगत् तैयार हुआ।

शि०। ईश्वरकी जगल्लीला कैसी है ?

गु०। ज्ञानमय सत्ता वा अहङ्कारसे मानस प्रकाश हुआ ! उस मानससे समस्त इन्द्रियोंका प्रकाश है और वही सबका कर्त्ता होकर संसारमें अवस्थान करता है। उसी सात्त्विक अहङ्काररूप मानसके कार्य्य पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा, इन दशोंके आकर्षणसे कालका क्षोभण हुआ करता है। इस भूतानुभावक चैतन्यमय तेजके नामको ही विज्ञानवेत्ता लोग इन्द्रिय कहते हैं। तमो और सत्त्वके मिलनसे रजोगुणका प्रकाश होता है। इस रजोगुण और सत्त्वांशसे ज्ञानकी शक्तिस्वरूप बुद्धि, तथा भूतोंकी शक्तिस्वरूप प्राणका प्रकाश होता है। इन सब विभूतियोंको लेकर ईश्वरने समष्टि और व्यष्टि कर रक्खा है। उनकी समष्टिसे जीवदेह और व्यष्टिसे जगत् पूर्ण भूतप्रपञ्च प्रकाश हुआ। उस जीवदेहमें भगवानकी शक्तिने प्रवेश किया, वही जीव तथा सम्पूर्ण आनन्दोपभोगकर्त्ता हुआ। ऐश्विक-इच्छाशक्ति जिसने ईश्वरके कार्य्यमें व्रती होकर काल सहयोगसे जगत् और जीवको प्रकाश किया। वही स्वाधीन भावसे जीवकी सहकारिणी हुई। काल, कर्म और स्वभावमतसे जीव उस स्वाधीन वृत्तिरूपी वासनाकी मन्त्रणासे मायासे उत्पन्न तीनों गुणोंके अधीन होगया और अपनी परमशक्तिको न देखा ;

और कोई गौ, कोई वृक्ष, कोई मनुष्य वासनाके मतसे स्वभावके तारतम्यसे प्रकाश हुए। जितने जीव जगत्‌में प्रकाश हुए हैं, उनमें मनुष्योंका जन्म सत्त्वगुण प्रधान होनेसे ज्ञानकी अधिकता है। जन्मान्तमें जो मनुष्य रजो और तमोगुणके वशीभूत न होकर स्वयं ही सत्त्वमय रहते हैं; वे चैतन्यमय होनेसे कूटस्थ जीवभावसे ऐशिकभाव अनुभव कर सकते हैं। वह आनन्दमय रूपही ब्रह्म वा नारायण है। नारायणका आनन्दमय प्रभावही स्वयं ऐशिकज्ञान को रजो और तमोगुणसे प्रकाश करता है; और वह ज्ञानस्वभाव नित्य तथा अभ्रान्त है; क्योंकि जगत् नियमित है। गतिसे ही पुण्य और पापके तारतम्यसे वासना जीवलीला किया करती है।

शि० गति किसे कहते हैं?

गु०। जन्म और जन्मान्तरके कर्म्मफलको गति कहते हैं। स्वाधीनवृत्तिके अधीन में जीवात्मा द्रव्य, कर्म्म, कालादि षट् सम्पत्ति लेकर जिस भावसे मायासे उत्पन्न क्रियामें आवद्ध रहे, उसी अवस्थाके परिमाणको गति कहते हैं; कोई फल कहते हैं। ईश्वरने अपनी चिन्मयशक्ति जीवके हृदयमें देकर उसको सद्व्यय हुई या असद्व्यय हुई,—इसे बोध करानेके लिये गति रक्खा है। यह गति ही वासनाका परिणाम फल है। केवल इस गतिको प्राप्त होकर ही विज्ञानवेत्ता लोग ईश्वरको परकालका विचारकर्त्ता कह के असन्दिग्धचित्तसे शास्त्रमें प्रयोग करते हैं। यथार्थमें ईश्वर मनुष्यकी भांति पाप पुण्यका विचार नहीं करते। मायासे उनकी ऐसे भावकी शक्तियां हैं कि, वेही एकवारगी स्थिर फलाफलको सूक्ष्मानुसूक्ष्म कर देती हैं। इसकी अपेक्षा सद्विचार और नहीं हो सकता तथा विज्ञानमें इसके अतिरिक्त दूसरे फलाफलके नित्यत्व को नहीं पाया जाता। सांख्य शास्त्रमें इस विचारको वहुतेरे प्रमाणों सहित मीमांसा की गई है।

शि०। जीवकी गति कितने प्रकारकी है?

गु०। शास्त्रमें जीवकी गति त्रिभावापन्न कही है जैसे भुः, स्वः। स्वः कहनेसे सत्कर्म्मागत गति वा स्वर्ग, भुवः कहनेसे असत्कर्म्मागत गति है; और भुः कहनेसे जन्म मरणात्मक कर्म्मभूमि जानो। कर्म्मभूमिही जीवोंकी प्रत्यक्ष हुआ करती है सत् वा असत् कर्म्मफलसे वा गतिवाचक स्थानका कुछ भी तो प्रत्यक्ष नहीं होता। जो प्रत्यक्ष नहीं होता, उसके ऊपर सन्देह हो सकता है। उपदेश द्वारा प्रतीत होनेसे वह सन्देह नष्ट हुआ करता है। जन्म और मृत्युको जीवकी स्वाभाविक गति कहते हैं। उस स्वाभाविक गतिके सिवाय और एक वैकारिक गति देखी जाती है, उस गतिको गुण और कर्म्मजगति कहते हैं। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रवृत्ति तथा अदृष्टके शुभाशुभफलको वैकारिक वा गुणकर्म्मज गति कहते हैं। अर्थात् जीवगण सात्त्विकगुण वलसे कोई निवृत्ति गति और सुकृत अदृष्टप्राप्त करके इस लोकमें लीला करते हैं। कोई राजसिकगुण वलसे शुभकर्म्ममें मतिमान होकर शुभ अदृष्ट मतसे शुभगति लाभ करते हैं। कोई तामसिकगुणमतसे पापकर्म्ममें रत होकर दुरादृष्टप्राप्त कर मन्दगति लाभ करते हैं।

शि०। किस अवस्थाको अहङ्कार कहते हैं?

गु०। पूर्व्वोक्त आठ अवस्थामय महत्तत्त्व कालादि चिग्शक्तिमत से क्रियावान होनेसे अवस्थान्तर होता है। उस महत्तत्त्व अवस्था पर्य्यन्त मायाके तीनोंगुण एकत्रित रहते हैं, अनन्तर अपने अपने अंशके प्रकाश तथा प्रवर्त्तित होनेकी चेष्टा करते हैं। उसी नियमसे रज और सत्त्व प्राय एकभाव हैं, इसीलिये अल्पमात्र विच्छिन्न होते हैं। तमोगुणके सहित रज और सत्त्वके मिलन अभाव हेतु वह विभिन्न होकर प्रकाश होता है। इसहीलिये तमोगुण महत्तत्त्व अवस्थाके अनन्तर अन्यान्य गुणोंकी अपेक्षा प्रधान होजाता है,

यहांपर माया दो अवस्थापन्न होती है। एक अवस्थामें रजोगुण और सत्त्वगुणको अधिकता रहती है उसे विद्यावस्था कहते हैं; दूसरी अवस्थामें तमोगुण अधिकता होती है, इसे अविद्यावस्था कहते हैं।

सत्शक्तिके बीच सत्तावस्तुका सूक्ष्मकारण निवास करता है, काल, कर्म्म और स्वभाववशसे तमोगुण श्रेष्ठ होकर अपनी प्रधान सत्ता उस सत् स्वभावको आकर्षण करके द्रव्य उत्पन्न करता है। पहिले तमोगुणके साथ रजोगुण और सत्त्वगुणका कुछ मेल था, इससे वे भी इस तमोगुणसे आकृष्ट द्रव्यके बीच सत्त्वगुणमें ज्ञानभाव से और रजोगुणमें इन्द्रिय वा क्रियाभाव से उत्पन्न होते हैं। उस द्रव्य, ज्ञान और क्रियाके एकत्र मिलनेसे एक अवस्था होती है। उससे ही सचेतन जगत्‌का प्रकाश होता है। उस तमोगुण प्रधान अवस्थाको अहङ्कार कहते हैं। ये सूक्ष्म कारणसमूह क्रमसे मिलित होकर अनुभव किये जाते हैं। ऐसे सचेतन स्थूल कारण भावको अहङ्कार कहते हैं। इसी अहङ्कारको सबकी सत्ता कहते हैं। क्योंकि प्रकाश्य जगत् इस अहङ्कारकी कईएक अवस्थाका रूपान्तर मात्र है।

शि०। आकाश किसे कहते हैं?

गु०। अहङ्कार फिर प्रवर्त्तित होकर तीन भागमें विभक्त होता है। ज्ञानशक्तिके मेलसे अहङ्कार जिस भावसे रहता है, उसे वैकारिक अहङ्कार कहते हैं। क्रियाशक्तिके मिलनेसे अहङ्कारकी जो अवस्था होती है, उसे राजसिक अहङ्कार कहते हैं; और द्रव्य-शक्तिके मेलसे अहङ्कारकी जो अवस्था होती है, उसे तामसिक अहङ्कार कहते हैं। वह भूतोंकी आदि तामस अहङ्कार रूपान्तरित होकर पहिले आकाशका प्रकाश करता है। उस आकाशकी मात्रा और गुण ही शब्द समझना होगा। वह शब्द ही जगत्‌में

द्रष्टा और दृश्यका बोधक होता है। पहिले कहा है, सदसत्‌शक्ति की सत्ता नाम द्रव्यादिका सूक्ष्म कारण तमोगुणमें था। द्रव्य सम्मिलित सत्तावस्थाको तामस कहते हैं। उस स्थूल द्रव्यकारण रूपी तामस-अहङ्कारसे इसही लिये जगत्‌के उपादानरूपी द्रव्यका प्रकाश प्रमाण होता है। यह जो स्थूल जगत्‌के बीच पांच स्थूल द्रव्य कारणरूपी भूत अनुभव किये जाते हैं; वे इस अहङ्कारसे ही प्रकाश हुए हैं।

विज्ञानसे देखा जाता है कि, द्रष्टा और दृश्यका बोधक एक सूक्ष्म कारण है। एक वृक्षको देखना हो, तो अपनी इन्द्रियको किसी एक पदार्थको सहायसे उस वृक्षस्थलमें लेजानेसे तब वृक्षका बोध होगा; अनन्तर पूर्वभाव और शिक्षामतमे उसका परिचय स्थिर होगा। वृक्षको देखकर पहिले एक पदार्थ कहके बोध हुआ था; उस पदार्थ बोधक कारणको आकाशका कारण कहते हैं और उसी का नाम शब्द है। बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं, आघात ही शब्द है; यह उनका भ्रम है। वस्तुके सूक्ष्मरूपको मात्रा कहते हैं। आकाशको समझनेमें उसके सूक्ष्म स्वरूपरूपी शब्दको समझ सकनेसे ही आकाशका बोध होगा। यह भूत सबसे सूक्ष्म और व्यापक भावयुक्त है। (आ × काश) = आकाश। आ उपसर्गका अर्थ सर्वतोभावसे; और काश शब्दका अर्थ वर्त्तमान वा प्रकाश है। जो भूत सम्पूर्ण भावसे सर्वत्र वर्त्तमान है, उसे आकाश कहते हैं।

द्रव्य मिश्रित अहंकार सूक्ष्मसे धीरे धीरे स्थूल हुआ है। और सूक्ष्म से ही स्थूलकी उत्पत्ति है,—यह भी विज्ञानवेत्तालोग कहा करते हैं। वायु शून्य (आकाश) से स्थूल है, इसलिये शून्य ही घनी-भूत अवस्थासे वायुमें परिणत हुआ है। और उसमें अहंकारकी पूर्वशक्ति है।

शि०। वायुकी उत्पत्ति किस प्रकार है ?

गु०। तामस अहंकार एकबारगी रूपान्तरित होकर भूतवश से प्रकाश होता है। ये सम्पूर्ण भूत एकके अवलम्बसे जगत्में विराजते हैं। जिसके जिसके आश्रयसे जिस भूत की स्थिति और प्रकाश निर्देश हुआ है, उसही भूतमें आश्रयदाताका गुण तथा धर्म्म आकर्षित हुआ करता है; यही विज्ञानविधान है। इसी नियम के वशवर्त्ती होकर बुद्धिमानोंने स्थिर किया है कि, शून्य और अहंकार इन दोनोंके मेलसे जिस भूतका प्रकाश हुआ है, वही वायु है। क्योंकि वायुमें निजका स्पर्शगुण है और वह स्पर्शगुण इन्द्रिय का बोधक होता है। उसमें शून्यका बोधक शब्द गुण और निज का स्पर्शगुण रहनेसे जगत्में वायुकी स्थिति प्रकाश हुई है। तेजके तारतम्य और गुरुताके तारतम्यसे जो कुछ वस्तु इन्द्रियगोचर होती है, उसे स्पर्शन कहते हैं। वायु शून्यकी अपेक्षा गुरु है और उसके भीतर तेजोमय बीज रक्षित है; उसही लिये गुरुत्व तथा तेजहेतु वायुभूतका स्वकीय लक्षण स्पर्श नामको प्राप्त हुआ है और वह स्पर्श सबके अनुभव वा बोधकी वस्तु होनेसे उसमें आकाशके शब्द मात्राकी सत्ता देखी जाती है। इसही लिये विज्ञानवेत्ताओंने वायुका शब्द और स्पर्श लक्षण स्थिर किया है।

वायुके और भी चारि स्वभाव हैं। उनमें से एकका नाम प्राण है, देह धारण शक्ति को प्राण कहते हैं। वायुके जिस अंशमें तेज है, वही अंश जीवोंके अन्तरमें जाकर तेज प्रदान करता है; वह तेज ही सब भूतोंका आकर्षक है। वह तेज क्या भूत क्या इन्द्रिय सब को ही आकर्षण करके प्रति प्राणीके देहमें पालन तथा जगतके नियमित परिपालन कार्य्यमें परिणत होता है। जीवोंकी देह कहने से भूतांश जानो, वायु जिस तेजांशसे भूतोंको आकर्षण किया करता है, उसे प्राण कहते हैं और जिस स्पर्शनमिश्रित

तेजांशसे इन्द्रियोंको कार्य्य कराता है, उसे ओजः सहः और बल ये तीन स्वभाव कहते हैं। ओजः स्वभावसे जीव इन्द्रियोंके तेज को पाते हैं। सहः स्वभावसे जीव इन्द्रियोंके सह्य गुण पाते हैं और बल स्वभावसे इन्द्रियशक्ति सम्पन्न होते हैं। इन चारों लक्षणोंसे आक्रान्त और शब्द स्पर्श दोनो गुणोंसे युक्त जो भूत जगत् में प्रकाश हुआ है, उसे ही वायु कहते हैं। इस वायुके अन्तर में जो तेजकी सत्ता रही है, वह काल, कर्म्म और स्वभावके द्वारा रूपान्तर को प्राप्त होकर वायु तेज को प्रकाश करता है।

शि०। तेज (अग्नि) की उत्पत्ति किस प्रकार है?

गु०। काल, कर्म्म और स्वभावके द्वारा अहङ्कार जितना ही पीड़ित होता है, उतनाही उसके कार्य्यका प्रकाश होना समझना होगा। शून्य और वायुके प्रकाश होने पर उसकी अपेक्षा गुरु और जो एक भूत हुआ उसे तेज कहते हैं। जिस सूक्ष्म भूतांशसे तेज प्रकाश होता है, और अत्यन्त सूक्ष्मभावसे वायुमें ही विराजता तथा मिलित रहता है; यह सूक्ष्मांश ज्योतिः सम्पन्न है। यह ज्योतिः ही रूप कहके सर्वत्र अवस्थित है। इस ही लिये विज्ञान-वेत्ताओंने वायुसे तेजका प्रकाश और तेज (अग्नि) का गुण ज्योति वा रूप निर्द्देश किया है। वह तेज निज गुण रूप को लेकर अन्यका बोधक होता है कहके उसमें शून्यकी मात्रा शब्दका मिश्रित होना देखा जाता है; और वह तेज स्पर्शनसे अनुभूत होनेसे उस में वायुके स्पर्शगुणका होना देखा जाता है। उससे ही तेज ज्योति वा रूप, शब्द और स्पर्श ये तीनों स्वभावापन्न होकर जगत में विदित हुए हैं। वायुही तेजका आश्रय है, तत्त्व विवेचकोंने उसके बहुतसे प्रमाण दिये हैं। किसी स्थानमें अग्निको जलाकर उस (अग्निमें) के सम्पूर्ण इन्धनोंको स्थाना-न्तरित करने पर उत्ताप सहित तेज स्वयं ही वायुमें

मिल जाता है। जो भूत जिसके आश्रयसे मिश्रित होता है, उस आश्रय दाताको ही उसका प्रकाशकर्त्ता समझना होगा। इस ही लिये विचारमत तथा विज्ञानमत से वायुही तेजका प्रकाशक है।

अग्नि कोयलेमें पड़कर वायुसे अपना शुद्ध स्वभाव लेकर पहिले अपनेको तेजोमय करके फिर कोयलेमेंके तेज स्वभावको हरण किया करता है। इसी अवस्थामें कोयला अग्निमय होता है; क्षण-भरके बाद अग्निका स्वभाव हृत होनेसे अग्नि वायुमें मिल जाता है। अग्नि सहित रस भी उस (अग्नि) में मिलकर निकलता है केवल पृथिवीका अंश भस्मरूपसे पड़ा रहता है। इस लिये भली भांति जाना जाता है कि, केवल वायुसे ही तेजका प्रकाश है।

शि०। रस वा जलकी उत्पत्ति किस प्रकार है?

गु०। प्रत्येक भूतके मूलकारणको उस अहंकार द्वारा काल, कर्म्म, स्वभाववशसे प्रकाश होना समझना होगा। जो तन्मात्रा रसरूपसे जगत्‌में विदित है, वह जो सूक्ष्म भूतांशसे लक्षित होती है, तो उसेही जल कहते हैं। इस जलका सूक्ष्मांश तेजमें मिश्रित रहता है; तेज ही जलका प्रकाशकर्त्ता और आश्रयदाता है। तेज (अग्नि) के साथ मिश्रित तथा आश्रय सम्बन्धसे जलमें भी पूर्ववर्त्ती भूतोंका आविर्भाव हुआ है और उसके सहयोगसे उनके सुभाव जलमें प्रविष्ट हुए हैं। पूर्ववर्त्ती भूतोंके शब्द, स्पर्श, रूप ये, तीनों गुण जलमें मिश्रित होनेसे जलका रससुभाव जगत्‌में अनुभूत स्पष्ट और रूपमय करके देखा जाता है। अग्निके बीच रसरूपी अत्यन्त सूक्ष्मांश पवनविहारी भूतांशको जल कहते हैं। इस सूक्ष्मांशमें तेज प्रविष्ट होनेसे वह एकत्र मिश्रित होता है और वही वाष्पभाव धारण करके अन्यान्य भूतादिकों के सुभावसे सबके द्वारा अनुभूत स्पष्ट और लक्षित हुआ करता है।

विज्ञानवेत्ताओंने जिस लक्षणको विचार करके जलको तेजान्त-

र्गत भूत कहा है, उसे दिखाते हैं। जब तेजोभाग को लेकर सूर्य्य पृथिवीसे दूरमें निवास करता है, तब जल-सूक्ष्मांशमें परिणत होनेके लिये वाष्पभावसे वायुगत तेजसे आकर्षित हुआ करता है। फिर इस सूक्ष्म वाष्पभावमें जब तेजकी अधिकता प्रवेश करती है, तब वह एकत्रमें घनीभूत होकर बादल रूपसे वायुके बीच निवास करता है, इस वाष्पभागमें जब तेजभाग मिश्रित नहीं होता, तब ही वह निज स्वभाव रसरूपसे परिणत हुआ करता है। तेजसे आकर्षित होनेपर जब सूक्ष्मता प्राप्त होती है, और तेज रहित होनेसे जब तरलता प्राप्त होती है, तब पूर्वोक्त तेजसे सूक्ष्मतालाभ होती है कहके उसीही जलका प्रकाशक समझना होगा।

शि०। पृथिवीका प्रकाश किस प्रकार है?

गु०। रस अपेक्षा स्थूल भूतांशको पृथिवी कहते हैं। यह भी कणारूपसे आकाश, वायु, अग्नि और जलमें मिश्रित रहती है। उसमेंसे जल पूर्व्व पूर्व्व भूतस्वभावसे गुरु है, इसीलिये पृथ्वीका सूक्ष्मांश जलमें अन्तर्हित हुआ करता है। इस सूक्ष्मांशको गन्ध लक्षणसम्पन्न देखा जाता है। अधिक करके पूर्व भूतांश उसमें मिश्रित रहनेसे वह अपना गन्धस्वभाव पाकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्धयुक्त होकर जगत्में हैं। जल जैसे तेजकी अधिकता से तेज़में मिलता और तेज घटनेसे अपने स्वरूपमें रहता है; वैसे ही पृथिवी भी रसकी अधिकतासे रसमें मिश्रित रहती है और रसके ह्रासमे निज स्वरूपमें परिणत होती है। दूधके बीच जो अत्यन्त सूक्ष्मांश पृथ्वी रहती है, उसे नवनीत कहते हैं। दूधके रसभागको उत्तापद्वारा ह्रास करनेसे स्वयं ही पृथ्वीभाग एकत्रित होकर दूधके ऊपर तैरता रहता है। रस घटनेसे एकत्रमें घनीभूत होकर मिट्टीमें परिणत होता है। यह विशाल मृत्तिका और पत्थरादिका उस रसान्तर्गत पृथ्वी अंशसे प्रकाश होना समझना होगा।

शि०। जगत्में पहाड़ोंके रहनेका क्या प्रयोजन है ?

गु०। पहाड़ोंसे जगत्के अनेक प्रयोजन सिद्ध होते हैं। भूविद्या जाननेवाले कहते हैं, पहाड़ोंके द्वारा पृथिवीका भार मध्यस्थिर रहकर वायु तथा अन्यान्य भूतांश समष्टिमें आकृष्ट रहनेसे पृथ्वी सूर्य्य और चन्द्रमामें मिश्रित नहीं होती, इसीलिये पर्व्वतादिका नाम गोत्र है। गो-शब्दसे पृथ्वी जानो। त्र-शब्द-का अर्थ त्राण है। पृथिवीको सूर्य्यादिके मार्गसे जो वस्तु स्खलन नाम विपदसे त्राण करे, वही गोत्र होता है।

शि०। पृथिवी कहनेसे क्या समझा जाता है ?

गु०। सब भूतांशके तेज संयुक्त समष्टिमात्र समझना होगा। पञ्च भूतांश तेज प्रभावसे चालित होकर पृथिवीमें परिणत होते हुए जीवादिका संगठन करते और उनके स्वास्थ्यका विधान करते हैं। महा चैतन्यरूपी भगवानांशसे भूतादि प्रकाश होके पृथ्वीमें समष्टिभूत होकर स्थिर हुए हैं, फिर बढ़ते नहीं और भगवान (सर्वप्रविष्टरूपसे) सबभूतोंमें रहके पृथिवीको धारण किये हैं। उस पृथिवीके ऊपर क्या चैतन्यभाव क्या जीवभाव सबही स्थिति करते हैं और अच्छे भावमें परिणत होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सब तेजभाग पृथिवीमें हैं। पृथिवीसे ही यह देह बनी है, इसलिये इसमें भी ये सब वर्त्तमान हैं; वासना उनके अन्तर्गत है।

शि०। प्रलयमें प्रकृति किस अवस्थामें रहती है ?

गु०। कोई एक अव्यक्त वस्तु न रहनेसे कोई एक वस्तु अव्यक्त नहीं हो सकती। जैसे प्रकाश है, उसी लिये अन्धकार प्रकाशमें मिल जाता है। और उजाला तथा अन्धकार एक एक वस्तुके ही पूर्ण और अपूर्ण भाव है। उसी प्रकार प्रलयमें प्रकृति अन्धकाररूपसे ईश्वररूप प्रकाशमें मिल जाती है। अनन्तर स्वयं ही कालवशसे प्रकाश होता है। इसे प्रकृतिको रूपान्तरलीला कहा

गया। दूसरा रूप है, इसीलिये वस्तुका रूपान्तर होता है।

शि०। कालचक्र किसे कहते हैं?

गु०। जगतकी गति विषयक और सृष्टि परिवर्त्तनकारी ऐशिकशक्तिको काल कहते हैं। यही काल जिस सामर्थ्यसे जगतके जीवोंमें व्याप्त है, उसे कालचक्र कहते हैं।

शि०। ग्रह किसे कहते हैं?

गु०। जीवादि समन्वित विमानविहारी तथा सूर्य्य द्वारा आकर्षित ज्योतिष्मान् भूखण्डको ग्रह कहते हैं।

शि०। नक्षत्र किसे कहते हैं?

गु०। जीवहीन ज्योतिर्म्मय पदार्थमिश्रित अग्न्याखण्डको नक्षत्र कहते हैं।

शि०। तारा किसे कहते हैं?

गु०। पदार्थमिश्रित अत्यन्त क्षुद्रतम पिण्डको तारा कहते हैं, सबमें ही ज्योति है। वे सबही कालकी परिवर्त्तन सामर्थ्यसे निज निज अवस्थाका परिवर्त्तन दिखाकर अनेक स्थलोंमें भ्रमण करते हैं; इसीलिये कालचक्रस्थित ग्रह नक्षत्रादिकी गति और स्थिति है, कालके प्रेरणसे वे आकाशमण्डलमें हैं।

शि०। क्या सूर्य्य चन्द्रादिकी भी लय है?

गु०। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि, सूर्य्य चन्द्रादि कालके अधीन हैं। कालकी शक्ति सहयोगसे सूर्य्य चन्द्रादिके आकर्षण और पृथिवीके परिवर्त्तनमतसे जैसे एकवर्षमें पृथिवीका एक बेर परिवर्त्तन देखा जाता है, इसी प्रकार प्रतिग्रहका उसी भांति परिवर्त्तन होता है; यह कालशक्ति जीवोंको आलुरहित करती हुई भय दिखाया करती है।

शि०। सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र ऋक्ष, और तारा-समूहका प्रकाश किस प्रकारसे हुआ?

गु०। सूर्य्य चन्द्रादि मानो चैतन्य दृष्ट-पदार्थ हैं। जिस शरीर वा जिस वस्तुमें चैतन्य संज्ञा नहीं है, वह कदापि चन्द्र सूर्य्यादिका अनुभव नहीं कर सकता। और ये चन्द्र सूर्य्यादि चैतन्यमय होनेमे चैतन्यद्वारा ही प्रकाशित होते हैं, किन्तु सहसा देखनेसे उन्हें स्वप्रकाश कहके बोध होता है। यह चैतन्य ज्ञानचैतन्य नहीं है, बल्कि भूतगत चेतन्य है। सूर्य्य चन्द्र ग्रहादिके हिमत्व और अग्नित्वसे ही आकर्षणशक्तिका प्रकाश होता है और उस आकर्षण-शक्तिसे ही भूतगण संजीव रहके परस्परमें मिलित और वियुक्त हुआ करते हैं। जब महत्तत्त्व अवस्थासे प्रकृतिका व्यक्त होना आरम्भ होता है, काल और ईश्वर चैतन्य उसमें क्षोभप्रदान करनेसे उसका तमसांश विघूर्णित हुआ करता है। तेज और हिमको ह्रास वृद्धि-मतसे घूमना प्रकाशित हुआ करता है। इसी घूर्णनसे प्रलयके पूर्वजात नित्य अव्यक्तभूत तन्मात्राओंका विच्छेद हुआ करता है। इसे ही पुराणमें अन्तर्भेद कहते हैं। हिम और तेजको सामर्थसे घूमते घूमते पहिले शून्य तन्मात्रा प्रकाश होती है, उसमें ऐसा भाव हुआ कि, कोटि कोटि पदार्थहीन विमल शून्य नाम भूतांश विस्तीर्ण होगये। उन प्रत्येक शून्यांशको आधार करके घूर्णित सत् वा तमस्‌भागसे वायुकी सूक्ष्मतन्मात्रा प्रकाश होकर आकाशके बीच रही। शून्य और वायु नाम दो सूक्ष्मतम तन्मात्रा प्रकाश हुई। स्वयं अग्नि तन्मात्रा तेज और हिमसे प्रकाशित हुई। अनन्तर अव्यक्त भावसे जो रस तन्मात्रा अग्निके बीच थी, वह भी प्रकाश हो गई। फिर रसके प्रकाशसे बीजमय पृथ्वी प्रकाश होनेके लिये उसकी तन्मात्रा प्रकाश हुई। जैसे हिमरूपी जल और तेजरूपी अग्निको पीड़न करनेसे दोनोंके तेज मिलनेसे बुदबुदे उठकर जल खौलता रहता है, प्रलयके अन्तमें विश्वका प्रकाश भी उसी प्रकार समझना होगा। जब कालद्वारा क्षुब्ध तमस पूर्व्वोक्त प्रकारसे तेज

और हिममें घूमते रहते हैं। तबही जल बुदबुदकी भांति कोटि जगद्बुद्बुद प्रकाश होते हैं। पूर्व्वोक्त एक एक बुदबुदोंका गर्भ जैसे वायुसे पूर्ण है, वैसेही ब्रह्माण्ड बुद्बुदका प्रथम आवरण शून्य (आकाश) है,—वह सब भूतोंकी अपेक्षा लघु सूक्ष्म सर्व्वव्याप्त तथा सबकी अपेक्षा आकर्षण सामर्थवाला है। शून्यांश शून्यमें मिलकर महाशून्यमय एक ब्रह्माण्डका प्रकाश हुआ। अनन्तर वायवांश वायुअंशके आकर्षणसे महावायवांश ब्रह्माण्डमें प्रकाश हुआ; किन्तु आकाशकी अपेक्षा सामर्थहीन होनेसे उसके ऊपर नहीं जा सका, अनन्तर तेजसे अग्नि अपने अपेक्षा सूक्ष्मरूपको उठता देखकर उत्थित हुई, पर वह भी वायुके ऊपर न जा सकी। अनन्तर अपने अपने आकर्षणसे समष्टिभूत होकर हिमांश चन्द्ररूपी हुआ। तेजांश सूर्य्यरूप हुआ। उस तेज-रसने स्वयं प्रकाश होकर पृथ्वीको प्रकाशित किया। यह पृथिवी ही बीजमय और सबकी आधार है। शून्याकर्षणसे शून्य और पवन रहे। वायुके आकर्षणसे चन्द्र सूर्य्यरूपी हिम और तेज रहे। चन्द्र,सूर्य्यके आकर्षणसे जल रहा। जलके आकर्षणसे पृथिवी रही। परस्पर परस्परके आकर्षणमें परस्पर रहे। इसही प्रकार तमसके जिसभागमें जितने बुदबुदे उठे थे, उतनेही ब्रह्माण्ड सृजित हुए हैं।

चन्द्र सूर्य्यादि मानो दूसरेके प्रकाशसे प्रकाशित हैं, विज्ञानका नियम यह है कि, चैतन्यमय न होसकनेसे चैतन्यप्रणीत वस्तुका अनुभव आकर्षण नहीं कर सकते। अर्थात् मनुष्यादिके भूत चैतन्य द्वाररूपी इन्द्रियां हैं। इसही लिये सूर्य्यादि दृष्टिपथके विषयीभूत हुए हैं। इसका कारण और कुछ भी नहीं है। जिसमें हिमत्व और उष्णत्व दोनोंही हैं, वही सर्द्दी और गरमीका अनुभव कर सकेगा, नहीं तो केवल हिम हिमत्व वा केवल उष्ण उष्णताको अनुभव नहीं कर सकेगा; इसलिये चैतन्यादि सूर्य्यादिके प्रकाशकर्त्ता हैं

शि०। तेज किसे कहते हैं?

गु०। तेज कहनेसे बल मत समझो। तेज तीन अंशमें विभक्त है। जैसे—सहः, ओजः, बल। जिस गुणमें सहिष्णु क्षमता है, उसे सहः तेजका अंश कहते हैं। इसही गुणकेद्वारा शत्रु दमन किया जाता है। जिस गुणकेद्वारा बुद्धिकी तीक्ष्णता सहित दूसरे को वशीभूत किया जाता है, उसे ओजः तेजांश कहते हैं। जिस गुणके द्वारा कर्म्मेन्द्रियोंको बली करके दूसरोंको युद्धमें परास्त किया जाता है, उसे बलतेजांश कहते हैं। इन तीन प्रकारके तेजोंसे ही तीन प्रकारके शरीरको प्रसादशान्ति प्रकाश हुआ करती है। ये तीनों ही तेजके प्रसाद लक्षण हैं। इसके सिवाय विकार लक्षणाक्रान्त आशा चिन्ता और रागादि रिपुबल तेजांश प्रभृति है, उसे यहां पर प्रकाश करना बाहुल्यता है। ज्ञानी आंशिक तेजसे प्रकाशित नहीं हैं। तेजका सम्पूर्ण अंश प्रसादगुणसे मण्डित होने पर अन्तरमें जो तेजो-भावका आविष्कार हुआ करता है, ज्ञानीके अंगसे उसही तेजकी आभा प्रकाश हुआ करती है।

शि०। तेज कितने प्रकारका है?

गु०। प्रति जीव अणु और परमाणुके तेजसे जीवित हैं। यह तेज दो प्रकारका है; एक अणु परमाणुगत तेज, दूसरा सूर्य्यका तेज अर्थात् महातेज है। जबतक अणु परमाणुगततेज रहता है, तब तक यह तेज तथा सूर्य्यका तेज दोनोंही मिश्रित होकर जलको प्रकाशित करते हैं। वह आन्तरिक तेज प्रकाश होकर जलरूपसे बाहिरमें प्रकाशित होने पर महा तेजके आकर्षणसे बादलरूपसे परिणत होता है। जब पृथिवी प्रलय अवस्थामें पतितोन्मुखी होती है, उस समय भूतगत प्राणिगत तेजका ह्रास होनेसे वायुत्पादन ि[illegible]ा नहीं होती। इसीसे बादल नहीं बरसते। जब धर्म्मकी [illegible]ती होती और प्रतिभूत स्वभावविहीन होते, तबही उस स्वभाव

विहीनतामें जागतिक क्रियादि नहीं होती। ऐसा न होनेसे बादलों से वर्षा नहीं होती, उससे प्रजावृन्दके एकबारगी नाश होनेकी सम्भावना रहती है।

शि०। भगवान प्रलयसागरमें अनन्तको सखा करके शयन करते हैं, वह अनन्त कौन हैं?

गु०। कालशक्तिका नामान्तर ही अनन्त है। ईश्वर महा-प्रलयके समयमें अणु परमाणु सहित कारण जलमें शयन करनेसे कालशक्ति उनकी आधार स्वरूप हुआ करती है। अनन्तको सर्प रूपसे कल्पना की जाती है और उन्हें पातालमें अवस्थित कहा जाता है। अनन्त अपने सिरपर महाविष्णुसहित इस जगत्को धारण किये हैं। उसका अर्थ यह है कि,—कालशक्तिकी सामर्थसे जगत्का उद्भावन, पालन और वर्द्धन होनेसे उसे जगत्का वहन-कारी कहके रूपक किया गया है। महाविष्णुसे समस्त चैतन्यका आविर्भाव होनेसे वह मध्यस्थलमें हैं। संसारके शेषको पाताल कहते हैं। संसारके बीच सब ठौर दृष्टिगोचर होता है; किन्तु पाताल अलक्ष्य है। कालको भी कोई देख नहीं सकता। इसी-लिये अलक्ष्यवस्तु अलक्ष्यस्थानमें अवस्थित है,—ऐसी कल्पना की गई है। कालकी अस्थिरगति कहके उसे सर्परूपसे कल्पना की गई है। पौराणिक रूपकको परित्याग करनेसे एकमात्र ईश्वरके स्वरूपके सिवाय और कुछ भी नहीं रहता।

शि०। ईश्वरको विराट पुरुष क्यों कहा गया?

गु०। ईश्वरसे यह सृष्टि प्रकाश हुई है—अर्थात् पहिले ईश्वर अपनी इच्छासे महत्त्वादि चौबीस तत्त्वमें परिणत हुए। फिर उन तत्त्वोंको वस्तु पर करनेके लिये निज शक्ति संयोगसे इन्द्रिय रूप से परिणत हुए। अनन्तर नित्यशक्तिको शक्तिरूपसे इन्द्रिय और तत्त्वादि संयोगइन्द्रियरूपी करके अपना जगत् और जीवलीलात्मक आवरण-

रूपी विराटभाव तैयार करके उसमें आत्मारूपसे प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डको सजीव किया अर्थात् विराट पुरुष हुए।

शि०। ईश्वर किस भावसे कहां निवास करते हैं?

गु०। जैसे पञ्चभूत समष्टि वृक्षरूपसे परिणत होनेसे उससे काष्ठ उत्पन्न होता है; फिर उस काष्ठसे एक नौका बनानेसे उसमें बहुतेरे लोग बहुतसे जीव जन्तु स्वच्छन्दतासे बैठकर अर्णवमें तरते रहते हैं। उसी भांति इस विश्वकी बीच विश्वनियन्ता चैतन्यरूपसे सब वस्तुओंमें रहकर निज तेजसे महतत्त्व तैयार करके अपनी मायाशक्तिद्वारा स्वयं ही जगत्‌की सृष्टि करते और हरण करते हैं।

शि०। विश्व किसे कहते हैं?

गु०। विश्व यह मृत्खण्ड वा दूसरा भूखण्ड नहीं है। जैसे नगर कहनेसे नगरकी सब वस्तुको ही समझा जाता है, वैसे ही विश्व कहनेसे त्रिभुवनको ही समझना चाहिये। इस त्रिभुवनको विभाग करनेसे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, येही तीन नाम मिलते हैं। नाम कई एक संकेत मात्र हैं। यह त्रिभुवनात्मक विश्व एक यन्त्र की भांति है, यही कार्य्यप्रकाशका स्थान है। माया तथा काल-शक्ति अध्यक्ष और चैतन्यको इसका कर्त्ता जानो।

शि०। स्वर्ग किसे कहते हैं?

गु०। स्वर्ग शब्दकी व्युत्पत्ति करके यह देखा जाता है कि, जहांसे सब सृष्ट जीवोंको अच्छा फल मिलता है, वही स्वर्ग है। चैतन्यमें परिणत अणु प्रभृति जहां निवास करते हैं, आकाशके उस अंशका नाम भी स्वर्ग है। शून्य (आकाश) के सिवाय और आधार स्थानका परिचय नहीं है। यदि कोई शून्यका अस्तित्व स्वीकार न करे, तो वह स्वच्छन्दतासे शून्य (आकाश) की नीचे लिखे नियमसे परीक्षा कर सकता है।

किसी कांचके नलको लेकर उसके गर्भको एकबारगी पारेसे भर-

कर आवद्ध करनेसे ग्रीष्म और शीतकी अधिकतासे पारेकी स्फीतता और ह्रासतानुसार नलके बीच शून्य देखा जाता है । पारेकी अपेक्षा अमिश्र और भारी धातु जगत्में दूसरी नहीं है। उसमें किसी प्रकार भी वायुका अंश नहीं रह सकता । जिस समय पारा छिद्रके बीच पूर्ण होगा, उसी समय छिद्रका वायुअंश बाहिर आवेगा । अनन्तर उस छिद्रका मुख अति दृष्टभावसे बांधनेसे वायु कदापि प्रवेश नहीं कर सकेगा। किन्तु हिममें डुवानेसे पारा स्वयं ही घटकर उस छिद्रके बीच शून्यको प्रकाश करेगा। हम लोगोंके वेदोक्त जगत्वृत्तान्तको पाठ करनेसे आश्चर्य होता है। जिस स्थानमें सृष्टिप्रकाशक अण्डादि रहते हैं, उसे सर्ग कहते हैं, उसके मध्यगत सुफलभोग स्थानको स्वर्ग कहते हैं।

शि० । जिस स्थानमें सृष्टिप्रकाशक अण्डादि रहते हैं, वह सर्ग कैसा है ?

गु० । सृष्टिप्रकाश-कारणात्मक उपायको सर्ग कहते हैं। वह सर्ग अर्थात् सृष्टिगत उपाय दो अवस्थापन्न है। एकको प्राकृतसर्ग कहते हैं। और दूसरेको वैकृत सर्ग कहते हैं। जिन कारण अवस्थाओंसे ब्रह्माण्डकी सूक्ष्म सृष्टि होती है, उसे प्राकृत कहते हैं। जिस कार्य्यावस्थाके द्वारा जीवसृष्टि होती है, उसे वैकृतसृष्टि कहते हैं प्राकृतसर्ग छः प्रकार और वैकृत सर्ग तीन प्रकारको अवस्थापन्न है। महतत्त्व ही प्रथम सर्ग है। अहङ्कार दूसरा सर्ग है। भूतसृष्टि तीसरा सर्ग है। स्वभाव और इन्द्रियसृष्टि चौथा सर्ग है। इन्द्रिय-शक्ति और मनसृष्टि पांचवां सर्ग है। जीवोंके भ्रमादिजनक जन्म औरमृत्युजनक पञ्चपर्व्वतात्मक अविद्यासृष्टि ही छठवां सर्ग है। येही छहो मूल अर्थात् प्राकृतसृष्टि हैं। इन छहों सूक्ष्मावस्थाको लेकर जगत् तथा जीवोंका सूक्ष्मभाव निरचित है। इन छः श्रेणियों के बीच प्रत्येकके बहुतसे पर्य्याय हैं।

त्रिविध अवस्थापन्न जीवसृष्टिको वैकृतसर्ग कहते हैं। वृक्षादि सर्ग पहिला है;—इन्हें उर्द्धस्रोती कहते हैं। पशुसृष्टि दूसरी है; इसे त्रिर्य्यग्स्रोती कहते हैं। और मनुष्यादिसृष्टि शेष सृष्टि है। इन्हें अवाक्स्रोती कहते हैं। प्राकृतसे छः और वैकृतसे तीन येही नव प्रकारके सर्गको उपाय विज्ञान बलसे प्रकाश हुई है। और एक सर्ग है, जिसे अनुसर्ग कहते हैं।

शि०। अनुसर्ग किसे कहते हैं?

गु०। अनुसर्ग कहनेसे परिवर्त्तनान्तर सृष्टि जानो! अर्थात् ब्रह्म स्वरूपसे प्रकाश तथा मृत्युरूपसे परिवर्त्तनान्तर प्रकाशको अनुसर्ग कहते हैं। विज्ञानकी यह स्थिर मीमांसा है, अवस्थाका परिवर्त्तन न होनेसे कदापि नयाभाव प्रकाश नहीं हो सकता। यदि जन्म न होता, तो कदापि मृत्युकी सम्भावना न रहती यदि मृत्यु न होती, तो कदापि नवीन जन्मका प्रयोजन न रहता। इसी प्रकार परिवर्त्तनात्मक जगत् और जीवसृष्टिको अनुसर्ग कहते हैं।

शि०। मर्त्य किसे कहते हैं?

गु०। जिस शून्यांशसे माया द्वारा उत्पन्न कार्य्य प्रकाश होते हैं, उसे मर्त्यभूमि कहते हैं। मर्त्य कहनेसे पृथिवी ग्रह उपग्रहादि और विकारभूत भूतादि जानो। कार्य्यादि प्रकाशित अग्नि, भूगर्भस्थ जल, ये सबही विकारभूत भूतांशकी मात्रा हैं, क्योंकि मूल वस्तुका प्रकाश नहीं है। वे अणुरूपसे चैतन्य वशसे मायाके बीच निवास करते हैं; केवल मायाके ताड़नसे प्रकाशित होते हैं। मूल भूतांश जगदंश मात्रमें ही हैं, किन्तु मायासे प्रकाश्य नहीं हैं।

शि०। विकार किसे कहते हैं?

गु०। इन्द्रियादि अर्थात् सृष्टि वा लीलाकरणात्मक कार्य्य-शक्तिरूपसे उत्पन्न होना विकार कहाता है।

शि०। पाताल किसे कहते हैं?

गु०। विलय होकर जहांसे फिर स्वरूपसे वस्तुकी गति होती है, उसे पाताल कहते हैं। इस पाताल तलमें ही अनन्त अर्थात् कालका निवास पुराणमें कल्पित हुआ है और इस स्थानमेंही प्रलयके समय आदिपुरुषका अवस्थान करना भी इसीसे पुराणमें कल्पित हुआ है। प्रभुत्व करनेके तीन लीलास्थल हैं। उसे व्यष्टिज्ञानसे विचार करकेवेदवेत्ताओंने चौदहभागमें विभक्त किया है। पञ्चभूत और पञ्च-भूत प्रकाशक शब्दादि पञ्चतन्मात्र, अहङ्कार, महतत्त्व, प्रकृति, चेतन्य, इन चौदह प्रकृतिसे ही विश्वका प्रकाश है। इन चौदह मूल पदार्थोंको ही चौदह भुवन कहते हैं। ये चौदह भुवन ही इस ब्रह्माण्डके प्रकाशक हैं।

शि०। यदि ये चौदह भुवन ही ब्रह्माण्डके प्रकाशक हैं, तो ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता कैसे कहें ?

गु०। जैसे बहुतेरे नगर और ग्रामादिको मिलाकर एक साम्राज्य होता है, वैसेही चौदह अंशमें वह परमात्मा विभक्त हो कर इस लीलाराज्यरूपी ब्रह्माण्डको प्रकाश करके निज स्वरूपसे अनेक जातीय जीवोंको उत्पन्नकर प्रकृतपक्षमें स्वयं ही मायाके बीच रमण करते हैं। मान लो, वह परमपुरुष एक चैतन्यदेही हैं; वह इतने वृहत् हैं कि, उनके वृहत्वको कोई बुद्धिद्वारा विचार नहीं कर सकते। किन्तु अनुभव करके ऐसा कहते हैं कि, वह इस चतुर्दश भुवनमें ही अपना सर्वाङ्ग व्याप्त करके विराजमान हैं। वाह्यजगत् वा अन्तर जगत्में ईश्वरके बिना कुछ भी नहीं है। जैसे रोशनी पानेसे हीराजटित गृह रोशन हो जाता है, वैसेही ईश्वरका चैतन्य पाकर यह स्थूल जगत् प्रकाशित है। इस स्थूलरूप की धारणा कर सकनेसे सूक्ष्मरूपकी धारणा होगी। तब जगत्को समझ सकेंगे। फिर "मैं कौन हूं"—इसे जाननेकेलिये आत्मज्ञान प्रकाश होगा। आत्मज्ञानसे "मैं कौन हूं"—यह स्थिर होनेसे

स्वयं ही विज्ञानकोष प्रस्फुटित होकर ब्रह्मानन्द उपभोग कर सकेंगी।

शि०। ईश्वर यदि इस ब्रह्माण्डके प्रकाशक हैं, तो ब्रह्मा कौन हैं?

गु०। जब प्रलयकालमें यह जगत् विनष्ट होकर फिर सृष्ट हुआ, उस समय सृष्टिकी स्मृति किसीको न थी। उस प्रलयके अन्तमें फिर इस जगत् भूतादिका प्रकाश हुआ। प्रति जीवोंमें प्रकृतिसे स्वभाव, कालधर्म्मसे आयु और चैतन्यसे सजीवत्वकी प्राप्ति हुई। इसीसे प्रलयके अन्तमें जगत सजीवत्व कहके बोध हुआ। किन्तु उस समयमें शिक्षितस्वभावके फलरूपी नारीसङ्गम द्वारा प्रजावृद्धि होनेकी उपायको कौन शिक्षा देता? कौन बीजोंको नियमित रीतिसे रोपण करके फल फूल उत्पन्न करता? कौन एक प्रकार बीजसे कौशलद्वारा अनेक बीज प्रकाश करके अनेक पशुओंको उत्पन्न करता? वह स्मृति उस समय कहां थी? जब पृथिवीका नवीन संस्करण है और चैतन्य, महत्तत्त्व, भूतादि, जीवात्माका नवीन संस्करण है, तब सबही नवीन हैं, विकार तो कुछ भी नहीं है। विकार न होनेसे गठनकी उपाय नहीं है। ऐसे सबके नवीन संस्करणके समयमें एकके हृदयमें स्वभावसिद्ध स्मृतिका उदय हुआ था, उन्हींका नाम ब्रह्मा है। ज्ञानी लोग उन्हें ब्रह्मा कहते हैं। ब्रह्म शब्दका अर्थ ईश्वर है। ईश्वरसे उत्पन्न होनेसे विधाताको ब्रह्मा कहा जाता है। प्रलयके अनन्तर ब्रह्मा स्मृतिलाभ करके सृष्टि करते हैं।

शि०। ब्रह्माने किस भावसे सृष्टि की है?

गु०। इस समय जो विश्व-भाण्डार देखते हो, उसमें अनेक प्रकारके पशु, पक्षी, कीट और लता आदि दिखाई देती हैं; ये सबही विकारभेदसे निर्मित हैं। स्वभावके नियमसे जरायु और अण्डज सङ्गमद्वारा प्रजा उत्पन्न कर सकते हैं। उद्भिज्ज बोनेसे

और स्वेदज स्वेद (पसीने) की सहायसे प्रजा उत्पन्न कर सकते हैं, ऐसाही स्वभाव है। किन्तु एक का बीज दूसरेकी योनिमें स्वभावके नियमसे प्रदान करनेसे विभिन्नविकारी जीव स्वभाव द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं, यह विज्ञानसिद्ध है। इससे ऐसा समझना चाहिये कि, श्रेणीमें श्रेणीका सङ्गम होनेसे स्वभाव उसी श्रेणीमें नवीनरूप का प्रकाश करेगा, जैसे घोड़े और गधे एक श्रेणीके हैं, घोड़ेके बीज और गधेके जरायु संयोगसे नवीन श्रेणीका घोड़ा मिश्रित स्वभावसे उत्पन्न हो सकता है। उसी प्रकार गधेके बीजसे घोड़ी की जरायु से जो जीव जन्मेगा, वह गधा होगा; किन्तु मिश्रित स्वभावको प्राप्त होगा। जैसे एक श्रेणीके दो वृक्ष लेकर एकके मूलके साथ दूसरेके सिरोभागको जोड़नेसे उसकी स्वाभाविक शोषण-सामर्थसे मूल-वृक्षांश शिरस्थित वृक्षके स्वभावको प्राप्त होकर उसके अनुयायी फलका विभिन्न आस्वादन और रूपान्तर प्रकाश करता है; यह विज्ञान सिद्ध है। इसी स्वभावकी सहायसे वह भगवान ब्रह्मा अनेक उपायसे भांति भांतिके रूपकी शिक्षित स्वभाव द्वारा जगतकी अनेक प्रकारकी सृष्टि करके उस जगतको सजीवित तथा सुशोभित किये हैं। यदि कहो कि, जीव पाकर ब्रह्माने उनसे अनेक जीव उत्पन्न किये हैं,—तो यह सत्य है। जैसे सुवरण खानमें रहनेसे एक प्रकार विशुद्धभावसे रहता है, उससे किसी तरहके शोभाके कार्य्य नहीं होते। सुनार उसी सोना को लेकर विकारभावसे अनेक प्रकारके शोभाकी सामग्री बनाता है; यथार्थमें वह सोना ही है, किन्तु सुनारकी बुद्धिसे यदि सोना परिवर्त्तित न होता, तो कदापि विभिन्न आकारमें परिवर्त्तन न होता। अविशुद्ध चार प्रकारके जीव और उनका स्वभाव प्रकृति साध्य ही है। किन्तु इन चारो जातियोंके बीच प्रत्येकको ही सहस्रों श्रेणियोंमें उत्पन्नकरना ही ब्रह्माका कौशल है। उन्होंने एक

जातिके पक्षी द्वारा स्वभावके कौशलसे करोड़ों जातिके पक्षी बनाये हैं; एक जातिके उद्भिज्ज और स्वेदज द्वारा कोटि कोटि उपायसे करोड़ों प्रकारके उद्भिज्ज और स्वेदज उत्पन्न किये हैं। एक जातिकी जरायुज श्रेणीसे उस श्रेणीकी करोड़ों सम्प्रदाय उत्पन्न किये हैं; यही उन ब्रह्माके जगतविज्ञानका कौशल है। प्रलयके अनन्तर वह पहिले स्मृति लाभ करके ऐसीही सृष्टि करते हैं।

शि०। लोकपालोंकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई?

गु०। पहिले कह आये हैं कि, चैतन्यशक्ति प्रभृति कारण समूह उन (ईश्वर) की विराट देहमें निश्चेष्टभावसे थे; उन्हें प्रकाश करनेके लिये उस विराटदेहमें अनेक प्रकारके छिद्र निर्म्माण किये। पुराणोंके मतसे प्रथमनिर्म्मित मुखछिद्रसे शब्दके व्यौहारोपयोग्य वाक्य की उत्पत्ति हुई। और उससे ही वाक्यके अधिष्ठाता अग्निकी भी वाक्यसे उत्पति जानो। नासिका छिद्रसे घ्राणेन्द्रियकी उत्पत्ति हुई और प्राणसे उसके अधिष्ठाता वायुकी उत्पत्ति हुई। नेत्रोंके छिद्र से नेत्रोंको तथा उनके अधिष्ठाता सूर्य्यकी उत्पत्ति हुई। कानके छिद्रोंसे श्रोत हुए और श्रोतसे उनकी अधिष्ठात्री दिशाओंकी उत्पत्ति हुई। सम्पूर्ण देहमें अत्यन्त छोटे छोटे जो बहुतेरे छिद्र हुए, उससे समस्त देहव्यापक स्पर्शेन्द्रिय, त्वक, लोम और केशोंकी उत्पत्ति हुई। पद्म (कमल) की आकृतिवाले मांस निर्म्मित मध्यमें शून्य (आकाश) और पांचछिद्र युक्त हृदय उत्पन्न हुआ। उस हृदयसे ही मन भी उत्पन्न हुआ। मनसे जगतके आनन्द जनक चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई। और नाभि छिद्र से अति दुःसह प्राणभेद अर्थात् वाह्यवायु आचमन हेतु से अपान की उत्पत्ति हुई मुखागत समस्त अन्न और पानीयको देहके अधोदेशमें लानेसे इसका नाम अपान है; इस अपानसे ही लोगोंकी भयजनक मृत्यु और जन्मका होना जानो। क्योंकि अन्न के दोष विनिर्मुखसे प्राणियोंकी

कदाच मृत्यु नहीं होती। किन्तु वह अन्न ही अपानद्वारा ग्रसित होता है, इसलिये अपान से हो, जो मृत्यु होती है, उस में कुछ सन्देह नहीं है। यह अपान गुह्यछिन्द्र से स्पष्ट हुआ, इसी से वह पायु इन्द्रिय करके उपलक्षित होता है और मित्र ही उसके अधिदेवता प्रसिद्ध हैं। उपस्थ छिद्रसे स्वर्ग पर्ज्जन्य, भूमि, पुरुष और स्त्रियां श्रुतिसिद्ध हैं; यह पञ्चम आहुतिका घटक, तथा जरायुज और अण्डजादि देहका विस्तारक है। रेत सहचरित उपस्थेन्द्रिय भी उत्पन्न हुई; उस रेतसे जलप्रधान पञ्चमहाभूतात्मक प्रजापति देव भी उत्पन्न हुए। मनकी उत्पत्ति समयमें बुद्धि, अहङ्कार तथा चित्त भी उत्पन्न हुए थे। और मनके अधिष्ठाता चन्द्रमाके उत्पत्ति समयमें बुद्धिके अधिष्ठाता ब्रह्मा, अहङ्कारके अधिष्ठाता रुद्र और चित्तके अधिष्ठाता महेश्वर भी उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार छिद्रोंको उत्पन्न कर हाथ और पैरको भी उत्पन्न किया। हाथसे उसके अधिष्ठाता इन्द्र और पैरसे उसके अधिष्ठाता उपेन्द्रको उत्पत्ति हुई। इसीप्रकार मुखादि क्रमसे छिद्रोंद्वारा वागादि इन्द्रिय औरउनके अधिष्ठाता देवताओंको यथाक्रमसे उत्पन्न किया।

शि०। लोकपालोंने उत्पन्न होकर क्या किया?

गु०। उन्होंने ईश्वरसे प्रार्थना किया कि, हे भगवन! हम लोगों के हितके लिये अन्य देहकी सृष्टि करिये; जिससे हम लोग स्थित होकर भोक्षणीय और पानीय वस्तुओंका आस्वादन करनेमें समर्थ हों।

शि०। लोकपालोंकी प्रार्थना सुनके ईश्वरने क्या किया?

गु०। पहिले गो देहकी सृष्टि की; किन्तु उस गो शरीरमें बुद्धि और धर्म्मके अदर्शन हेतुसे उसमें उनकी प्रीति न हुई। उनकी प्रीतिके लिये फिर घोड़ोंकी सृष्टि की, किन्तु हाथ आदि के अभाव

हेतुसे उनमें भी उन लोगोंको सन्तोष न हुआ। देवताओंकी तृप्ति के लिये अनेक तरहके देहोंकी सृष्टि की; किन्तु किसी देहमें भी उन लोगोंको प्रीति न हुई।

शि०। ईश्वरने किस देहकी सृष्टि की, जिसमें देवताओंकी प्रीति हुई?

गु०। मनुष्य देहकी सृष्टि की; देवता लोग उस मनुष्यको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर जगज्जनक ईश्वरसे बोले, हे तात! हमारी प्रीतिके लिये आपने विशेष यत्नसे इसे बनाया है। यह पुरुष विशेषरूपसे जाने हुए वक्तव्य विषयको कहनेमें समर्थ है और नेत्र आदि इन्द्रियजनित दर्शनादि व्यापार विषयमें भी यह प्राय अज्ञान रहित है; इसके अतिरिक्त आपके उत्पन किये हुए प्राणिगण नेत्र प्रभृति इन्द्रियोंके रहते भी अज्ञानविशिष्ट हैं। यह पुरुष इस काल तथा परकालके जो सुख और उसके साधन हैं, तथा गतदिनमें जो हुआ है और आगत दिनमें जो होगा वह सब तथा ज्ञानलाभके लिये ज्ञानियोंका सङ्ग और कर्त्तव्याकर्त्तव्य सब कुछ प्रमाण द्वारा जानेगा। इस पुरुषमें वेदवाक्यसे परमात्मा विस्तार सहित प्रकाशमान हों।

शि०। मनुष्यदेह क्या वस्तु है?

गु०। जिसमें कांन, त्वक्, नेत्र, नासिका और जिह्वारूपी ज्ञानेन्द्रियोंकी पञ्चता वर्त्तमान है। वाक्य, हाथ, पांव, गुह्य और उपस्थरूपी कर्मेन्द्रियोंकी पञ्चता तथा प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान प्रभृति पञ्चप्राण विद्यमान हैं; और त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और रेत प्रभृति सातो धातु तथा वात, पित्त और कफरूप त्रिदोष, विष्ठा, मूत्र, स्वेद और पीव है तथा अपरिमित केश लोम प्रभृति वर्त्तमान हैं, उन्हीं सब वस्तुओंके संघात का नाम देह है।

शि०। इन सब संघातोंके बीच किस संघातका नाम देह है? क्या सब संघातोंका नाम देह है? वा समुदाय किम्वा समुदायी से भिन्न अथवा समुदायीमें अभिन्न देह है?

गु०। यथार्थमें समस्त संघातका नाम देह नहीं है। समुदायसे समुदायीका भिन्न वा अभिन्न होना भी सम्भव नहीं होता; यद्यपि भिन्न स्वीकार करो तो समुदायी और समुदायमें परस्पर भेद होता है, इसलिये उनकी असमतासे परस्पर सम्बन्धरूपसंघात हो नहीं हो सकता; क्योंकि योग्य वस्तुका अयोग्यके सहित सम्बन्ध होना न्याय विरुद्ध है। यदि अभिन्न स्वीकार करो, तो प्रत्येक इन्द्रियादि स्वरूपसे समुदाय व्यवहारकार्य्यको देह व्यवहारकार्य्यमें क्यों आवश्यकता हो? इसीलिये समुदाईसे समुदायका अभिन्न होना सम्भव होता है।

शि०। यदि योग्य वस्तुका अयोग्यके साथ सम्बन्ध होना न्याय विरुद्ध है, तो इस स्थलमें समुदायीसे समुदायका संयोगरूप सम्बन्ध क्यों देखा जाता है?

गु०। सत् शब्दका अर्थ सम्यक् और बन्ध शब्दका अर्थ बन्धन है। बध्यमान वस्तुद्वयको बन्धन वस्तु उनसे पृथक करके देखी जायगी, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे बँधी हुई दो गौवोंकी रसरी दोनों गौवोंसे पृथकरूपसे दीखती है, वैसेही रसरीकी भांति मूर्त्तिमान किसी तत्त्वका बन्धन भी देहके बीच नहीं दीखता है। इसलिये देहमें अन्यान्य संयोगरूप सम्बन्ध भी स्वीकार नहीं कर सकते।

शि०। यदि किसी संघातको ही भिन्न वा अभिन्न नहीं कहा जाता, तो समस्त संघातोंका नाम देह कहनेमें कौनसी क्षति है? क्योंकि इन्द्रियां ही तो देहके सब कार्य्योंको किया करतीं हैं।

गु०। हां, जो कहते हो, सो सत्य है। किन्तु इन्द्रियां

अपने अपने निर्द्धारित कार्य्यको करनेमें समर्थ हैं; अन्य व्यापारमें असमर्थ हैं।

शि०। इन्द्रियोंके कौनसे कार्य्य निर्द्धारित हैं?

गु०। जैसे आंख, कान, नाक, जीभ, त्वक् ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके कार्य्य देखना, सुनना, सूंघना, चखना और स्पर्श करना है, इन्हीं व्यापारोंमें वे समर्थ हैं, इनके सिवाय अन्य व्यापारोंमें असमर्थ हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये महाभूत गण भी धारण, क्लेदन, पचन, व्यूहन, अर्थात् संकोच और प्रकाशादि भेदसे विविध उहन क्रिया अवकाशता अर्थात् स्थिति और प्रसरणमें अनुकूलता, इन सब व्यापारोंमें समर्थ हैं, इसके अतिरिक्त कार्य्योंमें असमर्थ हैं।

शि०। इन्द्रियां अन्य कार्य्योंमें असमर्थ क्यों हैं?

गु०। इन्द्रियोंकी एक एकके साथ कहीं भी आत्मता नहीं है। क्यों कि जगतको आत्मारूप ईश्वरके तदात्मका अध्यास विनिर्मुखसे इन्द्रियादि सब वस्तु ही अचैतन्यको प्राप्त हुआ करती हैं और अचेतन वस्तुओंको सञ्चालनादि व्यापारमें स्वाधीनता नहीं है।

शि०। आत्माके विनिर्मुखसे यदि सब वस्तुएं अचैतन्यको प्राप्त होती हैं, तो प्राण स्वयं जीवनका हेतुभूत कहके क्यों प्रसिद्ध है?

गु०। आत्माकी कर्त्तृत्व बलसे ही प्राणकी जीवनहेतुता है। प्राण द्वारा किम्वा अपान द्वारा कोई मनुष्य जीवित नहीं हो सकता, किन्तु जिसके सन्निधि मात्रसे ये सब कार्य्य करते हैं, उस आत्मा द्वारा ही लोग जीवित हुआ करते हैं।

शि०। उस विश्वात्माने मनुष्य शरीरमें किस प्रकार प्रवेश किया?

गु०। कपालत्रयके मध्यवर्त्ती स्थान, जिसे मनुष्य लोग स्त्रियोंका सीमन्त कहके जानते हैं। उस स्थानकी सीमाको निज

सन्निधिमात्रसे ही विदारण करते हुए उसके बीचसे देहमें प्रवेश किया। इसीलिये मनुष्य मात्रका ही शरीर प्रशस्त द्वारवती कहके प्रसिद्ध है।

शि०। परमेश्वरने मस्तका विदारण करते हुए इस देहके बीच प्रवेश किया, क्या इसमें अन्य कोई प्रमाण मिलता है?

गु०। विद्वान उपासक लोग मस्तकके उर्द्धभागमें ही द्वार कहके वर्णन किया करते हैं। और योगी लोग इसी द्वारसे निकल कर क्रममुक्तिद अर्चिः स्वरूप परमानन्द पाते हैं, इसलिये इसका परमानन्द प्रापकरूप नामान्तर भी है। स्वर्गीय पुरुषोंके स्वर्ग-गमन समयमें नन्दनवन जैसा आनन्द जनक है, वैसेही मुक्त पुरुषोंकी मुक्तिप्राप्ति समयमें यह द्वार भी सुखजनक है।

शि०। उस परमात्माने मनुष्यशरीरमें प्रवेश करके किस अवस्थामें निवास किया?

गु०। इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओंके प्रभु देहरूप नगरीको प्राप्त होकर उसके बीच निज निवासके लिये नेत्र, चित्त और हृदयपद्म, इन तीनोंको ही प्रासाद किया था। इन तीनों प्रासादोंके बीच विज्ञानशक्तिरूप भोग्या सहित वह देव अहङ्कारलक्षण-शय्यामें शयन करके सत्यस्वरूप ज्ञानसे विरहित होकर जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति भेदसे त्रिविध स्वप्न सन्दर्शन करने लगे।

शि०। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये त्रिविध स्वप्न कैसे हैं?

गु०। जब स्थूल भोग्यके भोगके निमित्त वह देव भोगके निमित्तीभूत धर्म्माधर्म्मरूप कर्म्म अनादि माया द्वारा ग्रहण करते हैं; अर्थात् मैं जन्माहूं, इसलिये यह मेरे पिता, माता, भाई, बहिन, बान्धव, भृत्य, भार्य्या और यह मेरी कन्या है। इसही प्रकार बाह्य वस्तुओंके भोग हैं। गृह, भूमि, धान्य, स्वर्न, पशु, वस्त्र, आभूषण, शय्या और यह वस्तु रमणीय, यह वस्तु अपकृष्ट,

यह थोड़ी, यह ज्यादे, यह समीपवर्त्ती, और यह दूरवर्त्ती है; ऐसे जड़ वस्तुओंके भोग हैं! शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस, रूप, यह वहाव्य, यह हस्तग्राह्य, यह गम्य और यह आनन्दजनक है; इसी प्रकारके ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय जनित विषय भोग हैं। ये वस्तुएं सुखको साधन, ये दुखको साधन, हैं, यह सुख और यह दुख है, यह था, यह है, यह होगा,—इसी प्रकार वह परमात्मा स्वाधीन माया शय्यामें शयन करके अन्नजात शरीरग मस्तकमें आत्मतारूपसे जानकर तत्कृत शोकादिभागी हुआ करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य अनेक तरहके देह धर्म्म भी आत्मामें अध्यास करते हैं। आत्माके स्वरूप ज्ञान विरहित होकर देहादिरूपको अहं कहके स्वीकार भी किया करते हैं। किसी समय अकारण शोक, किसी समय अकारण हर्ष भी प्रतिपन्न होता है और भूख प्यास आदि प्राणके धर्म्मको भी आत्मा कहके अभिमान करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे सच्चिदानन्दरूपी अनन्त आत्माकी जो जागरण अवस्था है, वह भी प्रबोधके अभावसे मिथ्यावस्तुके दर्शनरूप स्वप्नके लक्षणोंके मेलसे निश्चय ही स्वप्नावस्था कहके गिनी गई है। इसी प्रकार जागरण अवस्थामें ही अनेक प्रकारके स्वप्न देखते हुए वह विभु इन्द्रियोंके सहित मनोरूप प्रासादके बीच प्रविष्ट हुए। उस समय मन और अनन्त जन्म सम्भूत ज्ञान, कर्म्म और वासनारूप संस्कारके वशवर्त्ती होकर तत्वत् जन्मार्ज्जित कर्म्म अनुसार जाग्रत और स्वप्नावस्थामें ही अपना अनेक प्रकार रूप दिखाया करते हैं।

स्वप्नावस्थामें ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय रहित केवल जाग्रत-अवस्थामें की हुई वासना परवश होकर स्वप्नभोगप्रद कर्म्मके अधीनमें मनयुक्त वासना कार्य्य ही अवलोकन करती है। स्वप्नवह सूक्ष्म नाड़ियां सबके विवरमध्यमें स्थित होकर उसके बीच महासमुद्र, मेरु पर्व्वत अथवा इस सप्तद्वीपा पृथिवीका दर्शन करते हैं। स्वप्न-

दृश्य इच भी कहीं, पर्व्वत होते और पहाड़ कहीं तृण होते हैं। कभी पशु किसी समयमें देवता, चण भरमें महाराज ; इसी प्रकार अनेक भांतिके दृश्य होते हैं। स्वप्नावस्थामें देश कालका कुछ भी नियम विद्यमान नहीं रहता। रातमें ही शय्यामें रहके सूर्य्ययुक्त दिन देखते हैं ; कभी भारतवर्षके बीच स्थित होकर इस मनुष्य शरीरमें ही चन्द्र सूर्य्यको भक्षण करनेमें प्रवृत्त होते हैं। इसलिये परमात्माके संसारादिको कारण माया है, उसके अतिरिक्त अन्य और कुछ भी लक्षित नहीं होता ; इसीसे स्वप्नावस्था प्रतिपादक वेदके तात्पर्य्यवित् पण्डितोंने स्वप्नको मायामय वर्णन किया है।

इन्द्रियोंका नियन्ता मन इसी प्रकार स्वप्न देखकर भोग्यरूपा इन्द्राणी सहित शीघ्र ही हृदयाकाशरूप अट्टालिका अर्थात् सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है। सुषुप्तपुरुषोंकी इन्द्रियां सुषुम्ना नाड़ीमें लीन रहती हैं, इसलिये उस समय इन्द्रियजनित ज्ञान नहीं रहता।

शि०। पण्डितोंने स्वप्नको मायामय कहके वर्णन किया है, वह माया क्या है ?

गु०। मायाके आनन्ददाता वह भगवान भी विश्वप्रसवकारी मायाको आत्मासे पृथक् कहके नहीं जानते। इसलिये ईश्वरसे मायाकी विभिन्नता स्वीकार नहीं की जाती। मायाकी स्फूर्त्ति मायावशसे ही हुआ करती है, क्योंकि मायाके अस्तित्व विषयमें कुछ प्रमाण नहीं है। माया किसी प्रकार भी प्रत्यक्षसिद्ध नहीं है और अनुमानसिद्ध भी नहीं है। जैसे सोये हुए पुरुषकी सुषुप्ति अवस्था सुषुप्तिमें ही प्रसिद्ध है। किन्तु सुषुप्तिविशिष्ट पुरुष इन्द्रिय चेष्टा हीन है ; इसलिये अनुमान भी असिद्ध हुआ।

शि०। यद्यपि ईश्वर लौकिकप्रमाण-गोचर नहीं हैं, तो ब्रह्म किसे कहें ?

गु०। हमलोग बुद्धिमान होके भी बुद्धिसे जिसे निश्चय नहीं कर सकते हैं और मानसिक प्रवृत्तिदक्ष पुरुष मनसे भी जिसकी कल्पना नहीं कर सकते। किसी देहमन्दिरमें भी घ्राणेन्द्रिय द्वारा जो आघ्राणके विषयीभूत नहीं हैं और नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा सपनेमें भी जो किसी पुरुषके दृष्टिगोचर नहीं होते ; हम लोगोंको उनके स्वरूपज्ञानकी चेष्टा है ; किन्तु प्रज्ञान ही वह ब्रह्म है, यही वेदवाक्य है।

शि०। प्रज्ञान ही ब्रह्म,—यह जो वेदवाक्य है, वह सगुणब्रह्म-पर है वा निर्गुणब्रह्मपर है ?

गु०। सगुण है वा निर्गुण है, उस विषयमें विशेष निश्चय नहीं है, इसलिये हम इस श्रुतिको सगुणब्रह्म विषयमें ही लौकिक-प्रमाणाधीन स्वीकार करते हैं।

शि०। क्या मनुष्यदेहमें ब्रह्मज्ञानके साधनयुक्त सामर्थ है ?

गु०। उरु, उदर, छाती, इन सब स्थानोंमें सर्वगत परमात्मा प्राण उपाधि अवलम्बन करके प्रविष्ट हुए हैं, ऐसा श्रुति कहती है। प्राणियोंके बीच मनुष्य देह ही ब्रह्मज्ञानके सर्व साधनसम्पन्न है। मनुष्य देहमें ही निर्म्मल परमात्माका आविर्भाव होता है, यह भी स्वयं श्रुति कहती है।

शि०। क्या इस स्थूल देहमें ही परमात्मा है ?

गु०। हां, किन्तु स्थूल देहसे भिन्न है। पुण्य और पाप फलका भोक्ता आत्मा है। इतना ही हम लोग जानते हैं और श्रोता, मन्ता, विज्ञाता, द्रष्टा सब प्राणियोंके अन्तरवर्त्ती पुरुष है ; ऐसा श्रुति कहती है।

शि०। इस स्थूलदेहको दीर्घकाल तक जीवित रखनेको क्या उपाय है ?

गु०। सातवीं धातुरूप रेतसे निरुद्ध होने पर यह भी ओज

नामसे एक आठवीं दशा होती है, यह पीतवर्ण, हृदयके मध्य स्थित जीवको आवासभूत है; इसके द्वारा ही जीवगण तेजस्वी होकर सुदीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। इस रेत (वीर्य्य) को सम्यक्‌रूपसे संस्थापन करनेसे शरीरको विरूपकारिणी जरावस्था और मृत्यु भी शीघ्र नहीं होती। तथा शरीरका बल भी नष्ट नहीं होता। किन्तु सबकोई ही इसे निरोध करनेमें समर्थ नहीं होते।

शि०। इस प्रकार शरीरके सारभूत रेत (वीर्य्य) को प्राणि-गण धारण करनेमें क्यों नहीं समर्थ होते?

गु०। सर्वाङ्गसे पृथक किये हुए आत्मस्वरूप रेतको कामी पुरुष कामरूप ग्रहके समावेश और उपस्थरूप सर्पके दंशन हेतुक रेतरूपी गर्भ द्वारा खिन्न होकर उसे मोचन करनेके इच्छुक होते हैं। जब धारण करनेमें समर्थ नहीं होते, तब नारीके योनिदेशमें निक्षेप करनेमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। उस समय रेत उपस्थद्वारसे निकलकर स्त्रीपुरुष-सङ्गरूप ग्राम्यधर्म्म-बलसे नारियोनि-देशको प्राप्त हुआ करता है।

शि०। उस रेतको भार्य्याके योनिदेशमें निक्षेप करने का क्या उद्देश्य है?

गु०। जैसे एक वृक्ष सैकड़ों फल उत्पन्न करके निज स्वरूप उन सैकड़ों बीजोंको प्रदान किया करता है, वैसे ही पुरुष पुत्र कन्या प्रभृति में निज स्वरूपात्मा प्रदान करता है।

शि०। शरीरके सारभूत ऐसे रेतको परित्याग करनेके समय बोध होता है कि, कामी पुरुषोंको कष्ट मालूम होता होगा।

गु०। भारातुर व्यक्ति जैसे बोझाको परित्याग करनेसे सुख अनुभव करता है, वैसे ही गर्भी पुरुष रेतरूप गर्भको सम्यक् रीतिसे परित्याग करके सुख अनुभव करता है। जैसे ग्रहाविष्ट पुरुष ग्रहके

निकलनेसे सुख पाता है, वैसेही रेतरूप गर्भधारी पुरुष भी रेतके निकलनेसे सुख पाया करता है।

शि०। यह सुख क्या प्रकृत (असली) सुख है?

गु०। नहीं, कदापि नहीं। जैसे अजीर्ण-भोजन मनुष्योंको प्राणान्तरूप आपद उत्पन्न करके वाहिर होता है। वैसेही रेत भी मनुष्योंके बलको क्षय करके निकला करता है। जैसे अतिसार लोगोंके तेजको हर लेता है, वैसेही रेतका निकलना भी वल वीर्य्य को अपहरण किया करता है। जैसे पेरनेसे ईखका रस निकल जानेसे उसकी असार खोई रह जाती है, वैसेही स्त्री के हाथसे निपीड़ित पुरुष भी रेतरूप सारके निकल जानेसे असार हो जाते हैं। मूर्ख लोग स्वाश्रित माया द्वारा मोहित होकर आयु और बलकर प्रगल्भ आत्मीय तेजोरूप रेतको स्त्रीयोनिमें अर्पण किया करते हैं।

शि०। जो लोग रेत (वीर्य्य) धारण करनेमें समर्थ होते हैं, उनकी अवस्था किस प्रकारकी है?

गु०। रेत (शुक्र) निरोध पूर्व्वक जो लोग ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करते हैं, उनकी परलोक, ब्रह्मलोक और मनुष्यलोकमें बहुत कीर्त्ति हुआ करती है। इसलिये ऐसे लोगोंके निःसन्देह दोनो लोक सिद्ध होते हैं। इस रेत (शुक्र) निरोध विशेष हेतुक, मनुष्यके वीच जो लोग योगवित् हैं, उन्हें आकाशगमनकी भी सामर्थ होती है और वे लोग अणिमा प्रभृति आठ प्रकारके ऐश्वर्य्य भी पाते हैं।

शि०। स्त्री को योनिमण्डलमें अर्पित रेत किस अवस्थामें परिणत होता है?

गु०। रेत योनि स्थानमें जाकर दुःख और शोकजनक जो सैकड़ों सहस्रों अनेक प्रकारकी अवस्था हैं, उन्हींको प्राप्त हुआ करता है।

शि०। रेत (शुक्र) को दुःख और शोक क्या है?

गु०। रेतोरूप गर्भधारी पुरुष रेत (शुक्र) रूपसे स्त्रीमें प्रवेश करता है, इससे वह स्वयं ही नूतन होकर जन्मा करता है। निषेकसमयसे प्रारम्भ करके निज शोणितसञ्चित एकताको प्राप्त रेतरूप जो पुरुषांश है, वह जब तक योनिसे वाहिर नहीं होता, तबतक स्त्री उसका निज शरीरकी भांति रक्षण और पोषण किया करती है। योनि ही जिसके प्रवेशका द्वार है और जो विष्ठा मूत्रादि द्वारा सदा ही दोषित है, उसी उदरके बीच स्थित होकर जीवगण अत्यन्तही दुःख अनुभव करते हुए योनिद्वारसे फिर वहिर्देश को प्राप्त हुआ करते हैं।

शि०। योनियन्त्रमें प्रवेश करने और निकलनेके समय जीवोंको कैसा दुःख हुआ करता है?

गु०। मनुष्योंके मरण समयमें और नरकके अनुभव कालमें दुःख प्रसिद्ध ही है; किन्तु उनकी अपेक्षा करोड़ों गुणा दुःख हुआ करता है। योनियन्त्रमें प्रवेश और उससे निकलनेमें जो दुःख होता है, वह मरणकालीन पीड़ासे सौगुणा अधिक है और योनि-यन्त्र तथा माताके उदरमें निवास करना नरकवाससे भी अधिक क्लेशकर है। माताके उदरमें देहधारी पुरुष जो दुःख अनुभव करता है, उसे कहनेमें भी हमें सम्मोह उत्पन्न होता है।

शि०। जबकि बालक माताके क्रोड़में रहके सुख अनुभव करता है, तब माताके उदरमें वास करनेसे ऐसा दुःख क्यों अनुभव करता है?

गु०। जननीका उदर विष्ठा और मूत्रका आवासस्थान है, पीव और रक्त द्वारा वह भीतरमें लिप्त; अनेक प्रकारके कफादि धातुओंसे व्याप्त है, इसकी दुःसह मांसमयी भित्ति, कृमिरूप नाग-पास द्वारा दुःसह बन्धन, माताके प्राणवायु द्वारा नाड़ीरूप रज्जुओं

से चालित, वायु और अग्निजनित तापसे कष्टानुभव, अपरिमित गर्भदुःख, जो किसी प्रकारसे भी सहन नहीं किया जाता और जो सैकड़ों जन्ममें भी नहीं कहा जा सकता ; केवल जातिस्मर लोग ही इस दुःखको स्मरण करनेमें समर्थ होते हैं ; साधारण लोग इसका कुछ भी नहीं जान सकते। साकल्यरूपसे उस दुःखको किसी प्रकार भी कहनेमें समर्थ न होगा।

शि०। गर्भस्थित रेत किस प्रकार जीवमें परिणत होता है?

गु०। एक रात्रिमें कलिलाकार (अर्थात् शुक्रशोणित मिश्रित) सातरात्रिमें बुद्बुदाकार, अर्द्धमास (पन्द्रहदिन) में पित्ताकार और एक महीनेमें कड़ा हो जाता है ; दूसरे महीनेमें मस्तक ; तीसरे महीनेमें पांव ; चौथे महीनेमें अंगुलियां ; उदर और कटिस्थल ; पांचवें महीनेमें मेरुदण्ड ; छठवें महीनेमें मुख, नाक, आंख और कान ; सातवें महीनेमें जीव संयोग ; आठवें महीनेमें सर्व्वाङ्ग पूरण ; नवें महीनेमें सम्पूर्ण ज्ञानहेतुक पूर्व्वजन्म स्मरण ; जरायुरूपपट रहित होकर मेड़ककी भांति इधर उधर चलना ; पीठ और गर्द्दन को कुण्डलाकार करके हाथ पैर सङ्कुचित कर कुक्षिस्थानमें, मस्तक-अर्पणरूप गर्भासनको परित्याग करते हुए हाथ पांव और शरीरादि परिचालनसे मानो जननीके पेटको भेदनेमें उद्योगी बालक कभी माताके कक्षिस्थलमें दौड़ता, कभी मन्दरकी भांति हृदयमें और कभी योनियन्त्रके बीच धावमान होता है तथा निज शरीर निपीड़न करके नीचेकी ओर मस्तक लटकाकर अनेक प्रकारके क्लेश द्वारा जननीके क्लेशजनक और सर्पग्रस्त मेड़ककी भांति अत्यन्त विक्रोशमान जुगुप्सित वह बालक उस समय सर्पमुखरूपयन्त्रसे मूषिककी भांति वैसेही वायु द्वारा बहिर्द्देशमें निकला करता है।

शि०। गर्भके बीच जीव किस महीनेमें दुःख अनुभव करता है?

गु०। पहिले आठ महीने तक गर्भस्थ जीव सर्व दुःखकर

अज्ञानरूप मूर्च्छा, निज तथा मातृसम्बन्धि क्षुधा पिपासा जनित सन्ताप और निज शरीरकी असामर्थ्यजनित अनेक क्लेश अनुभव करता है। अति दुःसह अनेक जन्मानुभूत दुःखोंको स्मरण करते हुए नवें महीनेमें जीव ऐसा कहा करता है कि, मैंने जन्म जन्ममें अनेक प्रकारकी आहारीय वस्तुओंको खाया है, अनेक भांतिके स्तन पान किया है। अनेक प्रकारके माता पिता तथा बन्धु बान्धव प्रभृति भी देखा है ; इस समय अब पुनर्जन्म लेनेकी इच्छा नहीं है ; यदि इस स्थानसे मुक्त हो जाऊं, तो परमेश्वरकी प्राप्तिका उपाय अवलम्बन करूंगा ; अन्यथा बेर बेर जन्म लेकर सर्वपाप-जनक जननीको पीड़ा प्रदान करना कर्त्तव्य बोध नहीं होता है। इसी प्रकार अनेक जन्मोंके स्मरण होनेसे उन जन्मोंके दुःखोंका स्मरण और कुछ देरके बाद मूर्च्छा होनेसे उन जन्मोंका विस्मरण, विष्ठा और मूत्रादि भक्षण इत्यादि अनेक प्रकारके गर्भदुःख अनुभव करके करात (आरा) के अग्रभागकी अपेक्षा सहस्रगुण कठिन और स्वल्पछिद्र-विशिष्ट योनियन्त्रसे बाहिर होकर जीव कीटकी भांति भूमि पर गिरता है।

शि०। जब स्त्रियां गर्भ धारण करती हैं, तो उससे उन्हें का आह्लाद उत्पन्न होता है?

गु०। यह बात सत्य है ; किन्तु अत्यन्त पके हुए व्रणके कीट युक्त होनेसे जैसी पीड़ा होती है, बालकके योनियन्त्रगत होनेपर स्त्रियोंको उसकी अपेक्षा अधिकतर क्लेश हुआ करता है। मल और मूत्रके निरोधसे मनुष्योंको जैसा दुःख होता है ; गर्भ धारणसे स्त्रियोंको उसकी अपेक्षा अधिकतर दुःख हुआ करता है। दुर्गन्धि युक्त व्रणको विदारण करनेसे उससे कीटादि बाहिर होनेपर मनुष्यों को जैसा सुख होता है, स्त्रियोंको गर्भमोचनसे भी वैसा ही सुख अनुभव होता है। अनेक समयके निरुद्ध मल और मूत्र परित्याग

करनेसे जैसा सुख होता है, गर्भिणी स्त्रियोंके गर्भमुक्त होनेसे भी वैसाही सुखानुभव होता है। इसी प्रकार गर्भमें निवास और उस से वाहिर होनेमें जीवोंको अनुपम दुःख होता है और गर्भिणी स्त्रियोंको भी गर्भ धारणसे, तथा गर्भस्थ वालकके विनिर्गमसे असीम दुःख उत्पन्न हुआ करता है।

शि०। क्या मनुष्य जन्म वहुत निकृष्ट जन्म है?

गु०। मनुष्य जन्म अति दुर्लभ जन्म है, इस देहको पाकर जो पुरुष सत्कर्म्म न करके असत्कर्म्म करता है, वह पुरुष जो कृतघ्न है, उसमें सन्देह नहीं है। देवता लोग भी इस मनुष्यजन्मको सर्व्वदा प्रार्थना किया करते हैं; क्योंकि मनुष्यदेहमें ही निर्म्मल परमात्मा स्वयं आविर्भूत हुआ करते हैं।

शि०। पुत्र जन्मने पर पिताका मन कैसा होता है?

गु०। वंशहानिकी सम्भावना नहीं रहती, इसीलिये वहुत कष्टसे जननीके गर्भसे वालक भूमिष्ट होने पर उसे देखकर उसका पिता अत्यन्त आनन्दित होता है।

शि०। आत्मा किस प्रकार पिता माता पुत्रादि रूपसे दिखाई देता है?

गु०। जैसे एकही सूर्य्य जब तक कूप, सरोवर, घट प्रभृति में प्रतिविम्बित होता है, तब तक आधार भेदसे कूपसूर्य्य, घटसूर्य्य प्रभृति नाम धारण करता है, वैसेही एक आत्मा मायामें विम्वित होकर संसार सम्बन्धमें माता, पिता, पुत्र आदि रूपसे दीखता है। मायाके आवरणका नाम लज्जा है। स्त्रियां अधिक मुग्ध होनेसे ज्यादे लज्जाशालिनी होती हैं। मायाको आत्मज्ञानी ही त्याग किया करते हैं। मायावशमें ही संसार है। मायादृष्टिसे संसार में आवद्ध होनेसे आत्मीय गणोंके उपाधिमें पुत्र, पिता और पति स्थिर हुआ करते हैं। जिन्होंने मायाको त्याग किया, उनके पक्ष

में पति-पुत्रभाव समान हो जाता है।

शि०। स्त्रियोंका पति-पुत्रभाव किस प्रकार समान होगा?

गु०। ईश्वर प्रेममें जो लोग मग्न होते हैं, उन्हें वाह्यज्ञान नहीं रहता। उस वाह्यज्ञानको नष्ट करनेके निमित्त तान्त्रिक लोग स्त्रीको जननी कहके पूजा किया करते हैं, उनका भाव विभिन्न है। "जिससे प्रसूत होते हैं, वैसी मानवीको जननी कहते हैं" इसी प्रमाणसे स्त्री मात्र ही जननी हैं। आत्मामात्रको इसी प्रमाणसे पुत्र वा पिता कहा जाता है। क्योंकि पिताही पुत्ररूपसे भार्य्याके गर्भसे जन्म लेकर उत्पन्न होता है,—ऐसा वेद-वाक्य है। कारण ईश्वर पिता होकर, पति होकर और पुत्ररूपसे भी प्रकाश होते हैं।

शि०। मनुष्य जननीके गर्भसे भूमिष्ठ होकर किस अवस्थामें रहता है!

गु०। मनुष्य लोग पहिले उत्पन्न होते ही अनेक प्रकारके शब्द करते हुए धरणीतलशायी होके स्तन दुग्ध पीनेकी इच्छा करते हैं और इच्छानुसार अन्न पानादि न पानेसे अत्यन्त दुःखित होते हैं। वाग्वादिनी नाड़ीमें कफकी व्यापता होने पर वाक्य न कह सकनेसे ऊंचे स्वरसे केवल निज जननीको आह्वान करते हैं। बालक किसी समयमें वृथा हँसता, कभी वृथा भय पाता, कभी वृथा रोदन करता और कभी मोहित होकर विष्ठादि भी खानेमें प्रवृत्त होता है। बालक बात कहने, चलने और ग्रहण करनेमें बेर बेर इच्छा करके जब उन कार्य्योंको करनेमें असमर्थ होता है, तब अत्यन्त दुःख और क्लेश पाया करता है। बाल्यकालमें इसी प्रकार कोटि कोटि दुःख अनुभव करके बाल्यावस्थाके अनन्तर कौमार-अवस्थाको प्राप्त हुआ करता है।

शि०। कौमार अवस्था कैसी है?

गु०। बालक जानु और हाथसे धीरे धीरे चलनेमें प्रवृत्त होता है, कभी शङ्कायुक्त होकर कुत्ताकी भांति निज गृहमें प्रवेश करता है और अभिप्रायसूचक अङ्गचेष्टादि भी नहीं जानता; ऐसी अवस्थामें कुछ समय बिताकर अत्यन्त चञ्चल-स्वभावके वशवर्त्ती हो कर फिर पैरसे चलने लगता है तथा अस्पष्टरूपसे वाक्य बोलनेमें समर्थ होता है। किन्तु अपना हिताहित कुछ भी नहीं जानता। एक जगहसे वृथा ही दूसरी जगह जाता है; उन्मत्तकी भांति किसी वस्तुको लेता और वृथा ही अनेक प्रकारके वचन कहा करता है। वह बालक सर्वाङ्ग धूलिधूसरित होनेसे महाश्रमसे व्याकुल होकर वृथा ही अन्य बालकोंसे स्नेह और द्वेष किया करता है। कौमार अवस्थामें इसी प्रकार अनेक भांतिके दुःख अनुभव करके क्रमसे करोड़ों दुःखोंको भोगकर यौवनावस्थामें भी पहुंचता है।

शि०। यौवनावस्था कैसी है?

गु०। युवा पुरुष किसी समय युद्ध करनेमें उद्यत होता है; कभी युध्यमानव्यक्तिको पराजित किया करता है। कभी अत्यन्त नाचता, कभी दौड़ता, कभी अहङ्कार-प्रकाश करता और कभी बेर बेर लम्बी सांस लेता है। यौवनकालमें यौवनमत्त पुरुष इसी भांति विविध चेष्टा किया करता है। वह पुरुष यौवन सुखसे दृष्टिहीन होके केवल स्त्रियोंको ही मानस अर्पण करते हुए उनके सुख सम्पादनके लिये दुष्ट स्वभावके वशवर्त्ती होता है। केवल गृह क्षेत्र और कलत्रादिमें आसक्त होकर समय व्यतीत किया करता है। उस समय वैसे दुष्टबुद्धियुक्त युवा पुरुषको जरारूप महाकाल प्राप्त हुआ करता है, अर्थात् वृद्धावस्था उपस्थित होती है।

शि०। वृद्धावस्था कैसी है?

गु०। वह युवक जराके सङ्गमसे कुरूप और शक्तिहीन होकर दुःख तथा शोकसे समावृत्त हुआ करता है। उस समय यौवनकाल

में किये हुए अनेक प्रकारके अकार्य्योंको स्मरण करके वह बूढ़ा इस प्रकार अपनी निन्दा भी किया करता है कि, "हाय! मैंने" यौवन मदसे मतवारा होकर किन अकार्य्योंको नहीं किया है। उनके फल मुझे अवश्य ही भोग करने होंगे। इसी प्रकार अधिकतर परिताप किया करता है। वृद्धावस्थामें मनुष्यको विषय लाभकी बहुत ही इच्छा देखी जाती है; किन्तु शक्तिहीनता प्रयुक्त इन्द्रियोंके संचयहेतुसे वृद्ध किसी विषयको भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। इसी भांति वृद्धके देहरथको कालके सुसज्जित करनेके बाद वह बूढ़ा वृद्धावस्थामें अनेक प्रकारका दुःख अनुभव करके भी मोहसे समस्त दुःखोंको भाकर इस शरीरको परित्याग करनेकी इच्छा नहीं करता। मरणकाल निकटवर्त्ती होनेसे उस समय जीव बहुत दुःखी होकर अपने पुत्र तथा कन्याओंको स्मरण किया करता है। और मरणजनित क्षोभसे उसे डर तथा देहकम्प भी हुआ करता है। उस समय बान्धव लोग उसे चारो ओरसे वेष्टन (घेरा) करते हैं; किन्तु किसी प्रकारसे भी मृत पुरुषकी रक्षा नहीं कर सकते।

शि०। मरणकालमें जीव कैसा दुःख अनुभव किया करता है?

गु०। बहत्तर हजार वृश्चिकोंके एकबारगी निज पूंछके भारसे शरीरमें डङ्क मारने पर जैसा दुःख होसकता है, मुमुर्षु व्यक्तिके देहत्यागमें भी वैसाही दुःख अनुभव हुआ करता है। मरणकालमें जीवगण चेतन रहित होते हुए हाथ पैर सञ्चालन किया करते हैं; उस समय उनके आत्मीय लोग मृत व्यक्तिके उद्देशसे शोक किया करते हैं। जैसे जालबद्ध कपोत दीनचित्त होकर यथेच्छा गमन करनेमें असमर्थ होता है, वैसेही जीवगण कालरूप पाशके वशवर्त्ती होकर इच्छानुसार गमन करने में असमर्थ हुआ करते हैं। मुमुर्षु व्यक्तिको असंख्यात हिचकी तथा ग्लानियुक्त मुख देखकर भी निष्ठुराशय मृत्यु को करुणा नहीं होती। हा पुत्र! हा कलत्र!

इसही प्रकार शब्दकारी मुमुर्षुरूप जीवको काल चोरकी भांति विनाश करनेमें प्रवृत्त होता है। जनघाती निर्दय मृत्यु उस समय मृतव्यक्तिके शरीरके बीच बहत्तर हजार नाड़ीबन्धनोंको कालरूप कुठार द्वारा अनायास ही छेदन किया करता है। मुमुर्षु व्यक्ति कभी मूर्च्छाको प्राप्त होता, कभी प्रबोधित होता है; किसी समय में भयजनक यमदूतोंके सन्दर्शनसे अत्यन्त भयभीत होकर भयजनक महत्‌शब्द करता है; कभी मल मूत्र त्याग करता है; कभी आंसू बहाता है। जीवित व्यक्तिको तप्ततैलके बीच प्रवेश करनेसे जैसा दुःख होता है, मरणकालमें सब प्राणियोंको भी वैसाही दुःख अनुभव हुआ करता है। जीवित व्यक्तिके शरीरको करात (आरा) द्वारा खण्ड खण्ड करनेसे उसे जैसा दुःख होता है, मरण समयमें समस्त प्राणियोंको वैसाही दुःख हुआ करता है। जीवित व्यक्तिके पैरसे लगाय मस्तक पर्य्यन्त चमड़ा निकाल लेनेसे उसे जैसा दुःख अनुभव होता है, मरण समयमें भी मनुष्योंको वैसाही दुःख हुआ करता है।

शि०। मुमुर्षु व्यक्तिके निकट यमदूत आके उस पापीको किस प्रकार दुर्वाक्य द्वारा भर्त्सना करते हैं?

गु०। रे आत्मघाती मनुष्यदेहधारी पापी तुझे धिक्कार है; क्योंकि तैंने इस मनुष्यदेहको धारण करके निज हितसम्पादक कोई कार्य्य न करके केवल उन आत्मीय पुत्र कलत्रादिके रक्षणके लिये सदा भ्रमण किया है। देहके उपभोग सिद्धिके लिये पुत्र कलत्र और धनादिको आश्रय कर तनिक भी पुण्य न करके ढेरका ढेर पाप किया है और उन्हीं पापोंके लिये रात दिन अनेक प्रकारका दुःख भी भोगा है। जिन्हें शत्रु कहके सदा द्वेष किया है, वे कोई भी तेरे प्रकृत शत्रु नहीं हैं; किन्तु तूं अपना शत्रु आपही है। क्योंकि मोक्षसाधनको प्रधान उपाय देह है, उसे पाके तैंने अपने

बन्धन मोचनकी कुछ उपाय नहीं की, इससे निःसन्देह तूं स्वयं ही अपना शत्रु है। सुकृत कार्य्योंके करनेमें स्वल्पमात्र शरीरका श्रम है; किन्तु परमात्मामें यह भी नहीं है। इसलिये परमात्मा का ध्यान क्यों नहीं किया? यद्यपि तुम निर्गुणब्रह्मके परिज्ञान विषयमें समर्थ नहीं हुए थे, तो सगुणब्रह्मकी उपासना क्यों नहीं की? जिसकी अपेक्षा परम सुखास्पद और कुछ भी लक्षित नहीं होता। यद्यपि उपासनादि कार्य्यमें असमर्थ हुए हो, तो भगवान का नाम कीर्त्तन ही क्यों नहीं किया। शत्रु विनाशके लिये तुमने जैसा उद्योग किया था, उसी भांति स्वर्ग और मोक्षके लिये स्वल्प मात्र उद्योग भी क्यों नहीं किया? तुमने निर्ज्जन तथा प्रकाशमें जो सब पाप किया है, उन पापोंको साक्षी स्वरूप आदित्यादि देवगण जानते हैं। यदि लोग छिपकर भी पाप करें, वह भी हम लोगोंको अविदित नहीं रहता। क्योंकि दिनमें किये हुये पापके साक्षी दिवस और सूर्य्य हैं। रातमें किये हुए पापकी साक्षी रात्रि और चन्द्रमा प्रभृति हैं। सन्ध्याकालमें किये हुए पापोंके साक्षी दोनो सन्ध्या हैं और दिन रात और सन्ध्यासे भिन्न सर्व्वकालिक पापोंके साक्षी पञ्चभूतगण हैं। ये सदा यमसभामें पापियोंके छिपाके किये हुए पापोंको भी कहा करते हैं। इसीलिये समस्त पुण्य और पाप हम लोगोंसे छिपा नहीं है; क्योंकि हम लोग यम के किङ्कर हैं। यमदूत लोग इसी प्रकार अनेक भांतिके वाक्य द्वारा उस पापात्माकी भर्त्सना करते हुए सुदारुण पाशसे बांधकर कोड़ा (चाबुक) द्वारा मारते हुए यमलोकमें लेजाते हैं।

शि०। उस व्यक्तिके मृत होने पर उसकी पत्नी प्रभृति तथा बान्धव लोग उसके सम्बन्धमें कैसा व्यवहार किया करते हैं?

गु०। जीवित समयमें आत्मीयगण जिसे कोमल और खूब सफेद सय्यापर सुलाते थे, उस व्यक्तिके मरने पर बान्धव लोग उसे

प्रज्वलित अग्निमें डाला करते हैं। जीवित अवस्थामें जिसे वान्धव लोग सुगन्ध फूल स्पर्श करानेमें समर्थ होते थे, वेही चितागत उस पुरुषको तीक्ष्णाग्र काष्ट द्वारा अकातर भावसे स्पर्श किया करते हैं। जिसे पहिले वान्धव लोग घोड़ा, हाथी और रथ द्वारा लेजाते थे, मरनेके बाद उसे काष्टकी भांति काष्ट द्वारा बांधकर लेजानेमें स्वीकृत होते हैं। जो पहिले मङ्गलजनक वाद्योद्यम सहित चलते हैं, वह मरने पर स्त्रियोंके सशोक रोदन सहित गमन करते हैं। वान्धव लोग पहिले जिसके आगे दही प्रभृति मङ्गलजनक वस्तु लेजाते थे, उसके आगे आज धूम्रांयुक्त अग्नि लेजाते हैं। जिसके पदाग्रसे निकले जलको लोग सिरपर धारण करते थे, मरणान्तमें उसके संस्पर्शसे लोग स्नान करनेमें प्रवृत्त होते हैं।

शि०। मरणकालमें जीवात्मा देहके किस द्वारसे वाहिर हुआ करता है?

गु०। पहिले कह आये हैं कि, जीवात्मा जिस द्वार (मस्तकके उर्द्धभाग) से इस द्वारावती पुरी देहके बीचमें प्रविष्ट हुआ है, उसी द्वारसे वाहिर होनेसे जो ब्रह्मलोकप्राप्ति होगा, उसमें सन्देह नहीं है। पुण्यशाली पुरुषके चक्षुरादि इन्द्रिय द्वारा वाहिर होने पर स्वर्गलोक प्राप्त होता है। इसके सिवाय दुष्कृतशाली पुरुष इस द्वारसे निकलनेसे दुष्कृतको अग्रवर्त्ती करते हुए यमालयमें गमन किया करते हैं।

शि०। वह पापीपुरुष शरीर त्याग करके किस अवस्थामें यमदूतों सहित गमन करता है?

गु०। जो पुरुष जीविका कालमें पुत्र और भार्य्या प्रभृतिको, क्षणकालके लिये भी परित्याग नहीं कर सकता था, वही पुरुष समस्त सम्पत्ति परित्याग करके अशोभ ही वेर वेर गमन करता है। इस ही प्रकार अत्यन्त दुःखित पुरुष शरीर त्याग करते हुए अत्यन्त भूख और प्याससे; कातर तथा यमदूतोंसे निन्दित होकर यमद्वारमें

पहुंचा करता है। यमालयमें यमशासनवशसे अनेक प्रकारका दुःखानुभव करना होता है; उस दुःखको कहनेमें कौन समर्थ है तथा सुननेहीमें कौन समर्थ होगा? असिपत्र, वन प्रभृति भय-जनक नरकके बीच दुष्कृतशाली पुरुष अनेक कल्प पर्य्यन्त दुःख भोग किया करते हैं।

शि०। यमालयमें जानेवाले मार्गके बीच कैसा कष्ट है?

गु०। मार्गके बीच शूकर, व्याघ्र, भालू प्रभृति हिंसक पशुओं तथा काक, शकुनि प्रभृति पक्षियोंके भी उपद्रव हैं। राक्षस तुल्य सैकड़ों चोरगण अनेक प्रकारके अस्त्रादि द्वारा जीवको प्रहार किया करते हैं, किन्तु निज दुष्कृत भोगका समय बिना बीते उस जीव को उससे मृत्यु नहीं होती। मार्गके बीच पीव और विष्ठादि पूरित नदियोंको जीवगण लङ्घन किया करते हैं; कहीं कहीं उनके बीच डूब भी जाते हैं, कहीं घड़ियाल प्रभृति हिंसक जन्तुओंसे भय भी पाया करते हैं।

शि०। दुष्कृतशाली पुरुष इस प्रकार दुःख अनुभव करके किस अवस्थाको प्राप्त होते हैं?

गु०। समयानुसार भोजनीय वस्तु अन्नादिरूप प्राप्त होकर इस मनुष्यलोकमें पुनरागमन किया करते हैं?

शि०। सुकृतशाली पुरुष किस अवस्थाको प्राप्त होते हैं?

गु०। स्वर्गलोकमें स्वर्गीय महत्सुख अनुभव करके समयानु-सार सुकृत शेष होने पर पूर्वोक्त रीति अनुसार जलधाराके सहित इस मनुष्यलोकको फिर प्राप्त होते हैं। और पुण्य तथा पापके अनुसार पिता माता द्वारा अनेक प्रकारकी योनिमें जन्म ग्रहण किया करते हैं।

शि०। इस प्रकार जीवगण कितनी बेर संसारके बीच जन्मा करते हैं।

गु०। रवि और सोम प्रभृति वार जिस प्रकार अविच्छेदसे प्रवृत्त होते हैं, इसी भांति प्राणियोंके जन्म मरण भाव भी अविच्छेद रीतिसे प्रवृत्त हुआ करते हैं। जैसे देहीगण पुराने वस्त्रको परित्याग करके नये वस्त्र पहिनते हैं, वैसेही जीव भी नये शरीरको प्राप्त करके पुराने शरीरको परित्याग किया करता है। संसारके बीच अवस्थित जीवोंको जब तक आत्माका स्वरूपज्ञान नहीं होता, तब तक वे इस ही प्रकार जन्म और मृत्युके वशवर्त्ती होकर संसार में सदाही भ्रमण किया करते हैं। इसलिये अज्ञानका विनाश और स्वरूपब्रह्मका ज्ञान न होनेसे मनुष्योंके देहादिरूप इन दुःखों के विनाश होनेकी किसी प्रकार भी सम्भावना नहीं है।

शि०। जो ब्रह्म है, वही आत्मा है ? क्या सब प्राणियोंमें ही आत्मा है ?

गु०। स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज और जरायुज प्रभृति अन्यान्य समस्त प्राणीगण आत्मासे भिन्न नहीं हैं। अनेक प्रकारके कर्म्म शान्ति "ब्रह्मासे लगाय स्थावर पर्य्यन्त" जो सब प्राणिगण हैं, वे भी आनन्दात्मारूपी ब्रह्मकी देह हैं।

शि०। यद्यपि सब देहमें ही आत्मा अवस्थान करता है, तो देहसे आत्मा पृथक क्यों रहता है ?

गु०। जो जन्म लेता, जो प्रत्यक्ष रूपसे अनुभूत होता है, जो अन्यथा भावको प्राप्त होता है, जिसका अवश्य ही विनाश है और जो विनष्ट होता है ; ऐसा इन्द्रिययुक्त देह भाव प्राप्त आत्मा नहीं है, क्योंकि यह समस्त देह साक्षात परोक्षरूप आत्मामें कल्पित है ; किन्तु कल्पित धर्म्म कदापि आधारको स्पर्श नहीं कर सकता।

शि०। जो आत्मा है, वह भी तो देहके बीचमें बन्धन अवस्थामें है ?

गु०। आत्माके बन्धन निमित्तक अज्ञान द्वारा चौरासी लाख क्लेशजनक कारागारस्वरूप देह निर्मित हुई हैं। जैसे वृहदाकार पक्षी लोहेके बने हुए पिञ्जरेके बीच शृङ्खला द्वारा बांधकर रक्षित होते हैं, वैसेही आत्मा भी उस देहके बीच अज्ञानरूपपाश द्वारा बद्ध हुआ करता है।

शि०। जब आत्मा देहके बीच बद्ध है, तब उसे देह धर्मके (अर्थात् मृत्यु, भय, सुख दुःख इत्यादिके) अधीन रहना होगा?

गु०। परमात्मा मृत्युकी भी आत्मास्वरूप हैं, क्या मृत्यु कभी अपने द्वारा अपनेको विनाश करनेकी इच्छुक हो सकती है, इसलिये आत्माको मृत्युका भय किसी प्रकार भी नहीं है। दूसरे व्यक्तिसे ही भय हुआ करता है, यथार्थमें आत्मासे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है। इसीलिये संसारादिसे आत्माको किसी प्रकार भी भय नहीं हो सकता। जन्म, मृत्यु, बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य, ये सब देहके धर्म्म हैं; इन सबका कोई अंश भी आत्मामें नहीं है। इसलिये देहसे भिन्न जो आत्मा है, उसे किस प्रकार सुख वा दुःख अनुभूत होगा? भय और मोह मनके धर्म्म हैं; भूख और प्यास प्राणके धर्म्म हैं; निद्रा इन्द्रियधर्म्म है। विष्ठा और मूत्र निबन्धन पीड़ा प्रभृति देहके धर्म्म हैं; आत्माके धर्म्म कदापि नहीं हैं, क्योंकि आत्मा अद्वितीय और ज्ञान स्वरूप है, उसका भय स्वीकार करनेसे वह द्वितीय हो जाता है और मोह स्वीकार करनेसे उसके ज्ञान स्वरूपमें व्याघात हुआ करता है।

शि०। आत्मा सत्त्व, रज और तमोगुण विशिष्ट है, वा नहीं?

गु०। सत्त्वगुण सम्पन्न मन मोक्षकी इच्छा करता है, रजोगुण सम्पन्न मन स्वर्गकी और तमोगुणयुक्त मन वैषयिक सुखोंकी इच्छा किया करता है। किन्तु आत्मा त्रैगुण्याभिमान रहित है, (अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुण रहित) तथा आनन्दरूपी है।

शि०। निद्रावस्थामें क्या देहके बीच स्थित आत्मा निद्रित रहता है ?

गु०। क्योंकि शरीरमें (अर्थात् इस स्थूल देहके भीतर जो सूक्ष्म देह है उसमें) मनकी लयरूप निद्रावस्था वाक्य प्रकृति इन्द्रियोंको हुआ करती है, किन्तु जब स्वप्नसन्दर्शन नहीं होता, उस समय वह निद्रा मनकी कहके सुप्रसिद्ध है। इसलिये मन और इन्द्रियादि विहीन जो आत्मा है, उसको निद्रावस्था किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है।

शि०। आत्मा ही यदि ब्रह्म स्वरूप है, तो वह ब्रह्म क्या इन्द्रियोंके द्वारा बोध्य नहीं है ?

गु०। चक्षुरादि वाह्यइन्द्रिय किम्वा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार इन अन्तरिन्द्रियों द्वारा बोध्य नहीं है और बुद्धिवृत्तिका भी विषयभूत नहीं है। परमात्मा आनन्दस्वरूप सत्‌शब्द प्रतिपाद्य (अर्थात् नित्य) स्वप्रकाश और देश, काल, वस्तु द्वारा अवधारण के अयोग्य है।

शि०। ऐसा होनेसे ब्रह्मको किस प्रकार जान सकेंगे ?

गु०। परमात्माका स्वरूपज्ञान लाभ न करने से उसे जाना नहीं जा सकता।

शि०। परमात्माका स्वरूपज्ञानलाभ कैसा है ?

गु०। मनुष्यलोक और स्वर्गलोक-लब्ध जो सब कर्म्मफल हैं, उसे परित्याग करके उपभोगसे पुण्यक्षयहेतुक निर्म्मलाशय होकर प्रारब्धकर्म्मके भोग विनाशपूर्व्वक परमात्माको स्वरूपप्राप्ति हो सकती है।

शि०। क्या स्वर्गभोगसे सुख लाभ नहीं होता ?

गु०। स्वर्गलोकमें पुण्यको अल्पता वा अधिकतासे ऐश्वर्य्य-भोगको भी कमी वा ज्यादती देखनेसे स्वर्गीय पुरुषोंको भी ईर्षा

उत्पन्न होती है; देवताओंकी अधीनताप्रयुक्त भय और पुण्यभोगके शेषमें फिर मनुष्यलोकमें पतनजनित शोक, ये त्रिविध दोष स्वर्ग-लोकमें अप्रतिकार्य्य हैं। हम लोग कर्मजनित फलके वशवर्त्ती हो कर भूलोकको परित्याग करके कभी स्वर्गलोकमें जाते हैं, और स्वर्ग से फिर भूलोकमें आगत हुआ करते हैं। कभी किसी प्रकारके पापजनक कार्य्योंको करने पर नरकमें भी गमन किया करते हैं। इसी भांति ऊपरी देश तथा अधोदेशमें हम लोग कपोतकी भांति भ्रमण किया करते हैं। और विषयतृष्णासे प्रपीड़ित होकर दुःख तथा शोकके हेतुभूत उत्तम अधम अनेक प्रकारके शरीर भी पाया करते हैं।

शि०। जब निर्म्मल परमात्मा देहके बीच अवस्थान करते हैं, तब देही (जीव) क्यों अज्ञानके वशीभूत होकर अनित्य विषयभोग वासनाकी अभिलाष करता है?

गु०। जैसे कोई पुरुष निज चित्तके दोषवशसे निर्दोष पिता प्रभृति आत्मीयजनोंका दोष दर्शन किया करता है, वैसेही पर-मात्मा भी आत्मामें सत्त्व, रज और तमोरूप त्रिदोष दर्शन करते हुए जगतकी सृष्टि प्रभृति कार्य्योंको सम्पन्न किया करते हैं। जैसे कोई पुरुष मद्यपानसे मतवारा होकर नेत्र द्वारा सम्यक्रूपसे अस-मर्थताप्रयुक्त सम्मुखमें मिथ्याभित्तितुल्य आवरण दर्शन किया करता है; वैसेही आनन्दात्मा भी मिथ्यारूप इस जगतको सन्दर्शन किया करते हैं; प्रत्युत आत्मा किसी प्रकारसे भी जगतमें लिप्त नहीं है। जैसे कोई पुरुष निद्रित होकर अपना स्वरूप अवलोकन नहीं करता, वैसेही आनन्दात्मा भी जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति स्वप्नत्रय सन्दर्शन करते हुए अपने स्वरूपको स्वयं ही अनुभव नहीं कर सकता। अनन्त परमात्मा आनन्द स्वरूप अपने अज्ञान वशसे संसाररूप शून्यके बीच सदा भ्रमण किया करते हैं। जैसे सर्वगुण

युक्त पुरुष किसी वेश्याकर्त्तृक मोहित होकर दीनता अनुभव किया करता है, वैसेही माया द्वारा आत्मा भी मोहित होकर संसार वासनारूप दीनताको प्राप्त हुआ करता है।

शि०। क्या परमात्मा माया कर्त्तृक मोहित होते हैं?

गु०। जैसे त्रिलोकनाथ इन्द्र देवाधिपत्य प्रयुक्त कामदेवको वाध्य करनेमें समर्थ होकर भी उसको अधीनतावशसे कामिनियोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वैसेही सर्व्वनियन्ता परमात्मा भी स्वाधीन मायाको वाध्य न करके उसके अधीनताके वशवर्त्ती होकर संसार विषयमें अत्यन्त आसक्त हुआ करता है; तथा मायाके संसर्गसे निर्विकार परमात्मा भी दूषित हुआ करता है।

शि०। क्या परमात्मा मायाके दोषोंको देखनेमें अक्षम (असमर्थ) है?

गु०। जैसे पुत्रादिमें प्रियदर्शी लोगोंको पुत्रादिके किये हुए अनादरादि दोषोंमें दोष बुद्धि नहीं होती, वैसेही परमात्मा भी निज मायाके दोषोंको दोष कहके नहीं देखते। जैसे भारशृङ्ग नाम हरिण हृष्ट होकर शृङ्गके बोझको वहन करता है, वैसे ही परमात्मा भी मायाके भारको अनायास ही वहन किया करते हैं जैसे राजा प्रजाके दुःखको निज दुःख कहके अभिमान किया करता है, वैसे ही आत्मीयाभिमानवशसे परमात्मा भी जड़स्थित दुःखको निज दुःख कहके अभिमान करते हैं। जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें अपनेको आपही दुःख प्रदान किया करता है, वैसेही जागरण अवस्थामें आत्मा अपनेको स्वयं ही दुःख प्रदान किया करता है।

शि०। यद्यपि स्वयं आत्मा ही दुःख अनुभव करता है, तो दुःखका विनाश किस प्रकार होता है?

गु०। जैसे सपनेके अनन्तर प्रबुद्ध व्यक्तिके सपनेमें देखे हुए दुःखका विनाश होता है, और स्वप्नावस्थामें मैंने जैसा दुःखानुभव

किया है, वैसा दुःख मुझे कदापि नहीं हुआ ; इस समय नहीं होता है और होगा भी नहीं, इसी प्रकार जान सकता है ; वैसेही जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति त्रिसप्ररूप संसारसे ब्रह्मज्ञानरूप जागरण होनेसे समस्त दुःख विनष्ट हो जाता है ; और मैं परमात्मा स्वरूप हूं, मुझे किसी प्रकारका दुःख कदापि नहीं हुआ, न होता है और कदापि होगा नहीं ; ऐसा जान सकता है।

शि०। क्या मनुष्योंकी भांति स्थावरगणोंको भी सुख दुःख अनुभव करनेकी सामर्थ है ?

गु०। जिस चमता (सामर्थ) से स्थावरगण सुख दुःख अनुभव करते हैं, उसे प्रज्ञा कहते हैं।

शि०। प्रज्ञा शब्दका क्या अर्थ है ?

गु०। हम लोगोंने ब्रह्ममें जो विविध प्रकार मन और बुद्धि प्रभृति अर्पण किया है, उनके बीच एकका नाम प्रज्ञा है। यद्यपि हृदयादि नामके बीच प्रज्ञा नाम उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि प्रज्ञान नाम जो एक बुद्धिवृत्ति है, उस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है। ज्ञा धातुका अर्थ प्रकाश है, प्र शब्दका अर्थ त्रिविधभेदशून्यतारूप प्रकर्ष है। इसलिये जैसा ब्रह्म शब्द निरतिशय आनन्दपर है, वैसाही प्रज्ञा शब्द भी है। इसीसे ब्रह्मका वह प्रज्ञा नाम अत्यन्त शोभनतर है।

शि०। क्या प्रज्ञा केवल स्थावर देहमें ही है ?

गु०। काष्टके बीच अग्निकी भांति ब्रह्मासे लगाय स्थावर पर्य्यन्त देहके बीच प्रज्ञा अवस्थित है, इसलिये प्रज्ञान शब्द प्रकाश रूप आत्मा है।

शि०। प्रज्ञाको प्रकाशरूप आत्मा क्यों कहा ?

गु०। जैसे जीवगण मांसमय चक्षु (नेत्र)) द्वारा कार्य्य सम्पन्न किया करते हैं, वैसेही स्थावर और जङ्गम प्रभृति समस्त भूत

भौतिक पदार्थ ही प्रज्ञारूप चक्षु द्वारा निज निज कार्य्य निर्व्वाह किया करते हैं। सूर्य्य चन्द्र और अग्नि जो कुछ प्रकाश पदार्थ हैं, वे भी प्रज्ञारूप दृष्टि द्वारा प्रकाशित हुआ करते हैं, अन्यथा इनका प्रकाश नहीं हो सकता। इसका सबब यह है कि, सर्वसाक्षी परमात्माके सिवाय किसी वस्तुका प्रकाश असम्भव है, क्योंकि उसके अतिरिक्त सब वस्तु ही जड़ हैं; जड़का स्वतः प्रकाश होना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होता। सूर्य्य और अग्नि प्रभृति प्रकाश पदार्थोंके भी प्रकाशक हैं, तब जो समस्त जगत प्रज्ञा द्वारा ही प्रकाशित हुआ है उसमें सन्देह नहीं है; इसलिये जगत प्रज्ञानेत्र कहके वर्णित हुआ करता है। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल प्रभृति त्रिलोक और इनके बाह्यदेशमें भी जैसे एक मात्र आकाश व्याप्त हो रहा है, उसी तरह प्रज्ञा समस्त जगतमें व्याप्त हो रही है। सृष्टिके पहिले और विनाशके पीछे नाम तथा रूपमें अस्पष्ट समस्त जगत प्रज्ञामें ही अवस्थित हुआ करता है और सृष्टिके समय में भी नाम तथा रूपमें स्पष्ट यह जगत प्रज्ञामें ही रहता है, इसलिये निःसन्देह प्रज्ञा ही जगतनिर्व्वाहक है। वेदवाक्यसे प्रज्ञा को ही ब्रह्म कहके निर्द्देश किया है और सत् किम्वा असत् जो कुछ वस्तु हैं, वे प्रज्ञासे पृथक नहीं हैं; इसलिये प्रज्ञा ब्रह्मपद प्रयोगके योग्य है; क्योंकि मायासहित स्थूल और सूक्ष्मरूप समस्त जगत स्वतःप्रकाश प्रज्ञारूप परमात्माके प्रकाशसे ही प्रकाशित हुआ करता है; इसलिये प्रज्ञा ही निःसन्देह चक्षु (नेत्र) रूपसे जगतप्रकाशक है।

शि०। वृक्षादिकोंको ज्ञानइन्द्रिय वा कर्म्मइन्द्रिय क्यों नहीं है?

गु०। स्थावर और जङ्गम भेदसे दो श्रेणीके जीव हैं;—जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज, इन्हीं चार जातियोंमें विभक्त

होकर जगतमें प्रकाशित हैं। उनके बीच जो लोग उर्द्ध्वश्रोती हैं अर्थात् जिनकी प्राणक्रिया उर्द्धभागमें होती है, उनके अधोभागसे प्राणक्रिया सम्पन्न हुआ करती है, उनकी ज्ञानक्रिया विलुप्त रहती है। इसीलिये वृक्षादिमें इन्द्रियचिन्ह उर्द्धमें प्रकाशित नहीं रहते; सोर (जड़) आदि रूपसे नीचेमें रहते हैं। इसी प्रकार योनिजात मायाके नियमसे प्रयोजन अनुसार स्वयं ही देहमें इन्द्रिय प्रकाश हुआ करती हैं। वृक्षके अन्तरमें प्राणक्रिया होती है। सर्वाङ्गमें प्रयोजन अनुसार इन्द्रियरूपी इन्द्रियद्वार शाखा पत्रादिरूपसे सर्व्वाङ्गमें व्याप्त है।

शि०। क्या स्थावरगणोंको सुख दुःख अनुभव करनेकी क्षमता (सामर्थ) है?

गु०। प्रज्ञा द्वारा स्थावरगण सुख अनुभव करते हैं, क्योंकि इन की वृद्धि और हानि परिलक्षित होती है; इसलिये स्थावरोंको भी सुख और दुःखादिका विज्ञान अवश्य ही है। ये यथा कालमें जल पाके सुशोभन निज देह धारण किया करते हैं; जब यह प्रत्यक्ष ही देखा जाता है, तब इन्हें सुखानुभव होना स्पष्टरूपसे ही प्रतीयमान होता है। उसी प्रकार मूलच्छेदनादि द्वारा शुष्क और शोभारहित होकर पतनादि विशिष्ट भी देखे जाते हैं, तब वृक्षादिकोंको भी दुःखानुभव होता है, इसमें सन्देह नहीं है। इसी प्रकार स्थावरोंको जब क्षयवृद्धि देखी जाती है, तब सुखानुभव और दुःखानुभव स्थावरों और जङ्गमोंको जो समान है, इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है।

शि०। जङ्गम लोग किस प्रकार सुख दुःख अनुभव करते हैं?

गु०। हाथमें उत्तम तृण लेकर आह्वान करनेसे पलुए और जङ्गलीपशु मात्र ही आगे आते हैं और हाथमें लाठी लेकर क्रोध करनेसे पलायन करना जब प्रत्यक्ष ही देखा जाता है, तब दोनो

प्रकारके पशुओंको जो सुख दुःखका अनुभव समान है, उस विषय में किसी प्रकारका सन्देह नहीं है ; क्योंकि सब जङ्गमोंके ही व्यवहार समान हैं ; इसलिये पिपीलिका (चींटी) आदि प्राणियोंको भी सुख और दुःखभोग अवश्य ही है।

शि०। क्या सुख और दुःखभोग प्रज्ञा द्वारा ही हुआ करते हैं ?

गु०। जब प्रज्ञा न रहनेसे लोगोंको सुख और दुःख नहीं उत्पन्न हो सकता ; तब सुख और दुःख प्रज्ञासे पृथक नहीं हैं, क्योंकि प्रज्ञा प्रकाशरूप है। प्रज्ञाके सत्त्वसे ही समस्त जगत स्फूर्त्तिमय हुआ करता है।

शि०। मनुष्य किस लिये अन्यान्य जीवोंसे श्रेष्ठ है ?

गु०। ब्रह्मा प्रकृति स्वभाव वा चैतन्य हैं। उनकी तपस्या अर्थात् चैतन्याकर्षण क्षमता (सामर्थ) है। प्रकृतिने चैतन्याकर्षण सामर्थसे क्या लाभ नहीं किया ? उसने चार भावसे चैतन्यलाभ किया। एकके द्वारा ज्ञान है ;—इस शक्तिसे पूर्व्वविनष्ट स्वभाव का प्रकाश होता है। जैसे एक वालक निज अवस्थासे जितना उन्नत होता है, उतनी ही ज्ञानशक्तिकी वृद्धिसे आत्मक्रिया स्वभाव अनुसार प्रकाश करता है, वैसे ही प्रकृतिमें उसी प्रकार चारशक्ति वर्त्तमान हैं। ज्ञानसे पूर्व्वप्रलयविनष्ट वस्तुका तत्त्व वोध होता है। वैराग्यके द्वारा प्रकृति उस तत्त्वप्रकाशमें आसक्त हुआ करती है। विवेकके द्वारा तत्त्वमय होकर प्रकृति निज क्रिया करती है। विज्ञानके द्वारा तत्त्वातीत ईश्वरकी वासनानुसार तत्त्वोंका रूपान्तर किया करती है।

वे चारों शक्ति मनुष्योंके हृदयमें विराजमान हैं। इसीलिये मनुष्य अन्यान्य जीवोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और ब्रह्मके स्वरूपसे गठित है। मनुष्य स्वभाव अनुसार अपनेको क्या उचित है, इस भावको

ज्ञानद्वारा संग्रह किया करता है। वैराग्यके सहयोगसे उस संग्रहीत तत्त्वमें लीन न होकर पृथक हुआ करता है। विवेकके मेल से वह स्वभाव क्या है, उसे जानकर स्वभावके प्रकाशकको जाननेकी चेष्टा करता है। विज्ञानके सहयोगसे स्वभाव और स्वभावके प्रकाशकको जानकर आत्मतत्त्व ज्ञात होनेसे निश्चिन्त होता है।

शि०। कौन ज्ञान उत्कृष्ट पथ है ?

गु०। ब्रह्मज्ञान ही उत्कृष्ट पथ है, यही सत्य है और यही जीवोंको अवश्य अनुष्ठेय है। ब्रह्मज्ञानको अतिक्रम करके साधनान्तर अनुष्ठान करना कदाच कर्त्तव्य नहीं है। इस परमात्मज्ञान की अपेक्षा मनुष्योंका अधिक हितकर और कुछ भी नहीं है, क्यों कि यह ज्ञान ही परमसुख-प्राप्तिका तथा समूल दुःख विनाशका कारण है।

शि०। कैसे व्रतमें व्रती होनेसे परमात्मज्ञानपथका पथिक होना होता है ?

गु०। ब्रह्मचर्य्य, वाणप्रस्थ, अवधूत, सन्यास, ब्रह्मदण्ड, परम हंस, अघोरपन्थ प्रभृति आत्मज्ञानीको व्रतश्रेणी हैं। उनके बीच परमहंसकी तुरीय अवस्था कहते हैं। अर्थात् जो लोग इन्द्रिय-चेष्टा, रिपुचेष्टा सब कुछ ज्ञानाग्निमें भस्मीभूत करके इस विश्वको तथा अपनेको ईश्वरमय बोध करते हैं। इसके ऊपरमें अघोर पन्थके सिवाय अन्य कुछ भी श्रेष्ठ उपासना नहीं है। आनन्द और प्रेममें परमहंस ही सबसे श्रेष्ठ है।

शि०। ऋषि किसे कहते हैं ?

गु०। ऋषि उन्हें कहते हैं, जिनका अन्तर मायासे अतीत भावको प्राप्त हुआ है वा जिनका मन माया द्वारा आक्रष्ट होकर असरल न होके ऋजुत्व स्वभावको प्राप्त हुआ है।

शि०। ऋषिधर्म्म क्या है ?

गु०। जिस उपायसे कर्म्मोंको निष्काम भावसे आचरण करके रिपुगणोंको इन्द्रियगणोंके सहित हृदयमें लोप किया जाता है, उसे ऋषिधर्म्म कहते हैं। संसारी ज्ञानबलसे इस धर्मको प्राप्त होकर आत्मज्ञान होनेसे परमानन्दमय प्रेमिक अवस्था प्राप्त होती है; अर्थात् योगादि न करके केवल श्रवण और कीर्त्तन द्वारा निदिध्यासन अवस्थाको प्राप्त होकर आत्मज्ञानलाभ करते हुए परमात्ममय होना। यह प्रथा (रीति) नारदके पहिले नहीं थी, उनने ही यह ऋषिधर्म्म प्रचार किया, और सबकी सुगमताके लिये नारद-पञ्चरात्रशास्त्र प्रणयन किया। उस शास्त्रको पाठ करके उसमें लिखी हुई उपायोंको करनेसे लोगोंको ऋषित्वप्राप्ति हो सकती है। और मुक्तिके फलको स्वर्ग कहते हैं। ऋषिरूपसे परमात्ममय होनेसे उसे ऋषिस्वर्ग कहते हैं।

शि०। योगी किसे कहते हैं?

गु०। जो लोग वाह्यस्वभाव त्यागकर एकबारगी अन्तरमें वर्त्तमान हैं, अनुभवशक्तिको विज्ञान द्वारा सम्वर्द्धित करके सर्व्वसाक्षीरूप आत्माको अनुभव किये हैं, उन्हें ही योगी कहते हैं।

शि०। अवधूतवेश कैसा है?

गु०। जिस वेश द्वारा संसारको अवज्ञा करके त्याग किया जाता है; उसे अवधूतवेश कहते हैं। संसारको मान्य करना हो, तो अभिमानका दासत्व करना होता है। उस अभिमान बलसे ही जो जिस पदवीके लोग हैं, उन्हें उसके उपयुक्त वेश भूषणादि धारण और प्रसाद लक्षणादि प्रकाश करना होता है; किन्तु आत्मज्ञानीको वैसा नहीं है। आत्मज्ञानीकी वाह्यिकअवस्था प्राय उन्मादके सहित समान है। वह कभी वस्त्र पहिनते हैं, कभी वह (वस्त्र) भी गिर जाता है। आत्मज्ञानी इस कलेवरको परिच्छेद भावसे, आत्माको स्वरूप विवेचना करके, इन्द्रियादिको दास,

ज्ञानकी मन्त्री, अस्थिमांसादिको गृह और चर्मको परिच्छद (वस्त्र) समझते हैं। यह वेश ही अवधूतवेश है। इसका परिचय पाना बहुत दुर्लभ हो जाता है। ये लोग सर्वदा ही जगतमें सर्वत्र पर्य्यटन किया करते हैं।

शि०। वाणप्रस्थका चिन्ह क्या है?

गु०। गृहस्थके चिन्हको सब कोई जानते हैं। वाणप्रस्थका चिन्ह यह है;—शिष्योपयुक्त वेश, मुण्डितशिर, हाथमें पुस्तक प्रभृति, इन समस्त चिन्हधारीको वाणप्रस्थाश्रमी कहा जाता है। वाणप्रस्थगण भिक्षा मांगके गुरुका भरण पोषण करके विद्याभ्यास किया करते हैं। वाणप्रस्थका चिन्ह देखनेसे ही लोग समझेंगे कि, यह पुरुष विद्यार्थी है, इसलिये इसे भिक्षा देना उचित है।

शि०। सन्यासीका चिन्ह कैसा है?

गु०। सन्यासी होनेसे यज्ञोपवीत त्याग करना होता है, और कोपीन धारण करना होता है। त्रिशूल कमण्डल हाथमें लेकर तीर्थोंमें भ्रमण करना होता है, देहके किसी अंशको छेदन करना न चाहिये। त्रिशूलका भाव "ज्ञान, वैराग्य, विवेक" है, सन्यासी के इन्हीं चिन्होंको रखकर कहीं जानेसे लोग समझेंगे कि, यह व्यक्ति ज्ञानकी चर्चामें भ्रमण करता है, इसके जीवन धारणोपायरूप कुछ थोड़ासा कमण्डलुमें देना उचित है। अब कलिके प्रभावसे सन्यासीका प्रधान भाव दूर होकर भीषण कपटता उपस्थित हुई है।

शि०। परमहंस किसे कहते हैं?

गु०। परमहंस पदकी आवृत्ति करनी हो, तो;— "परम+हंस" यह दो पद प्राप्त होता है। परम कहनेसे पर अर्थात् जिससे ईश्वरका परिमाण कर सकते हैं, यही परमहंस शब्दकी प्रकृत व्युत्पत्ति है। वेदान्तमें अनेक स्थलोंमें प्रकाशित

है "अहं+स" इन दोनों पदोंके संयोग और वियोगसे हंस शब्द प्रकाश हुआ है। हंस कहनेसे अहं ब्रह्मज्ञान वा आत्मज्ञान जानो। आत्मज्ञानसे जो लोग ईश्वरको प्रसन्न करके आत्मानन्दमें मग्न रहते हैं, उन्हें हो परमहंस कहते हैं।

शि०। संसारो किसे कहते हैं?

गु०। जो लोग ब्रह्मचर्य्यादिव्रतरहित और माया विभूतिमें मग्न हुआ करते हैं। उन्हें गृहस्थ वा संसारी कहते हैं। संसारो कार्य्यपर हैं। वासना-कार्य्यपर होकर कर्मभूमिमें परिशुद्धि वा अपरिशुद्धि मतसे गतिलाभ करके इस त्रिलोकके बीचमें रहते हैं। यही निर्म्मुक्त जीवावस्था है।

शि०। ब्रह्मचर्य्यव्रत कैसा है?

गु०। जो लोग पुत्रादि उत्पन्न न करके संसारको समस्त आसक्ति छेदन करके केवल परमेश्वरमें मिलित होनेके लिये योगाचारादि व्रत धारण किया करते हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य्याश्रमी कहते हैं।

वह जो आदिदेव स्वरूप ईश्वरको प्रतिमूर्त्ति है, उसने सबके पहिले इस विश्वसृष्टि करनेके लिये कौमारस्वर्गमें रहके ब्रह्मारूपसे अखण्डित ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन किया था। जिससे ईश्वरानुभव साधन द्वारा समदृष्टि नाम ज्ञानलाभ किया जाता है, उसे ब्रह्मचर्य्य कहते हैं।

शि०। कौमारस्वर्ग किसे कहते हैं?

गु०। कुमारस्वर्ग, मानवस्वर्ग प्रभृति अनेक स्वर्ग हैं। जहां सनत्कुमारादि तपस्या करके समदृष्टि और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्ममें मिलित हुए थे, उसे कौमारस्वर्ग कहते हैं।

शि०। तप किसे कहते हैं?

गु०। इन्द्रियातीत होकर रिपुके अधीनत्वसे वासनाको उद्धार करनेका नाम तप है। उससे कायिक परिश्रमको क्रिया हुई।

जैसे कृषक धान्यलाभके उद्देश्यसे अतिकष्टसे भूमि कर्षण करके यदि उसमें बीज न बोये, तो किसी प्रकार भी धान्यप्राप्ति नहीं होती, केवल वृथा श्रम होता है; वैसेही वासनाको इन्द्रियातीत करनेमें साधकने बहुत कष्ट स्वीकार करके भी यद्यपि ईश्वरबीज उसमें रोपण न किया, तत्त्वज्ञानकी साधन यदि उस तपस्याको न किया, तो समझना होगा कि, वृथा ही श्रम हुआ। अतएव क्या बाह्यिक क्या मानसिक इन दोनों कर्म्मोंमें ही मानो यह ईश्वरबीज रोपित होता है, ऐसा होनेसे अन्त और वर्त्तमानमें शुभफल होनेकी सम्भावना है।

शि०। तपस्या किसे कहते हैं?

गु०। तपस्या दो प्रकारकी है, आन्तरिक और बाह्यिक। कोई एक वासना करके उसमें लिप्त होकर उसके उद्देश्यसे आनन्द उपभोग करनेके लिये चित्त और बुद्धिके सम्मिलनको आन्तरिक तपस्या कहते हैं। इस आन्तरिक तपस्यासे उपाय प्रकाश होती है। वह उपाय ही आनन्द कहके श्रुतिमें वर्णित है। वह केवल शुद्धात्मामें हुआ करती है। कलुषितात्मामें आनन्दमय होनेके लिये पहिले बाह्यिक तपस्या करनी होती है। इन्द्रियनिग्रह करणात्मक बुद्धि और चित्तसम्मिलनको बाह्यिकतपस्या कहते हैं। साधक उस तपस्यासे शुद्ध होनेके अनन्तर आन्तरिक तपस्या करके सिद्धिलाभ किया करता है।

शि०। तपस्याको किस व्यक्तिने प्रकाश किया था?

गु०। आत्माने नारायण नामसे नरशरीर धारण करके तपस्याका प्रसङ्ग प्रकाश किया था। जिस उपायसे प्रवृत्तिधर्म्मको विनाश करके निवृत्तिधर्म्मको शरीरका अर्द्धाङ्गस्वरूप करते हुए विश्वास आहरण करके बीजमन्त्र धारण की जाती है, उसे तपस्या कहते हैं। यह नियम नरनारायणके पहिले जगतमें प्रकाश नहीं था।

नरनारायणने ही इस आत्मज्ञानको उपायको प्रकाश किया।

शि०। धर्म्मको शरीरका अर्द्धाङ्गस्वरूप क्यों कहा ?

गु०। जैसे भार्य्या संसारीके पक्षमें अर्द्धाङ्ग कहके कीर्त्तित है, वैसे ही तपस्याके कारण धर्म्मको स्त्रीरूपसे लेता होता है। आनन्द, सुभाष, मैथुन समस्त तपस्वी लोग धर्म्मसहित किया करते हैं। ज्ञान सन्दर्शन ही उनका आनन्द है। ईश्वर सम्मिलनोपाय करना हो उनका सुभाष है, और कर्म्म तथा प्रेमके संयोगसे जो आत्मा-सन्दर्शन सुख होता है, वही उनका मैथुन है। इसी निमित्त तपस्वियोंका धर्म्म ही स्त्री है।

शि०। साधना किसे कहते हैं ?

गु०। साधनाके द्वारा ही सद्बुद्धि प्राप्त होती है। यह बुद्धि भी उस साधनपथद्वारा ही कर्म्मजगतमें पतित होती है। साधनाके सहयोगसे ही मनोराज्यगत बुद्धि जीवोंके आत्मतत्त्वको जानती है इसी अवस्थामें किसी किसी तत्त्वका भाव जीवको उदय होता है।

साधना तीन प्रकारकी है, निर्व्विकल्पक, सविकल्पक और नित्य। मानव जीवनको परिणत अवस्थाको उन्नत करनेके लिये पूर्व्वोक्त साधनाका प्रयोजन हुआ करता है। मनोराज्यमें जिस प्राकृतिक नियमसे जीव क्रियावान होकर अपने अपने अदृष्ट अर्थात् योनिजात जीव स्वभाव प्रदान किया करते हैं, उसे ही नित्यसाधना कहते हैं। इस साधनासे जीवोंमें मानसिक और भौतिक दोनो प्रकारकी क्रिया प्रकाश हुआ करती है। इस साधनासे जीवगण स्वयं ही वासनामतसे कर्म्मज्ञान प्राप्त होकर भिन्न भिन्न स्वभावसे जीवनको परिणत किया करते हैं।

मनुष्य लोग अपने अपने जीवनकी दुःख विनाशके लिये सुख दुःख विनाशकर्त्ता ईश्वरसे प्रार्थना किया करते हैं। उन प्रार्थनाको जो अनुशोचना उदय होती है, उससे ही सत्त्वगुणका प्रकाश हुआ करता है।

उस सत्त्वगुणके आकर्षणसे ईश्वरज्ञान उन सात्विक साधकोंको प्राप्त होता है। और ईश्वरज्ञान प्राप्त करके इन्द्रिय तथा रिपुवशसे जितना कष्ट होता था, उसे विनाश करते हुए ईश्वरमय हुआ करते हैं।

शि०। समाधि कैसी है?

गु०। इन्द्रियोंको निश्चेष्ट कर वासनाको उद्देश्य पूर्ण करके अन्तरमानसमें निवासका नाम समाधि है। निद्रावस्थामें निश्चेष्ट-इन्द्रिय होनेसे केवल मनोमय शरीर स्वप्नमें आछन्न होकर क्रिया-पर रहता है; किन्तु इन्द्रियादिके सहित कुछ संयोग नहीं रहता। इतना ही नहीं, बल्कि नेत्र बाह्यदृष्टिसे देख नहीं सकते, कान उस अवस्थामें बाह्यशब्द सुन नहीं सकते; हाथ किसी वस्तुको ग्रहण करनेमें प्रसारित नहीं होते। पांव कहीं गमन नहीं कर सकते। और स्वप्नदृष्ट क्षमता (सामर्थ) के भावसे वासना स्वयं ही मानो कुछ ग्रहण करती है, कुछ देखती है, कहीं गमन करती है, किसीके साथ बात कहती है। यही जो अन्तर चैतन्यमय अवस्था है, वह जब जाग्रत अवस्थामें साधकको उपस्थित होगी, तबही साधक समाधिलाभ करके अष्टयोगकी पराकाष्ठाको प्राप्त कर सकेगा। यह समाधिअवस्था भक्तिकी साधनासे भी उपस्थित हो सकती है। और भक्तिसंयुक्त योग साधनासे भी उपस्थित हो सकती है। कोई एक उद्देश्य न रहनेसे इन्द्रियोंको किसी प्रकार भी निश्चेष्ट नहीं किया जाता। इसीलिये ध्यानका प्रयोजन है। निगूढ़चिन्तामें वासनाको मनसहित एकत्रित करनेका नाम ध्यान है। ध्यानमें जो चिन्ता आवश्यक है, उसके उद्देश्य स्वरूप साधक केवल मात्र ब्रह्मविचार वा ब्रह्मभावना करनेसे समाधिबलसे उस ईश्वरको प्रत्यक्ष कर सकते हैं और उससे अपनेको उस ईश्वर की वस्तु समझकर उसमें मिलित भी हो सकते हैं; अधिक करके उससे ब्रह्मतत्त्वरूप आत्मज्ञान लाभ सहजमें ही कर सकते हैं। श्रेष्ठ

साधक लोगोंने ईश्वरको निज निज समाधिबलसे जाना है कि, वह "सच्चिदानन्दमय, सर्व्वाधार और सर्वव्याप्त हैं।" वह रूप मुखसे प्रकाश नहीं होता, अर्थसे प्रकाश नहीं होता तथा भाव वा इन्द्रिय से प्रकाश नहीं होता। केवल मनोभावसे प्रकाश होता है। सम-पाठी वा समसाधक न होनेसे मनोभावको जान सकना दुर्लभ है। ब्रह्मको काल्पनिक मूर्त्तिके ध्यानसे जब मूर्त्तिके समस्त गूढ़भाव ज्ञानसे तत्त्वमय हो जाते हैं, तब ही साधक ईश्वरसन्दर्शन कर सकता है। श्रेष्ठ साधकोंके रुचिअनुयायिक ईश्वरकी कल्पना प्रकाश होनेसे वह अनेक रूपसे कल्पित हुए हैं। जानना चाहिये कि, इसी भावसे जो लोग समाधियुक्त हुए हैं, वे ईश्वरदर्शन करते हुए उसका तत्त्व जानकर अन्यान्य लोगोंको वही वस्तु दर्सानेके तथा उन लोगोंकी प्रवृत्तिको आकर्षणके लिये ईश्वरके स्वरूप रूप की कल्पना मात्र निज निज रुचि अनुसार करते हैं।

शि०। सच्चिदानन्द किसे कहते हैं?

गु०। चैतन्यशक्तिकी तीन उपशक्ति हैं। एकको सत् कहते हैं। इस सत् शब्दसे जीवित भाव जानो। यही जीवात्मा नामसे परमें अविहित होता है। चैतन्यकी दूसरी उपशक्तिका नाम चित् है, इस चित् द्वारा एक ऐसे चैतन्यका प्रकाश होता है, जिसके स्थूलांशको ज्ञान कहते हैं; सूक्ष्मांशको विज्ञान कहते हैं। उस ज्ञानसे ही ईश्वरकी समस्त तत्त्व अपना सत् अर्थात् जीव प्रकाश किया करती है। यहां पर जीव कहनेसे सजीव प्रकृति जानो। चैतन्यकी तीसरी उपशक्तिका नाम आनन्द है। यह आनन्द ही ईश्वरका स्वरूप भाव अर्थात् परमात्मा है।

शि०। किस व्यक्तिने योगशास्त्र प्रणयन किया?

गु०। महात्मा पतञ्जलिने वेदादिसे उद्धार करके तथा आत्मा-नुभवसे उन्मत्त होकर जगतमें पहिले पहिले योगशास्त्र प्रणयन

किया। चित्तकी वाह्यविषय पर वृत्तिको निरोध करना अर्थात् निवृत्तिमार्गानुयायी होना ही योगका उद्देश्य है।

शि०। किस प्रकारके उपासना नियमसे सहजमें ही योग-सिद्धि होती है ?

गु०। ईश्वरको साकारभावसे धारण करके उसकी निदिध्यासन द्वारा निराकारभाव धारण कर सकनेसे सहजमें ही योगसिद्धि होती है।

शि०। भक्ति योग किसे कहते हैं ?

गु०। इस स्थलमें भक्ति और योग = भक्तियोग। योग कहनेसे ज्ञानयोग अर्थात् तत्त्वविचार सिद्धान्त है। और भक्ति कहनेसे तत्त्वातीत वस्तुकी सत्त्वाके प्रति वासनाकी आकर्षणशक्ति जानो।

शि०। भक्ति कितने प्रकारकी है ?

गु०। अहङ्कार सत्त्वाभेदसे भक्ति त्रिविध गुण सम्पन्न है। अहङ्कारसे उत्पन्न सात्त्विकी अंशसे जो भक्ति प्रकाश होती है, उसे सात्त्विकी भक्ति कहते हैं। इसी प्रकार राजसिक और तामसिक भक्तिकी उत्पत्ति है। सात्त्विकी वृत्तिके द्वारा लोगोंको भोगेच्छा नहीं रहती। राजसिकी वृत्तिके द्वारा जीवोंको भोगेच्छा होती है, इसी भक्तिके द्वारा जीवगण ऐश्विकप्रभावको हृदयमें साक्षी करके कर्मफल भोगकर वैराग्य उत्पन्न कर देते हैं। और तामसिकी भक्तिके द्वारा मायावद्धके सहित सुखभोगेच्छा उपस्थित हुआ करती है। भक्ति ही संसारके पक्षमें महिला (स्त्री) स्वरूप होती है। पुरुषका अनुराग जिस प्रकार स्त्रीके द्वारा आकर्षित होता है और स्त्रीका अनुराग भी जिस भांति पुरुष द्वारा आकर्षित होकर मायाके कार्य्यरूपी संसारकार्य्य निर्व्वाह हुआ करते हैं, वैसेही इन त्रिविध भक्तियोंके द्वारा ईश्वरके भाव जीवपक्षमें आकर्षित हुआ करते हैं और ईश्वर भी उस भक्तिसत्त्वाके मेलसे तथा निज अनुराग

सद्योगसे हम संसारकार्य्यको किया करते हैं।

शि०। भक्तिसे क्या सत्यभाव उदय होता है ?

गु०। ब्रह्माने तपस्यामें भक्ति की थी, इसीलिये उनने भगवान की सत्यमूर्त्ति देखा था। इसका और एक विशेष भाव यह है कि ;—ब्रह्माण्ड ईश्वरका विकारभाव है। जीव भी ब्रह्मका विकार भाव है। ब्रह्म नित्य और सत्यस्वरूप निर्गुणभाव है। ब्रह्मरूपी सगुणभाव निजस्वरूपरूपी निर्गुणभावको प्राप्त हुआ था। सगुणसे निर्गुणभावमें जानेके लिये जिस साधनका प्रयोजन है, वही भक्ति है। ब्रह्मा जगतके समस्त जीवोंके कारणभाव हैं। उनका स्वभाव ही निर्गुणभावमें लीन रहता है। क्योंकि निर्गुणसे सगुण का प्रकाश है। इसलिये भक्तिसे ही सत्यभाव हृदयमें उदय होना यथार्थ है।

शि०। ब्रह्मज्ञान किस प्रकारका है ?

गु०। इन्द्रियदमन औरवाह्यज्ञान रहित होनाही पूर्ण ज्ञानानन्दका लक्षण है। तुम जो उपदेश पानेकी इच्छा करते हो, उसे कौन देसकता है ? किसीके अन्तरसे वह प्रकाश होनेवाला नहीं है। वह प्रति मनुष्योंके हृदयमें स्वयं ही दीप्त हैं। उपयुक्त उपकरण पानेसे ही प्रकाश होगा। पहिले वाह्यिक माया त्यागो ; कामनाको ज्ञानाग्निमें जलाओ ; तव तुम, जिसे जाननेको इच्छा करते हो, वह तुम्हारे अन्तःकरणमें दिखाई देगा।

शि०। कौन व्यक्ति ब्रह्मज्ञानका अधिकारी है ?

गु०। मुनि लोग ही ब्रह्मज्ञानके अधिकारी हो सकते हैं। जिनकी आत्मा, इन्द्रिय और विषयवासना प्रशान्त हुई है, वेही मुनिपद वाच्य हैं।

शि०। प्रशान्त अवस्था कैसी है ?

गु०। आत्मा कहनेसे चैतन्यपर देह जानो। चैतन्यपर देह कहनेसे मनादि जानो। मनादि विषय पर स्वभावसे निवृत्त होनेसे

ज्ञानपथके पथिक हुआ करते हैं यह विषयपर तेज ही रिपु है। चैतन्यमय देह जब रिपुके अधिकारसे स्वाधीन होती है, तबही आत्माकी प्रसन्नता कही जाती है। इस प्रशान्त अवस्थामें जीवगण परमानन्द उपभोग करते हैं। उस आत्माको प्रशान्त करनेकी उपाय क्या है? इन्द्रियोंकी शान्ति ही उपाय है। ज्ञानपथकी प्रवाहिका-शक्तिरूपी ज्ञानेन्द्रियादि और विषयपथकी प्रवाहिकाशक्तिरूपी कर्म्मेन्द्रियादि जब विषयपर स्वभाव अर्थात् रिपुओंसे स्वाधीनताको प्राप्त होती हैं, तबही उन इन्द्रियशक्तिकी सहायसे चैतन्यमय देह प्राप्त होती है।

शि०। इन्द्रियादि किस उपायसे शान्त होती हैं?

गु०। विषयवासना विनाश होनेसे इन्द्रियादि शान्त होती हैं। वासना जीवका स्वभाव है, वह स्वभाव जब विषयोंसे मुग्ध होकर उनके अनुवर्त्ती होता है, तब जिस भावसे स्वभावका परिवर्त्तन होता है, उसीको वासनाका विषयाकर्षण कहते हैं। जानना चाहिये कि, जब वह वासना मुग्ध न होकर विषयोंको तत्त्व द्वारा बोध किया करती है, तबही उसकी शुद्धि हुआ करती है।

स्वभावको विषयसे आकर्षण करना हो, तो ज्ञानवारि सिञ्चन करना होता है। जब कुछ तत्त्वज्ञान लाभ होता है, तब स्वयं ही स्वभाव विषयाकर्षणसे ज्ञानमें मिलित हुआ करता है। इसे ही रिपुविनाश कहते हैं।

शि०। वासनाकी पवित्रता किस प्रकार होती है?

गु०। कर्म्म दो भागमें विभक्त है। एक मानसिक दूसरा वाह्यिक। तप, योग, मन्त्रादि साधनको मानसिककर्म्म कहते हैं। दान आचार प्रभृतिको वाह्यिककर्म्म कहते हैं। इन दोनों कर्म्मों से ही वासनाकी पवित्रता हुआ करती है। वासनाकी पवित्रता

होनेसे इस लोक तथा परलोकमें शुभफल प्राप्त हुआ करता है। किन्तु यह जो सब कर्म्मोंकी कथा कही गई हैं, वे यदि ईश्वरभाव से अनुष्ठित न हों, तो विफल होते हैं। क्योंकि ईश्वरभाव ही तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञान ही चैतन्यका सखा है। यदि किसी कर्म्मसे चेतन्यलाभ न हुआ, तो उससे फिर वासनाकी पवित्रता न हुई। जब कि वासना ही जन्म जन्मान्तरमें शुभाशुभ फलको देने वाली है, तब उसकी पवित्रता न होनेसे कदापि शुभफलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये काय मनसे उस वासनाको ईश्वरमें संयोजित करनी हो, तो कर्म्म, उपासना तथा ज्ञान सब भावसे ही ईश्वरको प्रतिष्ठित करना होता है। अन्यथा सब विफल हो जाता है।

शि०। ज्ञानशिक्षा किस प्रकारसे होनी चाहिये, जिससे कि अज्ञानता विनष्ट हो?

गु०। विज्ञान मतसे ज्ञानकी दूसरेके द्वारा शिक्षा नहीं होती। पर उपायसे सिखा जा सकता है, उस उपायका ही अनुसरण करके अपनेको ज्ञान आहरण करना होता है।

शि०। ज्ञानशिक्षाकी उपायका अनुसरण करके किस प्रकार ज्ञान आहरण करना होता है?

गु०। ज्ञान शब्दका अर्थ जाननेकी क्षमता (सामर्थ्य) है। ईश्वर वासनाके नियम अनुसार यह जीव देह प्रदान करनेके समय इसमें समस्त प्रयोजनीय वस्तु प्रदान करते हैं। अनुभवशक्ति ही ज्ञानकी क्रिया प्रकाशक है। आंख, कान, नाक प्रभृति ज्ञानेन्द्रियां उसकी क्रिया करती हैं। जैसे एक वीजके भीतर वृक्षका सर्वाङ्ग और समस्त क्रिया अस्फुटभावसे अवस्थान करती है, फिर अंकुरमें प्रकाश हुआ करती हैं, वैसे ही बालककी देहमें ज्ञानादि भी अस्फुटभावसे रहते हैं। उस ज्ञानको परिचालन न करनेसे

आत्मज्ञान उपस्थित नहीं होता। आत्मज्ञानके विना उपस्थित हुए ज्ञानकी सामर्थ प्रकाशित नहीं होती। जैसे बादलोंके दूर हो जानेसे आकाशमें सूर्य्यको देखा जाता है, वैसे ही इन्द्रिय और रिपुगणोंको वशीभूत करनेमें समाधि और योगकी आवश्यकता हुआ करती है। और समाधि तथा योगकरणके पहिले हृदयमें अनुष्ठित कर्मोंके सम्बन्धमें विश्वास और प्रेम स्थापन करनेके लिये साधकको सूक्ष्मदर्शी, निष्कलुषितमना, सत्यधर्मरत और सर्वदा ही धृतव्रत होना होता है।

शि०। क्या आत्मज्ञानियोंसे भिन्न ईश्वरके स्वरूपको कोई समझ नहीं सकता?

गु०। जैसे ज्योतिषीके सिवाय सौरचक्रका भाव प्रकाश करना दुरूह होता है, वैसेही आत्मज्ञानीसे भिन्न लोग ईश्वरानुभव नहीं कर सकते। आत्मज्ञानी न होनेसे मन स्थिर नहीं होता। हृदय के विना स्थिर हुए ईश्वरकी धारणा नहीं की जाती। धारणामें असमर्थ होनेसे सिद्ध दृष्टि अर्थात् ईश्वरका स्वरूपानुभव नहीं किया जा सकता। स्वरूप प्राप्त न होनेसे मति क्षुब्ध होकर वायुहत नौका की भांति चञ्चल भाव धारण करती है। इसलिये आत्मज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती, निवृत्ति इच्छाके भिन्न भी आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती।

शि०। ऐसा होनेसे प्रवृत्ति धर्म्म अर्थात् संसारधर्म्म तो बहुत ही निन्दनीय है?

गु०। प्रवृत्तिधर्म्म एकवारगी निन्दनीय नहीं है, इससे संसारी लोग जिस भावसे पुण्य सञ्चयसे जीवात्माकी उन्नति तथा पापसे उनकी अधोगति होगी, उसे जान सकेंगे। अर्थात् पाप द्वारा जीवात्मा कुकामनासे मण्डित होकर अधोगति प्राप्त करता है। क्योंकि कामनासे ही जीवोंकी देहधारण हुआ करती हैं। पुण्यसे

जीवात्मा सत्त्वगुणमें रहके उत्तम फल प्राप्त करता है। प्रवृत्ति अर्थात् संसारधर्मके उन्नतियुक्त जो उपदेश हैं, उनसे केवल भक्ति स्थिर होती है, मुक्तिप्राप्ति नहीं होती।

शि०। संसारी जीवोंको सुख भोग करते भी देखा जाता है?

गु०। संसारी जीवको जो सुख भोग करते देखते हो, वह अकिञ्चितकर है। लोग स्वधर्ममें रहनेसे पुण्य द्वारा विषयसुख लाभ कर सकते हैं। और कर्मसे ब्रह्मलोकसे लगाय स्थावरलोक पर्य्यन्त भी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु स्वधर्मी तो मुक्त नहीं होते, जन्म होता ही है। जन्म होनेसे ही फिर पूर्वकर्म्म अनुसार कालके पीड़नसे दुःख भोग करना होता है। तब जो कुछ पूर्वसञ्चित कर्म्मानुसार सुखभोग होता है, उसे विषयसुख कहते हैं, वह क्षणिकका कारण है। किन्तु ईश्वरप्रेमसे जो सुख होता है, वह कल्पान्तस्थायी है। ईश्वरमें तन्मित होकर ईश्वरमय होनेसे माया के द्वारा फिर उसे पीड़ित नहीं होना होता। अग्नितप्त बीजकी भांति ज्ञानदग्ध होकर उसको फिर मायादर्शन नहीं होता। इस से बढ़के सुख और कहां है?

शि०। किन्तु ज्ञानी वा पापात्मा होनेकी उपाय तो समाज की अनुकरणीय है?

गु०। यह बात सत्य है, किन्तु रति उसकी निजकी है। यह रति पूर्वजन्मार्ज्जित प्रवृत्तिसे जन्म ग्रहण करती है। पूर्वजन्ममें जिस प्रकार प्रवृत्ति लेकर वासना थी, इस जन्ममें भी वैसीही प्रवृत्ति प्रकाश होगी। इसीलिये एककी रुचिके साथ दूसरेका मेल नहीं होता, क्योंकि रुचि भी प्रवृत्तिजात रतिसे उत्पन्न हुआ करती है। जिसकी रति पहिले हरिपदालिङ्गनमें आसक्त थी, परजन्ममें वह कभी भी उस पादपद्मकी मधुको भूल नहीं सकता। क्योंकि अमृत-तेज मनमें रहनेसे कोई विषभक्षण करनेमें इच्छुक नहीं होता।

शि०। अमृत क्या है?

गु०। आत्मज्ञानको अमृत कहते हैं। माया यह अमृत योगियोंको प्रदान किया करती है। अर्थात् योगियोंकी वृत्ति जब ज्ञानपथ द्वारा सहस्रदल:कमलमें अर्थात् ब्रह्मतालुमें गमन करती है, तब योगी लोग मिद होकर आत्मज्ञान लाभ करते हुए कमल गलित अमृतपान कर सकते हैं। उस सुधा अर्थात् अमृतको पान करनेसे मृत्युके हाथसे छूटकर मुक्त हो सकते हैं। उस अमृत पानसे उन्मत्त होनेसे ब्रह्मदर्शन होता है। इसका मर्मार्थ यह है कि, जब योगी आत्मज्ञान लाभके लिये योगसाधना आरम्भ करता है, तब इन्द्रिय और रिपुवर्ग दोनो एकत्र होकर जहां मन को निरोध करनेके लिये हृदयमें साधना होती है; वहां गमन करते हैं। इन्द्रिय और रिपुवर्गोंके एकत्र मिलनेसे भक्ति स्थिर होकर विश्वासमें आवद्ध करके हृदयस्थ साधना आरम्भ करती है। मन हृदयमें आवद्ध होनेसे ज्ञानका प्रकाश होता है। वह ज्ञान ही अमृत है। उस अमृतबलसे विश्वासके नीचे क्या देखा जाता है? ईश्वरानुभवकारी विज्ञान देखा जाता है, अर्थात् जिस माया से ईश्वर जगतसृजन करके फिर उसे अपनेमें लय करते हैं।

शि०। इस प्रकारका अमृतपान त्याग करके जीवगण ईश्वर द्रोही क्यों होते हैं?

गु०। रिपु-परवशसे वशीभूत मनको अज्ञान वा अबोध कहते हैं। अज्ञानसे ही धनगर्वमें लोग गर्व्वित हो ईश्वरको भूलकर हम, तुम,—ऐसा अहङ्कार करके ईश्वरद्रोही हुआ करते हैं।

शि०। किस प्रकारके ज्ञान द्वारा इस अज्ञानको विनाश किया जाता है?

गु०। एकविंशति (इक्कीस) तत्त्व समझनेसे अज्ञान विनाश होनेसे ज्ञानका उदय होता है। सांख्यके मतसे चौबीस तत्त्व हैं,

लेकिन प्रधान इक्कीस होती हैं—(महतत्त्व, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पंचभूत और पञ्चशब्दादि तन्मात्रा)।

शि०। क्षीरोद मँथनेके समय जो अमृत प्राप्त हुआ था, वह अमृत क्या है?

गु०। क्षीरोद शब्द संसारका रूपक है, मन्दर पर्व्वत विश्वास का रूपक है। अनन्त साधनाका रूपक है। सुरासुर इन्द्रिय तथा रिपुवर्गोंके रूपक हैं। महादेव कालशक्तिका रूपक है। कमठ रूप ईश्वरका स्वरूप तथा क्रियायुक्त रूपक है। विष्णु इन्द्रिय और रिपुवर्गोंके द्वारा प्राणियोंकी देह पालन करते हैं। प्राणीगण रिपु और इन्द्रियोंकी सहायसे सुख दुःख भोग करके इस देहकी रक्षा करते हैं। रिपुगणोंके द्वारा दुःखानुभव और इन्द्रियोंके द्वारा सुखानुभव हुआ करता है। उन रिपुगणोंको विनाश करनेके लिये इन्द्रियां ज्ञानलाभ करनेकी चेष्टा करती हैं। इस मायारूप क्षीरोद के तीरमें जाकर साधनाके द्वारा विश्वासदण्डसे मायाको मँथनेसे अविद्या नष्ट होकर विद्याका प्रकाश होता है। वह विद्याशक्ति ही क्षीरोदमन्थनका अमृत है।

शि०। ऐसा होनेसे मोहिनीमूर्त्ति क्या है?

गु०। उस अमृत वा विद्याशक्तिके बलसे इन्द्रियोंने क्या देखा? उनने देखा कि, रिपुगण इस ज्ञानामृतको पानेसे हम लोगों (इन्द्रियों) को अतिक्रम करेंगे। क्योंकि रिपुगण यदि आत्मज्ञान शिक्षा करें, तो मनुष्यका विश्वास नाश हो और वह नास्तिक हो; इसीलिये विष्णु अर्थात् पालनशक्ति मोहिनीमूर्त्तिसे प्रकाश हुई। अर्थात् विद्याशक्तिकी प्राप्तिसे रिपु और इन्द्रियगणों ने पहिले ईश्वर किस भावसे इस जगतको पालन करते हैं, उसे अनुभव किया; उससे रिपुगण मोहित होगये और धारणा न कर सके। उस पालनशक्तिने इन्द्रियगणोंको प्रत्यक्ष होकर उन्हें आत्म-

ज्ञान प्रदान पूर्वक ईश्वरानुभव कराकर मुक्तिपथमें प्रकाश किया। उससे इन्द्रियगणोंने अमरभाव धारण किया अर्थात् ईश्वरका स्वरूप अवस्थित करके बोध किया।

शि०। मोहिनी मूर्त्तिको देखकर महादेव क्यों मोहित हुए थे?

गु०। महादेव ही काल हैं। कालशक्ति ईश्वरकी पालनशक्ति की मूर्त्ति देखकर मोहित हुई थी; अर्थात् कालशक्ति उसके श्रेष्ठ पालनकी क्षमता (सामर्थ) के देखकर मुग्ध हुई और उसने भी सत्त्वगुणमय होनेकी चेष्टा की; यह स्वभावका नियम है। महादेवने जो विपलाभ किया था, उसे अज्ञान कहते हैं। काल ही अज्ञानदाता है। कालसे ही अज्ञानका प्रकाश है। मायारूपके वाह्यज्ञानको अज्ञान कहते हैं; काल ही उसका प्रकाशक हैं।

शि०। मायातत्त्वको किसने प्रकाश किया?

गु०। जिस शास्त्रमें कालशक्तिको सामर्थ न मानकर सब कुछ प्रकृतिसे उत्पन्न होना तत्त्व प्रकाशित है, उसे ही सांख्यशास्त्र कहते हैं। वैदिक लोग कालशक्ति और प्रकृतिशक्ति दोनोंके सम्मिलनसे ब्रह्म माया द्वारा जगतका प्रस्तुत होना कहते हैं। किन्तु कपिल देवने अष्टसिद्धि प्राप्त करके विज्ञानदृष्टि लाभपूर्वक वैदिकोंकी निर्वाचित कालशक्ति त्याग करके सहजमें स्वभावसे ही सृष्टि प्रकाश प्रमाण किया है। इस प्रकार मायातत्त्व इसके पहिले प्रकाश नहीं हुआ था। आत्माने कपिल नामसे आख्यात होकर उसे शास्त्रमें प्रकाश किया, इसीसे उन्हें कपिलावतार कहते हैं।

शि०। अवतार किसे कहते हैं?

गु०। अवतार अलौकिक वा ऐश्वरिकभावसे लौकिकमें परिवर्त्तित होनेको कहते हैं। यह परिवर्त्तन अनेक प्रकारका है; उनके बीच प्राकृतिक अवतारण और जीवमध्यगत अवतारण ही

श्रेष्ठ है। सत्त्वादिगुण भेदसे ज्ञानाधिक्य और जीवन्मुक्त जन्मादि ही जीवमध्यगत अवतारण है और ईश्वर स्वयं जिस रूपसे क्रमसे स्वयं ही सगुण होकर अपने द्वारा विश्वप्रकाशक आत्मामय कारण प्रकाश किया करते हैं, उसे उनका प्राकृतिक अवतारण कहते हैं।

शि०। ईश्वरके कितने भावके अवतार हैं?

गु०। ईश्वरके दो भावके अवतार हैं, गुणावतार और अवतार। गुणावतार कहनेसे जीव और ईश्वररूपी होना। गुणगत अवस्था और अवतारगत अवस्था इन उभयात्मक अवस्थाके बीच गुणगत होनेसे ही कर्तृत्वादि मायागुण मध्यगत ईश्वर अर्थात् जीवात्मा और अवतारगत कहनेमें मायाके आकर्षणसे आविर्भाव और तिरोभाव लीलामय परमात्मा जानो।

शि०। अवतार होनेका प्रयोजन क्या है?

गु०। यह भुवन जब महा भाराक्रान्त होता है, तब वह उस क्षणिक भारको नाश करनेकी इच्छा करते हैं; क्योंकि महाप्रलय सब का नाशकारी होता है। भुवन शब्दसे संसार जानो। ईश्वरने क्रीड़ाके लिये इस संसारको बनाया है। जब संसार क्रीड़ावस्तुसे क्रमसे परिपूर्ण हो जाता है, और खाली नहीं रहता, तब वह देहीरूपसे जन्मग्रहण करते हैं। क्यों जन्म लेते हैं? उसका विशेष कारण इसकी अपेक्षा अधिक नहीं मिलता कि, संसारके जिस अंशमें व्यादि लोगों का समागम है, उसी स्थानमें पाप और अधर्मकी अधिकता होती है। उसे नाश करनेके लिये ईश्वर उन्हीं उन स्थानोंमें प्रकाशित होते हैं, क्योंकि आत्माही ईश्वरस्वरूप है। अभाव मात्रसे ही चेष्टाका आविष्कार होता है। जब अधर्म तथा पापसे संसार परिपूर्ण होता है, तब पुरुषका प्रयोजन होता है। उन अधर्मियोंके कुलमें जो आत्मा शरीर ग्रहण करके मायाजात अधर्मसे मण्डित न होकर पवित्रावस्थामें रहकर धर्मोपदेश देता है, वह कलुषित न

होकर ईश्वररूपसे प्रतीत होता है, आत्माही देहधारण करता है और उसे जीर्णवस्त्रकी भांति त्याग करता है। ईश्वरका स्वरूप यदि आत्मा हुआ, तब समझना होगा कि, ईश्वरही मायारूपी देह धारण तथा त्याग करते हैं। इस लिये ईश्वरका शरीर ग्रहण करना मिथ्या या कल्पना नहीं है।

शि०। पृथिवी पर जो सब असंख्य अवतार अवतीर्ण हुए हैं, वे कौन हैं?

गु०। मनु प्रभृति ऋषिगण, देवगण, महाबली मनुष्यगण और प्रजापतिगण सब ही श्रीहरिके कलारूपसे इस जगत्में अवतीर्ण हुए हैं, उनके बीच रामावतार प्रभृति जो सब अवतार पृथिवीमें अवतीर्ण हुए हैं, उनके बीच कोई कोई श्रीहरिके अंश अर्थात् चतुर्थ भाग स्वरूप हैं, कोई उनकी कला अर्थात् षोड़शांस स्वरूप हैं। ईश्वरके स्वयं रूपको जो समस्त अवतारोंमें आरोपित हुए हैं, उन्हें अंश कहा गया और उनके सूक्ष्मांश आत्मामें परिणत होकर जो सब आवतारिक क्रिया करते हैं, उन्हें कलावतार कहते हैं।

शि०। मनु किसे कहते हैं?

गु०। ईश्वर जिस स्वभाव द्वारा मनुष्योंके स्वभाव अर्थात् ज्ञानादि, मनादि उपयुक्त योनिगत करते हैं, उस स्वभाव चैतन्य को मनु कहते हैं। वह चैतन्य प्रति प्रलयके अर्थात् जीव और जगतके प्रति परिवर्त्तनके अनन्तर प्रकाश होकर ऐहिक तथा पारलौकिक स्वभाव ज्ञानादिके उन्नति विधायिनी उपदेश आत्मामें प्रदान करते हैं। प्रति सत्ययुगसे महाप्रलय पर्य्यन्त वह मनु नाम तेज मनुष्य शरीरके अन्तरमें विराजता है। मन्वन्तर उसे कहते है कि, जिस स्वभाव को लेकर मानवादि वा जीवादि एकवार लीला करते करते प्रलय पर्य्यन्त सक्रिय होते हैं, उन्हें एक मनु का अन्तर अर्थात् स्वभावका परिणाम कहते हैं।

शि०। राम अवतार क्या है ?

गु०। राम जीवात्माका रूपक है। सृष्टिकी मङ्गल कामना से ईश्वर स्वयं चारि अंशसे जगतमें अर्थात् ब्रह्म चैतन्यमय कारणमें प्रकाश होते हैं। सीताको विद्याशक्ति वा विशुद्ध माया जानो। इसी लिये राम को मायाका अधीश्वर कहके कल्पना किया गया है। दशरथ उसी ब्रह्मचैतन्यका रूपक है। लक्ष्मणादिको वर, अभय, क्षेम वा ज्ञान, वैराग्य, विवेक समझना होगा, वन ही संसार है। रावण आदि रिपु हैं। ऐरावत अहङ्कार है, समुद्र संसार है। नक्र चक्रादि शोक मोहादि हैं। इसका सामान्य रीतिसे गूढ़ भाव यह है कि;—ईश्वर ब्रह्मावस्था होकर सगुण सत्त्व, रजो और तमो प्रकृति मध्यगत होकर निज वासनाक्रमसे माया के सहयोगसे अविद्या संसारमें गमन करके अदृष्ट प्रकाश करने लगे। लक्ष्मणही विवेक और सीताही विद्याशक्ति वा जीवका उद्देश्य स्वभाव है। रावणादि संसार रूपी सागरके बीच रिपु रूप से वास करते हैं। वेही विद्याको ग्रहण करके जीवको सुख दुःखका भागी किया करते हैं। विवेक लक्ष्मण जीवको सुख दुःखाक्रान्त देखकर कामादि रिपुरूपी रावणके प्राबल्यसे निस्तार करनेके लिये संसारसागरमें धैर्य्यसेतु बांधकर युद्धरूपी साधना सहयोगसे हृता सीता का पुनरुद्धार करते हुए उन रावणादिको पवित्र करके जीवन्मुक्त भाव से अवस्थान करते हैं। भगवान वाल्मीकिने अत्यन्त माधुरी सहित इस ईश्वरको सगुण कल्पना करते हुए रामायण प्रणयन किया है।

शि०। कल्की अवतार क्या है ?

गु०। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंका एक महायुग होता है। प्रति महायुगान्तरमें धर्म्मक्षय प्राप्त होता है। धर्म्म ही हरिनामोद्दीपन करदेता है और सब प्राणियोंको शान्तिमय कर रखता है। वह धर्म्म प्रति महायुगान्तमें प्राणियोंके हृदयसे

नष्ट होता है। इसका कारण यह है,—ज्ञानही धर्मका आधार है। चैतन्य ही ज्ञानका आधार है। जैसे कालवशने प्रतिजीव सतेज देहको चोण होते देखते हैं, वैसेही कालवशसे चैतन्य भी क्षय प्राप्त होता है। इससे चैतन्यकी शक्ति नाश हो जानेसे ज्ञान और धर्म्म भी नाशको प्राप्त हो जाते हैं। ईश्वर जीवात्माकी ऐसी अवस्था देखकर फिर जीवजगतमें चैतन्यसंस्कार करते हैं। यदि यह न करते, तो समस्त जगत ही इतने दिनों तक जड़मय होजाता। इस चैतन्यसंसारके सहित फिर चैतन्यजीवमें ज्ञानधर्म्म बीजरूपसे अंकुरित होना आरम्भ होता है। इसे ही कल्कीका आविर्भाव या ईश्वरका विचार कहते हैं।

शि०। धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों शब्दों का क्या अर्थ है?

गु०। जिस उपायसे जीवनको भगवद्भक्ति प्रभृति शुभपथमें ले जा सकते हैं, उसे धर्म्म कहते हैं। जिस उपायसे जीवोंकी जीविका निर्व्वाहित होती है। उसे अर्थ कहते हैं। जिस उपाय द्वारा काम्य और निष्काम उभयात्मक प्रवृत्ति तथा निवृत्तिगत कामना साधित होती है, उसे काम कहते हैं। जिस उपाय द्वारा जीवको जन्म मृत्यु अवस्थासे अतीत होना होता है, उसे मुक्त या मोक्ष कहते हैं।

शि०। जगतमें कितने प्रकारकी मुक्ति प्रचारित है?

गु०। सद्यमुक्ति और क्रममुक्ति ये दोनो प्रकारकी मुक्ति जगत् में प्रचारित हैं। विषयवासनासे वासनाको ग्रहण कर इन्द्रिय मनके संयोगसे विना भूतसङ्गमके चैतन्यमें अवस्थानका नाम मुक्ति है। जिस मुक्तिको उपायसे एकवारगी ईश्वरमें लीन हो सकते हैं, उसे सद्यमुक्ति कहते हैं। जिस उपायसे इन्द्रिय, मन और वासना गुणालङ्कारसे भूपित होकर चैतन्यके सहित भूतगृहरूप देह त्याग करके ब्रह्म चैतन्यमें मिलित होगी,—ये ही सद्यमुक्तिके उद्देश्य हैं।

और जिससे अभीष्टवासना पर्य्यन्त का लाभ होता है, उसे क्रम-मुक्ति कहते हैं। क्योंकि इसी प्रकार मुक्तअवस्थामें चेतन्यउद्देश्य-मतसे अवस्थान करते हैं। सद्यमुक्तिका उद्देश्य नहीं है। यही निरुपाधिरूप ब्रह्ममें मिलन करानेकी उपायस्वरूप होती है। मुक्तिकी और एक अवस्था है, यही ऐहिकप्रियङ्कर है; उसका नाम जीवन्मुक्ति है; योगबलसे देहसंरक्षण करके इस देहमें ही परमात्ममय होकर रहनेका नाम जीवन्मुक्ति है। जितने दिन तक काल अपनी क्षमता (सामर्थ) से इस प्रकार योगीके देहको क्षय न कर सके, उतने दिन तक वह निज देहसहित इस जगतमें ब्रह्मानन्द उपभोग करते हैं। सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य ये कई एक उपाय क्रममुक्तिके अन्तर्गत हैं।

मृत्युकालमें कर्मविशेषसे योगशास्त्रमतानुसार चारि प्रकारकी मुक्ति निर्द्धारित हैं, जैसे—सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सार्ष्टि।

शि०। सारूप्य मुक्ति कैसी है?

गु०। मृत्युकालमें जो लोग ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करते करते ज्ञानदृष्टिसे स्वरूप देखकर ब्रह्मपद द्वारा जीवनको निर्गमन करने देते हैं; अर्थात् उसे परमात्मारूपसे अनुभव करते करते अपनी आत्मामें मिलाकर उसके रूपमें आत्मामग्न होनेसे स्वरूप प्राप्त होते हैं, उसे ही सारूप्यमुक्ति कहते हैं।

शि०। सारूप्यमुक्ति लाभ होनेसे किस प्रकार देखा जाता है?

गु०। कारण कारणमें मिश्रित हुआ है।

शि०। मुक्तिको सहज उपाय और कुछ है?

गु०। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन इन पञ्चमकारोंको साधन कर सकनेसे पापकलुषित मनुष्योंका सहजमें ही उद्धार होगा।

शि०। मद्य, मांस, मत्स्य प्रभृति इन कई एक शब्दोंके जो

अर्थ हैं, वे तो अत्यन्त ही पापकारी हैं?

गु०। ऐसा मत समझो कि केवल द्रव्य ही शब्दका अर्थ है, जिस तेज द्वारा समतत्त्वित होकर मनुष्य बाह्यविकार रहित होते हैं, उसे मद्य अर्थात् आत्मज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञानसे कर्म्मफल मुझे अर्थात् परमात्माको दिया जाता उसे मांसज्ञान कहते हैं। जिस ममता द्वारा अपने समान सब जीवोंमें समदर्शन लाभ होता है, उसे मत्स्यज्ञान कहते हैं।

शि०। मद शब्दका क्या अर्थ है?

गु०। कर्म्मज्ञान रहित बुद्धिकी तन्मय अवस्था है। यह मद भाव ही मुक्तजनको प्रधान आराध्य वस्तु है। इस मद द्वारा ईश्वरमें युक्त होना होता है।

शि०। जीव किसे कहते हैं?

गु०। आत्मा दो रूपसे कल्पित है, एक स्थूलदेह, दूसरी सूक्ष्मदेह। इन्द्रियादि विशिष्टदेहको स्थूलदेह कहते हैं। यह माया द्वारा सृष्ट है; इसीलिये कालशक्तिकी पूर्णता होनेसे विनष्ट होती है। और जो एक सूक्ष्मदेह हैं, वह अव्यक्त तथा इन्द्रियादि माया गुणाधार नहीं है। उसे नेत्रसे कोई देख नहीं सकता। उसकी क्रिया कोई सुनता नहीं। और वह अव्यक्तके बीच गिनी जाती है। उसे ही जीव कहते हैं। वह अनुभवसे जाना जाता है, क्योंकि जीव न रहनेसे इस देहका पुनर्जन्मादि न होता। यह देहधारी जीवका जब पूर्व्वोक्त स्थूल और सूक्ष्मरूप जिस भावसे प्रतिसिद्ध हुआ, अर्थात् आत्मामें कल्पित हुआ है, इसे जान सकनेसे जीवको ब्रह्मदर्शन अर्थात् मोक्षसाधन होगी। जीवको क्या सामर्थ्य है कि, इस मायाको त्यागकर उस क्रियाको कर सके।

सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणोंको त्रिगुण कहते हैं। ऐशिक-चेतन्यशक्ति त्रिगुण द्वारा ईश्वरको सक्रिय करती है, इस

लिये उसे माया कहते हैं। इस त्रिगुणसम्भोग द्वारा ही जीवगण जीवित रहते हैं। सात्त्विकगुणोंके द्वारा जीवदेहमें कर्त्तृत्व उत्पादित हुआ करता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ये चारो सात्विक गुणके कार्य्य हैं। इन चारोंके सत्त्वसे जीव कर्त्तृत्व प्रकाश करते हैं। राजसगुणके द्वारा इन्द्रियादि प्रकाश होते हैं, उनके द्वारा जीवगण उपभोग करते हैं। इस उपभोग और कर्त्तृत्वादिसे एक प्रकार ज्ञानादिको निरोधक अवस्था प्रकाश होती है, उसे माया ममतादि मोह कहते हैं। यह मोह ही तमोगुण है। इस मोह द्वारा जीवगण आसक्त रहते हैं। इन्द्रियोंके द्वारा उपभोग करते हैं। मनादिके द्वारा कर्त्तृत्व प्रकाश हुआ करता है। इस कर्त्तृत्व भोक्तृत्व मोहादिजनक त्रिगुणयुक्त मायाके द्वारा जो ईश्वरका स्वोयांश आवद्ध रहता है, उसको ही जीव कहते हैं।

शि०। जो ईश्वरका अंश है, वह ईश्वरतुल्य वस्तु है। क्योंकि हीराको कनो हीराके पूर्णांशके सहित समान होती है। ईश्वरके अंशरूपी जीवमें अविद्यायुक्त मायाका सम्मिलन किस प्रकार सम्भव है?

गु०। ईश्वरशक्ति मायारूपसे परिवर्त्तित होकर ब्रह्मपक्ष और जीवपक्ष, दोनो पक्षमें आविर्भूत रहती है। ब्रह्मपक्षमें वह ईश्वरको स्वशक्ति द्वारा सक्रिय करती है, उस सक्रियभाव द्वारा ब्रह्म सगुण होकर विराटादि रूपसे परिणत होते हैं। विराटसे जीवाविर्भूत होनेसे उसे घटमध्यगत पाकर माया अपनी अपरा अर्थात् अविद्या वा अजया मूर्त्तिमें कर्त्तृत्व, भोक्तृत्वादि गुण द्वारा आवद्ध करती है। एक माया ही ईश्वरको सक्रिय करके उनके जिस अंशको मुग्ध नहीं कर सकती, उस चैतन्यमिश्रित अंशको विद्याशक्ति कहते हैं। उसके आश्रयसे केवल ईश्वर ब्रह्माण्डके सूक्ष्मांशमें वर्त्त-

मान हैं। जीव अविद्याश्रयमें रहके मोहाक्रान्त होकर नित्य ही इस संसारलीलामें अतो हुआ करते हैं।

शि०। मोह किसे कहते हैं?

गु०। वासना निज स्वभावके द्वारा पञ्चभूतात्माके सहयोगसे मायाके कार्य्यको किया करती है। इन पञ्चभूतात्माके स्वभावसे, ही वासना कलुषित हुआ करती है। शरीरगत ये पञ्चात्मा ही भ्रममें लेजाते हैं। परस्परमें परस्परके आकर्षणको सहनेमें वे सक्षम नहीं होते। तेजात्माकी अधिकतासे अपर कितनी ही आत्मा उत्पीड़ित होकर स्निग्धताका आश्रय लेने जाती हैं। शीतलताकी अधिकतासे अपर सब तेजकी आश्रय लेने जाती हैं। इसी प्रकार परस्पर विरोधसे शरीरका विलास और स्नेह हो जाता है। इस विलास और स्नेहका संयोग ही मोह है। देहकी मोह प्रति जीवोंका स्वभाव है। इससे ही लोग बद्ध होते हैं। इस मोहसे केवल भूतात्माकी सेवा ही हुआ करती है। मोहसे ही माया वा प्रकृति आकर्षित होती है। मोहसे लोग पहिले अपनी देह उसके अनन्तर अपने पुत्रादिकोंकी रक्षा करते हैं। किन्तु निर्म्मम व्यक्ति ज्ञानकी अधिकतासे यहां तक भूतात्मासे स्वाधीन होता है कि, आत्मजीवनके सहित अपामर साधारणकी रक्षा करता है। पञ्च-भूतात्मा अकेले चित्तके अधीन होनेसे ही एक होकर सत्त्वगुणी हो जाते हैं। इसी अवस्थामें मोहका नाश होता है। यह मोह-नाश ही अकपटताकी प्रधान साधन है। यह मोह ही देवमाया है। अपनी देहसे इस ममताको नाश कर सकनेसे सब वस्तुमें निर्म्मम हो सकते हैं। इसे ही ईश्वरका विश्वास और मानव जीवन का कर्त्तव्य साधन अवस्था कहके जानो। अर्थात् जब ईश्वरमें स्थिर विश्वास तथा मोहकी वश्यता नाश होगी, तब जीवगण-परित्राणके उपयुक्त होंगे।

शि०। जीवगण किस हेतुसे माया त्याग नहीं कर सकते ?

गु०। यह शरीर मायासे निर्म्मित तथा माया द्वारा-पुष्ट है। जैसे कोई एक ऊंच या नीच जीवके सहवासमें रहनेसे उसके स्वभावापन्न होता है वैसेही इस मायाके सहवासमें स्थित जीव किस प्रकारसे माया त्याग करेगा ?

शि०। जीवगण यदि मायाको त्याग न कर सकें, तो उनका मोक्षसाधन किस प्रकार होगा ?

गु०। इस मायाके दो नाम हैं, एक विद्या और अविद्या। यह मायादेवी जिस क्षमता (सामर्थ) के बलसे संसार सृजन करके उसमें क्रीड़ा करती है, उसे अविद्या कहते हैं। और जिस क्षमतासे ब्रह्ममें मिलन कराती है, उसे विद्या कहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति समुद्रमें पैठकर रत्नान्वेषणपूर्व्वक रत्न आहरण करता है और कोई व्यक्ति उसका खारा पानी पीकर तरङ्गमें जीवन प्रदान किया करता है; वैसेही जीवगण इस विद्या और अविद्या स्वभावापन्न मायासे पुष्ट होकर यदि मायास्थित विद्यास्वभावका अनुकरण करें, तो उसके द्वारा महाज्ञानोदय होता है। जैसे काचमें यदि पारा न लगाया जाय, तो उनसे उसके स्वच्छगुणसे केवल मूर्त्तिका अनुभव मात्र होता है; किन्तु उसमें पारा लग जानेसे स्पष्ट-भावसे मूर्त्ति देखी जाती है। वैसेही इस जीवदेहसे परमानन्द-मय तुरीयअवस्थामें पहुंचानेके लिये समस्त वस्तु ही हैं; केवल अविद्या स्वभावसे चित्तका भ्रम होता है, भ्रमसे मिथ्याको सत्य करके प्रवञ्चना शिक्षा की जाती है। उस अविद्यासे ही इस जगतके सुख और दुःख भोग किये जाते हैं। ऐसी वेशधारिणी अविद्याको त्यागकर विद्याका आश्रय लेनेसे ही, उस ज्ञानक्षमताके बलसे जीवगण सर्वज्ञता और परमानन्दका भोग करके अपनेको ब्रह्ममय बोध करते हैं।

शि०। जीव जब ईश्वरका चैतन्य है, तब जीव और ईश्वरमें क्या प्रभेद है ?

गु०। सूक्ष्मशरीरको जो जीव कहते हैं, उसका विशेष विवरण यह है कि;—सप्तदश अवयवविशिष्टलिङ्गशरीरको सूक्ष्मदेह कहते हैं; वही जीव है। पञ्च-कर्म्मेन्द्रिय, पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-वायु, बुद्धि और मन, येही सप्तदशअवयव हैं। इन्द्रिय कहनेसे प्रकाश्य हाथ पांव वा नयन आदि ही मत जानो। मायाके स्वभावापन्न होकर जीवको जन्मादि कार्य्य करना होता है, ईश्वरको वह नहीं करना होता। जीवगण इन्द्रियोंमें लिप्त होकर उनके वशीभूत होते हैं, ईश्वर उनमें लिप्त नहीं होते। जीवगण जिस प्रकार भूतोंमें अवस्थान करते हैं, ईश्वरभी भूतोंमें वैसेही अवस्थान करते हैं। किन्तु ईश्वर मायासे आवद्ध नहीं हैं; क्योंकि माया उनके सहायसे ही क्रिया करती है। जैसे बिना सूर्य्यका प्रकाश रहे, किरणोंके कार्य्य नहीं होते, वैसे ही ईश्वर अवस्थित न होनेसे माया कार्य्य नहीं कर सकती। जैसे नाक अनेक प्रकारकी गन्ध सूंघती है, किन्तु किसीमें भी आसक्त नहीं होती, वैसे ही ईश्वर समस्त उपभोग करते हैं, और किसीमें भी आसक्त नहीं होते। किन्तु जीव सर्व्वतोभावसे आसक्त है।

शि०। आत्माको देहधारी कहके क्यों बोध होता है ?

गु०। जैसे पार्थिव परमाणुओंके वायुमें मिलनेसे वायु स्थित बादलोंको धूसरवर्ण देखा जाता है, वैसे ही मायासे निर्म्मित इन महदादि चतुर्विंशति तत्त्वोंसे बनी हुई देहको अज्ञानी लोग आत्माका रूप कहते हैं।

शि०। भगवानका और कुछ स्वरूप है ?

गु०। यह जो विश्व संसार है, इसे ही भगवानका स्वरूप जानो। अर्थात् जिन कारणोंसे यह जगत विसृष्ट हुआ है, वे ईश्वर

चैतन्य लाभसे ईश्वरमय हुए हैं। उसी प्रमाणसे ईश्वर जगतके कारण स्वरूप हुए और जगत उनका कार्य्य स्वरूप हुआ। कार्य्य और कारणमें जिस प्रकार अभेदभाव वर्त्तमान होता है, ईश्वर और जगतमें ठीक वैसा ही भाव प्रतीयमान होगा। उनमें जगत संलिप्त है, किन्तु ऐसा होनेसे भी वह जागतिक वस्तु नहीं है, केवल जगत में सत्त्वारूपसे अवस्थानमात्र करते हैं। जगतकी सत्त्वा नाश होने से पञ्चभूत महतत्त्वमें मिलेंगे; महतत्त्व कारणमें लय होगी। माया-शक्ति और कालशक्ति भिन्न होंगी। ईश्वर चैतन्यमें माया और काल कारण समूह सहित प्रवेश करेंगे।

शि०। भगवान शब्दका क्या अर्थ है?

गु०। भग अर्थात् षटैश्वर्य्य जिनमें हैं, वे ही भगवान हैं। विषयभोग, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म्म इन छहों गुणोंको छः ऐश्वर्य्य कहते हैं।

शि०। भगवान किसे कहते हैं?

गु०। जो ऐश्वर्य्यादिमें अर्थात् जिन प्रपञ्चोंसे मायाजात जगत प्रकाश होकर सत् कहके प्रतीयमान होता है, उन तत्त्वों और शक्तियोंको ऐश्वर्य्य कहते हैं। ये समस्त ऐश्वर्य्य जिससे अन्वित अर्थात् जिससे प्रकाशित हैं, वे ही भगवान हैं।

शि०। भागवत किसे कहते हैं?

गु०। ऐश्वर्य्यादिके विशेष विवरण जिसमें विवृत्त है; अर्थात् भगवानके सगुण और निर्गुणात्मक भाव जिसमें प्रकाशित हैं, उस शास्त्रको भागवत कहते हैं। भागवत कहनेसे भगवत्तत्त्व समझना होगा।

"ब्रह्मकल्प उपस्थित होने पर भगवान हरिने ब्रह्मासे ब्रह्म सम्मितं भागवत कहा था"। ब्रह्मकल्प कहनेसे सृष्टिकी प्रथमावस्था जानो। ब्रह्मसम्मित कहनेसे ब्रह्मनिष्ठात्मक जानो।

ब्रह्मा कहनेसे सृष्टिप्रकाशवा ईश्वरका सगुणभाव जानो। और जिसके द्वारा भगवानकी विभूति बोध होती है, उसे भागवत कहते हैं।

इसका भाव यह है ;—सृष्टि प्रकाशक होनेकी प्रथम अवस्थामें ब्रह्म मायामें मिश्रित होकर जो अंश हुए, उससे ही ब्रह्मा रुद्रादि नाम धारण किया। जिस भावसे वह स्वभावमें रहे, वही सर्व्वाश्रय कहके श्रुतिमें निहित हुआ। इसका गूढ़ार्थ यह है ;—जिस समय निर्गुण अवस्थासे सगुण अवस्था प्रकाश हुई, उसी अवस्थामें निर्गुणब्रह्म आत्म-विभूतिरूपी सूक्ष्म-तत्त्वावली सगुणमें आरोप करनेसे जो जीवगण ईश्वर स्वभावसे स्वभावान्वित होकर चैतन्यमय होने लगे। वह आदितत्त्व ही भागवत है। उस भागवत अवस्था को सुखसे बोध करनेके लिये व्यासदेवने अवस्थाबोधक पुराण, महिमाकीर्त्तन पुस्तक प्रणयन किया। इसलिये भागवत कहनेसे कोई वर्णाक्षरयुक्त भागवत न समझे।

शि०। भागवतशास्त्रका क्या माहात्म्य है ?

गु०। आत्मा ही सर्व्वज्ञ और सर्व्वप्रकाशकर्त्ता हैं। इसके सिवाय अन्य किसी तत्त्वकी ही ऐसी क्षमता (सामर्थ्य) नहीं देखी जाती। आत्मा अपनी वासनासे लीलानिमित्त जिन भावोंको प्रकाश करता है, ज्ञान उसे अनुभव करता है। ज्ञानादि चारो मुख्य जीवस्वभाव जब आत्मारूपी भगवानको अनुभव करनेकी चेष्टा करने लगे, तब स्वयं आत्माने ही उस प्राकृत आदिसृष्टिसे आत्मलीला वा माहात्म्यरूपी भागवतभाव उन ज्ञानादि धर्मको दिया था, उस भागवतसे सहजमें ही आत्मज्ञान मिल सकता है। इसीलिये श्री व्यासजीने भागवतशास्त्रको जीवोंके मायामण्डित भीषण दुःख नाशके लिये प्रकाश किया है। यह दुःख ही त्रिताप अर्थात् मनोमय; भूतमय और जीवप्रभावमय शरीरके त्रिभागमें

ही कर्मजनित त्रिविधपाप वर्त्तमान हैं ; वे सामान्य विषयसुखकी आशासे अर्थात् काम्य माया मोहादि भोगसे जन्मा करते हैं। वह दुःख आहत रहनेसे जीवोंको ब्रह्मदर्शन अनुभव नहीं होता। इस भागवतशास्त्रके द्वारा त्रिताप नाश होकर ब्रह्मदर्शन होगा ही होगा।

शि०। पुराण किसे कहते हैं ?

गु०। जो उपन्यास कल्पनासे पुरातनी कथाओंको नूतनभावसे प्रकाश किया जाता है, और जिसे पढ़ते ही प्रत्येक ज्ञानव्रतमें व्रतीको नूतन बोध होता है, ऐसे चातुर्य्यपूर्ण रचनाकौशलको पुराण कहते हैं।

शि०। वेदान्तशास्त्र किसे कहते हैं ?

गु०। जिस शास्त्रमें विषय और विषयी परस्पर परस्परके माहात्म्य अर्थात् विषय न रहनेसे विषयी नहीं हो सकता। और विषयी न रहनेसे जिस पदार्थको विषय कहा जाता है, उसका व्यवहार भी असम्भव है। विषय विषयी बोधरूपी जो वेदान्त-मीमांसा है, वह अत्यन्त कठिन होनेसे व्यासदेवने पुराण अर्थात् पुरातन ज्ञानकथाको साधकके हितनिमित्त नूतन अर्थात् कर्त्ता कार्य्य और परिचारकरूपसे सजाकर पुराण प्रकाश किया।

शि०। सांख्यशास्त्र क्या है ?

गु०। जिस शास्त्रमें प्रकृति-पुरुष भेद संख्यात होता है, उसे सांख्य कहते हैं। यही पारलौकिक अर्थात् मुक्त होनेका प्रधान विज्ञानशास्त्र है। यह शास्त्र क्या है ? यह शास्त्र ही निष्कामी होनेका उपायस्वरूप है। अर्थात् इस सांसारिक प्रवृत्तिको निवृत्ति-पर करके ईश्वरानन्द उपभोग करना।

शि०। निगमज्ञान किसे कहते हैं ?

गु०। निगमज्ञान कहनेसे जिस ज्ञानपथसे जीव तथा परमात्मा अर्थात् खण्ड और पूर्णभावसे जो एकही हैं, यह मीमांसित हुआ

है, उसे निगमज्ञान कहते हैं। वेदसे लगाय उपनिषदादि तथा वेदान्तादिको निगम-ज्ञान कहते हैं। उसमें केवल जीवेश्वरैक्य संस्थापन हुआ है। उस निगमज्ञानसे जीवेश्वराभेद भाव समझा जा सकता है।

शि०। सोऽहं भावका उदय किस प्रकार होता है?

गु०। मनुष्य मुक्तिकी इच्छासे इच्छुक होनेसे प्रेम वा आत्मज्ञानमें मग्न हुआ करते हैं। मायाशक्तिको चित्तमें अनुभव न कर सकनेसे "सोऽहं" भावका उदय नहीं होता। किम्वा "तत्त्वमसि" महावाक्यका बोध नहीं होता। जब चित्तके अनुभवसे "सोऽहं" अर्थात् मैं ही ईश्वर हूं, इस भावका उदय होता है, किम्वा "तत्त्वमसि" अर्थात् जगत ही ईश्वर है, इस भावका उदय होता है, तब ही आत्मज्ञान प्रकाशित हुआ करता है।

शि०। मुनिव्रत किसे कहते हैं?

गु०। जिस व्रतसे आत्मीय स्वजनोंके स्नेहबन्धन छेदन करते हुए आत्माको परिशुद्ध किया जाता है और इन्द्रियोंको मनके अधीन किया जाता है, उसे मुनिव्रत कहते हैं।

शि०। प्रायोपवेशन किसे कहते हैं?

गु०। भूख प्यासको जीतकर ईश्वरचिन्ता या वैराग्योपवेशनको प्रायोपवेशन कहते हैं।

शि०। कर्माङ्ग किसे कहते हैं?

गु०। दान, व्रत, यज्ञादिको कर्माङ्ग कहते हैं।

शि०। उपासनाङ्ग किसे कहते हैं?

गु०। तप, योग, समाधिको उपासनाङ्ग कहते हैं।

शि०। सन्ध्या वन्दनादि क्या है?

गु०। सन्ध्या शब्दका अर्थ,—दो वस्तुको एकत्र मिलानेसे

उभय वस्तुओंकी सन्धि होना समझा जाता है। उसी प्रकार इस मायाको त्याग करनेके लिये जीवको क्षणेकस्वरूप ध्यान करना होता है; उस ध्यानमें मन ही मन निज जीवात्माको परमात्मामें मिलाना होता है, उसे ही सन्ध्या कहते हैं।

शि०। होम क्या है?

गु०। होमादि यज्ञ क्रिया होती हैं अर्थात् कर्म्मसे ज्ञान प्राप्त होता है। होम रूपक है। पवित्र काठोंको अग्निसे जलाकर उसमें घृत डालनेसे उसको होम कहते हैं। अग्नि ज्ञानका रूपक है। काठादि इन्द्रियादिके रूपक हैं और घृतादि साधनाके रूपक हैं। मन्त्रादि विज्ञानको उपाय हैं। अर्थात् इन्द्रियादिको ज्ञानाग्निमें जलाकर उस ज्ञानमें जो विज्ञानकी आहुति दी जाती है, उसकी ही पूरी रीतिसे धारणा होती है। कर्म्मरूपी होमसे यह ज्ञानलाभ हुआ करता है।

शि०। अश्वमेधयज्ञ किसे कहते हैं?

गु०। इन्द्रियोंको अश्व कहते हैं। इन्द्रियोंको रिपुपरतासे ज्ञानपर करणहेतुक कर्म्मको अश्वमेध यज्ञ कहते हैं। इस यज्ञको त्रिविधविधि है,—सात्विक, राजसिक और तामसिक। तामसिक विधिसे लौकिक भाव प्रकाश होता है। तामसिक भावसे रिपु कहनेसे अधर्म्मगत नाना देशवासी राजा तथा जनगण हैं। भगवानने आत्मद्वारा धर्म्मगत जीवको अधर्म्मगत जीवसे जित किया था, यही तामसिक अश्वमेध है।

विश्व व्याप्तधर्म्मकी प्रबलतासे जीवको धर्म्मपर किया था, यही राजसिक अश्वमेध है। और कर्म्मसे इन्द्रियवृत्तिको ज्ञानपर करनेको धर्म्मको सात्विक अश्वमेध कहते हैं।

आत्मज्ञानके अनुन्नत न होनेसे धर्म्म प्रकाश होना सम्भव नहीं है। धर्म्म प्रकाश न होनेसे ज्ञानादिका प्रकाश नहीं होता। इन

सबके विना एकत्र हुए पृथिवी अर्थात् संसार उत्तम रीतिसे पालित नहीं होता।

शि०। गर्भाधान यज्ञका उद्देश्य क्या है?

गु०। जो पिता अपवित्र वासनासे सन्तानोत्पादन करता है, वह पुत्र अपवित्र होता है। वासनाके नवविध संस्कारसे पुरुष नारीमें रमण करता है, इसीलिये स्मृतिमें नवविध सन्तानोंके नाम हैं और उनके पिताके क्रिया अनुसार उन लोगोंके उत्तमाधम गुण लाभ हुआ करते हैं। बहुतेरे लोग कह सकते हैं कि, जो लोग पापी हैं, क्या उनको उत्तम सन्तान नहीं होती। इसका उत्तर यह है कि, जैसे जलके स्वभावसे अग्निमय दारु (लकड़ी) अङ्गारत्वको प्राप्त होती है, वैसेही पिताके कुस्वभावसे वासनाजात पुत्र कुवासना युक्त होता है। अनन्तर कोयलेमें अग्नि प्रविष्ट होनेपर जैसे वह अग्निमय होकर अङ्गारत्वसे विच्युत होता है, वैसे ही पापीके औरससे उत्पन्न वा पापिनीके गर्भसे जन्मा हुआ कुमार शिक्षानुसार उत्तम हो सकता है। किन्तु जो लोग एकमात्र ईश्वरनिष्ठ होकर सन्तानोत्पादन करते हैं, उन्हें तो उत्तम सन्तान प्राप्ति होती ही है। इसीलिये स्मृतिमें पितृपूजन तथा ईश्वरपूजाके अन्तमें सन्तान कामनासे भार्य्यामें रमणोचित विधानसे गर्भाधानयज्ञकी विधि विहित हुई है।

शि०। पूजा और कर्म्मादि करनेका क्या प्रयोजन है?

गु०। पूजा, उपासना, यज्ञ और समस्त कर्म्मादि वासनाको पशुवृत्तिसे ईश्वरवृत्तिमें आनयनके लिये ही कल्पित हुए हैं। अपनेको पवित्र करना हो, तो कर्म्म, योग, तपस्या वा दान इनमेंसे कोई भी व्यर्थ नहीं है। जैसे पुष्पका आदर सौरभके लिये है, वैसे ही ईश्वरभक्तिके लिये प्रति कर्म्मशास्त्रके बीच कर्त्तव्य कहके मायायुक्त मनुष्यके प्रति उपदिष्ट हुए हैं। यदि ईश्वरभक्तिके बिना

कोई कर्म किये जायं, तो वे निष्फल होंगे ही होंगे। इसलिये कर्म वा वैराग्य चाहे कोई उपाय क्यों न हो, जिसमें भक्तियोग नहीं है, उसे निष्फल समझना होगा।

शि०। भक्तियोग श्रेष्ठ है वा ज्ञानयोग श्रेष्ठ है?

गु०। भक्तियोगके अतिरिक्त ईश्वरको किसी प्रकारसे ज्ञान-गोचर करनेको उपाय नहीं है। भक्तियोग ईश्वर संयुक्त होनेसे साधक ऐश्विकविभूतिरूप परम पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है। भक्तियोगसे ही ईश्वरज्ञान उपस्थित होता है। जैसे चुम्बक लोहेको आकर्षण करता है, वैसे ही भक्तिवर्द्धसे परिष्कृत वासना-युक्तजीवात्माको ईश्वर तत्‌क्षणात् आकर्षण करके अपना स्वरूप प्रदानकिया करते हैं। ईश्वरको जानना हो, तो पहिले भक्ति-योगको आराधना करनी ही होगी, ऐसी जो ज्ञान वृत्ति है, जिससे कि, मुक्तिलाभ हुआ करती है, वह भी इस भक्ति-योगसे ही प्राप्त हो सकती है। भक्तियोग द्वारा त्रिगुणसे विसङ्ग हो सकते हैं। सत्त्व, रज और तमो नाम तीनो गुण जीवको विद्या और अविद्या संमिश्रित स्वभाव प्रदान किया करते हैं; जब तीनों गुणोंके मेलसे वासना और जीवात्मा जगत्‌में क्रीड़ा करते हैं। तबही ईश्वर-विवेकको भय रहता है। क्योंकि स्वभाव और तरङ्ग को एकही प्रकार जानो। ये कभी स्थिर और कभी अस्थिर रहते हैं। इसीलिये साधक त्रिगुणातीत होनेको इच्छा करके वासनाको कामनाहीन किया करते हैं। स्नेह, ममता, द्वेष, हिंसा प्रभृति सबही मिलित त्रिगुणके स्वभाव है। इन सबमें वासना आवद्ध रहनेसे परम पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होती। भक्तियोग का इतना गौरव है कि, वासनाको त्रिगुणातीत करके परमानन्द मय कर सकते हैं। इसलिये भक्तियोग श्रेष्ठ है?

शि०। सकाम श्रेष्ठ है वा निष्काम श्रेष्ठ है?

गु०। मनुष्य चैतन्यपर्थमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार प्रकारके फल लाभ करके अनुष्ठित कर्म्मादि समापन किया करते हैं। यह फल जिससे न प्राप्त हो, उसे हृथा कहके पण्डित लोग निन्दा किया करते हैं। उनके बीच धर्म्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग कर्म्मफल सकाम कर्म्मसे प्राप्त हुआ करते हैं। यज्ञ और दानादिको सकाम कर्म्म कहते हैं। केवल तपस्यादिको निष्काम कर्म्म कहते हैं। सकामकर्म्मकी अपेक्षा निष्कामकर्म्मसे अधिक फलप्राप्ति हुआ करती है। क्योंकि सकामकर्म्मसे कर्म्मफल बोध से केवल स्वर्गादि प्राप्तिमात्र होती है, मुक्ति नहीं होती। केवल निष्कामकर्म्मसे मुक्तिलाभ हुआ करती है। इसीलिये सकामकर्म्म त्यागकर निष्कामभावसे एकवारगो ईश्वरमें मन संलग्न करना उचित है।

शि०। मन और ज्ञानमें प्रभेद क्या है?

गु०। ईश्वरने भूतगत चैतन्यके मेलसे एक स्वरूप चैतन्यके संयोगमें रक्खा है। उस चैतन्यमय वस्तुको मन कहते हैं। उस मनसे जो चैतन्यतेज विज्ञानमें मिश्रित होकर केवल तत्त्वआलोचना में रत हो स्वरूप अवधारण कर सके, उसे ही ज्ञान कहते हैं। ज्ञान भी चैतन्यकी प्रतिमा है। जैसे किरणोंके द्वारा सूर्य्य प्रकाशित होता है और उन किरणोंको सूर्य्य स्वयं रचण करते हैं, वैसे ही अपना स्वरूपभाव प्रकाश करानेके लिये ईश्वर ज्ञान प्रकाश किया करते हैं। ज्ञानको ही ईश्वर प्रतिविम्बकी आभा समझना होगा।

शि०। ज्ञान और प्रेम क्या एक ही पदार्थ है?

गु०। आत्मज्ञानमें रत होनेसे चैतन्यशक्ति और मायाशक्ति का ज्ञान होता है। इस सम्मिलनसे महाब्रह्ममें मिलन होता है। इसे ही मुक्ति कहते हैं। उस स्वरूपकी भावना करते अपनेमें परमात्माका आरोप करके जो लोग आनन्द अनुभव करते हैं;

उसी अनुभवशक्तिका नाम प्रेम है। ज्ञान और प्रेम एकही पदार्थ हैं। तब ज्ञानसे महामुक्ति अर्थात् निर्व्वाणप्राप्ति हो सकती है। और प्रेममें स्वरूपभावसे वासनासहित लय होकर जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

शि०। समष्टिज्ञान कैसा है ?

गु०। जिस ज्ञान द्वारा स्वरूप अनुभव होता है, उसे समष्टि-ज्ञान कहते हैं। ज्ञान द्वारा मनुष्यको निराकार चिन्तन करना हो, तो देहको विभाग करना होगा, जिस देहके बीच आत्मा रहनेसे मनुष्य कहा जाता है, उसकी कौन सी उपाधि मनुष्य है देह भी एक वस्तु नहीं है ; उसे भाग करनेसे भूततत्त्वमें मिलेगी भूततत्त्वमें लय करनी हो, तो सब कुछ अणुमें सिञ्चित होगी शेषमें तेजको भी अणुमें एकत्रित चिन्तन करनेसे एकमात्र चैतन्य-शक्तिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता। फिर अनुभवसे पर चैतन्य और माया एक ईश्वरके सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस भावको अद्वैतभाव कहते हैं। इसी भावसे ईश्वर निराकार हैं इसी भावसे ईश्वर एक है। जब तक दृश्यजगत और उसके मध्यस्थ जीवको भिन्न भावसे देखा जाता है, तब तक उन्हें भिन्न वस्तु कहके बोध हुआ करता है। विज्ञानबुद्धिसे स्वरूप चिन्तन करनेसे एक अद्वैत वस्तुके सिवाय और कुछ नहीं है—ऐसा बोध होता है। वह अद्वितीय वस्तु ही परमात्मा है ; वही विश्वका पालन और संहार कर्त्ता है। उसका ही वैदिक नामान्तर ब्रह्म और विष्णु समझना होगा।

शि०। अद्वैत शब्द क्या है ?

गु०। अद्वैत कहनेसे ईश्वर एक है,—केवल यही अर्थ नहीं है। अद्वैतका यथार्थ अर्थ "ईश्वरसे भिन्न दूसरी वस्तु नहीं है"। वेदान्तशास्त्रकी विशेष मीमांसा द्वारा स्पष्ट समझा जाता है कि,

शब्दको व्यष्टि अर्थात् भिन्नत्व हो द्वैत और समष्टि ही अद्वैत है। अद्वैतभावसे प्रति वस्तुओंसे जो ईश्वरत्व, निर्गुणत्व और निराकारत्व भावना उपस्थित होती है। जैसे एक मनुष्य। लौकिकमें मनुष्यको साकार कहते हैं। जब तक मनुष्यको साकार चिन्तन करे, तब तक साधकको तमोगुणके प्रभावसे विज्ञानका उदय नहीं नहीं होता। जब साधक विज्ञानसे मनुष्यको अनुभव करनेकी चेष्टा करेगा, तब समष्टिज्ञानसे वह निराकार और ईश्वरस्वरूप कहके बोध होगा।

शि०। द्वैत और अद्वैतज्ञान कैसा है?

गु०। ईश्वरसे जीव पृथक् वस्तु है, इस ज्ञानको द्वैतज्ञान कहते हैं। उसमें ही माया, मोह, शोक उपस्थित होता है। क्योंकि ईश्वर नित्य है और ईश्वरसे भिन्न सब वस्तु ही अनित्य हैं। अनित्य वस्तु जबतक आंखके सामने रहती हैं, तबतक उनका दल करना उचित है। इसी भावनासे द्वैतवादी लोग देहकी इतनी ममता करते हैं। अद्वैतवादी लोग जीवको ईश्वरका स्वरूप समझते हैं, इसलिये उसे नित्य कहके जानते हैं। वे मृत्युको आत्मा का रूपान्तर विवेचना करते हैं, इसीलिये वे लोग शोकादि नहीं करते।

शि०। जीवोंके लिये शोक करना उचित है वा नहीं?

गु०। यदि इस जीवदेहका ध्रुव अर्थात् किञ्चित भाग जीवात्मा होता है; और अध्रुव अर्थात् देहभाग अनिश्चित होता है; तो ऐसा होनेसे दोनो ही विनाशशील हैं। न्यायमतसे बनी हुई वस्तु मात्र हो निश्चित करके बोध होती हैं और क्षणभंगुरस्वाव ही अनिश्चित है। प्रस्तुत और इन्द्रिय द्वारा ज्ञातवस्तु नित्य नहीं हैं। उसका कारण यह है, जो वस्तु परमाणुमें लिप्त हैं, वे दृष्टि-गोचर नहीं होतीं। यह जीवदेह देखी जाती है; इसलिये वह

किसी मतसे नित्य-पदार्थ नहीं हो सकती। यदि इन दोनों भावनाको त्याग करके उसे ब्रह्ममय चिन्तन किया जाय, तो ऐसा होनेसे अनिर्व्वचनीय होगा, क्योंकि ब्रह्मका तो किसीको साक्षात्कार नहीं होता। इसलिये जीवके लिये शोक करना अनुचित है। क्योंकि जीवका कुछ भी निश्चय नहीं है।

शि०। देहके ऊपर माया करना उचित है; वा नहीं ?

गु०। यह देह पञ्चभूत काल, कर्म्म और तीनों गुणोंके अधीन है। मायाशक्तिको त्रिगुणान्वित कहा जाता है। उन त्रिगुणों को कालशक्तिके क्षोभ प्रदान करने (अणु परमाणु-स्वभावसे और सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे-संयोजित होने) से उस कालशक्ति द्वारा ही आयु और इन्द्रिय प्रकाश होती हैं। अनन्तर कर्म्मसत से जिस वासनामें जीव पूर्वजीवन त्याग करता है, उसी वासनामतसे योनिप्राप्त- होती है। जागतिक सब देह ही पञ्चभौतिक हैं। देह कहनेसे एक वस्तु मत जानो। यह मायाधर्म्म, कालधर्म्म, गुणधर्म्म और कर्म्मधर्म्म संयोजित रहके पञ्चभूत रूपी जड़से बनी हुई वस्तु है। उनके अधीन रहके देहको वा जीवात्माको स्वाधीन नहीं कहा जाता, केवल वासनाको स्वाधीन करके इच्छानुसार फल लाभ किया जाता है। देहके ऊपर ही मोह होता है। ऐसी देहमें माया करनेका क्या-प्रयोजन है।

शि०। क्या यह जगत ईश्वरसे पृथक है ?

गु०। प्रति जीवकी देह मात्र ही पञ्चभूतोंसे गठित हैं ; उनके बीच कोई तृण, कोई गवाक्ष, कोई वृक्ष, पर्वत, कोई पशु कोई मनुष्य हैं। ये जीव मात्रही अन्यको आहार किया करते हैं। यह सब कोई जानते हैं। जबकि जीवात्मासे देहको जन्म क्षय वृद्धि होती है, तब सब ही एकके सिवाय अन्य नहीं हैं। क्योंकि सबकी आत्मा एक नियमसे पालित है और सबकी देह भी एक नियमसे

घटित है। विभिन्न आकार जो बाहिरमें देखा जाता है, वह अनित्य है। तब अनित्य त्याग करनेमें सब ही भूतमय, कालमय कर्म्ममय और गुणमयके सिवाय और कुछ भी नहीं देखा जाता। इसलिये सबही यदि पृथक पृथक एक वस्तुसे भिन्न मूर्त्तिमें प्रकाशित होते हैं, तब सबको ही एक जीवात्मामें जीवित कहना होगा। जबकि जीवात्मा आत्माका तेज है और आत्मा जब ईश्वरकी चैतन्य-शक्ति है, तब ईश्वरके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं रह सकता। यदि उत्स नष्ट हो, तो स्रोत भी नष्ट हो जाता है। उत्स रहनेसे स्रोत भी रहता है; किन्तु उत्स भी जल है और स्रोत भी जल है; इस लिये दोनो ही एक हैं। तब ऐसा समझना चाहिये कि, उत्स जलोत्पादनकारी है, जल उसका कार्य्यके सिवाय और कुछ भी नहीं है। इसी नियमसे उत्स और जलमें प्रभेद है। मायाको त्याग करनेसे सब ही एक है। जैसे मनुष्य और मनुष्यकी छाया। छाया मनुष्यसे भिन्न नहीं है। किन्तु एक वस्तु भी नहीं है। वैसे ही ईश्वर इस जगतके सहित अन्वित हैं। जैसे एकसे दस पृथक नहीं हो सकता, वैसे ही ईश्वरसे जगत पृथक नहीं है।

शि०। आयु किसे कहते हैं?

गु०। जगत जब चैतन्यवान हुआ, तब तेजके अतिरिक्त कौन चैतन्य वहन करेगा वा जगत सजीव रखेगा। उसी लिये चन्द्र सूर्य्य का प्रकाश हुआ। सूर्य्य केवल तेज और चन्द्र केवल हिम है। अनुभवसे जो बलवान बोध होता है, उसे पुरुष कहते हैं। इसी लिये पुराणमें सूर्य्यको पुरुष और चन्द्रको नारी कहते हैं। हिम और उत्तापके समसूत्रपात होनेसे कदापि हिमका हिमत्व नहीं रहता। इसे ही चन्द्रमाका पीड़न समझना होगा। और हिम न होनेसे उष्णत्व बोध नहीं होता। इसीलिये सूर्य्यको चन्द्रके सम्बन्धमें आसक्ति समझनी होगी। हिम सूर्य्यकी किरणोंसे

अति चञ्चल होता अर्थात् रूपान्तरित होता है। उस चञ्चलता को अश्व कहते हैं, इसीलिये चन्द्रकी अश्विनी कल्पना हुई है। और हिमके संयोगसे उक्त रूपकी चञ्चलता ही सूर्य्यकी पौराणिक अश्वकल्पना है। इस समय हिम और उत्तापकी वैज्ञानिक चञ्चलता से चैतन्य जगतमें प्रकाशित करके सबको सजीव कर रक्खा है। उस हिम और उत्तापकी चञ्चलतासे वायु और जल चञ्चल होकर चैतन्यको सर्वभूतोंमें प्रवेश कराते हैं। जब ये हिम और उत्ताप चैतन्यमिश्रित होकर वायुमें परिणत होते हैं, तब वह आयु नाम धारण करते हैं। जब जलमें परिणत होते हैं, तब भी आयु नाम धारण करते हैं। प्रति जीवदेहकी उष्णता और शीतलता से चैतन्यप्राप्ति हो रही है। जल और वायुरूपसे इस चैतन्यने प्रति जीवके अन्तरमें जाकर जीवको सजीव रक्खा है। जो लोग रसवासी हैं, वे जलरूपसे रेचन और पूरणसे इस तेजको प्राप्त करके सजीव हैं। जो लोग वायुवासी हैं, वे वायुको रेचन और पूरण रूपसे पाकर सजीव हो रहे हैं। इस रेचन पूरणको ही श्वास प्रश्वास कहते हैं। श्वाससे शीतलता प्रवेश करती है, प्रश्वाससे उष्णता बाहिर हो जाती है। इन दोनों क्रियाओंसे ही जीवोंको जीवन संरक्षणक्रियायें होती हैं। इस श्वास प्रश्वासको ही आयुर्वेदियोंने आयु नाम प्रदान किया है।

शि०। आयुर्वेदशास्त्र किस भांति प्रकाश हुआ?

गु०। धन्वन्तरि कहनेसे आयुर्विज्ञान विषयकस्वभाव जानो। ईश्वर काल, कर्म्म और स्वभावादि लेकर जीवभावसे जगत्में लीला किया करते हैं। स्वभाव ही ईश्वरभावसे इस जगतमें लीला करता है। अन्यथा वृक्ष पर्व्वतादिकोंको भी जीवन है; किन्तु वे मनुष्यादिकों की भांति चैतन्यानुभवमें असमर्थ हैं। इसका प्रमाण मीमांसा तत्त्वमें ऋषियोंने अनेक प्रकारसे जनाया है कि, जीव देह और

कुछ भी नहीं है; केवल षट्चक्ररूपी कार्मिका प्रकाशस्थल है। वे ही कार्म समूह प्रकाशभावसे स्वभाव नाम धारण करके परस्परमें परस्परके छन्नत भावको जानने वा देखने सकते हैं।

जीवगण निज स्वभावसे रहनेसे यथार्थ जो शिक्षाचिन्ता वा भाव हैं, वे उसमें वर्त्तमान रहते हैं और स्वयं जीवनके उद्देश्यको जान सकते हैं। इस जीवनके उद्देश्यको न समझनेसे ही केवल सुख और दुःख हैं। इस सुख और दुःखको मायाका प्रभाव समझना होगा।

मनुष्यके सिवाय अन्य सब जीव ही पूर्ण स्वभावसे अवस्थान करते हैं, इसोसे वे अपने अपने जीवनके उद्देश्यको जान सकनेसे सुख और दुःखसे पोड़ित नहीं होते। बहुतेरे लोग कह सकते हैं, पक्षी आदिके पोड़न तथा उनके शावक आदिके हरनेसे पक्षियोंका सुख दुःख समझा जा सकता है; किन्तु ऐसा समझना उनका भ्रम है। शावकादि हरनेसे पक्षियोंका रोना वा पोड़नसे वीभत्सचिल्लाहट उनके सुख वा दुःखको बोधक नहीं हैं। भय को अधिकता हेतुसे चांवचांव करते हैं। अगड़े प्रभृतिको वे अपरिपक्क अवस्थामें निज स्वभावमतसे पालन करते हैं, उसमें व्यतिक्रम होनेसे स्वभाववशसे चांवचांव करते हैं; क्योंकि ऋषियोंने इद शुकपक्षीको पकड़के देखा कि, उसके सङ्गीपक्षी शावकावस्थाकी भांति क्रन्दन नहीं करते हैं। इसी प्रमाणसे जाना जाता है कि, जो लोग यथार्थ स्वभावके अनुवर्त्ती होते हैं, वे जीवनके उद्देश्यको जानकर किसीमें भी मुग्ध नहीं होते। जीवोंके निज स्वभावसे रहने पर आत्मरक्षणो- पाय स्वयं ही प्राप्त होती है। पीड़ादिसे जो मानसिक और भौतिक वा संस्कार हैं, उसे आरोग्य कहते हैं। जिस चैतन्य द्वारा यह संस्का- रक उपाय अवधारण को जाती है, उसे ही धन्वन्तरीस्वभाव वा अवतार कहते हैं; पशु मात्र ही उस चैतन्यमतसे अपनी चिकित्सा निजस्वभाव चैतन्यसे प्राप्त हुआ करते हैं। केवल मनुष्य मायासे

मुग्ध होकर आत्मभाव भूलकर उस चेतन्यको विनाश किया करता है। मनुष्योंके बीच जो लोग निज स्वभावसे रहते हैं, वे ही जीवन के उद्देश्यको जानके आयुज्ञापक चैतन्य और ईश्वरज्ञापक चैतन्य प्रकाश किये हैं। यह भी स्वभावका एक अंश है। इसीलिये ईश्वरका अवताररूपसे गिना गया है। इस चैतन्य स्वभावसे जो शास्त्र प्रकाश होता है, वही आयुर्वेद है।

"भगवान् धन्वन्तरिरूपसे यज्ञसे दैत्योंको रोध करते हुए अमृतभाग ग्रहण करते हैं।" यज्ञ कहनेसे जीवदेहकी सृष्टि जानो। दैत्य रिपुगणोंको कहते हैं। रिपु प्रभृतिके विपरीत क्रमसे वायु, कफ, पित्त प्रभृतिकी गति विशृङ्खल होनेसे देहमें रोग प्रकाश होता है। इसीलिये आयु चैतन्यरूपी धन्वन्तरि रिपुव्यतिक्रम आक्रमण करके देह-सृष्टिरूपी यज्ञका अमृत अर्थात् सञ्जीवन लाभ किया करते हैं।

शि०। गन्धर्व्व-वेद क्या है?

गु०। देवताओंके निम्न श्रेणीमें अवस्थित और ईश्वरनिष्ठ कई एक सिद्ध श्रेणियोंको ब्रह्माने देवताओंके अनन्तर सृजन किया। वे ही गन्धर्व, किन्नर और चारण नामसे प्रसिद्ध हुए। गन्धर्व लोग देखनेमें बहुत सुखी, सर्वदा ही सङ्गीतमें रत, आनन्दमें उन्मत्त और देवताओंको सुखी रखनेकी चेष्टा किया करते हैं। इन गन्धर्व्वों से उत्पादित ऐश्विकशास्त्रको "गन्धर्ववेद" कहते हैं। गन्धर्व कहने से वे मनुष्योंकी भांति जातिविशेष नहीं हैं। छ रिपु और कामना जब चैतन्यमय होकर ईश्वरनिष्ठ होती है, तबही उनके बीच काम,— गन्धर्व नाम, लोभ किन्नर नाम, क्रोध सिद्ध नाम और मोह अप्सरा नाम धारण करता है। गन्धर्व ही ईश्वरनिष्ठ कामका रूपक है।

शि०। वेद क्या है?

गु०। वेद कहनेसे नित्य ज्ञान जानो। ईश्वर जिस चैतन्य-मय उपायसे जीवके हृदयमें उदय होते हैं, वह उपायमय ज्ञान ही

वेद है। ईश्वर अपना भाव शुद्ध चैतन्यमें प्रतिबिम्बित करते हैं, वे ही शुद्ध चैतन्यमय पुरुषगण चैतन्यमें प्रतिबिम्बित विश्वके भावको जिस उपायसे प्रकाश करते हैं, वही वेद है तथा वही ब्रह्मात्मा रूपसे जगतमें व्याप्त है।

कर्म, भक्ति, उपासना, विज्ञान ये चारों क्रिया ही वेदमें वर्णित हैं। पहिले ये एक वेदमें थीं, महर्षि व्यासजीने इन चारों विधियोंको विभिन्न करके यजुर्वेदमें कर्म, अथर्ववेदमें भक्ति और उपाय, सामवेदमें उपासना तथा ऋग्वेदमें विज्ञान स्थापन करके उसे चारिभागमें प्रकाश किया। व्यासजीने एकही वेदसे ऋक्, यजु, साम और अथर्व नाम चारों वेद उद्धृत किया। अनन्तर उनने ही इतिहास और पुराण आदिको प्रणयन किया, इसी लिये उन्हें पांचवां वेद कहा जाता है।

शि०। वेद किस प्रकार प्रकाश हुआ?

गु०। जिस क्षमता वा शास्त्रार्थ द्वारा विद्या और अविद्या उभय प्रकृति समझी जाती हैं, उसे वेद कहते हैं। विद्या प्रकृतिसे ईश्वरस्वरूप और अविद्यासे मायाका स्वरूप जाना जाता है। यह जो दोनो स्वरूपकी बाबा कहा, उसकी उद्भाविनीशक्ति आत्मिक मातकी है। शास्त्र पाठ करें वा न करें, अष्ट सिद्धिकी सहाय वा स्वाभाविक आत्मज्ञानकी सहायसे अपने आप ही प्रकाश हुआ करती हैं। जैसे एक बीजके भीतर लाखों बीज निहित रहते हैं बीज उसे जान नहीं सकता और जीवगण भी उसे देख नहीं सकते। किन्तु जब उस जीवको समष्टि अवस्थासे अंकुरोत्पादनादि व्यष्टि-कार्य्यमें लाया जाता है, तब स्वभावकी सहायसे उससे कितनी शाखा, कितनी प्रशाखा, कितने फल, पुष्प और बीज देखे जाते हैं, उसकी गिनती नहीं हो सकती। वैसे ही इस क्षुद्र ब्रह्माण्डरूपी देहकोषके बीच पृष्ठकोषमें सब कुछ है; साधना करनेसे ही प्रकाश

हुआ करते हैं। जो वेद जगतमें प्रकाशित है, वह भी इसी नियमसे हठात् प्रकाशित हुआ था।

शि०। वेदादि प्रकाश होनेका उद्देश्य क्या है?

गु०। इस जगत-प्रपञ्चके सहित स्वाभाविक मिलन होनेके लिये तीन गुण भेदसे वेद प्रकाश हुए हैं। वेदादि कहनेसे ज्ञान-शास्त्र जानो। वेदके बीचे शब्दांश, प्रमाणांश और अर्थांश ये ही तीन अंश हैं। शब्दांशसे तमोगुणी मुग्ध होंगे, और प्रमाणांशसे रजोगुणी मुग्ध होंगे तथा अर्थांशमें सत्त्वगुणी मुग्ध होंगे। शब्दांश और प्रमाणांश वेदसे विधि उपासना और उससे फलप्राप्तिको उपाय निर्दिष्ट है। उससे तमो और रजोगुणीका उपकार हुआ। सत्त्वगुणी मात्र ही जीवन्मुक्त हैं, वे तो फललाभकी कामना नहीं करते; वे लोग समस्त कर्म्मफल ईश्वरको अर्पण करके स्वयं निष्फल भावसे अवस्थान करते हैं। वेदार्थ ही निष्फल कामनाका प्रधान उद्देश्य है। यह अर्थांश ही सत्त्वगुणी लोगोंके आदरका धन है। जब तक फललाभकी आशा है, तब तक संसारमें रति है। माया में मति है। जब तक निष्फल आशा रहे, तब तक संसारमें विरति है। और मायाके प्रति अनासक्ति है।

शि०। वेदमें जो सब भिन्न भिन्न विधि हैं, उसे जाननेका क्या प्रयोजन है?

गु०। कर्म्म और ज्ञानरूपी भिन्न विधि हैं अर्थात् कोई विधि जीवोंको कर्म्म करनेको कहती है और कोई विधि जीवोंको कर्म्महीन अर्थात् ज्ञानपर होनेको कहती है। कौन विधिका कौन व्यक्ति अधिकारी है और उस विधिका अभिप्राय क्या है, इसे न जानकर यदि कोई कर्म्माचरण करे; तो अवश्य ही उसका उद्देश्य ह्रास होने की सम्भावना है। क्योंकि आंखमें पट्टी बांधकर मार्गमें चलने वा मार्गकी सीमा न जान कर चलनेसे रस्तेमें अनेक दुर्द्दैव उपस्थित

होनेकी सम्भावना है।

शि०। वेदमें भाषा और अक्षर देखे जाते हैं, इसका क्या कारण है?

गु०। वेद केवल इङ्गितशास्त्र ही तो हैं। जैसे एक बन्दरको पकड़कर उसे वशीभूत करके कई एक इङ्गित सिखाके किसी इङ्गितसे नृत्यभाव और किसी इङ्गितसे क्रियाभाव प्रकाश करने पर वह बन्दर उसे दिखाया करता है, वैसे ही प्रचलित जगतकी भाषा और अक्षरादि सब ही इङ्गित मात्र हैं। मन इङ्गितका भिखारी है, क्योंकि वह अन्तर्यामी है। जैसे हमको भूख लगी है, यदि हम इङ्गितद्वारा ऐसा प्रकाश करें, तो मनुष्यमात्र ही समझ सकेंगे। वह इङ्गितस्वभाव सिद्ध है। उसे सहज करनेके लिये महादेव और ब्रह्मा आदि पौराणिक सृष्टिकर्त्ताओंने शब्दकी तथा अक्षरोंकी सृष्टि करके जगतमें प्रकाश किया। वे लोग तपोबल किम्वा आत्मविज्ञान से एक कौशल प्रकाश किये हैं, वे सब कौशल आत्मभूत होनेसे ईश्वरप्रणीत कहे जाते हैं। ईश्वरकी माया प्रकाश न होनेसे जीव किस प्रकारसे शब्द वा भाषा प्रकाश करेगा? उस वेदके अत्यन्त सामान्य सूत्रको पाकर प्रति विज्ञानवित् ऋषियोंने उसको वृहत किया है। क्रमसे वेदांश चारिभागमें जगतमें प्रकाशित हुआ है।

शि०। पत्र वा मसीद्वारा जो श्लोक समूह जगतमें प्रचारित हैं, वही वेद है?

गु०। नहीं,—इङ्गितसमूहका मध्यस्थ अर्थ ही वेद है। अर्थ से भिन्न और कुछ भी वेद—नहीं हो सकता। वेदोक्त इङ्गितार्थ है, ज्ञानहीन पाठक कदापि वेदार्थको समझ नहीं सकते। इस लिये वह अर्थ कहां है? उसका स्वरूप उसी विज्ञानकोषमें है। एकवेर इङ्गित समझनेसे सम्पूर्ण इङ्गितार्थ सहजमें समझा जाता है। यही विज्ञानमयकोषकी क्षमता (सामर्थ) है। इस नियमसे

विशेष रूपसे यह प्रमाणित हुआ कि, विज्ञानमयकोषसे ही वेदका आविर्भाव है। वेद ही जगतका सार भाग है। इस विज्ञानको ही सत्यलोक कहते हैं।

शि०। महर्षि व्यासजीने किस कारणसे एक वेदको चारि भागमें विभक्त किया?

गु०। वह भूत और भविष्यवेत्ता ऋषि ध्यान बलसे युगधर्म्म व्यतिक्रम कालके अव्यक्त गतिको ह्रास विवेचना करके अर्थात् आगामि कलियुगमें मनुष्यकी बुद्धि जीवन और कार्य्यादिका एक-बारगी ह्रास होनेकी विज्ञानमतसे सम्भावना देखकर उनके ऊपर कृपालु होकर महर्षिने सहजरूपसे वेदोंको विभागमात्र किया है। क्योंकि अल्पमेधावान मनुष्य इसे धारण करनेमें समर्थ होंगे।

शि०। महर्षि व्यासजी भूत और भविष्य किस प्रकार जान सकते थे?

गु०। सिद्ध मात्र ही भूत और भविष्यतवेत्ता हो सकते हैं। कालधर्म्म और प्रकृतिधर्म्मसे यह जगत सृष्ट होता है, उसके भाव को जो लोग आलोचनासे जान सकते हैं, वे ही कालवेत्ता होते हैं और कालवेता होनेसे ही उद्भूतवस्तुका क्या परिणाम होगा, उसे कह सकते हैं; क्योंकि वर्द्धन और हरण सबही कालधर्म्मकी सामर्थ से होते हैं। वैदिक विद्या नवित् मात्र ही पहिले योगबलसे काल धर्म्मको जानते थे। प्रति युगान्तमें ही कारण समूहके चमताकी-ह्रास होती है।

शि०। युगान्तमें मनुष्योंकी देह किस प्रकार ह्रासको प्राप्त होती है?

गु०। भौतिक कारणोंको लेकर जिस भावसे देह तैयार होती है, वह पहिले वर्णित हुआ है। कालशक्तिकी ह्रास होनेसे उसके सामर्थ्यकी घटती हुआ करती है। जैसे एक बीजको उत्तमफलसे

ग्रहण करके प्रथमबार रोपण करनेसे उत्तम फल होता है। पुनर्वार उस स्थानमें उसी बीजको रोपण करनेसे उसकी अपेक्षा छोटे फल अथवा हीनतेजो-फल होते हैं; क्रम क्रमसे उसके वृक्ष और फल छोटे होते आते हैं। वैसे ही इस जगतके बीजरूपी कारण समूह कालधर्म्मसे रोपित होकर पहिले प्रथमयुगमें जिस भावसे क्षमतावान होते हैं, दूसरी बेर उसकी अपेक्षा हीन और तीसरी बेर उससे भी हीन तथा चौथी बेर एकबारगी हीनतेज हो जाते हैं; उसीसे देहकी खर्वता उपस्थित होती है। देह ह्रास होनेसे धीरज विनष्ट होता है,—ऐसा विज्ञान सिद्ध है। एक क्षीणदेही जितना क्रोधी होता है, पुष्टदेही उतना क्रोधी नहीं होता। धीरज विनाश होनेसे अनेक प्रकारकी कुमति उपस्थित होती है। कुमतिसे रिपु-वशीभूत होकर मनुष्य पीड़ासे आयुहीन हुआ करते हैं। इसी कारणसे भगवानने लोगोंको अल्पमेधावी देखकर सत्यवतीके गर्भसे पराशरके औरससे जन्म ग्रहण करके वेदरूपी वृक्षकी शाखा प्रकाश की थी।

शि०। क्या महर्षि व्यासजी स्वयं भगवान हैं?

गु०। नहीं, व्यासजी ईश्वरके कला अवतार स्वरूप हैं। व्यास के द्वारा पुण्यपथका आविष्कार और काम्य कर्म्मोंके फलाफल स्थिर हुए थे। वे ही समस्त वेदको विभक्त करके सबके गुरु हुए हैं।

शि०। ऐसे हीनवीर्य्य मनुष्योंका स्वभाव किस उपायसे उन्नतिपथमें धावित होगा?

गु०। जो व्यक्ति सर्वदा सच्चा और प्रियभाषी, विनीत, शान्त, और चपलता रहित होता है, उसीका स्वभाव उन्नतिपथमें शीघ्र धावित होता है। काम्य कर्म्मोंसे संसारमें समय व्यतीत करते करते यदि पुण्यके सहारे आत्माकी उन्नति न की जाय, तो उसके आत्माको अधोगति अर्थात् उसकी कामना अधोगतिको प्राप्त

करती है। कामना नीच होनेसे वह (कामना) साधनाके अति-रिक्त उन्नतिपथमें धावित नहीं होती। वासनासे ही कामना उत्पन्न होती है, वासनाद्वारा ही जीवात्मा देह धारण किया करता है। जब तक अभिलाष है, तब तक कामना होती है। वासना का लय न होनेसे प्रेमके विलयमें चिदानन्दका उदय नहीं होता। वासनासे ही जन्म होता है। जब वासना रही, तब जन्म अवश्य ही होगा। पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंको वासनासे जीव परजन्ममें देह धारण करते हुए ऊंच तथा नीच गर्भसे उत्पन्न होकर भोगादि भोग करते हैं। पापी लोग पापिनीके गर्भसे भी भोगहीनसंसार में जन्म ग्रहण किया करते हैं।

शि०। संसारयातना किसे कहते हैं ?

गु०। माया प्रपञ्चादि अर्थात् स्नेहादि अभिमानादिरूपी मैं और मेरी भावीय बन्धनजनित यातना है। ऐसे ही अभिमान वा अहङ्कारसे जीव दूसरेके लिये स्वयं यातना भोग करता है। अर्थात् पुत्रादिको यत्न सहित पालन करते करते मृत देखने पर भी अयथा हाहाकारादि करणात्मक अनेक विपयिणी दुःख भोग करता है। ऐसी जो यातनाको अभिमानजनित संसारयातना कहते हैं।

शि०। आत्मज्ञानियोंको ज्ञानदृष्टिसे क्या देखा जाता है ?

गु० उस ईश्वरमें रुचि और मति लगनेसे अपने लिये अन्य चेष्टा नहीं रहती। अन्य चेष्टा विरहित होनेसे ही विज्ञानदृष्टि प्राप्त होती है। उससे जो इसके पहिले देहको उपाधि "मैं" शब्दको जीव कहके अर्थात् पदार्थ प्रपञ्च कहके जानते थे, वह नष्ट होती है। उससे उस "मैं" से परमात्मा महाब्रह्म अभिन्न है, ऐसा ही दर्शन होता है। किन्तु उपदेशमतसे साधन करनेसे त्रिताप नाश हुआ करता है।

शि०। त्रिताप किसे कहते हैं ?

गु०। अधिभूत, अधिदैव, और अध्यात्म इन तीनों मानसिक भावको तीन ताप अर्थात् पीड़ा कहते हैं।

शि०। इस साधनाको उपाय कैसी है, जिससे त्रिताप नाश होते हैं?

गु०। मनको निरुद्ध करके किसी एक कामनामें इन्द्रियोंको संयोयित करनेको साधना कहते हैं। यह साधना चारि प्रकारकी है, जैसे—नित्यानित्यवस्तुविवेक, इह और पर जन्मफल भोग-विराग, शमदमादि साधन सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व।

शि०। ये चार प्रकारकी साधना कैसी हैं?

गु०। ब्रह्मसे भिन्न समस्त ही अनित्य हैं; ऐसी साधनाको नित्यवस्तु विवेक कहते हैं। इस जन्ममें उपार्ज्जित धन, रत्न माल्यादि द्वारा शोभन और कर्म्म द्वारा परलोकमें स्वर्गादि भोग विषयक फललाभ,—ऐसी भाव युक्त साधनाका नाम इह और पर-जन्मफल भोग-विराग कहते हैं। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधानको शमदमादि साधन सम्पत्ति कहते हैं। ईश्वरविषयक श्रवण, मनन और निदिध्यासनके अतिरिक्त अपर विषयोंमें अन्तरको आसक्त न होने देनेको शम कहते हैं। ईश्वर गुणानुकीर्त्तन, श्रवण और कथनके सिवाय अपरविषयक कथा सुनने और कर्म्मसे वाह्यइन्द्रियोंको निवारण करनेको दम कहते हैं। विधि पूर्वक यज्ञादि कर्म्म, त्याग संसारसे इन्द्रियादिको दमन करनेको उपरति कहते हैं। शीतोष्णादि सहिष्णुताको तितिक्षा कहते हैं। ईश्वरविषयमें मनको एकाग्रताको समाधान कहते हैं। गुरुवाक्य तथा वेदान्त वचनमें विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। मोक्षकी इच्छाको मुमुक्षुत्व कहते हैं। इसी प्रकार चारो साधना द्वारा ईश्वरको कर्म्म अर्पण करने अर्थात् मनोगत समस्त वासना ईश्वरके पवित्रपदमें अर्पण करनेसे भूतगत, इन्द्रियगत अर्थात् मायागत और आत्मगत समस्त पीड़ा नाश हुआ करती हैं। देहकी चिन्ता, सांसारिक

सुख दुःखादिकी चिन्ता और आत्माकी उन्नतिकी चेष्टा सब कुछ यदि उस ईश्वरमें अर्पित करके कोई विश्वासमें अवस्थान करे, तो उसकी अपेक्षा और कौन लाभ कर सकता है? समस्त इन्द्रियां कर्म्म करनेवाली हैं। वे जो करें, वही कर्म्म है। योगकर्म्म ही ईश्वरमें अर्पित हुआ करते हैं; उससे ही सिद्ध हो सकते हैं। पद से बद्धासन, हाथसे हृदय स्थिर, कानसे अन्तर श्रवण, आंखसे अन्तरदृष्टि, रसनासे नामोच्चारण, मनसे अनुभव ग्रहण, इन सब क्रियाओंको ईश्वरार्पित कहते हैं।

शि०। संसारी होनेसे ही कर्म्म करना होता है। उस कर्म्म से प्रवृत्ति धर्म्मका उपार्ज्जन हुआ करता है। उससे निवृत्ति किस प्रकार होगी?

गु०। जिस वस्तुसे रोगकी उत्पत्ति होती है; फिर उन्हीं वस्तुओंके संस्कारयुक्त होनेसे वे ही रोग नाशकारी औषधरूपसे परिणत हुआ करते हैं। यदि कोई किसी व्रतमें अभिषिक्त हो, उस व्रतकी क्रिया करनेमें यदि उसे ईश्वरभावना न रहे, तो उस का कर्म्मफल लाभमात्र होता है; व्रतोपदेश मतसे उपासनाकी शिक्षा होती है; उससे ईश्वरभावनाकी सिद्धि नहीं होती। इसी कारणसे कर्म्ममें ही लोग अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्मचिन्ता में पीड़ित होते हैं; फिर उस कर्म्मसे ही उसे विनाश कर सकते हैं। सांसारिक लोगोंको ईश्वरमें निविष्टचित्त करके मुक्त वा पुन्यपथ-गामी करनेके लिये ऋषियोंने अनेक शास्त्र प्रणयन किया है। उनके बीच यजुर्वेदमें यज्ञादिकी आलोचना है। उन यज्ञादिकोंकी अनेक मतसे लेकर नाना तन्त्रोंकी अवतारणा की गई है।

शि०। तन्त्र किसे कहते हैं?

गु०। जीव जिस शास्त्रसे ऐहिक और पारत्रिक उभय अवस्था में पवित्र तथा मुक्त हो सकते हैं, उसे ही तन्त्र कह सकते हैं। यह

तन्त्र वा सङ्कल्प शास्त्र नारदादि और महादेवादिरूपी स्वयं भगवानने ही संसारमें प्रचार किया है। इन तन्त्रोंके बीच सात्विक, राजसिक, तामसिक इन त्रिविध गुणगत और त्रिविध अधिकारीगत परित्राणके लिये उपदेश वर्त्तमान हैं। अगण्यतन्त्र, अगण्यऋषियों द्वारा संग्रहीत होकर पृथिवीमें प्रकाशित हैं। ईश्वरको मानसोपचारसे एकवारगी सोऽहं भावसे जो सब साधक साधना नहीं कर सकते, उनकी साधनाके लघुत्व हेतु तथा ज्ञानकी उन्नतिके निमित्त ब्रह्म अनेक प्रकारकी कल्पित मूर्त्तिसे प्रतिष्ठित होते हैं। उन मूर्त्तियोंमें ईश्वरकी विभूतिमात्र अंकित रहके सात्विक, राजसिक, तामसिक ये ही त्रिगुणमय होकर साधकके हृदयमें ज्ञान और विश्वासकी अधिकता प्रदर्शित कर देती हैं। वेदोक्त जिन सब मन्त्रोंमें साधनाके तारतम्यसे सात्विकवृत्तिमें ब्रह्मको उद्देश्य करके समस्त उपासना निहित हैं, ईश्वररूपसे कल्पित होकर विबुधगण द्वारा उन्हीं मन्त्रोंसे आहूत और विसर्ज्जित होते हैं। विविधोंने जिन शास्त्रोंमें इस प्रकारकी काल्पनिक मूर्त्तिके वेदोक्त विधानसे सात्विक, राजसिक, तामसिक इन तीनों भावोंसे युक्त कर्म्माङ्ग विधानको साधकोंके हितके लिये प्रणयन किया है, उसे ही तन्त्र कहते हैं। इन तन्त्रोंमें ईश्वरकी शक्ति कल्पना करके दुर्गा, लक्ष्मी, काली, जगद्धात्री और सरस्वती प्रभृतिके रूपको कल्पना हुई है। ईश्वरकी लीला कल्पना करके रास, होली, रथ, झूलन ये सब ही कल्पित हुए हैं।

शि०। ईश्वरकी शक्ति किस प्रकारसे भिन्न भिन्न देवी मूर्त्ति कल्पित हुई हैं?

गु०। ईश्वरके चैतन्य सहयोग और कालशक्ति तथा ईश्वरकी सदसदात्मिकाशक्तिके मेलसे जिस जगत्प्रकाशक तेजोमय और कारणमयशक्तिका आविर्भाव होता है; उसे ही माया कहते हैं।

मायासे पार हो सकनेसे ही परमचैतन्यमय ईश्वर सन्दर्शन होता है। इसीलिये मायापूजाको विधान तन्त्रमें उपदेश करके तान्त्रिकों ने इस मायाको अनेक रूपमें कल्पना किया है। मायामें त्रिगुणात्मक शक्ति है। उस त्रिगुणात्मक शक्तिके बीच तमोगुणसे कालीमूर्त्ति, रजोगुणसे दुर्गामूर्त्ति और सत्त्वगुणसे जगद्धात्रीमूर्त्ति कल्पित हुई है। मायामें चैतन्य है। चैतन्य दो भागमें विभाजित है। एक अंशसे ईश्वर विभूतिरूपसे प्रकृतिमें चैतन्यमय कर रक्खा है, उसे ही पुराणमें लक्ष्मी कहते हैं। तन्त्रमें भी ऐसा ही कहते हैं। और एक चैतन्यांश ईश्वरके स्वरूपानुभव करानेके लिये ज्ञान तेजरूपसे प्रकृतिमें अवस्थान करता है, उसे ही सरस्वती कहते हैं।

शि०। क्या दुर्गापूजा एक यज्ञ है?

गु०। दुर्गापूजा एक महायज्ञ है। तन्त्रमें इसके दो पथ हैं; एक सात्विक और दूसरा तामसिक। सात्विकपथसे आत्मज्ञानलाभ होता है; तामसिकपथसे पूजादि अर्ज्जन वा पाप आहरण किया जाता है। उस दुर्गाके तामसिक भावसे आधुनिक पूजा हुआ करती है, उसे अधिक समझाना नहीं होगा; वह प्रमाण तन्त्रमें द्रष्टव्य है।

शि०। दुर्गादेवीकी सात्विकमतसे पूजा किस प्रकार की है?

गु०। सात्विकमतसे साधक गुरु ब्राह्मणके नियम अनुसार वा शास्त्रके अनुसार स्वयं देवीपूजा करनेके लिये बैठकर पहिले सङ्कल्प करे। सङ्कल्प और विकल्प मनकी अवस्था है। सङ्कल्पसे मैं जो परमात्मास्वरूप हूं, यही भावना उपस्थित होती है और विकल्पसे मैं जीव हूं तथा ईश्वरसे भिन्न हूं, यही भावना उपस्थित होती है। घट शब्दसे हृदय जानो। सप्ततीर्थोंका जल सप्तप्रकृतिस्थित मन है। शाखा पल्लवादि इन्द्रिय समूह हैं, घटोपरिस्थ अन्नाधार

माया है; उसके ऊपर अम्बुगर्भ नारियल जगद्गर्भधारी ईश्वर है। घटके ऊपर चित्रितमूर्त्ति आत्मा है; वह ईश्वर प्रकाशक तेज है। इसे ही सङ्कल्पसे जाने। अनन्तर साधया योगसाधनादि करके तमो-गुणी जीवात्माका वासना आदिके सहित वलि अर्थात् ईश्वरमें अर्पित करके आत्मज्ञानरूपी होमाग्नि प्रज्वलित करे। उसी ज्ञानाग्निसे यथार्थ ईश्वरानुभव करके यज्ञत्यागसे ईश्वरमय हो सकेगा। इस एक कर्म्म को तामसिक आचरण से करने पर क्या लाभ है और सात्विक आचरण करनेसे क्या लाभ है, वह प्रकाशित हुआ। मनुष्य कर्म्मके अतिरिक्त सुख नहीं हो सकता। प्रेममार्गमें भी कर्म्माचरण करना होता है। पहिले सेवा, सेवासे धर्म्मश्रद्धा, धर्म्मश्रद्धासे शास्त्रश्रवणशक्ति, उससे रति, रतिसे क्रमसे आत्मज्ञान और आत्मज्ञानसे दृढ़भक्ति द्वारा विश्वास होनेसे ब्रह्ममय हो सकते हैं। साधनाके बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

शि०। दुर्गादेवीका सात्विक भाव क्या है?

गु०। साधकको माया समझानेके कारण, मायाको तेजो-मई सुन्दरी कामिनी किया है। कामिनीरूप करनेका यह हेतु है कि, पुरुषका तेज नारी-योनिमें रूपान्तरित होकर जीव प्रकाश करता है। वैसे ही ईश्वर तेजधारिणी मायाको नारीरूपसे कल्पना की गई है। उस मूर्त्तिकी दसभुजा कल्पना की गई। जगतके सर्वांश व्यापिनी माया है और जगत ही ज्योतिष्कल्पनासे दशदिक् सम्पन्न है। उस दसभुजाके विस्तारसे सर्वव्यापकता प्रकाश हुई। त्रिनेत्र सत्व, रजः और तमोगुणी तेजाधार है। दशों हाथोंमें पूर्व्वोक्त एकादश प्रकार शस्त्र हैं; उन अस्त्रोंसे ईश्वरकी जगतशासन, पालन, वर्द्धन और हरण क्षमता प्रकाश होती है। सिंह चैतन्य है। असुर रिपु है। महिषसे प्रकाशित असुर अर्थात् मोहको महिष कहते हैं। इन्द्रियां जब अविद्यासे मुग्ध होती हैं, तब उन इन्द्रियोंका

सक्रिय तेज रिपु नाम धारण करता है। देवीके चारों ओर अष्ट-शक्ति रहनेका यह अर्थ है कि, माया आठ प्रकारकी है। ज्ञान-स्वभाव प्रकृतिके मध्यगत होनेसे साधकके ज्ञानमें विद्याशक्ति प्रदान पूर्वक अपना प्रभाव उसे ज्ञापन करता है। यही मायाके रजोगुणी दुर्गाका लघुभाव है।

शि०। दुर्गादेवीका किस भावसे ध्यान वा चिन्तन किया जावे ?

गु०। देवी मानो जटाजूट संयुक्त, कपालमें अर्द्धचन्द्र शोभायमान, पूर्णचन्द्र सम वदनमें त्रिलोचन शोभित, तपाये हुए सुवर्ण सदृश वर्णमयी, नवयौवन सम्पन्ना और सब प्रकार अलङ्कारभूषिता हैं। मनोहर दन्त और पीनोन्नत पयोधर संयुक्ता, त्रिभङ्गमयी महिषासुरमर्द्दिनी, मृणालकी भांति दशबाहु समवेष्टिता हैं। उन हांथोंके बीच दहिनेमें त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण और शक्ति है। बायें हांथोंमें खेटक, धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा वा परशु शोभित है। देवीके अधोभागमें छिन्नशिर महिष है और उस छिन्न स्थलसे हाथमें खड्गयुक्त एक दानव प्रकाश हुआ है। वह असुर देवी कर्त्तृक शूलविद्ध और केशधृत होकर रक्तस्रवित अङ्ग तथा भीषणदर्शनाननयुक्त होकर सिंहके द्वारा आघातित होता है। देवी ने दाहिना पैर समानभावसे सिंहके ऊपर रक्खा है। बायां पैर ऊंचा करके उसका अंगूठा महिषके ऊपर रक्खा है। उनके चारों ओर उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डावती, चण्डारूपा और चण्डिका ये आठों शक्ति शोभित हैं। सम्मुख देवतावृन्द मानो देवीका स्तव कर रहे हैं। ये ही धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्षदा जगद्धात्री होती हैं; पूजक इसी प्रकार ध्यान करें।

शि०। रजोगुणी दुर्गामूर्त्तिमयी मायाकी किस प्रकार पूजा करनी होती है ?

गु०। पूजाके अनुराग समर्पणका तामसिक भाव ही प्रतिमादि कल्पना करके नैवेद्यादि और पुष्पादि प्रदान करना। जब पूजा आरम्भ करना हो, तब उसके पहिले सङ्कल्प करना होता है। उस सङ्कल्पमें इस प्रकार भावना करनी होती है। जैसे—अपनी चारों ओरसे चोटियोंको बांधकर फिर भूत शुद्धि करे, उसके बाद निज देहके हृदयमें आत्माको दीपशिखाकार चिन्तन करे, उस प्रज्वलित आत्माको "हंस" इस मन्त्रसे सुषुम्नानाड़ीके मध्यसे मस्तकके सहस्रदल कमलस्थ परमात्माका संयोजन करे, अनन्तर पादस्थ पृथिवीको लिङ्गमध्यस्थ जलमें मिश्रित करे; उस जलको हृदयस्थ तेजमें मिलावे; उस तेजको मुखके वायुमें मिलावे और उस वायुको कपोलमध्यस्थ आकाशमें मिलावे। अनन्तर शून्यमय भावनाको बुद्धि, चित्त, अहङ्कारादिके सहित सहस्रदलकमलमें परमात्मामें लीन हुआ हूं,—साधक ऐसा ध्यान करके फिर माया बीजमन्त्र द्वारा कुम्भक, रेचक, पूरकादि सहयोगसे जप करे। अनन्तर इस क्रियाके शरीरत्वको ध्वंश करके देहको ललाटगत अमृतनिसृत सुधामय करके शुद्ध करे। उस देहके यथा स्थानमें पञ्चभूतोंका सन्निवेश करके "हंसः" इस मन्त्र सहयोगसे जीवात्मा जो कुल कुण्डलिनीगत होकर देवीरूपसे है,—ऐसी ही आत्मचिन्ता करे। अनन्तर उसी भावनासे जीवन्यास करनेके लिये सर्वाङ्गमें प्राणस्थानमें प्राण और इन्द्रियस्थानोंमें इन्द्रिय स्थापन करे। फिर निज देहमें मातृकान्यास करते हुए षटचक्रभेदकर बीजमन्त्रसे अपनेको दुर्गारूपसे कल्पना करके अङ्गन्यास करते हुए देहमय पीठस्थानमें देवीका ध्यान करे।

शि०। तमोगुणी मायाशक्ति कालीदेवीका कैसे भावसे ध्यान किया जावेगा?

गु०। प्रतिदेवीके ध्यानमें ही स्वरूपका गूढ़भाव प्रकाश हुआ है

करता है। देवीको करालवदना, घोररूपा, मुक्तकेशी, चतुर्भुजा कहके ध्यान करे। दक्षिणा कालिका कहके उसका नाम दान करे। देवीको अवस्थाका चिन्तन करना हो, तो मानो वह मुण्ड-माला विभूषिता हुई हैं। बांयीं तरफ दोनों हाथमें काटा हुआ सिर और खड्ग है। दाहिने दोनों हाथोंसे वर तथा अभय प्रदान करती हैं। दिगम्बरी और महामेघसम श्यामलवर्ण धारण किया है। कण्ठमें जो मुण्ड मालारूपसे लटके हैं, उनसे मानो रुधिर गिर रहा है। दोनो कानोंमें कुण्डलके परिवर्त्तनमें अंगदेश पर्य्यन्त व्याप्त शवदेह युग्म भीषणरूपसे शोभित है। वह मानो पीनोन्नत पयोधरा और सर्व्वदा हास्यमयी हैं, उनके कटितटमें शवसमूह (मुर्दों) के हाथ आदिसे कांची (करधनी) हुई हैं। उनके सृक्कद्वयसे रक्तधारा विगलित होती है। वह घोर शब्द करती हैं, महा तेजोमयी हुई हैं और श्मशानवासिनी हो रही हैं। प्रभातके सूर्य्य-मण्डलकी भांति उनके तीनों नेत्र प्रज्ज्वलित हैं। शवरूपी महादेवके ऊपर संस्थिता होकर मानो महाकाल या स्वयं दोनों ही विकारित क्रियामें अवस्थित हुई हैं। किन्तु इतने जो भीषण तेजसे हैं, उससे भी कुछ हास्ययुक्त प्रसन्नभावयुक्त तेज वदनमें प्रकाशित है। धर्म्म कामार्थ मोक्षाभिलाषी साधक इसी प्रकार ध्यान करे।

शि०। - कालीदेवीका सात्त्विक भाव क्या है?

गु०। मायाको मूर्त्त्यान्तर कहके यह देवी स्त्री मूर्त्तिमयी हुईं। तमोगुणी होनेसे कृष्णवर्ण अर्थात् घोरवर्णा हुईं। और संहार क्षमता प्रकाश करती हैं, इसीलिये भीषणा रूपसे कल्पित हुईं। प्रलयमें कालशक्ति चैतन्यहीन होती है, इसीलिये महादेव शववत् हुए। माया कालशक्तिके ऊपर पग देकर अपनी जो त्रिगुणमय क्षमता है, उसे लेकर सक्रिया अवस्थासे शव अन्तरित होनेके लिये जगत संहार दिखानेके हेतु इसी प्रकार

नरघातिनोरूपसे कल्पित हुई हैं। जगतकी सब प्रकारकी तत्त्वों को ईश्वर अपने अंगमें धारण करते हैं। माया उसहीसे प्रलयकाल में सञ्चिता होकार फिर जीवात्माके कल्याणके लिये पुनर्वार जगतको प्रकाश करती है। इसीलिये दो हाथोंसे वर और अभयदान करती हैं। यही कालीमूर्त्ति पूजकोंके पक्षमें सात्विकभावसे ईश्वरकी माया सहयोगसे जगत संहार्थक्रिया प्रकाश हुई है।

शि०। सत्त्वगुणी जगद्धात्री देवीका किस भावसे ध्यान किया जावेगा?

गु०। तामसिकभाव;—नाना अलङ्कार भूषिता, सिंह स्कन्धादिरूढ़ा, चतुर्भुजा, नागयज्ञोपवीत धारिणी सहादेवीका ध्यान करे। देवी मानो प्रभाती अरुणवर्ण और लालवस्त्र पहिरे हुए हैं। चारो हाथोंके बीच दोनो बायें हाथोंमें शंख और पद्म हैं। दोनो दाहिने हाथोंमें चक्र और पञ्चबाण हैं। उनके चारो ओर नारदादि मुनिगण उन्हें सर्व्वसिद्धदा कहके ध्यान कर रहे हैं। देवी मानो रत्नद्वीप नाम महाद्वीपमें सिंहासनके ऊपर उपविष्ट हैं। प्रफुल्लकमल उनका आसनरूपी हैं।

सात्विकभाव;—माया जब प्रधान अवस्थासे ईश्वरचैतन्य वहन के लिये चैतन्यजगतकी सृष्टि करती है। उस अवस्थाको रूपक ही यह मूर्त्ति है। जड़ और चैतन्य भेदसे जगत दो अंशमें मिश्रित होकार मायाबलसे प्रकाशित है। चैतन्यांशको ही सत्त्वावस्था कहते हैं। चैतन्यांश न समझनेसे कदापि ईश्वरको चैतन्यमय अवस्थामें देखा नहीं जाता। इसीलिये इस शक्तिरूपिणीकी कल्पना हुई है। सिंह चैतन्यतेज है, चैतन्यतेजको विज्ञानशक्ति भी कहा जाता है, उसके ऊपर कमलासन है। यह कमलासन ही सिरस्थ सहस्रार पद्म है, उसी पर देवी बैठी हुई हैं। देवी सत्त्वतेजसे उज्ज्वल होनेसे बालसूर्य्यकी भांति उज्ज्वल किरणमयी है। उनका

वस्त्र रक्तवर्ण है; रक्तवर्ण ही रजोगुण है, अर्थात् उसीको लेकर रजोगुण प्रकाश होकर उसीमें संलिप्त हो रहा है। देवीके अङ्गमें नागयज्ञोपवीत है। नाग शब्दसे सर्प जानो। सर्पशब्दका प्रधान भाव चञ्चल है। माया जिस गुणसे क्रियामें रत है, वह अत्यन्त चञ्चल है। वह चञ्चलता ही अविद्यानिस्तारिणी तामसीशक्ति अर्थात् तमोगुण है। उस ही प्रकार तमोगुण यज्ञोपवीतरूपसे उनमें है। यज्ञोपदेष्टा ब्राह्मणोंके चिन्हको यज्ञोपवीत कहते हैं। तमोगुणकी क्रिया ही यज्ञ है। सर्परूपसे तमोगुणकी क्रिया भी देवीमें लग्न है; अर्थात् मायासे उत्पन्न सत्त्वगुणसे रजो और तमो नाम दोनों गुण ही प्रकाश होकर उनमें ही संयुक्त हैं। देवी चतुर्भुजा हैं। चैतन्य सर्वत्र व्याप्त है। सर्वत्र कहनेसे चतुर्दिगके सिवाय और कुछ भी नहीं है। उन चतुर्दिकरूपी हाथोंमें शङ्ख, धनुष, चक्र और वाण शोभित है। शङ्ख ही विवेकका रूपक है। धनुष चैतन्यका रूपक है। चक्र वैराग्यका रूपक है। पञ्चवाण पञ्चशक्तिमय विज्ञानके रूपक है। ईश्वर चैतन्यरूपसे जीवके हृदय में रहके जिस अंशसे सत्त्वगुणमें स्वरूप प्रदान करते हैं, उस समय वह स्वरूपमें अवस्थान करते हैं। उसी स्वरूप अवस्थामें जीवात्मा को स्वरूपमें आनयन करनेके लिये चैतन्यमय तेज प्रकाश होता है। उसी तेजसे विद्यायुक्त मनुष्य क्रियामान होते हैं। उस चैतन्यका क्रियामान तेज परिमाणमें चारिभागमें विभक्त है, जैसे—ज्ञान, वैराग्य, विवेक और विज्ञान। इन चारों चैतन्यक्रियाको जो साधक धारना कर सकेंगे, वे इन चारों अस्त्रमय विद्यायुक्त शक्तिमय मायामूर्त्तिको देख सकेंगे। उस मायाको समझनेसे ही चतुर्विंशति तत्त्वोंका चैतन्य संख्यान बोध होकर स्वयं चैतन्यमय हो सकते हैं। चैतन्यमय होनेसे ईश्वरको सम्मुखमें देखा जाता है।

शि०। लक्ष्मी किसे कहते हैं?

गु०। स्वर्ग अर्थात् सर्व प्रकाशक स्थान। मर्त्य अर्थात् भूतांश विकारभावापन्न होनेका स्थान। पाताल अर्थात् इन दोनोंका आधार स्थान। इन तीनोंको लेकर ही जगत है। इस जगतको स्वयं ईश्वरने जितने प्रकारको मायासे शोभित किया है, उसे विभूति कहते हैं। जिसे देखनेसे हृदय स्वस्थ होता है, जिसे धारण करनेसे उद्विग्नचित्त स्थिर होता है, जिसे साधना करनेसे विष्णुपद प्राप्त होता है, जिसेके तेजको लेकर काल, माया प्रभृति चालित होती हैं। वह महाशक्ति ही लक्ष्मी नामसे पुराणके बीच रूपकमें आरोपित हुई है। ब्रह्मा रुद्र प्रभृति उसी चैतन्य रूपिणी की आराधना करके अनर्ज्जगत वहिर्ज्जगत प्रकाश करते हैं। दृश्य पदार्थ मात्र ही वहिर्ज्जगत है। यह ब्रह्माकी सृष्टि अर्थात् प्रकृति की सहायसे स्वभाव द्वारा भूतांशसे निर्म्मित है। यह प्रकृति ही ब्रह्मा है। इस वहिर्ज्जगतके अन्तरमें जो सब क्रिया होती हैं, वे रुद्र अर्थात् कालशक्तिकी सहायसे बनी हैं। वे इस भूतांशको पालक, वर्द्धक और उपसंहारक है। वह कालशक्ति ही महारुद्र है। यह प्रकृति (ब्रह्मा) और काल (रुद्र) लक्ष्मीको अर्थात् ईश्वर के चैतन्यरूपिणीशक्तिकी आराधना करके पूजा करते, अर्थात् चैतन्य की सहायसे जगत प्रकाश करते हैं।

लक्ष्मी दो प्रकारकी है;—प्रवृत्ति और निवृत्तिवाचक। प्रवृत्ति वाचक लक्ष्मीको गुण धर्म्म कहते हैं। उसकी सहारे निवृत्ति आहूत हुआ करती है। निवृत्तिवाचक लक्ष्मीको मोक्षलक्ष्मी कहते हैं। मोक्षलक्ष्मी पांच प्रकारकी है;—वेद, धर्म्म, क्षमा, सत्य और श्री। यह श्री कहनेसे सत्त्वगुणमय स्वभाव जानो।

शि०। गङ्गा किसे कहते हैं?

गु०। ईश्वरने त्रिक्रियावान होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर नाम धारण किया है। प्रकृतिशक्तिको ब्रह्मा कहते हैं, वर्द्धन

संहरणशक्तिको रुद्र कहते हैं। प्रकृति द्वारा संसार सृष्ट होने पर पालन करनेके लिये ब्रह्मा उस (संसार) को विष्णुपदमें अर्पण करते हैं। इस संसारदानको पुराणके बीच रूपकमें अर्घ्यदान कहा है। मानवीय व्यक्तिके समीप जाने या उसकी अभ्यर्थना करनी हो, तो उसके पदमूलमें जल देकर उसे स्वस्थ करना होता है। जल, फल, पुष्प प्रभृति शान्तिजनक पूजोपहार को अर्घ्य कहते हैं। रूपकमें मनुष्यरूपमें लाकर विष्णुको ब्रह्मा से श्रेष्ठता सज्जितकर ब्रह्मा द्वारा अर्घ्य प्रदानविधि स्थिर की गई। इस अर्घ्य प्रदानका कारण क्या है? चैतन्यशक्ति न होनेसे जगत पालित वा जीवन्त होगा। विष्णु स्वयं चैतन्यरूप हैं। ब्रह्म-शक्तिने वाह्यजगतको चैतन्यवान करनेके लिये उसे विष्णुपदमें डाला, विष्णुपदमें लगतेही वह अर्घ्यवारि महास्रोतरूपसे परिणत हुई; अर्थात् चैतन्य पाके जगत वृद्धिको प्राप्त होने लगी। उसी स्रोतको गङ्गा कहते हैं। जलस्रोतमात्रको ही गङ्गा कहा जाता है। पहिले जड़जगत चैतन्यहीन था, अनन्तर ईश्वरका चैतन्य उसमें पड़तेही वर्द्धित हुआ। तब ही जगतके बीच गङ्गारूपिणी चेतन्य रहा। वह चैतन्य ही गङ्गारूपसे पुराणमें कल्पित है। पुराणमें जिस प्रकार गङ्गा त्रिधा हुई थीं। उसी भांति चैतन्य भी जगतके कल्पना-क्रमसे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल त्रिभागमें वर्त्तमान है। वह चैतन्य जिस प्रकार मर्त्यलोकमें आनेमें एकधारासे महादेवके सिर पर पड़ता है; उसी भांति मर्त्य जगतके बीच कालशक्ति रहके आन्तरिक क्रिया करती है। कालशक्तिकी सहाय लेकर चैतन्य मर्त्य जगतमें है, अन्यथा उसे भूतांशमें रहना होता। हम लोग भुवनमें जो जल-रूपी गङ्गाको देखते हैं, वह पूर्व्वोक्त गङ्गाज्ञानकी प्रमाणसाक्ष हैं।

शि०। गङ्गा यदि चैतन्यरूपिणी ही हुई, तो वह स्रोतोरूपसे क्यों कल्पित हुई हैं?

गु०। जो जलीयभाग एकवेर उर्द्ध और एकवेर अधोभागमें वायु और तेज पेषणसे गमन करता है, उसे स्रोत कहते हैं। चैतन्य भी उसी प्रकार वासना तथा रिपु ही इन्द्रियादिके सञ्योगसे प्रस्फुटित और विलीन होते हैं। उस प्रस्फुटित और विलीनतासे यह मत जानो कि, चैतन्य कलुषित होता है। केवल चर्म्मनेत्र तथा ज्ञाननेत्र के दर्शनक्रमसे वह रूप अनुभवमात्र होता है। जैसे सूर्य्यके बादलोंके बीच छिपनेसे वाह्यजगतमें जड़ता हो जाती है, ऐसा होनेसे सूर्य्य तेजरहित नहीं है। उसी भांति स्वभावमें चैतन्यको अज्ञानाच्छादनसे आच्छादित करने पर उसका भाव ज्ञानक्रिया के बीच उपस्थित हुआ करता है। इस नियमसे गङ्गास्रोत चैतन्य-स्रोतका रूपक मात्र है।

शि०। पुराणमें गङ्गाको किस कारणसे मुक्तिदायिनी कहा है?

गु०। चैतन्यके विना मुक्ति नहीं, उसी नियमसे गङ्गाके विना मुक्ति नहीं होती। पुराण अपूर्व्व वस्तु हैं और अल्पबुद्धि मनुष्योंके उपादेय रत्न हैं। मनुष्योंको ज्ञान न होनेसे वे कदापि ईश्वर तथा निराकार साधना नहीं कर सकते। इसीलिये पुराणमें व्यास जीने ऐसी उपाय स्थापित की है कि, उस निराकार साधना और भावना समूहको एकवारगी रूपकमें साकार करके अज्ञानियोंको समझाया है। उसी उपदेश क्रमसे जब स्वभावका प्रभाव प्रखर होकर ज्ञान प्रकाशक होगा, तब वे एकवारगी निराकार धारणा करके मुक्त हो सकेंगे?

शि०। तुलसी किसे कहते हैं?

गु०। गङ्गा किसे कहते हैं, उसे मैंने इसके पहिले कहा है। जगतकी चैतन्यरूपिणी मायाको गङ्गा कहते हैं। पूर्व्वप्रमाण अनुसार महाचैतन्यशक्तिको लक्ष्मी कहते हैं। चैतन्यशक्तिके साथ मायाका सम्मिलन ही गङ्गा और तुलसी सम्मिलन समझना

होगा। तुलसी ही लक्ष्मीका नामान्तर मात्र है। तुलसी कहने से वृक्षपत्र मत जानो। बल्कि चैतन्यशक्ति समझो। पार्थिव तुलसीपत्रमें :भूत चैतन्यप्रदसरस है, इसीलिये उसे तुलसी कहते हैं।

शि०। स्त्री कहनेसे क्या समझें?

गु०। स्त्री कहनेसे त्रिगुणसम्पन्ना जानो। रति भक्ति, मोह सहित जो कामिनी जिस पुरुषको भजती है, वही उसकी स्त्रीपद-वाच्य है। जीवात्मा उस रति, भक्ति और मोहके वशीभूत होकर ही ऐसे कष्टके संसारको तुच्छ बोध किया करता है। जब शुद्ध प्रकृतिमें साधक उस रति, भक्ति और मोहको देखेगा, तब क्या फिर उसे मुग्ध होनेमें विलम्ब होगा? कदापि नहीं। नारी और नरका जो क्या ऐशिकसंयोग है, उसे मनुष्य भ्रान्त होकर समझ नहीं सकते। ईश्वर स्वयं प्रकृतिरूपसे अवस्थान करके तथा स्वयं पुरुषरूपसे रूपान्तरित होकर उभयको उभयद्वारा आकर्षण करते हैं। स्त्री मूर्त्ति कभी जननी होती है कभी कन्या होती है। इस मायाज्ञापनका भाव अत्यन्त भयानक है। मोहको ही अप्सरा कहते हैं।

शि०। उर्व्वशी स्वर्गकामिनी अप्सरा है। सर्वदा ही नृत्य-गीतसे देवताओंका मनहरण करती है। चिरयौवन सम्पन्ना हुई है। इसका क्या अर्थ है?

गु०। मोहरूपा आकर्षिणीशक्ति इन्द्रियादिको ईश्वरपथसे मुग्ध करनेके लिये उर्वशी मेनकादिरूप धारण करती है। अर्थात् जिसके भावभङ्गीसे हृदय सकल संलिप्तसे अपसृत होता है, वे ही अप्सरा नामसे विख्यात हैं। मोह जब ईश्वरनिष्ठ होती है, तब वह मन और वासनाको एकबारगी ईश्वरके प्रकृति प्रेममें उन्मत्त कर देती है। जैसे पार्थिव कामुक लोग वेश्याओंकी कपटरमणीयता

से मुग्ध होकर जीवनसर्व्वस्व देनेमें कष्ट बोध नहीं करते। वह केवल मोह जब रिपु अवस्थामें रहती है, उसहीका तेज है। वैसे ही मोह जब अपूर्‌ अवस्थामें रहती है, तब साधकाको ईश्वरपथमें ऐसा संलग्न करती हैं कि, स्वयं ही साधक पुरुष होकर ईश्वरको प्रकृति समझकर उसमें प्रेमसे रमण करता है। यही जीवात्मा की प्रेमलीला है।

शि०। इस पञ्चभौतिक देहका निर्व्वाण किस प्रकार होता है?

गु०। आर्य्यविज्ञानमतसे इस देहमें प्राण स्थापक छः पद्म वा चक्रस्थल हैं गुह्यद्वारमें एक सन्धिस्थान है, उसे स्वाधिष्ठान पद्म कहते हैं। नाभिमूलमें एक सन्धिस्थान है, उसे मणिपुर पद्म कहते हैं। हृदयमें एक सन्धिस्थान है, उसे अनाहतपद्म कहते हैं। कण्ठमें एक सन्धिस्थान है, उसे विशुद्धपद्म कहते हैं। तालुमें एक सन्धिस्थान है, उसे विशुद्धाग्र पद्म कहते हैं। शिरस्थलमें एक सन्धिस्थान है, उसे आज्ञापद्म कहते हैं। उसके ऊपर ब्रह्म-तालुमें एक शून्यपद्म है, उसे सहस्रार वा सहस्रदलपद्म कहते हैं। यह देह छ कोषमें निर्म्मित है, उनके बीच तीन मातृज और तीन पितृज कोष हैं। मेद, मज्जा, हड्डी, ये तीनो पितृज हैं; और स्नायु, शोणित, चर्म्म; ये तीनों मातृज हैं। इन छहों कोषको पञ्चवायु पञ्चप्राणरूपसे पालन करते हैं। उन्हें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान कहते हैं। प्राणवायुके द्वारा भूख, प्यासके कार्य्य होते हैं। अपानवायुके द्वारा उदरस्थ वस्तुओंका वहिर्गमन होता है। समानवायु द्वारा रस और प्रयोजनीय सार विभाजित होता है। उदानवायुसे स्पन्दन, वाक्य इत्यादिकी क्रिया हुआ करती है। और व्यान वायु सर्व्वशरीरमें व्याप्त हुआ करता है।

इन पञ्चवायुको निरोध कर सकनेसे देहमेंसे जीवात्मा विनष्ट होकर आत्मामें गमन करता है। वह भी साधनसाध्य है। कुम्भक अर्थात् निश्वास वायु लेकर अन्तरमें धारणक्रियाके द्वारा हृदयस्थ प्राणवायुको एकवारगी स्वाधिष्ठानपद्ममें निरोध करना होता है। उस वायुके साथ अपानवायु मिलनेसे उसको ऊर्द्धगति करके नाभी में लाना होता है। (इसे गुह्यश्वास और नाभिश्वास कहते हैं)। नाभिस्थ समानवायु प्राणमें मिलने पर उसे फिर हृदयमें अनाहत पद्ममें लाना होता है। (इसे वक्षश्वास कहते हैं)। वक्षस्थलसे उस वायुको कण्ठमें निरोध करना होता है। (पीड़ित व्यक्ति इसीसे विनष्ट होते हैं, इसे ही कण्ठश्वास कहते हैं)। योगी लोग कण्ठमें से उसी वायुको तालुमें ले जाते हैं। तालुसे उस वायुको आज्ञा-चक्रमें प्रवेश कराके श्वास प्रश्वासकी क्रियाको एकवारगी निरोध करके जिह्वाको तालुछिद्रमें प्रवेश करानेके अनन्तर प्राणायाम अवलम्बन करके ईश्वरका ध्यान किया करते हैं। प्राणायामियों को भूख प्यास नहीं रहती; क्योंकि प्राणादि वायुओंकी क्रियासे ही क्षुधादि होती थीं, उनके निरुद्ध होनेसे फिर क्षुदादि क्रिया किस प्रकार होंगी? प्राणायाम अवलम्बन करके योगी जीवित रहनेकी इच्छा करनेसे अनन्त काल तक जीवित रह सकते हैं। जीवनत्यागकी इच्छा करनेसे उसी वायुको सुषुम्ना नाड़ीमें प्रवेश कराके ज्ञानपद्मरूप सहस्रदलपद्ममें ईश्वरका ध्यान करते करते उसे भेदकर ब्रह्मतालु द्विधा करते हुए वाहिर कर देते हैं; इसे इच्छा-मृत्यु कहते हैं, इससे स्मृतिका नाश नहीं होता, ज्ञानका नाश नहीं होता; वह प्रमाणसाध्य है!! इसे ही ईश्वरमें जीवनप्रदान कहते हैं।

शि०। कर्म्म द्वारा सुकृत लाभ करनेसे लोग क्या पर जन्ममें एकवारगी ज्ञानवान तथा त्रिकालज्ञ हो सकते हैं।

गु०। कर्म्म द्वारा सुगति लाभ करनेसे लोग वाहिर वा तपः, जन, सत्यलोक पर्य्यन्त गमन कर सकते हैं, किन्तु अन्तरमें कदापि प्रवेश नहीं कर सकते। आत्मज्ञानी वा ईश्वरानुग्रहसे अखण्डित ब्रह्मचर्य्यव्रत-प्रभावसे उन सब लोगोंकी वाहिरकी बात तो दूर रहे, प्रति जीवके अन्तरमें प्रवेश कर सकते हैं। अष्टसिद्धिवान् व्यक्तिकी इस प्रकारकी अवस्था यथार्थ ही उत्पन्न हुआ करती है। यह योग-शास्त्रका नियम है।

शि०। ब्रह्मचर्य्य अवस्था कैसी है?

गु०। सर्वतीर्थस्नान, असंस्कृत देह धारण, सामान्य शय्या पर शयन और सामान्य पवित्र आहारीय वस्तु भोजन करके अवधूतवेश से आत्मीयगणोंसे अलक्षित होकर पृथिवी पर्य्यटन करते करते हरि-तोषण व्रताचरण करनेको ही ब्रह्मचर्य्य अवस्था कहते हैं। इसका गूढ़भाव समझना होगा; अनासक्तभावसे सत्कर्म्मफलकी अवस्था को सर्वतीर्थस्नान कहते हैं। भोग विहीनताको असंस्कृत देह कहते हैं। सर्वत्र शांतिलाभको सामान्य शय्यासे शयन कहते हैं। रिपु प्रभृतियोंसे स्वाधीन भावसे रहनेको पवित्र और सामान्य आहारीय भोजन कहते हैं। इन्द्रियादिसे स्वाधीन: होनेको अवधूत वेश अर्थात् जटा वल्कलादि धारण कहते हैं। इस स्थलमें आत्मीयगणोंके अलक्ष्य कहनेसे अधर्म्मलिप्सा अलक्ष्य, पृथिवी कहने से समस्त संसार, और व्रत कहनेसे मानसिकशान्तिका साधन जानो।

यज्ञसे आत्मतत्त्व गृहीत होता है और व्रतसे वासनाकी परिशुद्धता हुआ करती है। ऐसा नियम मनमें प्रकाश करना कि, जिसके द्वारा सदातुष्ट हरिकी तुष्टि ग्रहण की जाती है। इसका भाव यह है कि, वह बुद्धि जब जीवके हृदयमें अर्थात् जीवके उप-भोग्य मनोराज्यमें अधिष्ठित थी, तब वह अनेक प्रवृत्तिसे जीवकी

वासनासे मुग्ध हुई थी। इस समय सदातुष्ट हरिके चैतन्यमय प्रकृत मनोराज्यमें प्रवेश करना हो, तो उसके पूर्वअवस्थाके संस्कारका प्रयोजन हुआ करता है। जीवके भोगस्पृह त्याग करने से स्वयं ही वह संस्कार प्रकृति कर देता है।

शि०। तीर्थ क्या है? और तीर्थ दर्शनका फल भी क्या है?

गु०। तीर्थ मात्र ही धर्मार्जनके स्थान हैं। जैसे सामान्य हाट (बाजार) में कोई वस्तु खरीदने कोई वस्तु बेचने लिये गमन करते हैं, वैसे ही तीर्थ भी धर्म और ज्ञानोपदेशके विक्रयस्थान हैं। वहां कोई धर्म ज्ञानोपदेश क्रय करनेके लिये जाते और कोई उसे विक्रय करनेके लिये जाते हैं। इसका भावार्थ यह है कि ;—मनुष्य लोग इस संसारमें चारि प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त होते हैं, इन चारों अवस्थाके नाम उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम हैं।

जो लोग जन्ममात्र मायाको समझकर उस (माया) में मुग्ध नहीं होते, उन्हें उत्तम अवस्थावाले कहते हैं। उत्तम अवस्था-वाले लोग विना शिक्षाके ही प्रकृति देखकर ज्ञान प्रकाश कर सकते हैं। इसी अवस्थामें नारद, शुकदेव, श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्र, प्रह्लाद, ध्रुव प्रभृतियोंने जन्म ग्रहण किया (अवतार लिया) था।

जो लोग मायामें आहत होकर फिर साधनबलसे शीघ्र ही माया त्याग कर सकते हैं, उन्हें मध्यमावस्थाके मनुष्य कहते हैं। मध्यम अवस्थाके लोग साधनाबलसे स्वयं ही आत्मज्ञानलाभ कर सकते हैं। इसी अवस्थामें महर्षिगण, परमहंसगण तथा अन्यान्य आत्मज्ञानियोंकी श्रेणीने जन्म ग्रहण किया है।

जो लोग मायामें आहत होकर उपासना तथा कर्मबलसे ज्ञान लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, उन्हें अधम अवस्थाके मनुष्य कहते हैं। इस अवस्थामें प्राय सब संसारी ही आवद्ध हैं। अधम अवस्थाके

लोग गुरुकी उपदेश क्रमसे भजन, पूजन, यजन प्रभृतिसे ज्ञानलाभ कर सकते हैं।

जो लोग कर्म्म उपासना प्रभृति कुछ भी न समझ सकनेसे घोरपापी होकर यथेच्छाचारसे प्रवृत्त होते हैं, उन्हें अधमाधम अवस्थाके मनुष्य कहते हैं। इस अवस्थाके लोग गुरु उपदेशसे भी ज्ञानलाभ नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी भक्ति और विश्वास एकवारगी विदूरित हुआ है। वह भक्ति और विश्वास न होनेसे ज्ञान पानेकी उपाय दूसरी न देखकर उनके निमित्त ही तीर्थका प्रयोजन है। तीर्थमें ईश्वरकी मायाजात मूर्त्तिकी प्रतिमा स्थापित रहती है। उपदेश देनेके लिये बहुतेरे गुरु वहां उपस्थित रहते हैं।

मनुष्योंका जीवात्मा कदापि कलुषित नहीं होता। मन रिपु के वशीभूत होकर इन्द्रियोंको एकवारगी अधीन करनेसे उनकी वुद्धि हिताहित क्रियारहित होती है। हिताहितक्रियाशून्य होनेसे नास्तिक होना होता है। स्वर्ण जैसे अपनी उज्ज्वलताको पङ्कावृत होनेसे भी रक्षा करता है, वैसे ही जो जितने पापी हैं, जीवात्मा ज्ञानके अनुभवसे आवृत्त रहेगा ही रहेगा। उससे पापी मात्रमें ही अनुशोचना उपस्थित होती है।

वुद्धिको तीक्ष्ण और भक्तिको विश्वासस्थिर करनेके लिये अधमाधमको तीर्थमें जाना होता है। तीर्थमें जानेका कारण यह है कि,—नयनके स्वधर्म्मसे लोग एकाध क्षण मुग्ध होते हैं। तीर्थस्थ प्रतिमादि देखकर, स्वास्थ्यकी उन्नति देखकर, योगियोंकी इन्द्रजालिक सामर्थ देखकर नास्तिक लोग प्रथममें ही मुग्ध हुआ करते हैं। उसी मोहसे वे और भी मुग्ध होकर साधुसेवा करते हैं। इससे उन्हें भक्ति उपस्थित होती है। भक्ति होने पर विश्वाससे वे ज्ञानलाभ किया करते हैं।

संसारकलुषित मनको विश्वासपथमें पवित्र करनेके लिये आर्य्यऋषियोंने कितने पीठस्थान, कितने तीर्थस्थान, जप और साधनासिद्धिके हेतु स्थापन किया है, उनकी संख्या नहीं की जाती। तन्त्रोक्तमतसे महापीठस्थानमें जप करना और तीर्थोंमें भ्रमण करना इन सबका ही मनरूपी मत्त हस्तीको वशमें करनेके सिवाय अन्य कुछ भी कारण नहीं है। मन एक पारा लगे हुए दर्पणकी तरह है। दर्पणको जब जिस स्थानमें रक्खा जाता है, वहांके चित्र उसमें पड़ते हैं। वैसे ही मन भी इस भुवनके जिस अवस्थामें जिस आचरणके बीच पड़ता है, उसके अनुकरणमें प्रवृत्त होता है। पीठस्थानमें वा तीर्थस्थानमें सर्वदा ही सब कोई ईश्वर की अर्चना, ईश्वरके मन्त्रोच्चारण करते हैं। उसे देखकर मुग्ध मन उससे सहजमें मुग्ध होता है, इसीलिये ऋषियोंने तीर्थ वा पीठस्थानोंकी अवतारणा की है। पीठादि स्थानोंमें मन शीघ्र वशी-भूत होता है, इसलिये अतिशीघ्र धारणाका उदय हुआ करता है। इस प्रमाणसे यही बोध होगा। जैसे रोगीके पक्षमें औषध व्यवस्थेय है; और नीरोगके पक्षमें नहीं है। वैसे ही चञ्चलचित्त के पक्षमें तीर्थ प्रयोजनीय है, ज्ञानीके पक्षमें नहीं। ऋषिगण एकबारगी मनको इन्द्रियोंके सहित वशीभूत करके ज्ञाननेत्रसे समस्त देखते थे। वे लोग जीवन्मुक्त अवस्था उपभोग करते हैं। उनके चित्तकी चञ्चलता भी नहीं है, तीर्थका प्रयोजन भी नहीं है।

शि०। साधु सहवास करनेका क्या कारण है?

गु०। मायासे ही शोक, व्याधि तथा अन्यान्य विपदकी उत्पत्ति हुआ करती है। मायात्यागी लोगोंको यह सब कदापि सम्भव नहीं होता। जैसे दुःखी सुखीके आसरेमें रहके सुख आह-रण करनेकी चेष्टा करता है, वैसे ही मायामें मुग्ध विपदाक्रान्त संसारी लोग भी उस विपदसे श्रान्त मनको शान्त करनेके लिये

साधुओंका स्मरण या साधुसेवा किया करते हैं। जैसे माता पिता ने शरीरका जन्म दिया है, इसलिये वे इस देहकी सर्वावस्थामें रक्षा कर सकते हैं; ऐसा विश्वास रहनेसे ही देहमें कुछ कष्ट मिलनेसे इन सब गुरुजनोंको स्मरण किया जाता है। वैसे ही मायाजात कष्ट निवारणके लिये साधुओंके पन्थास्मरण और उनका सहवास करना उचित है। इसीलिये प्रभातमें प्रदोषमें अनेक प्रकारके पुण्यश्लोकोंके स्तोत्रपाठ शास्त्रमें लिखे हैं।

शि०। धर्मका मार्ग क्या है और अधर्मकाका मार्ग भी कौन सा है?

गु०। द्यूत, पान, नारी और सूना, ये चारो ही प्रधान अधर्म हैं। छलनाजात क्रियाको ही द्यूत कहते हैं। द्यूतसे सत्यका नाश होता है। मद्यादि पानको पान कहते हैं। पान-क्रियासे मद आविर्भूत होता है। प्राणिवधको सूना कहते हैं। उस मदके द्वारा नाश हुआ करता है। मायायुक्त मन्यादि बोधक क्रियास्थलको स्त्री कहते हैं। नारीसङ्गसे अपवित्रता होती है। वह अपवित्रता ही तमोनाशको कारण है। इन चारों अधर्मसे चार धर्मांश नाश होकर प्रकृति वैलक्षण्य उपस्थित होता है। मिथ्या, काम, मद, रजः, वैरीभाव ये पांचो उस पूर्व्वोक्त चतुर्विध अधर्मसे प्रकाश होते हैं।

किन्तु धर्मसे ही अधर्मका प्रकाश होता है; यह एकवारगी मीमांसामें चूड़ान्तरूपसे प्रकाशित है। जैसे दूधसे क्षीर मक्खन प्रभृति होते हैं, और तक्र (मट्ठा) दही भी हुआ करते हैं; वैसे ही इस अविद्याप्रकृति सम्बन्धीय मनसे पुण्यमय तथा पापमय उभय-भावके ही आविर्भाव स्वयं ही हुआ करता है। उस पुण्यमयभाव को धर्म कहते हैं, उसकी सहायसे मायामें कलुषित नहीं होना होता। और उस पापमयभावको अधर्म कहते हैं; उससे माया-

मण्डित होकर विष्ठाजात कीटकी भांति हीना होता है।

धर्म्ममार्गकी चार उपाय हैं। सत्य, दया, तपस्या और पवित्रता। इस जीवदेहका स्वभाव बड़ा कोमल पदार्थ है। इन्द्रिय और रिपुगण उसे भोग करते हैं। इन्द्रियां और रिपुगण जब स्वभावके वशीभूत नहीं होते, तब विपरीतभावका आविर्भाव होता है। जैसे किसी पुरुषने इन्द्रिय दमन करनेके लिये हठयोग आरम्भ करके एकभावसे एक स्थानमें तपस्या करना आरम्भ किया। किन्तु उसके मनमें भक्ति तथा विश्वास प्राप्त नहीं हुआ; क्योंकि उसने विश्वासकी शिक्षा नहीं की थी। इसीलिये अविश्वासयुक्त हठक्रियासे उसकी इन्द्रिय तेजहीन हुई। वह जिस साधनामें जाता था, उससे सिद्ध न होकर अधर्म्मके वशीभूत हुआ। उसने जिन सब मादक वस्तुओंके सेवनसे मनको दृढ़ करनेकी इच्छा किया था, उसकी विकारक्रियाके वशमें वह मादकके वशीभूत हुआ; उसके योगभङ्गसे वह एकवारगी आलस्य और मादकतासे घोर अधार्म्मिक हो गया। ऐसेही नियमसे अवस्थान करके क्रियावशसे स्वभाव रिपुके वशीभूत होने पर ईश्वरमें उसे अविश्वास हुआ। जीवात्मा उस पापीके देहका भृत्य हुआ। इन्द्रिय और रिपुगण जीवात्माको भृत्य करके उसकी सहायसे अधर्म्मप्रभावसे उस देहराजत्वमें राजत्व किया करते हैं। स्वभाव और रिपु तथा इन्द्रियोंके बलसे आकर मन, वासना, जीवात्मा प्रभृतिके सहित कोटि कोटि जन्म नरकमें यन्त्रणा भोग किया करता है। इस देहमें ही स्वर्गभोग और नरकभोग होता है। देह और मनकी शांति, हृदयका विश्वास है। सकल विषय विभवमें चिन्ताहीन होनेसे आत्मज्ञानसे परमात्माका अनुभव कर सकने पर इस देहसे ही स्वर्गलाभ होगा। अन्यथा पापमें मग्न रहके क्रमिकी भांति हीना होगा।

शि०। आत्मज्ञानलाभ होनेसे मनका भाव कैसा होता है?

गु०। जब तक समाज है, तब तक ऊंच नीच कुल है। जब तक अज्ञान है, तब तक हम तुम भेद है। जब तक संसार है, तब तक क्षुद्र वृहत् विचार है। इन कई एक अवस्थाओंको त्याग करनेसे सब एक है। जो लोग वैष्णवपथके पथिक हुए हैं, उनका समाज क्या करेगा? वे लोग देहका मान्य नहीं चाहते, उनका भेदज्ञान क्या करेगा? उनका संसर्ग वा मान्य क्या करेगा? वे लोग रिपुके वशसे आत्मगरिमा नहीं चाहते। वे लोग संसार त्याग करके समज्ञानसे एक पद्ममें जैसे भ्रमर, मधुकर, खञ्जन एकत्रमें मधुपान करते हैं, वैसे ही सब ही उस हरिपद पादपद्मकी मधुपान करनेकी इच्छा करते हैं।

शि०। ज्ञानकी मूर्त्ति कैसी है?

गु०। आत्मासे जो व्यक्ति तुष्ट है; उसकी मूर्त्ति बहुत ही तेजवान और सर्वावस्थामें सुप्रसन्न हुआ करती है। उसका कारण यह है कि,—ज्ञान जीवका मित्र है, और माया जीवकी शत्रु है। मायासे सुख दुःखादिरूप अनेक प्रकार आन्तरिक पीड़ामें जलना होता है; उससे ही चिन्ता नामक अग्नि शरीरको दग्ध किया करती है। जो पुरुष जैसी चिन्ता करेगा, उसका वैसा ही वाह्य-भाव प्रकाश होगा। इसी नियमसे मनुष्यकी मूर्त्ति देखनेसे ही हर्ष और विषाद अनुभव किया जाता है। सुखचिन्ता और दुःख-चिन्ता दोनों ही अग्नि है। दुःखचिन्तासे अन्तःकरण क्लेशानुभव करता है। इसीलिये कर्म्मेन्द्रियां अल्प समयमें ही क्लान्त होती हैं। उससे ही आयु सम्पूर्ण न होते ही होते मृत्यु होती है। शरीरकी खर्व्वता और अनेक प्रकारकी पीड़ासे शरीरको जीर्ण करती है। सुखचिन्तासे अन्तःकरण प्रसन्न रहता है; उसी कारणसे शान्तिभाव बाहिरमें प्रकाश हुआ करता है। ये उभय चिन्ता ही ज्ञानकी शत्रु हैं। ज्ञानका आविर्भाव होनेसे एकवारगी चिन्ताग्नि निर्वापित

ही जाती है। चिन्ताके नियोगमें निद्रागत व्यक्ति सुख स्वप्नदर्शना-वस्थामें आनन्दमय मूर्त्तिसे जिस भावसे निद्रित रहता है; ज्ञानी की वही सुखस्फूर्त्ति प्रकाश होती है। यह देह बहुरूपीय गठनसे गठित है। इसके अन्तरमें जो भाव प्रकाशित होगा, बाहिरमें भी वह देखा जाता है। इसका अधिक प्रमाण और क्या दें, किसी एक स्थूलकायको यदि प्राणदण्ड करेंगे, कहके किसी कारागारमें एक रात्रि रक्खा जाय; तो दूसरे दिन प्रभातमें उसे कारामुक्त करके देखनेसे भलीभांति देखा जाता है कि, उसकी मृत्युचिन्ताने देहकी आधी कान्तिको नाश किया है। फिर उसी व्यक्तिको तत्क्षणात् राजसिंहासन पर बैठाया जाय, तो वह फिर पहलेकी अपेक्षा कान्तिधारी हुआ करता है। जब सुख दुःखका इतना परिवर्त्तन होता है, तब जो आनन्दसे कितना परिवर्त्तन होगा, उसे और कहा नहीं जाता। ज्ञानसे सर्वदा हृदय प्रशान्त होता है। ज्ञानी के शरीरसे एक ऐसे भावका तेज प्रकाशित होता है, कि उसके द्वारा अज्ञानीकी नयनदृष्टि कुण्ठित हुआ करती है, इसका प्रमाण यह है कि, तेजसे ही रूपकी उत्पत्ति है। जैसे तेजहीन होनेसे पीड़ा होती है, उस पीड़ासे मनुष्यका रूप नाश होता है; वैसे ही फिर स्वस्थ होनेसे रूपका प्रकाश हुआ करता है। इससे विशेष जाना जाता है कि, तेजसे ही रूपका प्रकाश है। जो लोग पूर्ण ज्ञानी हैं, वे स्वस्थ होते हैं, इसीलिये पूर्ण तेजोवान होते हैं। अज्ञानी पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं, इसीलिये वे लोग ज्ञानीके सहित समान तेजवान नहीं हैं। जैसे स्वल्पदीप्तिमान प्रदीप सूर्य्यकी रोशनीसे तेजहीन होता है; वैसे ही अल्पतेजवान अज्ञानी पुरुष ज्ञानीको अधिक तेजवान देखता है।

शि०। अष्टाङ्गयोग कैसा है?

गु०। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान, और समाधि, इस अष्टाङ्ग-योग-क्रियासे योगी सिद्ध हुआ करते हैं। स्नान और होमादि क्रियाको धर्मशिक्षाको नियम कहते हैं। हठयोगसे हाथ पांव बद्ध करके उपवेशन विधिको आसन कहते हैं। श्वासरोध करनेको प्राणायाम कहते हैं। इन्द्रियोंको मनके अधीनमें लाकर उन्हें जय करनेको प्रत्याहार कहते हैं। ईश्वरभावनाको धारणा कहते हैं। अपनेको विषय-रूपसे गुणातीत करनेको ध्यान कहते हैं। अर्थात् ध्यानमें अपनेको ईश्वरमय चिन्तन आरम्भ करना होता है। सत्व, रजस्तमोगुणी रहनेसे विषयासक्त होना होता है, उसे त्यागकर जड़ भावावल-म्बन करने पर उसे ध्यानावस्था कहते हैं, आत्माको परमात्मसय देखकर देहको आधार स्वरूप समझनेसे उसे समाधि कहते हैं। इस समाधिमें भूख प्यास वा किसो प्रकारका वाह्यज्ञान नहीं रहता। बुद्धि अन्तरमें आनन्दभोग करके अन्तरमें ही विलीन हुआ करती है। इस अवस्थामें वाक्य निर्गत नहीं होती, नेत्रउन्मिलित नहींहोती। प्राणवायु स्तम्भितमात्र हुआ करता है। ऐसे समाधिस्थ योगीकी मायाजात गुणक्रिया नाश हुई हैं। मायाके सहित उनकी वासना भी नष्टहुई हैं। वासना जब विनाश हुई हैं। तब उनकी अवश्य ही मुक्ति होगी। उनने समस्त कारणादिको निरुद्ध किया है, उनको नयननिमीलित हुई हैं; उनकी मनस्थित आशा निव-र्त्तित हुई है। वह आहारेच्छा और इन्द्रियचेष्टा विहीन हुए हैं। इस समय स्थाणु की भांति निश्चल हुए हैं। यही समाधि की शेष अवस्था है।

शि०। योगी पुरुषकी समाधि-अवस्थामें यदि किसी प्रकारका विघ्न हो, तो उससे क्या क्या दोष होते हैं?

गु०। इस समाधिअवस्थामें क्षण भर अन्यमनस्क होने वा अन्य बात कहनेसे अनेक दोष उपस्थित हुआ करते हैं। उनके

बीच नव दोष प्रधान हैं ;—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकता और चञ्चलता। पातञ्जल में इसका विशेष विवरण मिलता है।

शि०। ब्रह्मलीन भावना कैसी है ?

गु०। मैं शब्द आत्मभिन्न अन्य किसीकी भी उपाधि नहीं है। उस आत्माको विद्याशक्तिबलसे देखनेसे निर्गुण बोध होता है, निर्गुण होनेसे उसका कार्य्य भी नहीं कहना होगा। कार्य्य को ही लिङ्ग कहते हैं। कार्य्य मात्र ही विनाशशील हैं। आत्म-कार्य्यशून्य है, इसीलिये अविनाशी है। जो सम्भव अर्थात् प्रकाशित वा नवप्रसूत होता है, वह प्रकृतिमतसे विनष्ट हुआ करता है। आत्मा जब विनाश रहित है, तब वह असम्भव वा जात नहीं है। ये सब लक्षण ईश्वरके सिवाय अन्य किसीके भी नहीं हो सकते; इसलिये आत्मा भी ईश्वरका स्वरूप है। आत्मा ही जब "मैं" है, तब "मैं" (अपने) को भी ब्रह्मस्वरूप कहना होगा। इसी भावनाको ब्रह्मलीनभावना कहते हैं।

शि०। सज्ज्ञानसे ब्रह्ममें लीन होकर किस प्रकारसे देह त्याग करना होता है ?

गु०। ईश्वरमें सम्मिलित होनेके लिये अपनेमें प्रजापत्ययज्ञ आरम्भ करके इष्ट अग्नि प्रज्वलित करना होता है। क्योंकि उसके द्वारा योगाङ्गकी साधना स्थिर हुआ करती है। संसारके ऊपर विरक्त होकर स्नेहशून्य और अहङ्कारहीन होना होता है। संसार के सहित जितने प्रकारके बन्धनोंसे आबद्ध रहना होता है, उन्हें एकबारगी विच्छिन्न कर देना होता है। वाह्यिक वाक्य त्यागकर उसे इन्द्रियादिके सहित मनमें अर्पण करना होता है। मनको योगबलसे प्राणमें अर्पण करना होता है। प्राणको अपानमें आकर्षण करके अपानके सहित समस्त मृत्युव्यापारको उसी योगसे

पञ्चत्वमें उत्सर्ग करके स्वयं आत्माको अजरूपसे चिन्तन करना होता है। इसे ही जीवन्मुक्ति कहते हैं।

शि०। ब्रह्मनिर्वाण कैसा है?

गु०। विचक्षण कहनेसे ज्ञानी जानो। भक्ति मिश्रितज्ञानी उस ब्रह्मगतिको प्राप्त करनेके लिये इसलोक और परलोककी कामना परित्याग करते हैं। भक्ति कर्म करके वहुतेरे साधक परलोकमें स्वर्गादिभोग वैकुण्ठादिभोगकी वासना करते हैं। वासनामतसे जीवोंका जन्म होता है। वासना पवित्र होनेसे जीवका पवित्र जन्म होता है। किन्तु जन्म होनेसे ही मायाके अधीन होना होता है। उससे पुनर्वार पापका भय रहता है। इसीलिये ज्ञानवान भक्त पुनर्वार जन्म मरणके इच्छुक न होकर सम्पूर्ण कामना विसर्ज्जन करते हैं। केवल एकमात्र ब्रह्मको ही स्वरूप चिन्तन कर उसके सहित मिलित होनेकी इच्छा करके स्वर्ग वा मर्त्य कुछ आशा ही नहीं करते।

शि०। तुरीय अवस्था किसे कहते हैं?

गु०। प्राणादिवायुको प्राणायाम द्वारा रोध करके वासनाके सहित उस प्राणको हृदयमें धारण करना होता है। मन और वुद्धि ही वाह्यविषयके कर्त्ता हैं। वाह्य विषयोंके अनुभव रोध न करनेसे आन्तरिक क्रियाका आविर्भाव नहीं होता। उसी कारण से मन और वुद्धिको वाह्य विषयोंसे ग्रहण करके उसी प्राणके सहित मिलाना होता है। ऐसा होनेसे देहकी सर्वक्रिया एकत्र हो जाती हैं। उसी अवस्थाको तुरीय अवस्था कहते हैं। हृदयमें प्राण, मन, वासना, वुद्धि एकत्रित होनेसे जो भावना की जाती है, उसका स्वरूप अनुभव होता ही है। उसका प्रमाण योगशास्त्रमें विलक्षण देखा जाता है; इतना ही क्यों, वल्कि जो लोग अष्टाङ्ग योग सिद्ध होकर उस तुरीय अवस्थामें उत्तीर्ण होते हैं, वे अदृष्ट

वस्तुको भी देख सकते हैं। अचिन्तनीय भावको भी विस्तार करके प्रकाश कर सकते हैं। ये सब ही तेजकी क्रिया हैं। जैसे किसी एक विषयकार्य्यको करना हो, तो क्षण भर हृदयमें मनको स्थिर कर सकनेसे बुद्धि उसकी सदुपाय प्रकाश किया करती है; वैसे ही एकवारगी वाह्यक्रिया नाश होने और हृदयमें ब्रह्मभावना करनेसे ब्रह्मानुभव हुआ करता ही है। उसका अधिक प्रमाण वाक्यसे प्रकाश होनेवाला नहीं है; क्रियासे समझाना होता है।

शि०। योगको किस अवस्थामें देही वाहिरमें जड़वत् प्रतीयमान होते हैं?

गु०। उस तुरीय अवस्थामें उपस्थित होनेसे और तीन स्थान जय करना होता है। उन तीनोंके नाम जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न हैं। इस जगत संसारमें इतनी वस्तु देखी जाती हैं, ये क्या सब समयमें स्मरण रहती हैं, कदापि नहीं। जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न, इन तीनों अवस्थाओंमें जोव संसारका सकल सुख दुःख विस्मृत होता है। जाग्रतमें क्रिया करनेसे निद्रामें स्मरण नहीं रहता। स्वप्नमें जो देखा जाता है, वह जागने पर विशेषरूपसे समझा नहीं जाता। इसका कारण क्या है? मनकी चञ्चलता। मन ही स्मृतिका आधार है। मन जागरणमें अनेक कार्य्यक्षम होता है। निद्रामें जीवात्माका सुखानुभव करता है; स्वप्नमें प्राचीन स्मृति लेकर क्रीड़ा करता है। इसी प्रकार अवस्थाके परिवर्त्तनसे अनेक दिनोंकी घटना एकवारगी विस्मृत हो सकती है। किन्तु इन तीनों अवस्थाओंको जय करके तुरीय अवस्थामें उपस्थित होनेसे वाह्यिक स्मृति अन्तरमें जाकर विराजित रहती है। विषयचेष्टा न रहनेसे ज्ञानेन्द्रियां साधनाके धन हरिका अनुभव, निरन्तर हृदयमें किया करती हैं। इसी अवस्थामें देही वाहिरमें जड़वत् प्रतीयमान होते हैं; किन्तु अन्तरमें उनकी चैतन्यराशि अनलवत् जलती रहती है। वाह्यज्ञानवोधकी अविक्रिया

करते हैं ।

शि० । योगी लोग श्वासको जय करके दीर्घायु होनेकी क्यों चेष्टा करते हैं ?

गु० । लोग संसारमें आपाततः मनोहर कितनी एक साारासार वस्तुओंमें मुग्ध हो रहे हैं । किन्तु वैष्णवधर्ममें कायिक सुख सम्पद कुछ भी नहीं है ; केवल इस जगतमें आत्माका परमानन्द अनुभवमात्र किया जाता है । इसलिये भगवानका ऐसा गुण है कि, लोग उस आत्म शब्दको इतना श्रेष्ठज्ञान करते हैं कि, जागतिक संसृति सहसा त्याग करके स्वच्छन्दतासे परमहंसवृत्ति अवलम्बन कर पृथिवीके चारों ओर निःशब्द (मौन) होकर पर्य्यटन करते हैं । जो लोग आत्मानन्द उपभोग करके देहरक्षा करते हुए जीवन्मुक्त होते हैं, वे ही परमहंसपदमें वाध्य होते हैं । वैष्णवोंके पक्षमें परमहंसपद ही श्रेष्ठपद है । देहसे आत्माको पृथक् करनेसे स्वरूपानन्दका उपभोग नहीं होता । इसीलिये योगी लोग श्वास जय करके योगबलसे दीर्घायु होनेकी चेष्टा करते हैं ।

शि० । मुक्त और विमुक्त इन दोनों शब्दोंमें क्या प्रभेद है ?

गु० । मुक्त कहनेसे कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि अहङ्काररूपी अज्ञानावरणसे अनवरुद्ध जानो । मुक्त कहनेसे ही यथेष्ट शुद्धभाव प्रकाश हुआ करता है । अहङ्कारात्मक और अभिमानात्मक अंशोंसे जो आवद्ध होता है ; उसको परित्यागावस्थामें उसे मुक्त कहा जाता है । विमुक्त कहनेका तात्पर्य्य क्या है ? विशुद्धरूपसे मुक्त होना । अर्थात् जो आदिसे अन्त पर्य्यन्त किसी समयमें भी उस अज्ञानसे आक्रष्ट नहीं हैं, इसलिये उन्हें विमुक्त कहा जाता है ।

शि० । जो मुक्त पुरुष मायाके बन्धनमें आवद्ध नहीं हैं, वे किस निमित्त श्रीहरिका गुण कीर्त्तन करेंगे ? मुक्त होनेसे तो कुछ आशा नहीं रहती ?

गु०। तुमने जो कहा वह यथार्थ है। किन्तु श्रीहरि ऐसी गुणसम्पन्न वस्तु हैं कि, उनके गुणसे मुक्त पुरुषोंका भी मन आकृष्ट हुआ करता है। जैसे जलमें कमल स्वभावसे ही प्रकाश होता है, किन्तु सूर्य्यका उत्ताप न होनेसे प्रस्फुटित नहीं होता, वैसे ही मुक्त पुरुष भी यदि हरिमें मनोनिवेशन किया करें, तो उनके भी मनके कलुषित होनेकी सम्भावना है; क्योंकि मायाका विश्वास नहीं है।

शि०। साधुसङ्ग करनेका फल क्या है?

गु०। मनको परिशुद्ध न कर सकनेसे कदापि साधुसङ्ग बोध नहीं होता; और साधुसङ्ग न होनेसे ईश्वरमें विश्वास तथा वह जो सबके सन्निहित होके समस्त पालन सृजनादि करते हैं; यह बोध होकर उनमें विश्वास नहीं होता। इसलिये जिन्हें वासना इन्द्रियशक्ति-गणको बाह्यक्रियामें अर्थात् विषयसुखमें निरत किये है, वे सर्व्वदा ही असद्वर्त्ति अर्थात् कामादि रिपुपर इन्द्रियशक्तिमय होनेसे उनके आकर्षणसे मनको भी तत्पर किया करते हैं। जिनका मन ईश्वर में विश्वास स्थापन करनेमें समर्थ नहीं होता; वे ईश्वर महिमा प्रकाशरूपी भक्तगणोंको ही बोध नहीं कर सकते। क्योंकि साधु-सङ्ग न होनेसे सर्वत्रव्याप्त ईश्वरउपलब्धि नहीं हो सकती।

शि०। ईश्वरानन्दलाभ करनेकी उपाय क्या है?

गु०। विद्याशक्तिका आश्रय ग्रहण करना। माया मध्यगत चैतन्यकी विज्ञानमय प्रतिभाको विद्याशक्ति कहते हैं। जीव यदि कर्मफल नाश करनेके लिये उस विद्याशक्तिका आश्रय ग्रहण करे, तो ईश्वरानन्द उपभोग कर सकता है।

शि०। आत्मा भिन्न ब्रह्मको कोई भी अनुभव नहीं कर सकता, किन्तु क्या जीवात्माको ब्रह्म अनुभवकी सामर्थ नहीं है?

गु०। प्रकाश्य सकल वस्तु जो कि सृष्टि जीवोंके जीवनकी उपा-

हानरूपसे दृष्टिगोचर होती हैं। वे सबही मायाके द्वारा संश्लिष्ट होनेसे सृष्ट जीवमात्र ही मायामें भूलते रहते हैं अर्थात् विसयके द्वारा कर्म्मी होनेसे विसयके अतीत न हो सकनेसे सत्यको देखने नहीं पाते। सत्य यदि उनका नहीं है, तो संबोध क्यों होता है? उससे ब्रह्मतेज मायाके द्वारा प्रभापित होता है। इसीलिये सत्य को आश्रय करके मिथ्या प्रकाश हो रहा है। क्योंकि यथार्थमें मिथ्या कुछ भी नहीं है; केवल सत्यके आश्रयीभूत छायामात्र है। इससे यह समझाया गया कि, आत्माके सिवाय जीवात्माको कुछ सामर्थ नहीं है कि, विसय वा मायागत कार्य्यके सिवाय वह और कुछ बोध कर सके। किन्तु ऐसा मत जानो कि, जीवात्मा चिरकाल तक मायाके बन्धनमें आवद्ध रहेगा; अपनी स्थिति और गति देखने से मुक्त हो सकेगा, ऐसी शक्ति भी उसमें है।

शि०। कैसे अनुभवसे ईश्वर स्वरूप बोध होता है?

गु०। रूपधारी जीव मात्र ही एकबारगी अरूप धारणा नहीं कर सकते। इसीलिये पूजा उपासना मन्त्र प्रभृतिका कौशल प्रकाशित हुआ है। जैसे किसी रोगीको नीरोगी करना हो, तो पहिले उसका रोग स्थिर करके फिर रोगनाशकारी औषध प्रयोग करना होता है। तब रोगनाश होता है। वैसेही ईश्वरको किसीने कभी नहीं देखा है; तथापि कर्म्म देखकर अनुभवसे उनका अनुमान किये हैं। उस अनुमानीयरूपमें मिलना हो, तो उस अनुमानीयरूपका चिन्तन करना होता है। अनुमानसे जो सब प्रभाव प्रकाश हुए हैं, उसे मनमें अवलोकन करते करते उस चिन्ताशील व्यक्तिका स्वरूप बोध होता है। वह बोध होनेसे ही उसमें तन्मन और आत्मज्ञानसम्पन्न हो सकते हैं। स्वप्नमें जैसा मन स्थिर होता है, वैसा फिर कभी संसारीके पक्षमें नहीं घटता। स्वप्नमें जो वस्तु देखी जाती है, वह मानो सृष्ट है और उसमें मग्न हूं कहके बोध होता है। वैसे

ही योगी लोग मन स्थिर होनेसे अपनेको ईश्वरमें अंगिड़त देखते हैं।

शि०। मानसोपूजा कैसी है?

गु०। यह देह स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो भागमें विभक्त है। स्थूल भाग भूतमय है, वह केवल कूर्म्मावरणकी भांति सूक्ष्मभावको आवरणमात्र है। वे ही सूक्ष्मभाव वासनामतसे जो भाव प्रकाश करनेकी इच्छा करेंगे, भूतमय आवरण उससे ही परिवर्द्धित होंगे। इतनी ही स्थूलदेहकी क्रिया हैं। उस सूक्ष्मदेहको चैतन्य वा मनोमय कहते हैं। जब साधक अपने मनोमयदेहमें एक-मात्र ईश्वरकल्पना करता है, तबही वह भक्त कहके जगतमें विख्यात होता है। यह मनोमय देह समर्पणका नाम भक्ति है। उस भक्ति को स्थिर करनी हो, तो मानसी पूजाकी आवश्यकता है। ईश्वर का रूप कल्पना करके उसी रूपको अपने मनोमय देहमें मण्डित कर अपने मनोमय देहमें ईश्वररूपके प्रत्येक अङ्ग कल्पना करते हुए पूजा करनेको मानसी पूजा कहते हैं।

शि०। क्या संसारी स्वरूप भावना नहीं कर सकते?

गु०। वैराग्यसे ही स्वरूपभावका उदय हुआ करता है। संसारासक्त चित्तसे स्वरूपभावका उदय नहीं होता। क्योंकि संसार में मायाके खेलसे सर्वदा ही मन चञ्चल रहता है। मनकी क्रिया इन्द्रियोंके सहायसे होती हैं। इन्द्रियोंकी क्रिया, वासना और रिपु सहायसे होती हैं। इसलिये संसारी कदापि स्वरूपभावना नहीं कर सकते। स्वरूपभावना की चेष्टा करनेसे ही संसारी वायुहत मेघ (बादल) की भांति संशयाच्छन्न होकर हृदयमें विश्वास को छिन्नभिन्न कर डालते हैं।

शि०। गुणकीर्त्तन श्रवण करनेका क्या फल है?

गु०। श्रवण, मनन प्रभृति क्रियासे ज्ञान और प्रेमका उदय होता है। स्वरूप बोध न होनेसे वह प्रेम धारणा नहीं की जा

सकती। इसीलिये गुणकीर्त्तन श्रवण करनेसे विश्वकर्त्ताका अनुभव मन ही मन किया जा सकता है। यह कीर्त्तन ही महाकीर्त्तन है। इस कीर्त्तनको श्रवण करनेसे हृदयमें ईश्वरभावका आवेश होता है। यह कीर्त्तन बीजमन्त्ररूप और बीजाक्षररूप कमलहृदय में व्रत होता है। यह कीर्त्तन ही दूसरेके मुखसे सुनकर बाह्यइन्द्रिय को मुग्ध करना होता है। यह कीर्त्तन ही साधनान्तरमें भिन्न-रूपसे भिन्न साधनासे जगतमें प्रकाशित है। कीर्त्तनके सिवाय भावके आदरका धन अन्य कुछ भी नहीं है। श्रीहरिके गुण और महिमा श्रवण करनेसे उनका विश्वास स्थिर होगा। वह विश्वास को सहायसे प्रेमको देख सकेंगे। प्रेमानन्दमें मग्न होनेसे "सोऽहं" भाव उन्हें आहृत करेगा। तब वह हरिमय होकर परमानन्दमें देहत्याग करके मुक्त होंगे। धन्य कौशल है। ऐसा उपदेश मानो प्रतिपापी प्रत्यह श्रवण करें।

शि०। ईश्वरको पुरुष क्यों कहा जाता है?

गु०। एक भावसे साधारण बुद्धिके गोचर होनेके लिये साकार को सजावट हुई है, और दूसरे भावसे सकल शोभाकी आकरस्वरूप निराकारभाव समझाया गया है। साधारण साधकलोग पुरुष कहनेसे श्रेष्ठकर्त्ता वा सकल पुरुषों तथा जीवोंका कर्त्ता समझेंगे। ज्ञानीसे ब्रह्माण्डरूपी पुरीके अन्तर्यामी निराकार ब्रह्म तेज समझेंगे।

शि०। ब्रह्माण्ड और विश्वमें प्रभेद क्या है?

गु०। काल चैतन्य और सदसदात्मिकाशक्तिके मिलनसे प्रधान और महत्तत्त्वावस्था होती है, उसी अवस्थासे सत्त्व, रजः और तमो-गुणका प्रकाश होता है। इन तीनों गुणोंसे ईश्वर प्रतिविम्बित अर्थात् आछाष्टहोनेसे अहङ्कार प्रकाश होता है। उस अहङ्कारसे सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे मन, देवता, इन्द्रिय और

भूतादि प्रकाश होते हैं। इन सब कारणावस्थामें जब ईश्वरकी वासना और स्वरूप चेतन्य नहीं पड़ता, तबही इन्हें अजीव अण्ड कहते हैं। यही ब्रह्माण्ड है। अनन्तर ईश्वर स्वरूप चेतन्य और वासनाके सहित मिलनेसे यह विश्व वा विराटदेह प्रकाश होती है। ईश्वरके कारणावस्थामें परिणतिका नाम ब्रह्माण्ड है और कार्य्यावस्थामें परिणतिका नाम विश्व है। ब्रह्माण्ड और विश्वमें इतना ही प्रभेद है।

शि०। विद्या और अविद्याका प्रभेद क्या है ?

गु०। संसारमें दो पथ हैं। इन दोनोंके बीच एकसे भोग-साधनसे जीव उन्मत्त होते है। दूसरेसे वैराग्यसाधनसे जीव मुक्तिको आशासे आश्वासित हुआ करते हैं।

भोग कहनेसे प्रवृत्ति जानो। जीव जन्म ग्रहण करके ईश्वरसे और मायासे जो द्रव्य, ज्ञान, क्रिया तथा काल, कर्म्म, स्वभावमतसे परिणामलाभ किया करते हैं, उनके बीच ये छः सम्पत्ति माता पिताको सम्पत्तिके स्वभावमतसे विकारित होकर प्रत्येक जीव नूतन स्वभावान्वित हुआ करते हैं। किन्तु जिनके अन्तरमें सत्त्वगुणको अधिकता रहती है, वह किसी न किसी मतसे वैराग्य उत्पादन करके निवृत्तिका अनुसारी होता है। किसीके स्वभावमें तमोगुणको अधिकता रहती है। इस प्रवृत्तिसे निवृत्तिपथमें जानेका चैतन्य, उपदेश वा शिक्षासे लाभ हो सकता है।

इन्द्रियादि तमोगुणपर स्वभाव होनेसे उससे वासनाके छः विकार प्रकाश होते हैं, उन्हें छः रिपु कहते हैं। जिनको तमोगुणी स्वभावमण्डित वासना इन रिपुपर हुआ करती हैं, उन्हें प्रवृत्तिशाली जीव कहते हैं। और वासना रिपु अनुसारी होनेसे ही प्रवृत्ति कहा जाता है। यह प्रवृत्ति ही भोग कहके श्रुतिमें वर्णित है। ये रिपु स्वभाविक हैं, इनका नाश सहजमें नहीं होता। इन रिपुओंसे वासना निरस्त न होकर रिपुओंको इन्द्रियोंके और

इन्द्रियोंको आनपर कर सकनेसे ही जीव निवृत्तिका पथिक हो सकता है। रिपुको आनपर करनेका नाम ही निवृत्ति है।

इस प्रवृत्ति और निवृत्तिको ही तन्त्रमें दक्षिण और उत्तरमार्ग कहा है। ब्रह्माण्डके बीच इन दोनोंके सिवाय पथ नहीं है। ईश्वर ऐसे दयालु हैं कि, इन दोनों पथोंमें ही आसक्त हो रहे हैं। ब्रह्माने इन दोनों पथोंके आश्रित ईश्वरको क्षेत्रज्ञ पुरुष कहके सम्बोधन किया। क्षेत्रज्ञ पुरुष कहनेसे जीवात्मा जानो। जीवात्मा वासनाकी परिगृहतामतसे इन दोनों पथोंके बीच भ्रमण करता है। इसीलिये कोई भी ईश्वरसे विच्छिन्न नहीं है। जो लोग प्रवृत्तिके अनुसारी हैं, वे ज्ञानरूपी दर्पणहीन रहनेसे ईश्वरकी सच्चिदानन्दमयरूपको नहीं देख सकते हैं। जो लोग निवृत्तिके अनुसारी हैं, वे ज्ञानरूप दर्पणके द्वारा ईश्वरकी सच्चिदानन्दमयी मूर्त्ति देखकर उसमें मिश्रित होते हैं।

इन दोनों पथोंके बीच प्रवृत्तिसूचक भोग वा कर्म्मसाधनपथको अविद्या कहते हैं। और निवृत्तिसूचक मोक्षसाधन पथको विद्या कहते हैं।

शि०। ईश्वर किस भावसे पुरुषऔर किस भावसे प्रकृति हैं?

गु०। ईश्वर काल, चैतन्य और सत्, ये ही त्रिशक्तिमय होते हैं। जब ये तीनों एकभूत होते हैं, तब ही ईश्वरका रूपान्तर होकर-शक्ति और वस्तु ये ही दो भेद होते हैं।

ईश्वरकी वासना चैतन्यके मेलसे जिस भावसे क्रियापर होती है, उसी भावको शक्ति कहते हैं। स्वतः वासना चैतन्यादि काल और सत्‌के सहित मिलनेसे जो अवस्था होती है, उसे वस्तु कहते हैं। एक ईश्वर ही अवस्थाभेदसे वस्तु और शक्ति हुए। शक्ति उपाय निर्धारण करके वस्तुको लेकर जिस भावसे जगत प्रकाश करते हैं, उस मिश्रित चैतन्यभावको माया कहते हैं। वह माया दो भाव

से विभक्त है। एकांश शक्तिगत माया। अपरांश वस्तुगत माया। वस्तुगतमाया पुरुष है। और शक्तिगतमाया प्रकृति है। इस प्रकृति संयोगसे पुरुषकार्य्यपर होकर जगतरूपसे परिवर्त्तित होते हैं। इसे ही श्रुतिनियम समझना होगा। वही पुरुष मायासे जो चैतन्य प्रवाह वस्तु संग्रह करके जगत्प्रकाशके उपयोगी करता है; वही चेतन्यमय स्वभाव वा पुरुष वा पौराणिक ब्रह्मा हैं। और जिस शक्तिके सहयोगसे स्वभाव क्रियापर होता है, वही चैतन्य की शक्ति वा शक्ति प्रकृति है। कोई इसे अविशुद्धा माया भी कहते हैं।

देहके मध्यस्थलको नाभि कहते हैं। पुरुषका वीर्य्य इस नाभि-स्थलके नीचे रक्षित होता है। ब्रह्मा चैतन्य प्रकृति हैं। ईश्वरसे अपने अन्तरस्थ वीर्य्यसे प्रकृति नामशक्तिका प्रकाश किया है। चतुर्विंशति तत्त्वको प्रकृति कहते हैं। उसे ही विज्ञानचैतन्य समझना होगा। चौबीस तत्त्वोंको प्रकाशक वा कारणावस्था ही ब्रह्मा वा प्रकृति है।

शि०। पुरुष श्रेष्ठ है वा प्रकृति श्रेष्ठ है?

गु० चेतन्यसे जगतका प्रकाश जिस भावसे होता है, उसे पहिले कह आये हैं। उस जड़भागको ही चैतन्यभागका स्थूलभाग समझना होगा। वह स्थूलभाग ही जड़जगत है। सूक्ष्मभाव ही ईश्वरका भाव है। एक मनुष्यदेह परीक्षा करनेसे ही स्थूल सूक्ष्म वोध होगा। निद्रा, जाग्रत, स्वप्न और तुरीय, इन चारों अवस्थाओंमें जिस अंशका अनुभव होता है. वही नित्य और चैतन्यमय है तथा सूक्ष्म कहके अविदित है। और केवल जाग्रतमें जिस अंश का अनुभव होता है, वही स्थूल वा जड़जगत है।

प्रति मनुष्यके सूक्ष्म चैतन्यको क्रिया प्रकाशके लिये उसी चैतन्यका जड़रूपसे वासना की क्रियामतसे प्रकाश हुआ है

समझना होगा। मनुष्य जीवनकी वासना जिस स्वभावसे मण्डित हो, उसकी क्रिया भी वैसी ही समझना होगा। मनुष्य जीवनकी वासना यदि पद द्वारा ग्रहण करनेको अभिप्रेत करता, तो पदसे ही उद्योत होती। किन्तु ऐसा न करनेसे नहीं होती। वासनाके तेजसे ही नेत्र देखते हैं, हाथ पांव प्रकाश होकर अपना अपना कार्य्य करते हैं। इससे भलीभांति समझा जाता है कि, सूक्ष्मसे स्थूलभाग प्रकाश हुए हैं। और सूक्ष्मभाग चैतन्यमय हैं, तथा स्थूलभाग ही उनके आवरक होकर यह जगत् वराकररूपसे प्रकाश हो रहा है।

यह वासना रहनेसे पहलेप्रकार समझा गया कि, चैतन्य और चैतन्यचालक एक शक्ति है। चैतन्य तो ईश्वर है। और चैतन्य चालकशक्ति ही माया है। जैसे वासनाके तेजसे जीव अनेकरूपी नाना क्रियावान हो रहा है, वैसे ही मायाके तेजसे चैतन्य अनेक क्रियामय होकर जगतरूपसे और जीवभावसे प्रकाश हुआ है। इससे चैतन्यके तथा मायाके मिलन क्रियाका प्रकाश अर्थात् जगत की सृष्टि ये ही समझाये गये; किन्तु इतना ही मत समझो कि, ईश्वर केवल सृष्टिमें ही व्याप्त हैं; वह अविनश्वर अर्थात् मायासे अतीत हैं।

"वह स्वयं अगुण हुए हैं" अगुण कहनेसे मायाहीन अवस्था जानो। यह किस प्रकारसे सम्भव हो सकता है, उसे प्रमाण करना दुरूह है, तब उपनिषदादिमें स्वभावका प्रमाण मिलता है।

चैतन्य और वासना विभिन्न पदार्थ नहीं हैं, किन्तु विभिन्न-क्रियामय हैं, चैतन्य जड़भावमें रूपान्तरित होने पर जड़ और चैतन्य मध्यवर्त्ती उभयके संमिश्रण चैतन्यप्रकाशितशक्तिको माया वा ईश्वरवासना कहते हैं। यदि चैतन्यक्रियापर अवस्थामें अवस्थित न हो, तो माया चैतन्यमें लय होती है। माया लय होनेसे जगत लय होता है। चैतन्यको प्रकाश और क्रियापर करनेके लिये

काल और सत् ये दोनों नित्यईश्वरांश चैतन्यको पीड़ित करके जिस स्थूल अवस्थामें आनयन करते हैं, वही माया प्रकृति है।

इससे भलीभांति प्रकाशित हुआ कि, अकेला चैतन्य ही वासनासे परिवर्त्तित है। इससे चैतन्य वासना अपेक्षा श्रेष्ठ और बहुगुणी समझा गया। जैसे सूर्य्य अपने तेजसे अपनी अपेक्षा स्थूल भूतरूप जल प्रकाश करता है और सूक्ष्मभावसे अपनेमें उसे ग्रहण करता है, वैसे ही ईश्वर चैतन्यकी आकर (खान) होते हैं। उनकी शक्तिकी भाव वासना उनमें ही लीन हो सकती है। जिस अंशमें वासना नहीं अर्थात् जगत नहीं है, वही अंश नित्य अर्थात् सर्वाधाररूपसे वर्त्तमान है। यह भावना अल्पमात्र योगभावना न होनेसे समझी नहीं जाती। क्योंकि यह सूत्रकी वस्तु नहीं है, ब्रह्म बोध वस्तु है। इसमें ही ईश्वर अगुण हुए हैं। और उससे ही सगुणभावका प्रकाश हुआ है। अधिक करके वह सगुणभाव ही जगत है, यह जगत ही उसमें अधिष्ठित समझना होगा। इसी समझनेसे ही तत्त्व बोध होगा। और तत्त्वबोध होनेसे ही प्रकृतिसे पुरुष श्रेष्ठ है, यह बोध होगा।

शि०। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र किस भावसे सगुण ईश्वरके रूपान्तर हुए?

गु०। काल, चैतन्य और सत्, ये तीनों नित्य चैतन्यमय क्रियापर अवस्था ही तीन शक्ति हैं। द्रव्य, ज्ञान, क्रिया ये तीनों ही मायाकी शक्ति हैं। वे तीनोंशक्ति मिश्रित होकर ही माया नाम एक चैतन्यांश प्रकाश हुआ करता है।

ये तीन शक्ति,—काल, कर्म्म, स्वभाव अन्य तीन चैतन्यशक्तिके सहित मिलित होकर चैतन्यमय और जड़मय जगत् प्रकाश किया करती हैं। ईसीलिये कालादि स्वभाव, द्रव्यादि स्वभावके धारक हैं। ये तीनों स्वभावपूर्ण सगुण ईश्वर उक्त माया स्थित त्रिशक्ति

ग्रहण करके यह जगत प्रकाश करते हैं, इसलिये सगुण ईश्वरको त्रिशक्तिधारी कहते हैं। उस सगुण ईश्वरसे काल और अहङ्कार शक्तिका तथा चैतन्यप्रवाहिकाशक्तिका प्रकाश होकर यह जगत सुनियमसे प्रकाश हुआ है। वह काल ही हर नामसे विख्यात है।

"सगुण ईश्वरके वशीभूत होकर ही काल हरण करता है"। सम्मिलित समष्टिसे अभीष्टभागके उद्धारको हरण कहते हैं। जैसे १० से ५ नाम संख्या उद्धार करना हो, तो दो ५ प्रकाश होनेसे पूर्ण १० संख्याकी लय होती है। वैसे ही सत् और चैतन्य मिश्रणावस्थाको काल ईश्वरके वासनाजात उद्देश्यरूपी जीव और जगत प्रकाश करनेके लिये चैतन्य और सत्को प्रयोजन अनुसार अंश करके रूपान्तरित करता है। इसीलिये कालका नाम हर है। काल सगुण ईश्वरके वशीभूत है। क्योंकि ईश्वरका सगुण न पानेसे कालको क्या सामर्थ है कि, वह कार्य्यपर हो।

ब्रह्मा उसके नियोगमतसे सृजन करते हैं। उद्देश्य वस्तुकी अवस्था प्रकाशका नाम सृजन है। ईश्वरपक्षमें जगत और जीव ही उद्देश्यवस्तु हैं। अहङ्कारसे उद्भूत चैतन्यशक्ति ही भूतादि, मनादि, इन्द्रियादि प्रकाश किया करती हैं। इसीलिये ब्रह्मा अर्थात् अहङ्कारसे उद्भूत चैतन्यशक्ति इस भूत, मन और इन्द्रियादि जगतजीव प्रकाश करती है। स्वयं चैतन्य रूपान्तरसे ब्रह्मा हुए, इसलिये वह परब्रह्मके द्वारा नियुक्त होकर यह विश्वसृष्टि करते हैं। इसी निमित्त ब्रह्माको जगतस्रष्टा कहा करते हैं।

"ईश्वर स्वयं पुरुषरूपसे विश्व परिपालन करते हैं"। सर्व्वतोभावसे आत्मवश करनेका नाम पालन है। पुरमें शयन करनेको पुरुष कहते हैं। ईश्वरने परम चैतन्यावस्थासे जीव वा आत्मारूप मायामध्यगत होकर मायाकी समस्त विभूतिको अर्थात् भूत, इन्द्रिय और मनादिको सजीव रखके आत्मवशमें रक्खा है। इसी-

लिये समझना होगा कि, वह पुरुषरूपसे विश्वपालन करते हैं। इस पुरुषरूपको विष्णु कहते हैं।

शि०। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, ये तीनों क्या भिन्न भिन्न देवता हैं?

गु०। श्रुतिमें पाया जाता है कि, ब्रह्म निर्गुण अवस्था होते हैं। निज निर्लेपस्वभावसे सक्रियभावसे वह जगतमें और जीवमें परिवर्त्तित होनेकी इच्छा करके "मैं एक होकर भी अनेक होऊंगा" ऐसी वासना की, उस वासनायुक्त कार्य्यको परिणतोन्मुख ब्रह्मावस्था को सगुणईश्वर कहते हैं। वही सगुण ईश्वर चैतन्यके, कालके और सदसदात्मिकाशक्तिके सहवासमें प्रति रूपान्तरमें, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि नाम धारण किया है।

शि०। ईश्वरने अनेक रूपसे रूपान्तरित होकर सृष्टि क्यों किया?

गु०। जैसे घटादि को मुख्य कारण मृत्तिकादि घटत्वमें परिणत होनेसे फिर मृतिकत्व नहीं रहता; वैसे ही ईश्वरने यदि जगतके सूक्ष्मकारणरूपसे परिवर्त्तित होकर नारायणरूपसे इस विश्वको अपनेमें ही प्रकाश किया, तब समझना होगा कि, स्वयं ही वह विश्वरूपमें परिवर्त्तित हुए। यदि ईश्वरका यह परिवर्त्तन नित्य हो, तो ईश्वरका ईश्वरत्व न रहे। एकबारगी प्रकाश्य जगत प्रकाशित होकर प्रलयमें विनष्ट होनेके समय ईश्वरत्व विनष्ट हो जाता है। इसी कारणसे वह सृष्टि कार्य्यादिके लिये मायाके द्वारा आवृत होकर बहुगुणान्वित हुए हैं।

शि०। क्या ईश्वर स्वयं जगतको वर्द्धन, उत्पादन और हरण करते हैं?

गु०। ईश्वर जगतके बीच साक्षिस्वरूपसे हैं। उनको सत्-छाया विद्या और अविद्याबल पाकर इस जगतको पालन करती है।

उनकी क्रतकालशक्ति उस मायाभूत विद्या और अविद्याबलके सहित मिलकर जगतको वर्द्धन, उत्पादन और हरण करती हैं।

शि०। ईश्वर किस रूपसे भिन्न जीवदेहमें परिणत होते हैं?

गु०। वह प्रलयके अनन्तर संसार सृजनकी इच्छा करके अपने वीर्य्यसे माया रूपिणी प्रकृतिको सृजन गुणवती करते हुए स्वयं अनाम स्वरूपसे उसमें प्रवेश करते हैं, और वह अनामस्वरूप निज तेजसे नाम संयुक्त भिन्न जीवदेहमें परिणत होते हैं।

शि०। कौन व्यक्ति ईश्वरत्व अभ्रान्त प्रकाशमें समर्थ होता है?

गु०। ईश्वर भिन्न ईश्वरत्व कोई भी अभ्रान्त प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि वस्तुका भाव वस्तु भिन्न कोई भी सम्यक प्रकाश नहीं कर सकता। दूसरेके प्रकाश करनेसे भ्रम होगा। क्योंकि साधक वा सिद्ध जो कोई क्यों न हो, ईश्वरके आनन्दमय भावको किञ्चित पानेसे ही उन्मत्त हो जाते हैं। कोई उस भावको प्रकाश नहीं कर सकते। यह विज्ञानसे विशेष मीमांसित हुआ है। प्रमाणसे बोध नहीं होता।

शि०। जबकि सब मनुष्य एक भावसे ईश्वरके पाल्य हैं, तब वह क्यों भक्तको दिखाई देते हैं, और भक्तिहीनको दिखाई नहीं देते?

गु०। वह पूर्णरूपसे अपने ब्रह्ममय धाममें अर्थात् चैतन्यसस्थानमें अवस्थान करते हैं। उनका कोई अंश स्वरूप चैतन्यमें मिलित हो रहा है और कोई अंश अविद्यामण्डित होकर अपना कर्मफल भोग करता है। अविद्याभावसे मनोमय देहको जिनकी वासना व्याप्त रखती है, उन्हें भक्तिहीन कहते हैं। जैसे अन्धकार प्रकाशका विरोधी है, वैसेही अविद्या विद्याशक्तिरूप ईश्वरअनुभवको विरोधी है। इसलिये भक्तिहीनके निकट ईश्वर अवस्थान करते हैं, किन्तु प्रकाशित नहीं होते। क्योंकि प्रकाशका गोपत्व ही

अन्धकार है। अन्धकारमें भी प्रकाश है, किन्तु नेत्रकी सामर्थ्यके अभावसे अनुभव नहीं होता। वैसेही ईश्वर सर्वत्र विराजित हैं। जिनने भक्ति प्रकाश जलाकर मायान्धकार दूर किया है, उनने ही परम वस्तुका दर्शन पाया है। जो लोग भक्तिरूप परमवस्तुकी ज्योति संग्रह नहीं कर सके, वे लोग अन्धकारमें रहके ईश्वरके रहते भी उस (ईश्वर) को देख नहीं सकते।

शि०। ईश्वरको यज्ञपुरुष क्यों कहा जाता है?

गु०। पद्म कहनेसे ब्रह्माण्ड जानो। पहिले ईश्वरने अपने वीर्य्यसे ब्रह्माण्ड वा कारणभाव प्रकाश करके फिर उसकी संरक्षणार्थ वा व्याप्तिके लिये निज शक्तिको प्रकाश किया। इसीलिये ब्रह्मा ईश्वरके नाभिपद्मके ऊपर प्रकाशित हुए हैं, ऐसा पुराणमें कल्पित हुआ है। ब्रह्माने प्रकाश होकर उस ईश्वरमें कितनी ही यज्ञकी सामग्री देखा। यज्ञ कहनेसे कर्म्म जानो। इस स्थलमें कारणसे कार्य्य प्रकाशका नाम यज्ञ है। इस कारणको ब्रह्माने ईश्वरका अवयव कहके स्वीकार किया। उस कारणसे ही स्थूलभावके प्रकाश हुए हैं, इसलिये ईश्वरके अवयवसे यज्ञीय सामग्री प्रकाश हुई, यह यज्ञ ही विश्वनिर्म्माण यज्ञ है।

ब्रह्मा जो पुरुषरूपके रूपान्तर हैं, उसे विज्ञानमें अहङ्कारावस्था कहते हैं। अहङ्कारसे ही सत्त्व, रजः और तमोगुणी शक्ति भेदसे यह प्रकाश्य जगत प्रकाशित हुआ है। जिस उपायसे अहङ्कार अवस्थासे मनोमय, इन्द्रियमय और भूतमय जगत प्रकाश हुआ है, उसे यज्ञ कहते हैं। ब्रह्माकी अवस्थासे ब्राह्मीशक्ति उस रूपान्तरको करती है, इसलिये उसे उस स्वभाविक कर्म्मको यज्ञ कहते हैं। यह जो सृष्टिरूपी यज्ञ है, इसमें ही ईश्वर यज्ञ-पुरुष रूपसे वर्त्तमान हैं।

पुरमें जो शयन करें, वेही पुरुष हैं; यज्ञ कहनेसे सृष्टि तत्त्व

जानो। ईश्वरका सगुणत्व इसी भावसे बोध हुआ, जैसे—सृष्टिके सूक्ष्मकारणरूपी तत्वके मध्यगत सगुण ईश्वर हैं। समझना चाहिये कि, इसी भावको व्यास ऋषिने पार्थिवयज्ञका रूपान्तर मात्र कहा है।

शि०। पार्थिवयज्ञ कैसी है ?

गु०। पार्थिवयज्ञमें बलि देनेके लिये छागादि पशु आनयन करनेकी विधि है। बलि देनेके समय पशुके कानमें यह कहके बलि देना होता है कि, "हे पशु! ईश्वरकी प्रीतिके लिये तुम्हें बलि देता हूं, पुनर्जन्ममें तुम्हें फिर पशुजन्मलाभ करना नहीं होगा"। ब्रह्माके उद्दिष्ट यज्ञमें पशुशब्दसे कर्म्म वा जीवादृष्टको समझा जाता है। क्योंकि जीवादृष्ट साधनाके विना पुनर्वार ईश्वरमें मिलित नहीं होते। इसी भावसे वनस्पति कहनेसे यूपकाष्ट वा ईश्वरपक्ष में आकर्षण प्रसारणी स्वभाव जानो। यह स्वभाव ही जीवादृष्टको उच्च नीचगामी किया करता है। सङ्कल्प चिन्ह और आसनके निमित्त यज्ञमें कुशका व्यवहार हुआ करता है। इस स्थलमें कुश कहनेसे परिणाम कारणशक्ति वा नियम है। देवयजन स्थान कहने से भूतादि जानो। काल कहनेसे ह्रास वृद्धिकरणशक्ति है। वस्तु कहनेसे नैवेद्यकरण पात्र हैं। इस स्थलमें जीव स्वभाव है। स्वभावकी परिणाम क्रिया औषधि और स्नेह रसादि हैं। औषधि कहनेसे गन्ध, स्नेह कहनेसे घृत, रसादि कहनेसे मिष्ठ तिक्तादि हैं। यज्ञभूमि संस्कार कारणवस्तुको मृत्तिका और गोमय कहते हैं। इस स्थलमें माया स्वभावको मृत्तिका जाना गया। क्योंकि जगतके प्रत्येक संस्कार माया द्वारा ही हुआ करते हैं। जल भी मायारूपी है। क्योंकि जलमें निवृत्तिवाचक संस्कार हुआ करता है। ऋक् कहनेसे सर्व्वकारण निर्णायक वा तत्त्व बोधक उपाय जानो, साम कहनेसे उस उपाय बोधक उपदेश है। यजुः कहने

से उस उपाय और उपदेश मिश्रित कर्म्म है, ईश्वरपक्षमें वा अहङ्कारपक्षमें तीनों श्रुति सूक्ष्मतम सूक्ष्म और स्थूल ये ही त्रिभाग युक्त परिवर्त्तनीय तत्त्वसमूह मात्र हैं। चातुर्होत्र मिश्रणशक्ति वा स्वभाव है। ज्योतिष्टोमादिको इन्द्रियदेवताका सूक्ष्मभाव कहके समझना होगा। मन्त्रादिको उनकी शक्ति कहके जानना होगा। दक्षिणाको उसका परिणाम और व्रतको उसका कर्म्म कहते हैं। देतानुक्रमको इन्द्रिय कहते हैं। कल्प और सङ्कल्पको मनकी सूक्ष्मावस्था कहते हैं। सात्विक, राजसिक, तामसिक उपायभेदको गति कहते हैं; उसके परिणाम स्वभावको मति कहते हैं। प्रायश्चित सम्पर्कको लय कहते हैं। ब्रह्माने इसी प्रकार जगत्प्रकाशक उपाय वलोको ही यज्ञोपयोगी वस्तु कहके वर्णन किया।

शि०। मनुष्य किसे कहते हैं?

गु०। जो जीवजाति सङ्कल्प और विकल्पात्मक है, उसे मनुष्य कहते हैं। मनोरूपी आत्माकी सक्रिय अनुभवशक्ति जब विषयपर हुआ करती है, उसे विकल्पात्मक मन कहते हैं। और मनोरूपी आत्माकी सक्रिय अनुभवशक्ति जब तत्त्व वा चैतन्यकी अनुसारी हो कर स्थिर होती है तब संकल्पात्मक मन कहते हैं। इन दोनों अवस्थाओंका मन जिस जीवदेहमें है, वे ही मनुष्य नामसे विज्ञानसे वाच्य हैं।

शि०। भुवन शब्द क्या है?

गु०। वैज्ञानिकलोग इस देह और जगत दोनोंको ही ब्रह्माण्ड कहते हैं। उसके बीच क्षुद्र और वृहत् इस दो विशेषण शब्दका प्रभेद रखते हैं। देहको क्षुद्रब्रह्माण्ड कहते हैं। जगतको महाब्रह्माण्ड कहते हैं। इन दोनों ब्रह्माण्डको हो भुवन कहते हैं। वे दोनों भुवन दिग्विनिर्णयार्थ त्रिधा हुआ करते हैं। उर्द्ध भागको स्वर्ग कहते हैं। मध्य भागको मर्त्यकहते हैं, और अधोभागको पाताल-

कहते हैं। इस भुवनको अंशमें रखनेके लिये विज्ञानविदोंने चौदह भाग किया है। जगतको विषुवरेखाके मध्यस्थ करके उर्द्ध स्थिर करते हुए ऊपरस्थ भाधेको सात भागमें और नीचे को अर्द्धभागमें भाजित किया है। महीतलसे रसातल सप्तांश है। नभोमण्डल से सत्यलोक सप्तांश हैं। देहका भी ठीक ऐसाही भाग है।

शि०। देहका चौदह भाग किस प्रकार का है?

गु०। देहके मस्तकको स्वर्ग कहते हैं। कटि पर्य्यन्तको मर्त्य कहते हैं। पदतल पर्य्यन्तको पाताल कहते हैं। यह त्रिभुवन ही चौदह अंशमें भाजित है। उसके बीच कटिदेशको विषुवरेखा करके नाभिस्थलके ऊपरमें सप्तलोक स्थिर हुए हैं। उस सप्तलोक का शेष अंश ही सत्यलोक है।

इस देहके वा जगतके जिस अंशमें सर्व कर्त्तृत्व अवस्थान करता है, उसे ही कोष कहा जाता है। यह कोष अवस्था भेदसे पांच प्रकारका है। मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, अन्नमय और आनन्दमय।

अन्न और प्राणमय दोनो कोष जिस सूक्ष्मचैतन्यके पालनसे पालित होते हैं, उसे अहङ्कारसृष्टि वा अहङ्कार चैतन्यांश कहते हैं। विज्ञानमयकोष जिस चैतन्यांशसे पालित होता है, उसे बुद्धिसृष्टि वा बुद्धि चैतन्यांश कहते हैं। आनन्दमयकोष जिसके द्वारा पालित होता है, उसे चित्‌चैतन्य वा चित्‌चैतन्यांश कहते हैं। मनोमयकोष जिसके द्वारा पालित होता है, उसे मानस-चैतन्यांश कहते हैं।

उस विज्ञानमयकोषसे ही जीव सर्वज्ञत्वलाभ करता है। इसी स्थानके वा विज्ञानमय स्वभाविक तेजकी सहायसे उपस्थित कर्मोंमें बुद्धि, अनुकरण क्षमता प्रभृति समस्त क्रिया ही उद्भव होती हैं। जीवात्मा इसी अंशमें परिशुद्ध रहता है। और उस विज्ञान अवस्थामें

रहनेसे जीवात्मा अपनेको स्वरूप बोध करके अभिमान विवेचना कर सकता है। उस विज्ञानमें तत्त्वमसि महावाक्य ध्वनित होती है। अर्थात् जीव सज्ञानसे परमात्मामय हुआ करता है। जैसे पर्वतके ऊपर रहनेसे नोचेके जीवगण क्या करते हैं और मैं कितने ऊपर हूं, यह अभिमान होता है। वैसे ही प्राणादि अनन्न चारिकोषस्थ जीवांश संसार प्रकृतिमें रहके क्या करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं वा नहीं; उसे विज्ञानमय कोषस्थ जीवात्मा विज्ञानकी सामर्थसे समझ सकता है। इस विज्ञानमयकोष को ही सत्यलोक कहते हैं।

शि०। साधना करनी हो, तो प्रथम साधकका नियम क्या है?

गु०। योगशास्त्रके नियम, प्रथम साधकके प्रति ऐसे नियम हैं। साधक पद्मासन वा सिद्धासनसे बैठकर नयनदृष्टि नासिकाके अग्रभागमें स्थिर रक्खे। नयन ही वाह्येन्द्रियके बीच मायाभाव बोध करते हैं। नयनके सहायसे मन सहजमें ही मुग्ध होता है। उससे ही चित्तकी चञ्चलता वर्द्धित हुआ करती है। इसलिये पद्मासन वा किसी आसनसे बैठकर इन्द्रियोंको निरोध करके चित्तको एकी भावापन्न करनेके लिये नेत्रदृष्टिको नासाग्रभागमें स्थापन करनी होती है। यह कौशल महाविज्ञानसाध्य है !! चित्तको विषयान्तरसे आकर्षण करना ही नासाग्रमें दृष्टिसंरक्षणका उपदेश है। इस स्थलमें बहुतेरे लोग कह सकते हैं कि, तब नेत्र मूंदनेसे क्या विषयान्तर दृष्टि नहीं होती। वह भ्रम है। स्वप्नमें भी विषयान्तर दृष्टि होती है। जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत करके नेत्रको एक स्थानमें आकर्षित करना होगा। उसकी सहायसे चित्त अनन्न भावनामें धावित नहीं हो सकता। कोईके क्षणभर आंख मूंदे रहने पर उसके मनमें अनेक भावना अनुभूत होती हैं। किन्तु नेत्रदृष्टि यदि एक वस्तुमें संयोजित हो, तो मानसिकक्रिया एक-

बारगो उस एकवस्तुमें लिप्त हुआ करती है। अन्य स्थान स्थित किसी एक वस्तुमें नयनदृष्टिको एकभावसे रखना महा आयाससाध्य है। क्योंकि वहां अन्यवस्तु नयनगोचर होनेकी सम्भावना है। किन्तु नासाग्रमें दृष्टि स्थिर रखनेसे नासिकाके अग्रभागके सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं देता। चित्तके एक भावकी प्रथमावस्था ही नासाग्र-दृष्टि-संरक्षण है।

शि०। महाजीवन्मुक्ति कैसी है?

गु०। इस जीवन्मुक्तिका क्रम महामुनि शङ्कराचार्य्यने स्वप्रणीत भाष्यमें विशेषरूपसे लिखा है। उसका किञ्चित आभास इस स्थानमें देते हैं।

जब लोग ईश्वरकी भक्ति स्थिर करके उसमें अपनी अपनी आत्मा लीन करनेकी इच्छा करेंगे, तब निज देहको पहिले नीरोगी तथा स्वस्थ्य करें। अर्थात् जो लोग किसी प्रकारकी मादक द्रव्य सेवन करनेसे हीनबल, रतिक्रियासे बलहीन हुए हैं, उनसे यह कार्य्य नहीं होगा। जो लोग बलहीन होनेसे कफजात, वायुजात, यक्ष्मा, खांसी, दमा प्रभृति रोगाक्रान्त हैं, उनसे यह साधना न होगी। इस साधनाके लिये यौवनावस्थासे नियमित रतिक्रिया करके शरीरको सतेज रखकर मनुष्यको वृद्धावस्थामें उपस्थित होना होगा। जिस समय लोग भक्ति और विश्वासकी सहायसे आत्मज्ञानसे ईश्वरको अनुभव कर सकेंगे, उसही उस आनुभाविक ईश्वरमें अपनेको समर्पित करके जीवन्मुक्त होनेके लिये उसी समयमें चेष्टा करेंगे। उसका क्रम यह है;—

विश्वास स्थिर होनेसे स्वस्थ्यदेही वैराग्य अवलम्बनके अन्तमें निरुद्धचित्त होकर समस्त इन्द्रियोंको मनके अधीन करे। इच्छाशक्तिसे सब इन्द्रियोंका प्रकाश है। उस इच्छाशक्तिको रिपुहीन करके मनमें लय करना होगा। मन केवल मात्र स्मृतिस्थान है।

इच्छाहीन होनेसे जगतकी समस्त आशा नष्ट होती है। वासना क्षय होनेसे मन जो इतने दिनोंतक चञ्चल था, वह स्थिर होता है। मन स्थिर होनेसे उसमें जगत और मैं, ये ही स्मृति रहती है। उसे नाश करके उस मनको प्राणमें आकर्षण करना होता है। प्राणका धर्म भूख और प्यास है। जब इच्छा और स्मृति विनाश हुई, तब भूख प्यास किस प्रकार प्रकाश हो सकती है? यदि कोई मद्य पीके उन्मत्त हो, तो उसकी वाह्यिक चेष्टा नहीं रहती। क्योंकि उसकी इन्द्रियां उसी समयमें मनमें आवद्ध होती हैं; अर्थात् मादकताकाका तेज उसके मनको आच्छन्न कर देता है। इसलिये उसकी इच्छा प्रकाश नहीं होती। इच्छा प्रकाश न होनेसे उसकी भूख प्यास प्रकाश नहीं होती; वल्कि उन्मत्तकी इन्द्रियक्रिया न रहने से उसे आघात करने पर वह उन्मत्तता नाशसे भी उसे अनुभव नहीं कर सकता। उसी प्रकार विश्वासके तथा वैराग्यके तेजसे इच्छा को निरोध करनेसे ऐसा कोई कार्य्य नहीं है, जिसे मनुष्य न कर सके। इतना हो नहीं, वलिक गलेमें रसरी लगाने वा विषभक्षण करनेमें भो कुण्ठित नहीं होता। यदि कोई गलेमें रसरी लगाकर वा जलमें डूबकर देह त्याग करनेके उद्योगी किसी व्यक्तिसे पूछे कि, इन सब समयमें उसके मनकी अवस्था किस प्रकार थी, तो वह ठीक कहेगा कि, मैं इच्छाहीन था, और उस मानसिक स्मृतिसे मरनेका सङ्कल्प किये था। चाहे जिस किसी रिपुके वलसे इच्छा को वशीभूत कर सकनेसे मनुष्य असमसाहसिक कार्य्य कर सकते हैं। उसी प्रकार मुक्त होनेको कृतसङ्कल्प होकर उस भक्ति और विश्वासके तेजसे इच्छाको निरोध करनेसे वैराग्यका आश्रय प्राप्त करता है। उस समय स्मृतिमें एकमात्र ईश्वरके सिवाय अन्य भावना नहीं रहती। पहले कहा है कि, प्राणका धर्म भूख और प्यास हैं। इस जीवदेहमें श्वास प्रश्वास ही भूख और प्यासकी

प्रकाशक हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्च-वायु ही देह पालन करते हैं और देहको नीरोग रखते हैं। इन सब वायुओंके बीच प्राण और अपान श्रेष्ठ हैं। अन्य सब वायु इन दोनों के ही अधीन हैं। इन दोनोंका निरोध कर सकनेसे देहका नाश होता है। जीवन्मुक्तिके इच्छुक व्यक्ति पुरातन देह त्यागकर किस भावसे ईश्वरमें लीन होते हैं, उसे दिखानेके लिये यह प्रमाण देते हैं कि, कदलीवृक्षमें फल प्रकाशित होने पर जैसे वृक्षदेह क्रम क्रमसे स्वयं ही लय होता है, वैसे ही प्राण और अपानको मनके सहित निरोध करनेसे स्मृतिके सहित चैतन्य एकत्र होता है। और उस संयत अवस्थामें देह लय हुआ करती है।

शि०। इन सब योग अवलम्बनसे देहको कैसा कष्ट होता है?

गु०। मुक्त पुरुष और संसारी पुरुष दो अवस्थाके लोग हैं। संसारी देहमें माया रखके उसमें चैतन्य रखते हैं। मुक्त पुरुष देह से चेतन्य लेकर मनमें दान करते हैं। उससे जो कुम्भक या प्राणायामादि साधनके जो कष्ट हैं, उनका अनुभव नहीं होता। जैसे निद्रित व्यक्ति चेतन्यको मनमें रखकर देहको विश्राम कराता है, उस अवस्थामें देहको काटनेसे वह जान नहीं सकता; वैसे ही मुक्त व्यक्ति किम्वा योगी देहसे चेतन्य लेकर मनमें स्थापन करता है।

शि०। देहनाशकी क्रिया वा अवस्था कैसी है?

गु०। पहिले कहा गया है कि, श्वास प्रश्वाससे ही भूख प्यासका उदय होता है। उसे नाश करना और प्राणको वशीभूत करना हो, तो श्वास प्रश्वासको रोध करके प्राणायाम अवलम्बन करना होता है। उस प्राणायामके बलसे भूख प्यासका नाश होकर एकमात्र चैतन्ययुक्त स्मृति रहती है। अपानवायुकी क्रियासे देहजात मल मूत्रादिका त्याग होता है। मल मूत्र त्याग करनेसे देह सूनी होती है और ऐसा होनेसे पुनर्वार जो अभाव

होता है, उससे ही प्राणकी भूख प्यासकी आवश्यकता हुआ करती है। मल मूत्र त्याग न करनेसे देहके बीच अभाव नहीं होता। अभाव होनेसे ही पुनर्बार प्राणका प्रकाश रुकता है और प्राणसे ही समस्त इन्द्रियचेष्टा प्रकाश होकर साधना भङ्ग हो सकती है। इसी प्रयाससे अपानको रोध करना होता है। जिस उपायसे प्राण रोध हुआ करता है, उसी प्रकारसे निश्वास रोध करके अपान मूलमें निज पदके गुल्फ (एड़ी) को स्थापन कर अपानजयासनसे उपवेशन करनेसे अपान जय होता है। अर्थात् भूख प्यासका प्रकाश और मूत्र पुरीष त्याग नाश होता है। इन सब क्रियाओं के न होनेसे देहके बीच रहनेवाले प्राण और अपानवायु वहिर्गमन करनेको चेष्टा करते हैं। वाहिरकी स्निग्ध वायु अन्तरमें जाकर लघु होकर वह वाहिर होनेको चेष्टा करती है। उन प्राणापान वायुके मिलित होनेसे समानवायु उनके सहित मिलित होती है। समान-वायुमें आहारीयको सारासारसे विभाग किया करता है। समान-वायु प्राणादिमें मिश्रित होकर उर्द्धमें आनेको चेष्टा करता है। इसी अवस्थामें योगीको और रोगी दोनोंको समान अवस्था हुआ करती है, नहीं तो मृत्यु न होती। जब रोगीके रोगवशसे प्राण और अपान क्रिया मिलित होकर समानको पीड़न करके उर्द्धगामी होती हैं, उसे नाभिश्वास कहते हैं। योगी पीड़ाहीन होकर चैतन्यके सहित मनको लिया करते हैं. उन्हें देहविनाशजनित क्रिया बोध नहीं होती। जैसे उन्मत्तको वाह्यिक पीड़न वा आन्तरिक पीड़न बोध नहीं होता, मनमें ही अनुभव क्रिया होती हैं। वही स्मृति यदि चैतन्यमें लय हो, तो अनुभव क्रिया किस प्रकार होगी? योगीलोग देहनाशकी क्रियाको इसी प्रकार कौशलसे स्थिर करनेके अनन्तर भावनाको स्थिर किया करते हैं।

शि०। योगीलोग देहनाश करनेके समय जो भावना मनमें स्थिर करते हैं, वह भावना कैसी है?

गु०। यह जो चैतन्य सम्मिलित मनकी कथा कहा है; वह मन जब तक चैतन्यके सहित देहमें रहेगा। तब तक अल्प परि-माणसे जीव जड़के स्मृति रहेगी। उसे नाश करनेको उस स्मृतिमें चैतन्यबलसे योगी यही भावना करते हैं। यह जो चैतन्य स्वरूप आत्मा है—जिसके आश्रयसे मनकी स्मृतिक्रिया और जीवात्माका शरीर ग्रहण होता है। ये ही ब्रह्म हैं। इस चैतन्यसे ही देह की क्रिया और मेंरूपी अहङ्कार हुआ करता है; इसलिये "मैं" चैतन्यका नामान्तर मात्र है। और मैं भी ब्रह्म हूं। यह देह पञ्चभूतके सहित मिश्रित है। वे पञ्चभूत फिर सत्त्व, रज, तमो-गुणके वशीभूत हैं। वे फिर अविद्याके वशीभूत हैं और अविद्या विद्याके वशीभूत है।

शि०। देह किस भावसे गठित है?

गु०। देह काल धर्मकी सहाय और मायाके मध्यस्थ अविद्या प्रकृतिकी सहायसे पञ्चभूतरूपसे परिणत होकर नाना भावसे गठित है। जब तक जगत प्रकाशित नहीं होता, तब तक ईश्वर निज चैतन्यशक्तिके द्वारा जगत्प्रकाशक अणु परमाणु समूहको चेतन करके प्रकृति नाम देते हैं। उस प्रकृतिमें दो स्वभाव भी देते हैं। उनमेंसे एक अविद्या और दूसरी विद्या है।

शि०। अविद्या और विद्याका स्वभाव कैसा है?

गु०। अविद्या और विद्या दोनों ही त्रिगुणविशिष्टा हैं। अविद्या जिस भावसे सत्त्व, रज और तमोगुण धारण करती है, उससे इन्द्रियक्रिया और देहक्रिया साधित होती है। प्रकृति ईश्वर की चैतन्यशक्ति युक्त अणु परमाणुमात्र हैं। उस प्रकृतिस्थ अविद्या स्वभावसे जागतिक क्रिया हुआ करती हैं। जिससे काल धर्मके

तीनों गुणोंका आविष्कार होता है। काल धर्म्मसे आयु स्थिर हुआ करती है। इसलिये आयु स्थिर होनेसे उसको पालन, वर्द्धन और हरण क्रिया साधित हुआ करती हैं। ये तीनों गुण अविद्या स्वभाव पाकर प्रकृतिस्थ अणु परमाणु संयोजनसे पञ्चभूतमें आख्यात होते हैं। उस पञ्चभूतसे हो देह है। तब देह लय होनेसे पञ्चभूत में मिलेगो, पञ्चभूत अविद्यामें मिलेंगे। इस अविद्याको ही व्यास जोने "एकत्व" कहा है। उस अविद्या स्वभावको समझ कर मुक्त व्यक्ति विद्याके आश्रयसे "मैं कौन हूं" जान सकते हैं। जैसे स्वप्न में वाह्यिक अनुभव दूर होकर जीवात्मा अपनेसे ही अनुभूत होता है; वेसे हो अविद्या ज्ञानसे समस्त अविद्याकी कौशलरूपी इन्द्रियादि युक्त देहको जीव त्याग करता है। उस त्यागकालमें मुक्त जीवकी स्मृति कहां जाती वा किसे अनुभव करनेकी इच्छा करती है? एकमात्र परमात्माको। परमात्माको जानना हो, तो स्मृतिकी सहायसे प्रकृतिको अविद्याके त्यागसे जब स्वयं हो विद्या प्रकाश होती है; तबही पूर्ण ज्ञान प्रकाश होता है। उसो ज्ञानवलसे जिसे अबतक चैतन्य कहके कल्पना की जाती थी, उसे आत्मा कहके जाना जाता है। आत्माकी पूर्णता ही ईश्वर है। स्मृति सहित जीव आत्मामें मिलित होकर जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नदृष्ट विषयमें अपनेको आसक्त वोध करता है, उसे भेदज्ञान नहीं रहता; वैसे ही जीव-स्मृतिमें ब्रह्म और आत्माको एक हो सूर्य्य किरणवत् देखा करता है।

शि०। इस लयके अनन्तर क्या होता है?

गु०। पूर्व्व साधनामें देहत्यागकी दशा कही गई है। देह अपने स्वभावसे स्वयं ही नाश हुआ करती है। चैतन्य मनमें रहने से मनका अनुभव नहीं होता। वह स्मृतिवलसे अपनेमें स्वयं इतना ही समझ सकता है। इस लयके अनन्तर जो क्या होता

है। उसे मैं वा मेरे समान संसारिक नहीं कह सकते हैं? क्योंकि इसकी अपेक्षा अधिक अनुभव नहीं होता।

शि०। मुक्त होनेसे जो फिर देह धारण नहीं होता, वह किस प्रकारसे विश्वास होगा?

गु०। जैसे एक चनाको अग्निमें न भूनकर भूमिमें डालनेसे उस में अंकुर होता है। किन्तु भूनकर जमीनमें डालनेसे उसमेंसे अंकुर नहीं होता; वैसे ही यह जीवात्मा आत्माका तेज है। वह तेज यदि पञ्चभूतका मिश्रण त्याग कर महातेजरूपी परमात्मामें मिलित हो, तो उसका अंकुर नहीं होता। पञ्चभूत मिश्रित जीवात्माका तेज लेकर ही जन्म होता है। पञ्चभूतसे वह तेज अपहृत होनेसे फिर उस तेजका कदापि प्रकाश नहीं होता। पञ्च-भूत अविद्यामें मिलकर पुनर्वार अन्य जीवात्माके सहयोगमें कार्य्य-कारी होते हैं। किञ्चित प्रणिधान करके समझनेसे ज्ञानीमें समझ सकेंगे। प्रतियुगमें धर्म्म एक एक अंश हीन होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, ये तीनों युग बीत गये हैं। इसी निमित्त धर्म्मका तीन अंश हीन हुआ है। इस समय कलि उपस्थित है।

शि०। कलि शब्द क्या है?

गु०। कलि कहनेसे अधर्मयुक्त उपाय जानो। धर्म्मकी जो हिंसा करे, वही कलि है। स्वभाववशसे कलिमें सबही अस्वाभाविक हो जायेंगे। वे किसीके निवार्य्य नहीं हैं। उस समयमें ज्ञानरूपिणी महाविद्या अविद्यावशसे अज्ञानमण्डिता होती है। कालधर्म्मसे मनुष्योंके स्वभावकी उत्पत्ति हुआ करती है। जब मायाधर्म्मसे काल-धर्म्म पृथक् होनेकी इच्छा करता है। तब मनुष्योंके स्वभावका विप-रीतभाव हुआ करता है। यह देह प्रकृतिधर्म्मसे चालित है। जब यह देह बलहीन तथा स्वास्थ्यहीन होती है, तब मनुष्योंमें काल-धर्म्मका वैलक्षण्य उपस्थित होता है। उससे पहिलेकी भाँति

स्वभाव नहीं रहता। इसीलिये वृद्धावस्थामें वा रोगमें माया, ममता नाश हुआ करती है। कालधर्म्मसे चेष्टाका आविष्कार होता है। उस चेष्टासे इन्द्रिय प्रकाश होती हैं। उन इन्द्रियोंको हीनतेज करनेसे ही देह अकर्म्मण्य हो जाती है। आलस्य, निद्रा, भय, मैथुन प्रभृतिकी अवैधक्रियासे ये इन्द्रियां तेजहीन होती हैं। रात्रिमें निद्रा और दिनमें वृथा चेष्टासे ये सब अप्रिय आलस्यादि उद्भव होते हैं। पृथिवीका पालनकर्त्ता धर्म्म है। प्रजागणोंके स्वधर्म्ममें रहनेसे पृथिवीकी कोई शोभा नष्ट नहीं होती। अधर्म्म प्रकाश होनेसे समाजमें अनेक प्रकारके कलह होते और व्यभिचार से पृथिवीकी ह्रासावस्था उपस्थित होती है।

शि०। क्या मन कालधर्म्मके वशीभूत है?

गु०। मन और चैतन्य कालधर्म्मके तथा प्रकृतिके वशीभूत नहीं हैं, किन्तु आवृत हैं। वे सब युगोंमें ही समान कार्य्यकर हो सकते हैं।

शि०। क्या कालधर्म्मसे ही जीवोंका स्वभाव हुआ करता है?

गु०। कालधर्म्म, मायाधर्म्म, इन दोनो धर्म्मसे ही जगदीय जीवों का स्वभाव हुआ करता है। स्वभाव भी और एक धर्म्म है। पृथिवी प्रलयके जितनी सन्निहिता होती है। उतना ही कालधर्म्म और प्राकृतधर्म्मका वैपरीत्य हुआ करता है। यह विज्ञानसे विशेषरीतिसे प्रमाणित हुआ है। जबकि कालधर्म्म और मायाधर्म्मसे मनुष्यों के स्वभावकी उत्पत्ति है; तब वह भी विपरीताचरणसे व्याप्त होता है। उससे सुनियम वा प्रवृत्ति निवृत्तिधर्म्मका विनाश होता है। मनुष्यलोग यथेच्छाचारी हो जाते हैं। इसे ही कलिका आवेश कहते हैं। इसी समयमें लोगोंके यज्ञहीन होनेसे मेघ (बादल) जलकी वर्षा नहीं करते।

शि०। यज्ञ किसे कहते हैं?

गु०। जागतिक क्रिया मात्रको ही यज्ञ कहते हैं। तिनसे ही जगतकी सब क्रिया चलती हैं।

कर्म्म सहयोगसे मनकी तामसिक वृत्तिको सन्तुष्ट करके ईश्वर को कर्म्मफल समर्पण करणोपाय है। जो लोग यशकामी होवें, वे यज्ञ करें। यशकामी होनेसे ही निष्कामभावसे यज्ञ आचरण कर सकेंगे, नहीं तो यशलाभ होनेको उपाय नहीं है। यश भी सामान्य पदार्थ नहीं है। वासनाको उन्नतिविषयक चैतन्यमय वस्तु समझना होगा।

शि०। मुमुक्षु लोगोंको कौनसी उपाय अवधारण करना उचित है?

गु०। तमो और रजोगुणके मोहन हेतु शब्दमय वैदिक नियम से उपासना और तदनुयायिक फललाभ त्याग करके वैदिक अर्थमें मनोनिवेश पूर्व्वक वैराग्यकी सहायसे शुद्धात्मा होकर अविकार-चित्त होना ही उचित है; और इससे ही जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

एक दृढ़ वासना करके शयन करने पर स्वप्नमें जैसे उस वासना-नुयायिक चित्र दिखाई देते हैं और मिथ्या ही उन चित्रोंका सम्भोग होता है। जागने पर फिर स्वप्नसुख अनुभव नहीं होता। वैसे ही तमोगुणी और रजोगुणी वैदिक नियमसे शब्दांश और प्रमाणांश-रूपी उपासना यज्ञादिकर्म्म करके उसका फललाभ मिथ्या ही लाभ करता है; क्योंकि उससे वासनामतसे फिर इस संसारमें आकर सांसारिक नियमके वशवर्त्ती होना होता है। तब फिर संसार-शक्तिसे उत्थित कर्म्मफलसे क्या सुख हुआ? इसीलिये कहते हैं कि, मुमुक्षुगणोंके पक्षमें वैराग्य ही प्रधान उपाय है। इसलिये मुमुक्षु लोगोंको चाहिये कि, कर्म्मफलोंको त्यागकर वैराग्यकी सहायसे जीवन्मुक्त हों।

शि०। कर्म्मफल त्याग करनेसे देहनाश होनेकी भी तो सम्भावना है?

गु०। कर्म तथा उसके फलाफलके विना भी देह धारण की जाती है; और उसी भावसे देह धारण करना पहिलेकी अपेक्षा सुखकर हैं। मन इस देहका कर्त्ता है। उस कर्त्तारूपी मनकी ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्म्मेन्द्रिय नामके बहुतेरे भृत्य हैं। वे ज्ञानेन्द्रियां मनरूपी भूपतिके प्रधान किङ्कर हैं; वे मनके सर्वदा निकट रहती हैं और वे कर्म्मेन्द्रियां मनरूपी भूपतिको निकृष्ट किङ्कर हैं; वे मन से दूर रहती हैं। मन की अनुज्ञा प्रकाश होनेसे पहिले ज्ञानेन्द्रियां वहन करती हैं; उनके निकट कर्म्मेन्द्रियां उस अनुज्ञाको पाके उस की अनुसार कार्य्य करती हैं। इस क्रियाको ही कर्म्म कहते हैं। कर्म्म दो श्रेणीमें विभक्त है। एक वाह्यिक दूसरा आभ्यान्तरिक। वाह्यिक क्रियामें मनकी अनुज्ञाका आन्तरिकभाव ज्ञानेन्द्रियोंकी सहायसे कर्म्मेन्द्रियां वाहिरमें प्रकाश करती हैं। आन्तरिक क्रियासे कर्म्मेन्द्रियां वाहिरसे विषय ग्रहण करके ज्ञानेन्द्रियोंकी सहायसे अन्तर में प्रकाश करती हैं। ग्रहण करना (लेना), चलना, आहार करना, ये सब वाहिरी क्रिया हैं। क्योंकि वे मनकी अनुमतिसे प्रकाशित हुई हैं। विचार करना, चिन्तन करना, ये सब आन्तरिक क्रिया हैं; क्योंकि वे वाह्य विषयोंसे संग्रहीत हुई हैं। इन दोनों श्रेणी की क्रिया फिर तीन भावसे क्रियावान होती हैं। सात्विक, राजसिक, और तामसिक। ये ही तीन प्रकारके कर्म्म जगतमें प्रकाशित हैं। माया, मोह, स्नेह, ममता, दुःख और सुखानुभव; ये सब ही तामसिक कर्म्म हैं। आत्मीयोंके मायाबन्धनमें रहके किसीमें भी नहीं हैं;—इस भावके कर्म्मको राजसिककर्म्म कहते हैं। केवल दैवके ऊपर देहसंरक्षणका भार देकर ईश्वरमें तन्मित होनेको सात्विककर्म्म कहते हैं। यह जो कर्म्मोंको कथा कही है, उन प्रत्येकके फल हैं। जैसे सुविज्ञ कृषक भूमिको सार आदिके सहारे उर्व्वरा करके उसमें बीज बोके सुफल ग्रहण करता है। अज्ञ

रूपक वैसा नहीं कर सकता। वैसे ही वे राजसिक और तामसिक कर्म्म भी जिस देहमें क्रियावान होंगे ; इन्द्रियां मनके सहित जिस भावसे परिश्रान्त होंगी ; उससे भी फल होगा। मन इन्द्रियोंको सात्विकभावसे परिश्रान्त करनेसे इस देहमें सुफल ग्रहण किया जाता है। हमने जो कर्म्मफलकी निन्दा किया। उन्हें व्यर्थ तथा मायायुक्त राजसिक, तामसिक कर्म्म और उनके उपयोगी फल जानो।

यह सात्विकी अनुष्ठान मायासङ्गीसे होना बहुत दुःसाध्य है। इसीलिये कहा है कि, जो समीचमान व्यक्ति मुक्तिरूपी आनन्द-लहरीमें तरनेकी इच्छा करें, वे मानो राजसिक तथा तामसिककर्म्म और उनकी फलके प्रति अममत्त अर्थात् अनासक्त और व्यवसायबुद्धि युक्त अर्थात् इसमें कुछ भी नित्यसुख नहीं है, ऐसा ज्ञान होगा। इसी प्रकार अनासक्त होनेसे धीरे धीरे राजसिक और तामसिक वृत्ति साधकके हृदयसे दूर होकर सात्विकभावका उदय होता है। इस जगतमें ईश्वरके प्रति विश्वास करनेसे क्या अलभ्य हो सकता है ? कुछ भी नहीं।

ईश्वरने इस देह संरक्षणकी समस्त उपाय रक्खा है। देखिये, ऐसी अनन्त सीमावान पृथिवीमण्डलके रहते दुग्धफेननिभ कृत्रिम शय्या के लिये प्रयास क्यों करना ? ऐसे युगलबाहुरूपी उपाधानके रहते रूईसे बनी हुई कोमल तकियाका क्या प्रयोजन है ? ऐसे दिग्वस्त्र और वृक्ष बल्कल रहते उत्तम दुकूल वस्त्रका क्या प्रयोजन है ?

यदि कहो कि वस्त्रके बिना उलङ्ग रहना लोकालयमें अवैध है ; और बल्कल, स्थान, जल, इन सबके लिये भी जांचनेकी आवश्यता हो सकती है !! तो इस बातकी भी मनमें चिन्ता मत करो। क्योंकि लोकालयोंके रास्तोंके बीच क्या फटे पुराने वस्त्र पड़े नहीं रहते। ऐसे जो सदाशय वृक्षावली हैं, उनके निकट सुफल भिक्षा करनेसे क्या वे भिक्षा नहीं देते ?

ऐसी जो अतलस्पर्शी जलशाली नदी और सरितादि हैं, वे क्या शुष्क होती हैं? वे जलप्रदान नहीं करतीं? ऐसे जो असंख्य पर्व्वतोंमें गुहा आदि रहनेके स्थान हैं,-वे क्या वैष्णवोंके लिये रुद्ध हुए हैं? अधिक और क्या कहें, वह जो अजित देवता श्रीहरि हैं, वह क्या अपने भक्तोंकी रक्षा नहीं कर सकते। यह सबजानके भी बुध-वृन्द तब क्यों धनमदके अहङ्कारसे अन्ध धनियोंकी भजना करते हैं?

शास्त्रमें है और नारदपञ्चरात्रमें विशेषरूपसे लिखा है तथा महाप्रभु चैतन्यदेवका भी यह स्थिरमत है कि—जो लोग विष्णुको आत्मसमर्पण करके वैष्णव हुए हैं, वह भोजन और आच्छादनके लिये क्षणभर भी चिन्ता न करें, क्योंकि वह विष्णु ही विश्वम्भर अर्थात् विश्वपालक हैं। इसलिये जो विश्वको पालन करनेके लिये प्रस्तुत हैं, वे क्या भक्तगणोंकी उपेक्षा करेंगे।

शि०। वैष्णव किसे कहते हैं?

गु०। जो लोग विष्णुसे भिन्न अन्य किसीको भी नहीं जानते और आत्मविस्मृति होकर अपनेको भी विष्णुमय चिन्तन करते हैं, वे ही वैष्णवपद वाच्य होते हैं। यदि प्रमाण चाहो, तो हमारे मतसे प्रह्लादको स्मरण करो। चैतन्यदेवकी जीवनी पाठ करके अन्तरमें उसका चित्र देखो। किम्वा विचार करके श्रीमती राधाका विरह वा रासलीला पाठ करो। तब भक्तके सहित भगवानका क्या सम्बन्ध है, उसे समझ सकोगे। आजीवन वैष्णव होना बहुत ही दुःसाध्य है। एकमात्र नारद ही आजीवन वैष्णव हुए। इतना ही क्यों, बल्कि ब्रह्मा भी आजीवन वैष्णव नहीं हो सके। महादेव जो जीवनके अनेक अंशमें वैष्णव थे। स्वयं बलदेव भी अनेक समयमें कृष्णको भूले थे। जिस समय ईश्वर हृदयमें तथा साधकके वैराग्यो-दयमें जीवेश्वर एकीभाव होता है, उसी समय साधक वैष्णव नामके योग्य हैं। उसी समय साधकके लक्षण पूर्व्वोक्त राजसिक तामसिक

वृत्ति त्याग करके सात्विक आनन्दमें मत्त हो जाते हैं। उनके हृदयमें वेही मुकुन्द अवस्थान करते हैं। जीवन्मुक्तिका जो सुख है, उसे वैष्णवोंने ही एकाध चख जाना है। इसलिये वैराग्ययुक्त होकर अपने आत्माको भजना करे।

शि०। किस प्रकार आत्माको अनुभव किया जाता है?

गु०। मैंने इसके पहिले अनेक बार कहा है कि, "मैं कौन हूं" यह परिचय प्रदान न करनेसे जिसका परिचय लेंगे उसका परिचय नहीं मिलता। विशेष करके "मैं कौन हूं" इसे भी न जाननेसे दूसरेको अपनी बात कहनेके पहिले बुद्धिकी सहायसे चित्तके बीच ज्ञानबलसे विवेचना करते करते उसी आत्माका अनुभव करना उचित है। अहङ्कारसे उन्मत्त होकर जब तक मनुष्य में जीवेश्वरभेदज्ञान रहके वह अवैष्णव रहेगा, तब तक ही माया-देवी-अविद्यांश मनुष्यको आवद्ध रक्खेगी। ज्ञानही आत्मा-प्रदर्शक है। अज्ञान ही माया प्रदर्शक है। जैसे बालक नयन-मनोहारी वस्तुमें सहजमें ही मुग्ध होता है, अज्ञान वैसे ही बाह्य मनोहरवस्तुमें आसक्त होकर अविद्यासे मुग्ध होता है। ज्ञानकी सहाय से अविद्याचरणसे मुक्त होकर विद्याचरणसे आवृत्त होना होता है। उस विद्याचरणकी सहायसे ही आत्माका अनुभव होता है। आत्मा का अनुभव होनेसे आत्माको ही इन्द्रियोंका कर्त्ता कहके बोध नहीं होता। जैसे सूर्य्य और किरणमें अभेद है, वैसे ही आत्मा और परमात्मामें अभेद है। न्यायमतसे आत्मा अनुभूत होनेसे जीवेश्वर एकानुभूत हुआ। क्योंकि आत्मा ही जीव है। श्री हरिके ध्यान का अनादर करके पशुभिन्न ऐसा कौन है कि, जो विषयचिन्ताका आदर करेगा? इस विषय चिन्तारूपी वैतरणीमें पड़के अपने अपने कर्म्मजात पापके परितापसे पीड़ित होते हैं, ऐसे स्वजनोंको देख-कर कौन विषयचिन्ता का आदर करेगा।

शि०। वैतरणी किसे कहते हैं ?

गु०। यमद्वारके सन्निहिता नदीको वैतरणी कहते हैं। इस का विशेष विवरण पुराणमें है। कर्म्मफलका विचार जहांपर होता है, उसे यमपुरी कहते हैं। यह शब्द अलङ्कारिक शब्द है। अल-ङ्कार मोचन करनेसे ज्ञान ही यम है। विषयचिन्ता ही वैतरणी है। अज्ञानकृत विषयकर्म्मके फलाफलको लोग कब बोध कर सकते हैं। जब कि उसका अनुताप उपस्थित होता है। ज्ञान का उद्रेक न होनेसे अनुताप नहीं होता। ज्ञानके द्वार पर्य्यन्त विषयचिन्ता उपस्थित है। ज्ञानके समीप नहीं जा सकती। क्यों कि ज्ञानाग्निके सन्निहित होनेसे एकबारगी दग्ध होगी। ज्ञानके दूरमें रहनेसे ज्ञानके उत्तापसे वह धूमित होती रहेगी। उत्तापसे दग्धको ही अनुताप कहते हैं।

जैसे एक चोरने एक वस्तु चुराया। वह शान्तिके कष्टसे जब मन ही मन विरक्त होकर पूर्वकर्म्मफलकी निन्दा किया करता है। तब ही उसको अवस्थाभेद बोध होती है। वह भेद बोध ही ज्ञानका कारण है। जैसे वह वैराग्य उसके अन्तरमें दूरपथसे ज्ञानालोक प्रकाश हुआ, वैसे ही वह जिस कर्म्मसे उपस्थितफलभोग करता था, उस कर्म्मकी निन्दा करने लगा। वही उसका अनु-ताप है। जिस विषयचिन्ताके मोहसे उसने अपहरण किया था, वही माया है। जिस विषयचिन्ताके बलसे अनुताप होने लगा, उसे वैतरणी प्रवाह कहते हैं।

इस पौराणिक कथाको अलङ्कारच्युत करनेसे वह जो कहां तक प्रमाण हुई, उसे कह नहीं सकते। जिसमें पड़ेरहनेसे निस्तारकीतरणी नहीं है, वही "वैतरणी" शब्दसे वाच्य है। इससे भलीभांति समझा जाता है कि, विषयचिन्तासे उद्धार न होकर उसमें पड़ेरहनेसे निस्तार की उपाय नहीं हैं!! इसीलिये विषयचिन्ताको वैतरणी और

कर्म्मेन्द्रियोंको उसमें पतित अनुतापित करके उल्लेख किया गया है।

शि०। योगी लोग साधनाबलसे सारूप्य प्राप्त होते हैं; किन्तु संसारासक्त लोगोंके पक्षमें कौनसी उपाय है?

गु०। भक्तोंकी साधनाके तारतम्यसे धारणाका तारतम्य होता है। भक्तों के बीच जो लोग जन्मसे ही भक्ति और प्रेममें उन्मत्त हैं; उन्हें पुनर्वार प्रथम अभ्यास नहीं करना होता; वे स्वयंही श्रीहरि में लयको प्राप्त होते हैं। जिन भक्तोंका संसार में आसक्त मन एक बेर विषयामोदसे उन्मत्त हुआ है; उनके ही पक्षमें अनेक प्रकारके कल्पित धारणाको आवश्यकता है। क्योंकि परवर्यविहारी पक्ष एकाएकही समाजशिक्षा नहीं सीख सकते।

जब संसारी आत्मज्ञानी होकर आत्माकी सेवामें नियुक्त हुआ, तब उसका विश्वास स्थिर भया; क्योंकि वह व्यक्ति अन्तरदृष्टिमें ही रत रहा, बाह्यदृष्टिमें फिर रत न हुआ। यह अवस्था उपस्थित होनेसे संसारासक्त साधककी तुरीय अवस्था उपस्थित हुई। इस तुरीय अवस्था में साधक तमो और रजोगुणसे अतिक्रान्त होकर सत्त्वगुणका पथिक होता है। जब साधकका मन इन्द्रियविकारमें रत था, तब वह तमोगुणी था, तब स्नेह ममता और रिपुकी अधिकताने उसे उन्मत्त किया था। जब साधक वैराग्यबलसे किञ्चित ज्ञान पाके प्रेमिक हुआ। तब उसके मनने फिर संसारप्रेमको प्यार नहीं किया। उस समय उसने कामिनीप्रणयको मुक्तिपथका कालसर्प और स्नेह, ममता आदिको मुक्तिपथका दस्यु समझा। उस समय उसने छंगिवा रिपुप्रबलतासे निस्तार पाके इन्द्रियोंकी सहाय लिया; क्रमसे साधक साधनाके बलसे ज्योंही रजोगुण भेद करके सत्त्वका आश्रय लेने लगा। त्यों ही उसके मनसे रजोगुणसे उत्पन्न कर्म्मेन्द्रियों की क्रिया ज्ञानेन्द्रियोंमें लय होने लगीं। साधकने फिर नयन खोलकर बाह्य जगतको देखना न चाहा। साधक ने फिर

हाथ से वाह्य वस्तुओंको कल्याणकारी कहके ग्रहण नहीं किया। साधकने फिर देह रूपी जगतके सिवाय पदके सहारे वाह्य जगतमें जानेकी इच्छा नहीं किया। ज्ञानेन्द्रियां प्रवल हुईं। सत्त्वगुण आश्रय किया। साधक तुरीय अवस्थामें अवस्थान्तरित हुआ। ये जो हाथ पांव, आंख, कान आदि देखते हो; ये जब वाह्यकर्म में नियुक्त रहते हैं, अर्थात् कान शब्द सुनने, पाव चलने, और नेत्र ओसा देखा करते हैं, उस समय वाह्येन्द्रिय के वीच गिने जाते हैं; और जब वे वाह्यक्रिया त्यागकर अन्तरमें क्रियावान होते हैं, तब ही उन्हें अन्तर क्रियावान ज्ञानेन्द्रियां कहते हैं। इसी लिये प्रचलित वातोंमें नेत्र कान प्रभृतिको ज्ञानेन्द्रिय और हाथ पांव आदि को कर्म्मेन्द्रिय कहते हैं। यह आख्या वाह्यवोध मात्र है। मन अभिलाष प्रकाश न करनेसे पांवको कुछ सामर्थ नहीं है कि, कहीं जाय।

संसारीकी गति बहुत सामान्य है, क्योंकि उसमें भ्रम है। मलत्रयसे फिर वह गति नहीं पाते। योगियोंकी गति अनन्त योजन है। इस देहकी सीमा नहीं है। यह देह ही असीम जगत है; जब इसके सर्वत्र परिभ्रमण कर सके, तब ही आत्माका साक्षात् लाभ होगा। जब साधक आत्माको अनुभव करके अद्वैत भावमें उन्मत्त होगा; तब प्रेम स्वयं आके उस साधकको परमपथमें ले जायगा। मन ही साध्य वस्तु है। इसी अवस्थामें मन आगमन करनेसे परमपथमें जानेको उपाय है।

शि०। परमपथमें जानेको क्या उपाय है?

गु०। परमपथमें जानेको अनेक उपाय हैं। उनमेंसे एक सहज उपाय कहता हूं, सुनो। पहले कहा है कि, स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारको धारणा साधनासे प्रकाश हैं। समस्त साधनाके पूर्व्वभाग स्थूल और शेषभाग सूक्ष्म हैं। जब साधक आत्मबलसे वली होकर प्रेममें उन्मत्त होगा। तब स्थूलभावसे चित्त

के सहित परमात्माका अनुभव करेगा। इसी ही दूसरे विधानसे सात्विकी पूजा कहते हैं। श्रवण, कीर्त्तन, मनन पूजन और निदिध्यासन—सात्विक व्यापारमें ये कई एक प्रयोजनीय हैं। इस समय पूजनविधि कहता हूं, सुनो।

साधक अपने हृदयमें जो अवकाशमय स्थान देखेगा, जहां मन निरोध करनेसे चित्त स्थिर करके आत्माका अनुभव कर सकेगा, उसे ही अनाहतपद्म कहा करते हैं। उसी अनाहतपद्ममें पूर्व्वोक्तरूपसे श्रीहरिकी भावना करके मनको तन्मय करते हुए अभेदभावसे "सोऽहं" हो जावे। यही सारूप्यप्राप्तिका लक्षण है।

शि०। स्वाधिष्ठान, मूलाधर, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञापुर, इन छः पद्मोंके बीच अनाहतपद्ममें ही भावना करनेका क्या प्रयोजन है?

गु०। यह देह अनुभवका गेह मात्र है। पञ्चभूतसंज्ञा संमिश्रण होकर एकमात्र शरीर नाम हुआ है। इसके बीच भूतक्रिया से ही अनुभव प्रकाश होता है। इस अनुभवक्षमताको ही शरीर-चैतन्य कहते हैं। इस चैतन्यसे ही ज्ञानका संचार होता है। ज्ञानसे ही विज्ञान लाभ हुआ करता है। विज्ञान लाभ होनेसे ऐश्वरिक क्रिया स्वयं ही उससे प्रकाशित होती है। विज्ञान दो भागमें विभक्त है। कर्म्मज और अकर्म्मज। कर्म्मज विज्ञानसे प्रकृतितत्त्व निरूपित होता है और अकर्म्मज विज्ञानसे ऐशिक-चिन्ताका उत्कर्ष हुआ करता है। मनुष्यमात्रको किञ्चिमात्र विज्ञानबुद्धिका प्रयोजन है।

आकर्षणीशक्तिसे सत् वस्तुका अनुभव होता है। यह एकवारगी दर्शनकी चूड़ांतमीमांसा है। जैसे नेत्रका किसी प्राकार वर्ण नहीं है, किन्तु दृश्यवस्तु जैसे वर्णमय ही क्यों न हो, उसके आकर्षण-मतसे नेत्रकी दृष्टि वस्तुके वर्णको देखनेसे स्थिर कर सकती हैं। यह

आकर्षणीचमता सत्वस्तु न होनेसे प्राप्त नहीं हो सकती। जैसे वायु यदि स्पर्शित न होता, तो कदापि देहके ऊपर वायुका स्पर्श प्रकाश न होता। इस स्थलमें वायु एक सत् वस्तु है। उसके आकर्षणमतसे देह शैत्य और उष्णत्व अनुभव कर सकती है। साधारण बुद्धिसे आकर्षणीको देहको क्रिया कहा जाता है। किन्तु वह देहकी नहीं है, वल्कि चैतन्यकी क्रिया है। चैतन्य ही तेजो-रूपसे देहके बीच वर्त्तमान है। अवस्थाभेदसे आकर्षण जिस प्रकार अनुभूत होगा, चैतन्य उससे ही प्रकाश होवेगा। यही विज्ञान विवेचना है। इस उदाहरणसे भलीभांति समझा गया कि, अन्तरमें अथवा वाहिरमें सत्वस्तुका आकर्षण न होनेसे किसी प्रकार भी चैतन्यका प्रकाश नहीं होता। चैतन्य, मन, वासना, ये तीनों ही देहके सर्व्वप्रकार कर्त्ता हैं। चैतन्यकी सहायसे मन अनुभव करता है; मनकी सहायसे वासना, इन्द्रिय और रिपुगणों की क्रिया प्रकाश हुआ करती है। आकर्षणी चमतासे वाहिर वा अन्तर सब स्थानोंकी ही क्रिया प्रकाश होती हैं। सत् चिन्तासे अन्तर आकर्षणी और बाह्यवस्तुसे वाह्यिक आकर्षणी प्रकाश हुआ करती है। विज्ञान समझना हो, तो असत् भाग त्याग करना होता है। यथार्थमें कोई एक वस्तुके असत् होने पर भी उसे अवस्थागत सत् कहके चिन्तन करना होता है; नहीं तो अनु-भव होनेकी उपाय नहीं है। क्योंकि ऐसा न होनेसे आकर्षणी चमता प्रकाश न होगी। एक असत् परिपूर्ण उपन्यासके बीच नाय-कादि चिन्ता करनी हो, तो उसे स्पष्टदृष्ट पुरुषवत् सत् कहके चिन्तन करना होता है। क्योंकि जो असत् है, उसमें कुछ भी नहीं है, उसका आकर्षण नहीं है, इसलिये उसमें कुछ अनुभवकी चमताभी नहीं है। इस समय और एक विचार यह है कि, मनमें जैसे सत्के सिवाय अनुभव नहीं होता। वैसे ही शून्यसे भिन्न अनुभव

प्रकाश नहीं होता। जहां शून्य नहीं है, वहां एक न एक क्रिया प्रकाश है ; वह स्थान क्रियामण्डित रहनेसे अन्य क्रियाका प्रकाश असम्भव है। जैसे शिराओंमें रक्त सञ्चारित होनेसे उनमें ही क्रियावान है। मस्तकमें बुद्धि स्थित है ; वहां विचार होता है। वहां अनुभव नहीं होता। विज्ञानबुद्धिसे समझनेसे शून्यसे भिन्न चिन्ता क्रियाको असम्भव है। देहके बीच सब स्थानोंमें ही भूतगत क्रिया व्याप्त है ; उनके क्रियाफल ही अनुभाव्य हैं। वह अनुभव ही देहस्थ शून्याधाराश्रित सत्वस्तु है। देहके बीच जिन छः स्थानोंमें अनुभव क्रिया प्रकाश होती हैं, उन्हें ही षट्दलपद्म कहते हैं। उनके बीच हृदय ही प्रधान और प्रथमानुभावस्थान है। इसी-लिये हृदयरूपी अनाहतपद्ममें श्रीहरिका कल्पितरूप धारणा करना आवश्यक है। उसी धारणासे अनुभव प्रकाश होगा। उस अनुभव से ही श्रीहरिरूपी चैतन्यका आविर्भाव होगा। चैतन्यसे ही मन श्रीहरिमय होगा। मन श्रीहरिमय होनेसे वासना भी हरिमय हुई। वासनाके श्रीहरि विलीन होनेसे बुद्धि, चित्त, अहङ्कार हरिमें विलीन होंगे। उस समय फिर साधकको वाह्यिकक्रिया प्रकाश न होगी। जो लोग योगी हैं ; वे इसी अवस्थामें प्राणायाम वशसे वाह्यजगतसे अन्तरमें लीन होंगे। जोलोग सहज प्रेमिक हैं; वे शववत् समाधि अवस्थामें पहुंचेंगे। जब यह चैतन्य बुद्धिकी सहाय से ज्ञानपथमें पहुंचा, तब श्रीहरिका कल्पितरूप भस्मीभूत होकर स्वयं ही स्व-रूप रूपका प्रकाश होनेसे साधक विज्ञानानन्दमें तरने लगा। यह अवस्था ही जीवन्मुक्त अवस्था है। प्रमाणसे इसकी अपेक्षा अधिक प्रकाश नहीं होता।

जो मूर्त्ति प्रादेशमात्र कहके अनुभव होती थी, विज्ञानकी सहायसे वही जगतमें व्याप्त होगी। क्योंकि देहस्थ कारणादिमें ही जगत व्याप्त है। जैसे कांचके बीचमें नीलवर्ण रहनेसे जगतको नील-

वर्ण देखा जाता है, वैसे ही अपनेको हरिमय देखनेसे जीवन्मुक्त लोग अपनेसे अभिन्न जगतको हरिमय देखेंगे।

शि०। श्रीहरिको क्यों प्रादेशमात्र पुरुष कहके कल्पना किया? उनका स्वरूप धारणाके बीच स्थूलभावसे जिस प्रकार प्रकाश किया, उससे सूक्ष्मभावसे क्या मिलता है?

गु०। 'प्रादेश कहनेसे सहज बातोंमें वितस्त जानो। इसे वितस्त कहनेका अर्थ है। नाभिस्थ मणिपुरपद्मसे कण्ठस्थ विशुद्ध पद्मका व्यवधान ही हृदय देश है। इस स्थानका व्यवधान प्रत्येक देहीके निज निज हाथकी तर्ज्जनीसे अंगूठे पर्य्यन्त परिमाण है। इस स्थानको ही कथान्तरमें अनाहत पद्म कहते हैं। इस अनाहत पद्मचिन्ताका उद्भव क्यों होता है। और इस स्थानमें धारणा ही क्यों होती है? उसे महादेवने स्वप्रणीत शिवसंहितामें विशेष विस्तार करके लिखा है। महादेवजी कहते हैं कि,—"देहके बीच चतुर्थ पद्म ही अनाहत" नामसे आख्यात है। वह हृदयके बीच स्थित है। उसमें बारह पत्र हैं। उन पत्रोंमें (क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ) ये ही बारह अक्षर हैं। और उस पद्मके मध्य-भागमें (यं) इस वायुबीजकी स्थिति है। उस अनाहतपद्ममें रक्त-वर्ण बाणलिङ्ग स्वरूप भगवान निवास करते हैं। उनकी भजना करनेसे दृष्ट और अदृष्ट सब क्रियाओंका शुभफल हुआ करता है। वहां काकिनीशक्ति भी है। जगतकी कामनाको बाणलिङ्ग कहते हैं। वासनाजात चैतन्यको काकिनीशक्ति कहते हैं। कामना वासनासे प्रथम प्रकाश्य अभिप्रायसे ही क से ठ पर्य्यन्त बारह वायु-जात वर्ण हैं। वे सब वर्ण ही वायुके घात प्रतिघात तथा जिह्वाके उच्चारण भेदके इङ्गितमात्र हैं। इन बारहों वर्णोंको उच्चारण करनेके लिये अधिक वायुका प्रयोजन है; और शून्यसे वायुका विकाश है। इसीलिये देहवित् लोगोंने हृदयको शून्यस्थान और "यं" को

वायुबीज कहा है। यहांको अभिप्राय प्रकाशक क से ठ पर्य्यन्त वर्णों को हृदयपद्मके पत्ररूपसे कल्पना किया गया। वायु ही सर्वप्रकाशक और शून्य -सर्वधारक है। ,अग्निबीज, पृथ्वीबीज प्रभृति जो कोई बीज ही क्यों न रहें, सब ही वायुबीजकी आभासमात्र हैं। हृदयकी सहायके बिना कामना या वासना प्रकाश नहीं होती। इसलिये जो कोई जिस किसी विषयमें उस कामना या वासनाको धारणा कर सकेंगे। वे लोग उसीमें ही जयलाभ करेंगे। उद्देश्य सिद्धिके लिये साधवा हृदयके बीचमें ही अभिष्टकल्पना निरोध करनेसे हृदय और साधनामतसे उद्देश्य सफल किया करते हैं। आत्मतत्त्वज्ञ ऋषियोंने विशेष विवेचनाके सहित हृदयको वासनाका आलय (स्थान) जानकर साध्यवस्तुको उसमें आरोप करके साधना के लिये उपदेश दिया है। यदि वासना और कामना ही विष्णुमय हो, तो जीव प्रलय पर्य्यन्त विष्णुमय हुआ करेगा। क्योंकि वासनासे ही जन्म और कामनासे ही इहलीला है।

विष्णुको इसी प्रकार कल्पना करे, जैसे,—वह पुरुष, चतुर्भुज; शंख चक्र गदा पद्मधारी, प्रसन्नवदन, पद्मनयन, पीतवासी, अनेक रत्नोंसे भूषित, वलयाङ्गद कङ्कण किरीटवान, हृदयपद्मासीन, कौस्तुभकण्ठ, वनमाली, सर्वदा हास्यरत और भक्तमनाभिलाष पूर्ण इङ्गितयुक्त हैं।

यह पुरुषरूपी कल्पित विष्णु विराटरूपके सूक्ष्मांश मात्र हैं। विज्ञानी विराट समझ कर सूक्ष्मचिन्तन करनेसे वह सारूप्य पावेंगे। कल्पित विष्णुके सहित विराटकी ये ही ऐक्य है, जैसे— पुरुष कहनेसे चैतन्य; और चतुर्भुज कहनेसे सर्वव्यापी जानो। शंखादि कहनेसे ज्ञान वैराग्य विवेकविज्ञान है। भूषणादि कहने से कारण समूह जानो। वनमाला कहनेसे प्रकृति, कौस्तुभधारी कहनेसे स्वप्रकाश और तेजोवान जानो। यही बीज भावना है,

साधककी विश्वास और ज्ञानभेदसे विराट भी वैष्णवी कल्पनामात्र होता है।

ज्ञानयोगके अगाड़ी भक्तियोग है। भक्तियोग सिद्ध होनेसे सहजप्रेमिक हो सकते हैं।

शि०। भक्तियोग किस प्रकार सिद्ध होता है?

गु०। जो लोग एकबारगी ज्ञानलाभ न कर सकें, वे भक्तिसे वैष्णवी कल्पनासे सिद्ध होकर उसी भक्तिकी सहायसे जैसे भूमि खोदने से स्वयं जल निकलता है; उसी प्रकार स्वयं ही ज्ञानलाभ करके विराट समझ सकेंगे। भक्ति योगसिद्धिकी यह उपाय है कि,—जैसे कोई प्रेमिक उपवनके बीच विहारिता किसी सुन्दरी कुमारीको देख कर उसी पानेके लिये निज गृहमें आगमन करके उस सुन्दरीके रूप को एक एक करके अपने हृदयमें कल्पना कर वासना और कामना को उस ही सौन्दर्य्यमयी करके अपनेको उस कामिनीके लिये उन्मत्त करता है, और भविष्यकालमें प्रणयसे आवद्ध होनेके लिये वह व्यक्ति कभी कामिनीके सुमिष्ठ कण्ठस्वर, कभी गजेन्द्रनिन्दितगति, कभी कमलनिभवदन, कभी विद्युतकी भांति कटाक्ष; इन सबको एक एक करके चिन्तन करता रहता है और चिन्तन करते करते उसे मानो स्वप्नवत् प्रत्यक्ष करके तन्मय हो जाता है। वैसे ही भक्ति-योगसे ईश्वरको पूर्वकल्पनासे कल्पित करके अपने हृदयको ईश्वर-मय करना होता है। अब उक्त कामुककी भांति वासनाको और कामनाको साधक ईश्वरमय कर सकेगा, तब उसका भक्तियोग सिद्ध होगा। जैसे कामुक उक्त अवस्थामें उस कामिनीके सङ्गलाभ के लिये उत्सुक होकर उसकी शरीरके यथार्थ अङ्ग प्रत्यङ्गोंके स्पर्शन की आकांक्षा करता है, साधक भी वैसे ही उस वैष्णवीरूपके आकरस्वरूप विराटलाभ करनेकी स्वयं ही आशा किया करता है। जब यह आशा होती है, तब साधक विज्ञानलाभ किया

करता है। जैसे कामुक प्रणयसे तन्मय अवस्थामें प्रेमकी आधार वा पुत्तलीको हृदयसें आलिङ्गन करके स्वयं उसका सेवक हो सकने से सुखी होता है। साधक भी वैसे ही विज्ञानबलसे विराटमय होकर अवस्थान करनेकी इच्छा करता है। सारूप्यलाभको इसी ही प्रधान उपाय समझना होगा।

शि०। सिद्ध योगी यदि देह त्याग करें, और वे देहत्यागके अन्तमें हरिमय होकर किस भावसे रहेंगे?

गु०। जो योगी ज्ञानके सहित रहेंगे, वें मृत्युके पूर्व्वमें स्थिर भावालम्वन करेंगे। और विपद्हीन स्थानमें सुखासनसे उपवेशन करेंगे। योगी योगबलसे ईश्वरमें रमन करके जब देखे कि, काल-भोग्य देहका नाश होना आरम्भ हुआ है, तब वह जिस योगबलसे ज्ञानलाभ करके ईश्वरमय हुए हैं, देहके अन्तमें किस प्रकार उसी ईश्वरमय हुए रहेंगे—ऐसी ही भावना चिन्तन करें। योगी ऐसी ही भावनासे सिद्ध होकर विज्ञानबुद्धिसे समझे कि, प्राणवायु ही सकल क्रियाकी कर्त्ता है और मानस सकल भावनाका कर्त्ता है। जीवात्मा इन दोनोंका आकर्षक है। वासना सबकी संयोजन कारिणी है। बुद्धिपथ प्रदर्शक है। ज्ञानबलसे इन कईएकको समझकर इन कईएक शुद्ध वस्तुओंके सहित योगी लोग नाश प्राय देह त्याग करनेके इच्छुक होते हैं। इस समय सहज बुद्धिसे समझ कर,—मन, जीवात्मा और बुद्धि—त्याग करनेसे कर्त्ता पाना भार है। विज्ञानमतसे समझनेसे कारणसमूहको अविद्या परिणामसे स्वभावलाभ होता है, वह भी तीन गुणमय है। कारण समूह कालशक्तिकी सहायसे विकारीभूत होनेसे इन्द्रियादि होती हैं। इससे भलीभांति समझा गया कि, कारणसमूहसे अविद्या अर्थात् माया और कालके योगसे स्वभावमतसे देह प्राप्त हो सकती है; उससे ही मनुष्य, पशु, पक्षीकी सृष्टि होती है। ईश्वर चैतन्य-

रूपसे जब कारणमें आविष्ट होकर कारण समूहको क्रियावान करते हैं; उस कारणमिश्रित चैतन्यसे विज्ञानमतमें किसी अंशसे जीवात्मा, किसी अंशसे मन, किसी अंशसे बुद्धि, किसी अंशसे ज्ञान प्रभृति रूपसे परिणत होते हैं। एक चैतन्यके विना कारणादि वृथा हैं। कारण वृथा होनेसे सब ही वृथा है। चैतन्यसे ही स्वभावभेदसे कामना का उद्भव है। देहका कर्त्ता चैतन्य है, उसकी क्रिया सहचरी वासना है। इसीलिये विज्ञानमतसे चैतन्यको पुरुष कहा जाता है। इस पुरुष शब्दका अर्थ देहधारी जीव है। क्या नारी क्या नर सबमें ही वह कल्पित है। विज्ञानमें साधक कहनेसे वासनायुक्त चैतन्य है। वह चैतन्य ही वासनास्वभावसे देहका पालन कर्त्ता होता है। उसीको क्रिया साधकके बीच जीवात्मादि नाम लेती हैं। जैसे शाखा प्रशाखा प्रभृति काटनेसे वृक्ष शोभाहीन होता है, वैसे ही स्वभावमतसे इन्द्रियादिके कदाचारसे चैतन्यांश मन और जीवात्मादि कलुषित होकर वासनाबलसे कलुषितभाव धारण करते हैं। वासना चैतन्यके सहित मिलकर जब जीवात्मादिको उद्धार करती हुई स्वरूपमें रखती है, उसे ही मुक्तावस्था कहते हैं। इस समय किस उपायसे उस मुक्तावस्थाके सहित कारणमण्डित देह त्याग करके कारणसे श्रेष्ठ चैतन्यमें अवस्थान किया जाता है, उसको उपायविधानके लिये पूर्व्वोक्त मृत्यु योग लक्षण कथित हुआ है। यह प्रक्रिया महाविज्ञान प्रक्रियामें अवस्थित है, जिसे परमें कहता हूं। जो योगी इस प्रक्रियासे मरने की इच्छा करें, वह मृत्युके पूर्व्व स्थिरभावसे निर्ज्जनस्थानमें सुखासनसे बैठ कर पहिले पूर्व्वोक्त साधना करें।

शि०। योगी लोग किस प्रकारसे मृत्युके पूर्वसमयको जान सकेंगे? और जो लोग योगी हैं, उन्हें मृत्युके पहिले निर्ज्जन प्रदेशमें उपवेशन करके साधना करनेका क्या प्रयोजन है?

गु० । योगी लोग प्राणायामादिके सहारे निज निज चैतन्य-बलसे जीवात्माको क्रियावान रखकर बहुत समय तक जीवन धारण मात्र करते हैं । यह जो देह है, सो कालके हाथमें अवस्थित है । जैसे दीमक काठके बीच प्रवेश करके क्रम क्रमसे उस काठको मृत्तिकामें परिणत करता है ; वैसे ही काल इस देहको क्षण क्षणमें नाश करता है ; तब संसारी और अयोगी लोगोंकी देह शीघ्र नाश होती है । उसका कारण यह है कि, भय, निद्रा, मैथुन, चिन्ता, रिपुताड़ना प्रभृतिके तेजसे देह क्षण क्षणमें क्षयित हो जाती है । अन्तरस्थ तेज वायुरूपसे काल्पित होकर इस देहको संरक्षण करते हैं । उनके नाम पञ्चप्राण हैं । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये ही पञ्चप्राण हैं । इनके विवरण पहिले वर्णित हुए हैं । योगी लोग मुद्रा और अष्टाङ्ग-योगबलसे इन पञ्चप्राणोंको निरोध करके भय, निद्रा, चिन्तादिके हाथसे रक्षा पाके संसारियोंकी अपेक्षा इस देहको अनेक समय तक पीड़ा तथा मृत्युके हाथसे रक्षा करते हैं । जैसे एक काठको स्वभावके सहारे क्षय करानेसे वह अनेक समयके बाद क्षय होता है और अस्वाभाविक भावसे अग्निमें जला देनेसे निमेष भरमें नाश किया जाता है । वैसे ही इस देहको केवल कालरूपी प्रकृतिमें स्थापन करनेसे बहुत समय बीतने पर नाश होती है । और इन भय निद्रादिरूपी अनलमें डालनेसे थोड़े ही दिनके बीच नाश हो जाती है । इसीलिये योगी लोग प्राण आदिकी और मनकी चेष्टाको योग-बलसे साम्य करके भयादिसे प्रज्वलित पीड़ादिरूपी अनलसे देहकी रक्षा करते हुए स्वभावके ऊपर देहरक्षण करते हैं । किन्तु काल से देह एकसौ वर्ष मात्र स्वरूपमें रहती है, योगी लोग उससे ज्यादे समय तक बचनेके लिये ये जो कालक्षोभक पंचप्राण हैं, उन्हें निरोध करते हैं । जैसे सूर्य्यकी धूप ही फलोंकी उत्पादनकारी

और परिपक्वकारी होती है, वैसे ही ये पंचप्राण भी देहसंरक्षण तथा वन्धनकारी और कालकी सहायसे देहके विनाशकारी भी हुआ करते हैं।

इन प्राणादिकी चेष्टासे ही इन्द्रियक्रिया हुआ करती हैं। उसका प्रमाण यह है कि, प्राणके चोभसे क्षुधा उपस्थित होनेसे इन्द्रियोंके वीच पावोंने आहारान्वेषणके लिये गमन किया। हाथों ने ग्रहण किया। नेत्र और जिह्वाने रस तथा उपादेय विवेचना किया। दातोंने चर्वण किया, उदानवायुने गिलन किया। समानवायुने उसे परिपाक किया। व्यानवायुने उसकी सारांशसे शरीरकी पुष्टि किया। अपानवायुने असारांश वाहिर कर दिया। देहकी समस्त क्रियासे ही प्राणका श्रेष्ठत्व सम्पादित हुआ करता है। इन प्राणादिकी चेष्टासे निःश्वास प्रश्वास होती हैं, वेही देह की श्रेय चय करने तथा वर्द्धन करनेकी नायक हैं। इन श्वास प्रश्वासके तेजसे प्राणादिकी क्रिया होती हैं। उनसे इन्द्रियादिकी क्रिया होती है। इन्द्रियादिकी क्रियासे रिपुगणोंकी क्रिया होती हैं। सबकी मुख्य कारण श्वासका जय करना है। श्वास जय करनेसे प्राणचेष्टा ह्रास होती है। उसके सहित अन्यान्य सबकी चेष्टा ह्रास हुआ करती है। इस श्वासक्रियाकी जय करनेके लिये अभ्यास करनेसे दीर्घजीवन लाभ किया जाता है। पहिले कह आये हैं कि, श्वासजयसे ही देहकी नाश और रक्षा हुआ करती है। और इस श्वासजयसे ही योगी लोग देहरक्षा करते हैं तथा कालवशसे देह असमर्थ होने पर उसे त्याग कर सकते हैं।

यह जो श्वासजयकी वात कही गई, उसे जय करना सहज व्यापार नहीं है। उस श्वासके जय करनेकी सुलभताईके लिये योगवित् लोगोंने आसन कल्पना किया है। यह देह जितनी ही शून्यभावसे रहेगी, उतनी ही श्वास कम होगी। यह देह जितना

गु०। योगी लोग प्राणायामादिके सहारे निज निज चैतन्य-बलसे जीवात्माको क्रियावान रखकर बहुत समय तक जीवन धारण मात्र करते हैं। यह जो देह है, सो कालके हाथमें अवस्थित है। जैसे दीमक काठके बीच प्रवेश करके क्रम क्रमसे उस काठको मृत्तिकामें परिणत करता है; वैसे ही काल इस देहको क्षण क्षणमें नाश करता है; तब संसारी और अयोगी लोगोंकी देह शीघ्र नाश होती है। उसका कारण यह है कि, भय, निद्रा, मैथुन, चिन्ता, रिपुताड़ना प्रभृतिके तेजसे देह क्षण क्षणमें क्षयित हो जाती है। अन्तरस्थ तेज वायुरूपसे कल्पित होकर इस देहको संरक्षण करते हैं। उनके नाम पञ्चप्राण हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये ही पञ्चप्राण हैं। इनके विवरण पहिले वर्णित हुए हैं। योगी लोग मुद्रा और अष्टाङ्ग-योगबलसे इन पञ्चप्राणोंको निरोध करके भय, निद्रा, चिन्तादिके हाथसे रक्षा पाके संसारियोंकी अपेक्षा इस देहको अनेक समय तक पीड़ा तथा मृत्युके हाथसे रक्षा करते हैं। जैसे एक काठको स्वभावके सहारे क्षय करानेसे वह अनेक समयके बाद क्षय होता है और अस्वाभाविक भावसे अग्निमें जला देनेसे निमेष भरमें नाश किया जाता है। वैसे ही इस देहको केवल कालरूपी प्रकृतिमें स्थापन करनेसे बहुत समय बीतने पर नाश होती है। और इन भय निद्रादिरूपी अनलमें डालनेसे थोड़े ही दिनके बीच नाश हो जाती है। इसीलिये योगी लोग प्राण आदिको और मनकी चेष्टाको योग-बलसे साम्य करके भयादिसे प्रज्ज्वलित पीड़ादिरूपी अनलसे देहकी रक्षा करते हुए स्वभावके ऊपर देहरक्षण करते हैं। किन्तु काल से देह एकसौ वर्ष मात्र स्वरूपमें रहती है, योगी लोग उससे ज्यादे समय तक बचनेके लिये ये जो कालक्षोभक पंचप्राण हैं, उन्हें निरोध करते हैं। जैसे सूर्य्यकी धूप ही फलोंकी उत्पादनकारी

और परिपाककारी होती है, वैसे ही ये पंचप्राण भी देहसंरक्षण तथा बन्धनकारी और कालकी सहायसे देहके विनाशकारी भी हुआ करते हैं।

इन प्राणादिकी चेष्टासे ही इन्द्रियक्रिया हुआ करती हैं। उसका प्रमाण यह है कि, प्राणके क्षोभसे क्षुधा उपस्थित होनेसे इन्द्रियोंके बीच पावोंने आहारान्वेषणके लिये गमन किया। हाथों ने ग्रहण किया। नेत्र और जिह्वाने रस तथा उपादेय विवेचना किया। दांतोंने चर्वण किया, उदानवायुने गिलन किया। समानवायुने उसे परिपाक किया। व्यानवायुने उसकी सारांशसे शरीरकी पुष्टि किया। अपानवायुने असारांश बाहिर कर दिया। देहकी समस्त क्रियासे ही प्राणका श्रेष्ठत्व सम्पादित हुआ करता है। इन प्राणादिकी चेष्टासे निःश्वास प्रश्वास होती हैं, वेही देह की क्षय चय करने तथा वर्द्धन करनेको नायक हैं। इन श्वास प्रश्वासके तेजसे प्राणादिकी क्रिया होती हैं। उनसे इन्द्रियादिकी क्रिया होती है। इन्द्रियादिकी क्रियासे रिपुगणोंकी क्रिया होती हैं। सबकी मुख्य कारण श्वासका जय करना है। श्वास जय करनेसे प्राणचेष्टा ह्रास होती है। इसके सहित अन्यान्य सबकी चेष्टा ह्रास हुआ करती है। इस श्वासक्रियाको जय करनेके लिये अभ्यास करनेसे दीर्घजीवन लाभ किया जाता है। पहिले कह आये हैं कि, श्वासजयसे ही देहकी नाश और रक्षा हुआ करती है। और इस श्वासजयसे ही योगी लोग देहरक्षा करते हैं तथा कालवशसे देह असमर्थ होने पर उसे त्याग कर सकते हैं।

यह जो श्वासजयकी बात कही गई, उसे जय करना सहज व्यापार नहीं है। उस श्वासके जय करनेकी सुलभताईके लिये योगवित् लोगोंने आसन कल्पना किया है। यह देह जितनी ही शून्यभावसे रहेगी, उतनी ही श्वास कम होगी। यह देह जितना

ही पूर्णभावसे रहेगी, उतनी ही श्वासकी क्रिया अधिक होगी। प्राणको निरोध करने, भूख प्यासको जय कर सकनेसे देह शून्य होती है। और चञ्चलता नाश करके नाड़ि आदि सञ्चालन समान कर सकनेसे श्वाससमान्य हुआ करती है। इस श्वाससमान्यके होने से ही अन्तरकी क्रिया नाश हो जाती हैं। अन्तरकी क्रिया नष्ट होनेसे बाहिरमें शान्तिलाभ किया जाता है। इस श्वासके जय करनेके लिये और नाड़ियोंको समान करनेके निमित्त तथा देहको सूनी करनेके वास्ते जितने सब आसनोंकी कल्पना हुई हैं, उनके नाम पद्मासन, उग्रासन, स्वस्तिकासन हैं। इन कई एक आसनों के बीच जो साधक जिसमें सुविधा समझें अर्थात् शरीरको स्थिर कर सकें, वे उसे व्यवहार कर सकते हैं।

देहकी क्रिया रहनेसे चित्त अस्थिर होता है; विज्ञान धारणामें क्षति हो सकती है। इसोलिये योगी लोग अष्टाङ्गयोगसे जिस प्रकार आयुवृद्धि करते हैं, वैसे ही फिर उसे क्षय कर सकते हैं। मृत्युकालमें योगी लोग प्राणादिके चेष्टा सहित अपर चेष्टा विलय-पूर्व्वक शुद्ध परमात्मामें विज्ञान स्थापन किया करते हैं। उसमें भी बाह्यक्रिया नाशके लिये निर्ज्जनस्थानकी आवश्यकता है। आन्तरिक-क्रिया नाशके लिये अष्टाङ्गयोगका प्रयोजन हुआ करता है। देह भूत-समष्टिमात्र है। भूतक्रिया प्रकाश होनेसे ही देहस्थभूतोंकी चञ्चलता हुआ करती है; क्योंकि उभयके आकर्षण हैं। जैसे शब्द होनेसे ही कान सुनते हैं। आकर्षण है, उसीसे मज्जार कम्पन होता है। उस मज्जारकम्पनसे भय होता है। उस भयको बोध करनेके लिये बुद्धि मनको चञ्चल करती है। मन उसके विचार में प्रवृत्त होनेसे वासना उसी तरफ धावित होती है। अकेले शून्य से उत्थित बाह्यिकक्रिया शब्दसे सबको विकार हुई। इसी प्रकार क्रियाकी सहायसे ही चैतन्यका अनुभव हुआ करता है। उन

सब विपदोंसे भागके लिये निर्ज्जनस्थानकी आवश्यकता है। आन्त-रिकक्रियाके नाशके लिये आसनकी जरूरत है। विज्ञानमय होनेके लिये ध्यान, धारणा, समाधिकी आवश्यकता है। मृत्युयोग में यम नियमादिका प्रयोजन नहीं है। वे देहपोषणके लिये प्रयुक्त हुआ करते हैं।

शि०। दार्शनिक लोगोंने ईश्वर निराकरण करनेमें इतना कष्ट क्यों स्वीकार किया है?

गु०। यह जो जगत है, वह विकारसे बना है, प्रतिप्रलयमें इसका संस्करण होता है। जगत कहनेसे ही चैतन्यादि सबका उल्लेख हुआ समझना होगा। ज्ञान मनने जब सबको विनाशीभूत देखा, तब कौन विनाशकर्त्ता वा स्रष्टा है—स्वभाव द्वारा उसे देखनेकी चेष्टा किया। उसके जाननेकी सामर्थ ही विज्ञान है। दार्श-निक लोगोंने जब ईश्वर निराकरण किया, उस समय बुधमण्डली ने कहा, यह इतने कष्टकी जीवनयात्रा या इहलीला है, ये सब वासनामतसे जन्म जन्ममें परिवर्त्तित होती हैं। और वासना ही सुख दुःखादि भोग कराती है। फिर उन लोगोंने विवेचना करके देखा, ये जो सुख दुःखादि हैं, वे स्वभावसे अनुभूत होते हैं। इन्द्रियादि और रिपु प्रभृतिके कुपथगमनसे स्वाभाविक पीड़ा उप-स्थित होके सुख दुःखादि संयुक्त संसारमें पतित होकर वासना कलुषित होती है। उससे ही जन्म जन्मान्तरमें दुःखयोनि लाभ होती है, ज्ञान लोप होता है। यदि सृष्टिकर्त्ताके ऊपर निर्भर करके यह वासना शुद्ध रक्खी जाय, तो जीवात्माका चिरकाल ज्ञान रहेगा। जन्म जन्मान्तरमें ज्ञान रहनेसे स्वभावके अधीन होकर सुख दुःखादिके अधीन नहीं होना होगा। सर्व्वदा ही मनको परमानन्दमें रखके स्वरूप चैतन्य और ईश्वरानन्द भोग किया जायगा; और संसारयातना उपरत होगी। यही जीवोंके

निरुपाधित्वके लक्षण तथा यातनासे निर्व्वाणकी उपाय हैं। इसी-लिये संसारी लोग ईश्वर कहके क्या सुख और क्या दुःखमें सुखी होते हैं। कोई भी ईश्वर नाममें अनिच्छा नहीं करते। जो लोग अनिच्छा करते हैं, वे अज्ञानी हैं वा वृक्षादिकी भांति जीवन रहते भी अनुभवहीन हैं। योगी लोग इसीलिये समस्त यातनासे शान्ति लाभ करके निरुपाधि होनेके लिये सब प्रकारकी मायावर्ज्जित परमशान्तिरूप उस वैष्णवपदको श्रेष्ठ समझकर उसमें आत्मसम-समर्पण करते हैं। और वासनानुयायिक सद्यमुक्ति पाते हैं।

शि०। सद्यमुक्ति और क्रममुक्ति किसे कहते हैं?

गु०। सद्यमुक्ति और क्रममुक्ति किसे कहते हैं, उसे पहिले कहा गया है। इस समय क्रममुक्तिका विशेष विवरण आवश्यक समझ कर कहा जाता है। सद्यमुक्तिसे धारणा सिद्ध होकर निरुपाधि ब्रह्ममें मिलना होता है। किन्तु क्रममुक्तिका वैसा नियम नहीं है। क्रममुक्तिमें साधक देहत्याग न करने पर भी समस्त अनुभव कर सकता है। और सर्वत्र गमन कर सकता है। जो लोग क्रममुक्तिसे सिद्ध हो सकते हैं, वे इस ब्रह्माण्डमें अष्टाधिपत्य स्थापन कर सकते हैं। और वे अष्टाधिपत्य होकर इन्द्रिय तथा मनके सहित मिलित होकर शून्य (आकाश) मार्गमें विहार कर सकते हैं। उस शून्यमार्गमें विहार कर सकनेसे ब्रह्माण्डमें विहार करना हुआ। सिद्ध लोग इसी प्रकार शून्यमार्गमें विहार करके श्रीहरिके लीलाके मध्य गमन करके आत्म-रमण किया करते हैं; और इसे परम इष्टपद कहके परमानन्दित होते हैं। इस क्रम-मुक्तिको तान्त्रिक लोग विशेषरूपसे प्रिय कहा करते हैं। वैष्णव लोग इसे परमपद कहके वर्णन किया करते हैं। मैं शिववाक्य के सहारे उसका प्रमाण करता हूं। बहुतेरे लोग बोध होता है, ब्रह्माण्ड कहनेसे जगतको समझेंगे। किन्तु योगियोंका ब्रह्माण्ड

वह नहीं है। योगीलोग देहको ही ब्रह्माण्ड कहते हैं। इस देहमें सप्तसमुद्र अष्टकुलाचल, नदनदी, सरोवरादि और जीव प्रभृति है। विशेष करके इस देहमें शून्य, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल हैं। सप्त पाताल और सप्तस्वर्ग इस देहमें ही है। योगियोंने इस देहरूपी ब्रह्माण्डके अनुकरणसे वृहत् ब्रह्माण्डका नाम करण मात्र किया है। वे लोग वाहिरी दृश्यमान जगतको अपार्थिव समझकर निजके आयत्त जगतको देखनेके लिये उत्सुक होते हैं। अब शिववाक्यके सहारे देह और जगतमें जो अभेद है तथा देह के स्थानभेदीय नाम लेकर जो जगतके स्थानभेदका नाम हुआ है, उसे प्रमाण करते हैं। वैष्णवशास्त्र उपनिषत् और स्मृतिके मतके सहित सामञ्जस्य रखके महादेव श्री गौरीपार्वतीको जिस समय योगशिक्षा देनेका उपक्रम करते हैं, उसी समयमें योगके पूर्वउप-देश देहतत्त्व प्रकाश हुई है। वह देहतत्त्व अति प्राञ्जलभावसे तन्त्रमें निविष्ट है।

यह महाब्रह्माण्डरूपी जगत ही ईश्वरका स्थूलतररूप है, और प्रत्येक जीवदेह उसका आंशिकरूप है। इस स्थूलतररूपके सहित आंशिकरूपको समन्वय करके एक किया गया। अर्थात् जिस उपायसे ब्रह्माण्डरूपी महाविश्वदेह विराटको और क्षुद्रदेही जीव-विराटको एक समझा जायगा, उसे ही योग कहते हैं। इस जीव-रूपी देहमें सप्तद्वीप, सुमेरु गिरि नद नदी, पर्वत, क्षेत्र, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, तीर्थ, पुण्यपीठ, पीठदेवता, चन्द्र, सूर्य्य, पृथिवी, जल, वायु, आकाश, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, ये सब ही हैं। जो मनुष्य शरीरस्थ इन सब रहस्योंको जान सके और पूर्ववर्णित ज्ञानके सहित अपना ऐश्वर्य्य सम्पादन कर सके, उसे योगी कहते हैं।

इस देहका नाम ब्रह्माण्ड है, मेरुदण्ड ही इसमें सुमेरु है; इस सुमेरुके शृङ्ग मस्तकमें विस्तीर्ण हैं। उनके बीच बायें शृङ्गमें चन्द्रमा

उदय होकर सुधा वर्षण करते हैं; वह सुधा दो भागमें विभक्त है। उसका एक स्रोत देहकी पुष्टिके लिये गङ्गारूपी जो इड़ा नाड़ी देह के वाममें हैं, उसके बीच जाकर सारे शरीरमें व्याप्त होता है। दूसरा एक स्रोत ज्योतिर्मय अर्थात् दूधकी भांति है, वह मेरुकी मध्यमूया सुषुम्ना नाड़ीमें बहता है। मेरुके मूलदेशमें सूर्य द्वादश-कलायुक्त होकर शरीरके दक्षिणभागमें विहारी पिङ्गला नाम यमुना-पथमें किरण प्रदान करके चन्द्रकी सुधा शोषण करते हैं। इसी प्रकार विवेचना करके योगी जगत और देहको एक समझकर अष्टाङ्गयोग सिद्ध और अष्टयोग लक्षणसिद्ध होकर सर्वत्र भ्रमण कर सकते हैं। जिन योगियोंकी केवल इन्द्रिय और मनकी क्रिया होती हैं; देहके प्रतिभेदभाव न रहनेसे उसका भेदानुभव नहीं होता। जब कल्पान्त होता है, तब भी उनकी ऐशिया विस्मृति नाश नहीं होती।

अणिमादि-अष्टसिद्धिसे सिद्ध हो सकनेसे ही मन और इन्द्रियोंमें रमन कर सकते हैं। और उसके सहित योगाचार सिद्ध होनेसे साधक कल्पान्तास्थायी होकर देहके मध्यस्थ शून्यमें विहार करके परमानन्द अनुभव कर सकते हैं और अनुमानमतसे बाह्यजगतमें भी भ्रमण करके स्वप्नवत् समस्त सम्मुख देखकर सत्यभावसे प्रकाश कर सकते हैं।

जो सब योगीलोग पवनान्तरात्मा हुए हैं, अर्थात् जो योगी योगबलसे वायु साधन करके प्राण और चैतन्यमय नाड़ियोंमें वायु प्रवेश कराके चैतन्यमय हुए हैं, वे इस त्रिलोकके अन्तर और बाहिरमें बिना बाधाके प्रवेश कर सकते हैं। भू, भुव, स्वः, नाम स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूपी तीन लोक हैं। कारण और चैतन्या-वस्थाको स्वर्लोक कहते हैं। प्रकृतिमय स्थानको भुवर्लोक कहते हैं। विकारी क्रियाभूत अर्थात् जन्म मरणादि व्यापक और प्रकाश्य

जगतव्याप्त अवस्थाको भू कहते हैं। ये तीनलोक ही ब्रह्माण्ड हैं। ब्रह्माण्ड ही देह है। देहके अन्तरमें परिभ्रमण करनेसे ही मानो त्रिलोकके अन्तरमें भ्रमण करना हुआ ; और अहङ्कारादि भेद कर के प्रकृतिमय होनेसे ही त्रिलोकातीत होकर वहिर्जगतका देखना हुआ। यह जो क्रममुक्त योगियोंकी गति प्रकाश किया, इसे यज्ञादिकर्म्मी नहीं प्राप्त हो सकते। किसी प्रकार विद्याभ्याससे नहीं मिल सकती ; किसी प्रकारके योग वा तपस्यासे भी नहीं मिलती और किसी प्रकार समाधिसे भी प्राप्त नहीं होती। इस-लिये क्रममुक्तिकी अपेक्षा रमणीय अवस्था दूसरी नहीं है। किन्तु पूर्ण लय एक ही प्रधान उपाय है।

शि०। पूर्णलय कैसी है ?

गु०। यह जो जठरप्रदेश हैं, इसमें जो पद्म हैं, उन्हें प्रफु-ल्लित करनेके लिये द्वादशकलायुक्त तपनराज इसी स्थानमें किरण वितरण करते हैं ; उस किरणको वैश्वानर तेज कहते हैं। वैश्वानर तेजकी सहायसे समान क्रिया होकर प्राणियोंके देहमें विविध प्रकारके आहारीयोंके रसपाक प्राणियोंकी देहको वलिष्ट किया करते हैं। उससे ही देह, प्राण, मन, इन्द्रियादि जीवात्माके सहित प्रफुल्लित रहते हैं। उस अग्निकी सहायसे कुलकुण्डलिनी प्रफुल्लित होकर सुषुम्नामार्गमेंके पूच्छको ग्रहण करके अन्यान्य सब नाड़ियोंको चैतन्यमय करती है। उसी चैतन्यकारण और वैश्वानर तेजकी सहायसे ब्रह्ममार्गरूपी सुषुम्नाके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रमें आगमन पूर्वक आदित्यादिके पथको अतिक्रम करके प्रकृतिसे अतीत होने पर कालके हाथसे निस्तार पाया जाता है। इसी प्रकारकी अवस्थामें उपस्थित होनेसे यदि साधकको परमात्मामय होनेकी इच्छा हो ; इच्छा मृत्यु वा जीवन्मुक्त किम्वा सदेह त्रिलोक भ्रमण और अदेहमें त्रिलोकातीत होना अथवा मनेन्द्रियमें अवस्थान

करनेकी इच्छा होती है, उसे आचरण करने में इसी उपाय की आवश्यकता है। चैतन्यमय होनेसे साधक निज सामर्थ्य अनुसार बलसे दोनों अंगूठोंके सहारे दोनों कानोंको आच्छादन करे। दोनों तर्जनीसे दोनों नेत्रोंको आच्छादन करे। कुम्भकसे वायु रोध करे। ऐसा होनेसे ही साधकके हृदयमें कुण्डलिनी का चैतन्य और सुषुम्नाका तेज मिलित होकर भीषण ज्योति प्रकाश होगी। ज्योतिको साधक शून्याकृति जगद्ग्रास करके अपनेको ज्योतिर्मय देखे। वह महातेज ही आत्मा है। उस समय अपर उपाधि दूर होकर एक जीवात्मा ही सर्वस्व होगा। इसे महा प्रलय कहते हैं। इस अवस्थामें भी कर्मजात द्वैतभाव रहनेकी सम्भावना है। अनन्तर पूर्णलय होनेके लिये साधक इसी नियमसे एकाधचरण रहने पर अन्तरसे अनेक प्रकार नाद सुनेगा। पहिले मधुकरकी भांति ध्वनि प्रकाश होगी, उसके अन्तमें वेणुशब्द प्रकाश होंगे। उसके बाद वीणानादकी भांति शब्द प्रकाश होगा। उसके बाद जगतानुभव नादरूपी घण्टानादकी भांति शब्द प्रकाश होंगे। इसी अवस्थामें योगीका मन वासना और इन्द्रियशुद्ध होकर एकीभाव धारण करेगा। अनन्तर हृदयसे भीषणरूपसे मेघध्वनिकी भांति शब्द उठकर भूतविकारसे जीवात्माको शून्यमें लय करेगा; ये ही पूर्णलय है। इसी अवस्थामें साधक यदि देह रक्खें, तो भूतभविष्यज्ञ होकर बाह्यविषयोंको एकाकारगी विस्मृत होंगे; और यदि देह त्यागपूर्वक निर्गुणत्व लाभ करके केवल चैतन्यानुभव करें, तो अपने हृदयाकाशमें मानो लीन होते हैं। ऐसा होनेसे वह हृदयस्थ शून्य (आकाश) जिस समय जो शून्यमें लय होगा, साधकको कर्तृरूपी मानसेन्द्रिय भी चैतन्यके सहित उसी शून्यमें लय होगी।

वैश्वानर अग्निकी सहायसे विमानपथमें लेकर ब्रह्मरूपी सुषुम्ना

के द्वारा साधक पवित्र होकर शिशुमारचक्र पर्य्यन्त गमन करेंगे।

शि०। देह त्याग वा देहातीत अवस्थाका अनुभव तथा स्मृति संरक्षण किस प्रकार सम्भव होगा ?

गु०। यह गति किस उपायसे प्रमाणित हो सकती है। उस को बहुत सहज उपाय है ; जैसे एक फलसे उसके सारको ग्रहण करनेसे फलको अपेक्षा सार ही अधिक गुणकारी होता है। फलमें जो जो गुण थे, सारमें भी वे रहते हैं। वैसे ही जिन सब सार वस्तुओं को लेकर उस देहको जीवित वा क्रियावान देखा जाता है, वे सब यदि एकत्रभावसे असाररूपी देहको त्याग करें। तो क्या उनको निज की क्रिया अपनेमें विराजित नहीं रहती ? अवश्य ही रहती है।

जैसे तेजके सहारेसे बीजादिके अङ्कुर होते हैं, वैसे ही तेजसे ही जगतकी क्रिया हुआ करती हैं। तेज न रहनेसे इन्द्रिय, चैतन्य, मन और वासना किसी प्रकार कार्य्यकारी नहीं हो सकती। उस तेज का प्रकाशकर्त्ता वायु है। वायु, शून्य, तेज, ये तीनों ही मुख्य भूतांश हैं। इन तीनोंके एकत्र मिलनेसे जलका आविष्कार होता है, जल एकबार ही नहीं होता। वायु, शून्य, तेज इन तीनोंके मिलनेसे एक प्रकार विकारी तेज होता है, वह दो भागमें विभक्त है। एक भागसे तरलता सम्पादन करता है, उसे यजुर्वेदके मतसे महासार कहते हैं। दूसरा एकभाग अन्य भूतांशोंमें प्रवेश करनेको चेष्टा करता है। उसे यजुर्वेदमें सार कहते हैं। इन दोनों विकारी तेजोंसे वारि (जल) का प्रकाश है। इन सब भूतोंके मिलने और तेजादिसे पृथिवीका प्रकाश है। एकमात्र चैतन्यके बलसे देहज तेज और महासारको क्षमतासे देहमें एक प्रकारका रस उत्पन्न होता है, उसे शोणित कहते हैं। उस शोणितसे मज्जा उत्पन्न होती है, उसकी सहायसे ही देहका संस्कार हुआ करता है। इस स्थानमें उसका प्रमाण बाहुल्य है। विज्ञानमतसे भूतगत तेज और चैतन्य—दोनोंके संयोग

से देहको भूतक्रिया योगीमतसे रूप और चैतन्यमतसे इन्द्रिय क्रिया हुआ करती है।

एक गृहके वायु सञ्चारको आवद्ध करके उसके बीच अग्नि जलानेसे तेजको अधिकतासे जिस प्रकार तत्क्षणात् गृह प्रवेशीका चैतन्य हृत होता है; वैसेही वायु आकर्षणसे उसमें अग्नि प्रवेश होकर योगोजनोंका चैतन्य हृत हुआ करता है। विज्ञानमतसे चैतन्यसेही ज्ञानेन्द्रियोंका प्रकाश है। जैसे फलके सार रूपी बीज में समस्त ही वर्त्तमान रहता है, वैसेही देहको सार रूपी चैतन्यमें तथा ज्ञानेन्द्रियमें ही मन प्राणादिका अवस्थान है।

जैसे सुरसंयुक्त तार वीणाके ऊपर सञ्चित करनेसे घात प्रतिघात मतसे तार अपने हृदयस्थ सुरको प्रकाश करता है। फिर घातके अन्तमें अपनेमेंही अपनी क्रियाको अन्तर्हित करता है वैसेही चैतन्यादि देहमें रहकर भूतपीड़नसे क्रिया प्रकाश करते थे, देह त्याग से स्व-रूपमें अवस्थान किया। यह यदि विज्ञानसे मीमांसित हुआ, तब क्यों न देह त्याग वा देहातीत अवस्थाका अनुभव तथा स्मृति संरक्षण सम्भव होगा? अवश्य ही होगा।

शि०। सृष्टिके बीच नाम, रूप और गुण भिन्न भिन्न क्यों होते हैं?

गु०। मनुष्य, गो, व्याघ्र इत्यादि जातिवाचक संज्ञाको नाम कहते हैं। और उसके द्विपद, चतुष्पद, लोमस प्रभृति भेदको रूप कहते हैं; तथा हंस आदि पक्षी आदिके भी स्वाभाविक वर्णको गुण कहते हैं। मनुष्यादिको स्थूलभावसे समझना हो, तो पदार्थ-तत्वमें सब ही एक और रूपके भेदसे विवेचना करनी हो, तो वासनाजात कर्म्म स्वभाव प्रकाश होता है। वह वासना ही नित्य और जीवको कर्म्मकारिणी है। वह चैतन्यमयी है। वह वासना जीवात्माको लेकर जिस योनिमें जन्म ग्रहण करेगी, प्रकृति तत्क्ष-

पात् उसकी योनिमतमें रूप प्रदान करेगी। इसीलिये कोई द्विपद, कोई चतुष्पद, कोई द्रुप कोई कीट पची होकर संसारमें विहार करते हैं। और पीत शुक्लादि वर्ण एक शुक्लवर्णके ही तेज, उसकी तारतम्यके रूपान्तर हैं। भूतोंके गुणभेदसे तेजके तारतम्यसे श्वेत, पीत, कृष्णादि वर्ण प्रकाश होते हैं। विज्ञानमतसे जलका वर्ण श्वेत है। पृथिवीका वर्ण हरा है। पवनका वर्ण नील और अग्नि का वर्ण लाल है इत्यादि। उस श्वेतवर्ण तेजभेदसे यदि नीलके सहित पवनगुणका मेल हो, तो वह सबुज होता है। जैसे दुर्व्वाघास देखनेमें सब्ज है। किन्तु वस्तुतः वह अधिकांश जल अल्प पृथिवी-तत्त्वसे उत्पन्न विधायसे जब पृथिवीके ऊपर प्रकाश नहीं होता, तब थोड़ा हरित्युक्त श्वेतवर्णमय रहता है। किम्वा दुर्व्वावनमें कितनी ही दुर्व्वाके ऊपर किसी तरहका कठिन आच्छादन देकर वायु रोध करनेसे सबुज अंश नाश होकर दुर्व्वा स्वयं ही पीतयुक्त श्वेत अवस्था में आगमन करती है। उससे भलीभांति प्रमाण होता है कि, तेजके तारतम्य और भूतादिके संयोगतारतम्यसे वर्णादि प्रकाश हुए हैं। भूतादि महतत्त्वसे प्रकाश हुए हैं। महतत्त्व ही प्रकृति है।

शि०। मायाशक्तिसे कौन कौन शक्ति प्रचारित हुई हैं?

गु०। ब्रह्मा अर्थात् प्रकृति, नवविध ऋषि, प्रजापति; जिन के सहारे सृष्टिके नियमकी रक्षा होती है। स्वभावको कर्द्दम कहते हैं। ईश्वरके सर्व्वभूत वर्त्तमानीयशक्तिको विष्णु कहते हैं। मन प्रकाशकशक्तिको मनु कहते हैं। इन्द्रियशक्तिको देवता कहते हैं। नियम संस्थापनकर्त्ताको धरापति कहते हैं। स्वभावको अन्याया-चरणमें निरत करनेको अधर्म्म कहते हैं। जडजगतके मध्यगत तमोगुणी कालको रुद्र कहते हैं। जड़ और चैतन्य उभय संयोजक और वियोजक कालको सर्प कहते हैं। ये सब तत्त्व जिस शक्तिसे प्रचारित हैं, उसी प्रधान शक्तिको माया कहते हैं।

शि०। जीवदेहमें कितने प्रकारकी शक्ति है?

गु०। जगत दो भागमें विभक्त है। एक भाग चैतन्यमय है, और दूसरा भाग जड़मय है। जड़ता प्रकाशक और निकट सम्बन्ध में सम्बन्धीभूत जो चैतन्यावस्था इस जड़में क्रिया करती है, उसकी विभिन्नक्रियर प्रकाशक कारणशक्ति समूहको भिन्न भिन्न रूपसे कल्पना किया गया है। चैतन्यमय सामर्थसे वायु रुद्ध तथा प्रसारित होकर सजीव जगत और पूर्णजगतमें शब्दके सहित स्वरका प्रकाश होता है, उसे ही गन्धर्व्वीशक्ति कहते हैं। यह गन्धर्व्वीशक्ति सबके स्वभावके सहित ऐसी मिली हुई है कि, उसका भेद प्रकाश करना दुरुह है। इसीलिये कल्पनामें था कृष्णकी वेणुमें गान्धाररागकी आलाप पुराणमें कहा है। आनन्द प्रकाशक चैतन्यमय अवस्थाकी प्रकाशकशक्तिको विद्याधरीशक्ति कहते हैं।

अङ्गभङ्गीके सहारे चैतन्य प्रकाशक शक्तिको चारणशक्ति कहते हैं। माया प्रकाशक विभूतिको अर्थात् प्रकाश जगतके और जीवपक्षके आत्मशोभनोपायको यक्षशक्ति कहते हैं। चेतन्यको विषय संमिश्रणशक्तिको रक्ष कहते हैं। चित्तकी विविध गति प्रकाशकशक्तिको उरगशक्ति कहते हैं। ज्ञानके विषय संमिश्रण कारणशक्तिको नाग शक्ति कहते हैं। स्वभावके वैराग्य आनयन करणशक्तिको ऋषिशक्ति कहते हैं। कर्म्म अर्थात् अदृष्टप्रकाशकशक्तिको पितृशक्ति कहते हैं। संशयशक्तिको दैत्य कहते हैं। रिपुको दानव कहते हैं। ज्ञानको सिद्धशक्ति कहते हैं।

रूपान्तरवृत्ति और लयवृत्ति जिन सब शक्तियोंके सहारे माया की सहायसे होती हैं, उनका परिचय सामान्य भावसे कहा जाता है। जीवचैतन्य और भूतचैतन्य विभिन्न होनेसे भूत चैतन्यको प्रेतशक्ति वा अवस्था कहते हैं। इस शक्तिका प्रकाशक काल है। इसीलिये महादेवके सहचररूपसे उसको गिनती है। जीवावस्थासे

शवावस्था होने पर शवदेहकी विलय ततक्षणात् जिस शक्तिके सहयोगसे नहीं होती, उसे ही प्रेतशक्ति कहते हैं। जीवादृष्ट यदि वासनाके सहारे अपरिशुद्ध अवस्थामें भूतगत तथा जीवगत चैतन्यसे परित्यक्त हो, तो उसे पिशाचावस्था वा अपरिशुद्धावस्था कहते हैं। यह भी कालके सहयोगसे कार्य्यमें परिणत हुआ करती है। भूत कहनेसे परस्पर मिश्रित और चैतन्यहीन सूक्ष्मगत अर्थात् पञ्चभूतावस्था है; यह भी कालमें लीन है।

मत्स्यादि आकार-प्रकाशकशक्तिको यादोशक्ति कहते हैं। मनुष्ययोनिके सिवाय अपर भूचर मात्रको ही मृग कहते हैं। तदवस्था प्रकाशकशक्तिको मृगशक्ति कहते हैं। खेचर जीवको पक्षी कहते हैं। तदवस्थाप्रकाशकशक्तिको पक्षीशक्ति कहते हैं।

शि०। चैतन्यशक्ति कितने प्रकारकी है?

गु०। जिस चैतन्यशक्तिके सहारे अहङ्कार नाश होकर आत्मज्ञान आहरणके लिये गुरु तथा वेदान्तवाक्यमें विश्वास आकर्षित होता है, उसे श्रद्धा कहते हैं। जिस चैतन्यशक्तिके सहारे अपना भाव दूसरेके हृदयङ्गम कराने और दूसरेके भावको निज हृदयमें आवद्ध किया जा सके, उसे मैत्री कहते हैं। जिस चेतनाशक्तिसे अपनी और दूसरेकी बात अनुभव की जाती है, उसे दया कहते हैं। जिस चेतनासे सुख और दुःख समान बोध होकर धीरज उत्पादित होता है, उसे शान्ति कहते हैं। जिसके सहारे आत्माको चरितार्थता बोध होती है, उसे तुष्टि कहते हैं। जिसके सहारे मनोमय देह प्रशान्त रहती है, उसे पुष्टि कहते हैं। जिसके द्वारा उत्तमाधम बोधसे मन हृष्ट वा क्षुब्ध होता है, उसे क्रिया कहते हैं। जिसके सहारे वासनाको रिपुमेंसे ज्ञानपथमें लीन किया जाता है, उसे उन्नति कहते हैं। जिसके सहारे सदसत् विचार किया जाता है, उसे बुद्धि कहते हैं। यह मनकी एक अंशरूप है।

जिसके सहारे चित्त स्मृतिमय रहता है, उसे मेधा कहते हैं। जिससे अहङ्कार लोप होता है, उसे तितिक्षा कहते हैं। जिसके सहारे अपनेको हीन करके बोध होता है, उसे लज्जा कहते हैं। इस लज्जासे ब्रह्मज्ञान लाभ हुआ करता है। जिसके बीच ये सब शक्ति एकत्रित होकर क्रियापर होती हैं, उसे मूर्त्ति कहते हैं। मूर्त्ति कहनेसे चित्र जानो। मनोमय देह जिस भावापन्न होगी, ऊपरस्थदेह भी उसी भावापन्न होगी। क्योंकि अन्तर शोकान्वित होनेसे ही भूतमयदेह शोकान्वित देखी जायगी। अन्तर जिस भावसे रहेगा। वासना जिस भावसे क्रिया करेगी, जीव भी उसी भावापन्न होकर जगतमें भ्रमण करेगा। ये सब भाव एकत्रित होकर जो शक्ति मनोमय और भूतमय सूक्ष्म कारणावली संयोगसे ऐशिक स्वभावके अनुसारी होकर जीवको लेकर उसको वासनामय होकर जगत्में अवस्थान करती हैं, उसे मूर्त्ति कहते हैं।

ऐशिक स्वभावको धर्म्म कहते हैं। इसके सहारे वासना अदृष्टानुसारसे जगतमें जीवरूपसे नानाविध जीवभूत विभूति अर्थात् जीवानन्द वा सुख दुःख भोग किया करती है। इस धर्म्म वा मूर्त्ति के संयोगसे जो चैतन्यावस्था प्रकाश होती है, विज्ञानविद लोगोंने उसके सम्पूर्ण अंशको दो भागमें विभक्त किया है। एक अंशमें नित्य चैतन्य अवस्थान करता है, वही परमात्मा वा सूक्ष्म विराटरूप है। और एक अंशमें अनित्य चैतन्य अवस्थान करता है, वही जीवात्मा वा जीवरूप है।

इस जीवरूपको श्रेष्ठ ही मनुष्य जाति है। नर कहनेसे विज्ञानार्थ तत्त्व जानो। मनुष्य सकल तत्त्वके अंशसे सृष्ट हैं, इसीलिये मानव कहनेसे नर समझा जाता है।

परमात्माको नारायण कहते हैं, इस नारायणको ही परमात्मा वा जीवात्मा करके समझना होगा।

शि०। क्या जीवात्मा परमात्माकी कामना है?

गु०। वासनाके संयोगसे मन क्रियापर होनेसे अपरापर इन्द्रियशक्ति जो स्वभाव प्रकाश करेंगी, उसे ही काम वा कामना कहते हैं। वह कामना पूर्ण न होनेसे अभावजनित जो दुःख प्रकाश होगा, उसे क्रोध कहते हैं। कामना दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। मायायुक्त कामनाको अनित्यकामना कहते हैं। आत्मज्ञान कामनाको नित्यकामना कहते हैं। जो लोग निज स्वभावसे स्वयं ही सिद्ध हैं, वे ही सती हैं। महादेवादि कालशक्ति हैं, वे अपने स्वभावमें ही उन्मत्त हैं, अपर स्वभाव उन्हें विचलित नहीं कर सकते। जब सृष्टिरूपी ईश्वर वासना कालमें पतित होगी, तब ही वह वासना कालके बीच कामरूपसे प्रत्यचित होगी। उस भावके पूर्व्वमें काल ईश्वरके प्रलय शरीरमें उनके अन्तरमें तत्प्राप्तिरूपी नित्यकामनामें मुग्ध था। उस नित्यकामनाको ही अनित्य कामना विचलित करनेसे कालके बीच जो पूर्व्व अभाव प्रकाश हुआ, वही रुद्रादिका क्रोध और काम भस्म वा गौरीकी तपस्या कहके पुराणमें कल्पित हुआ है। यह नित्य और अनित्य काम जिसमें नहीं हैं, ऐसी जो अवस्था है, उसे ही नित्य ब्रह्मावस्था वा स्वरूपकी भेदावस्था समझना होगा। ब्रह्मका अंश ही अधिकानधिक भेदसे परमात्मा और जीवात्मा नामसे जगतमें प्रचारित है। ब्रह्मको जैसे कोई कामना नहीं है; वैसे ही ब्रह्मके स्वगुण भावरूपी जीवात्मा और परमात्माको वासनाके सिवाय कामना कुछ भी नहीं है।

शि०। किस समयमें ईश्वर और जीव समदर्शन हो जाता है?

गु०। युगान्त समयमें अर्थात् जब प्रलय प्रकाश होती है। जीव कहनेसे अदृष्ट वा कर्म्म जानो। जिसके जरिये अनेक रूपसे वृक्ष, पशु, मनुष्यादि भावसे जगतमें जीव देह प्रकाश हुआ करती

है। पृथ्वीमय कहनेसे सर्वभूत कारणमय जानो। वेदमार्ग कहनेसे सब जीवोंका ज्ञान स्वभाव है। जब प्रलय होती है, तब भगवान आत्मदत्त काल, कर्म, स्वभाव और माया सब ही हरण करके अपनेमें संरचण करते हैं। यही वेद वचन है। मनु ही इस स्थानमें जीव प्रकाशशक्ति है। जीवादि ही कर्म वा अदृष्ट है और भूतादि सूक्ष्मकारण ही माया वा कारणवारि है। वेदमार्ग ही स्वभाव है। इनके सहित भगवानने प्रलयकालमें क्रीड़ा किया था। इसी कालमें ईश्वर और जीव समदर्शन हो जाता है।

शि०। जब स्वभावका परिवर्त्तन होता है, तब ईश्वरको अविनाशी किस प्रकार समझें?

गु०। जीव जिस स्वभावापन्न होकर अदृष्टवशसे प्रकाश होता है, उस अदृष्ट नाशसे स्वभावका परिवर्त्तन होता है; और उसके सहयोगसे प्रकाश स्वरूप देहका भी नाश हुआ करता है। इस परिवर्त्तनावस्थाको मरण कहते हैं।

जीवका वासनास्वभाव अदृष्टस्वभावमें जिस भावसे क्रियापर करके शुभाशुभ करेगा, वर्त्तमान अदृष्टके शेषमें अर्थात् रूपान्तरमें उसी शुभाशुभ विवेचनासे वह वासना ही स्वभावापन्न होके अदृष्ट लाभ किया करती है; उससे नाना भावापन्न जीव देह जगतमें प्रकाशित होती है। यह भाव प्रायः मनुष्योंमें ही देखा जाता है। अण्डज प्रभृतिके बीच गति अल्पही भेद दीखता है। यह अदृष्टही ईश्वर के जीवलीलाको वासना है। "मैं अनेक होऊंगा" यह जो ईश्वरका वासनागत भाव है, उससेही अदृष्ट प्रकाश है। एक जन्ममें अदृष्टवशसे वासनाको क्रियायुक्त शुद्धिमें जो स्वभाव लाभ होता है, परजन्ममें अदृष्ट उसी स्वभावापन्न होकर वासनामतसे जन्म ग्रहण करता है। वासना कर्म अनुसार स्वभाव प्राप्त होकर ईश्वर के "अनेक होना" नाम अदृष्टको लेकर रूपान्तरमें प्रतिफलित

हुआ करती है।

यदि इस भावसे ही ईश्वरका रहना सिद्ध होता, तो वह मुक्त न हो सकते। जगतके विलयके सहित उनके विलयकी सम्भावना होती। क्योंकि अदृष्ट वासनाहीन न होनेसे ईश्वर प्रभामें युक्त नहीं हो सकता। विद्वानोंने बहुत अन्वेषण करके देखा है कि, ईश्वर इसी धर्मसे जगतका कार्य्य करते हैं, किन्तु जगतके सूक्ष्म-कारणमें विराजते हैं। वह सूक्ष्मकारण जब अविनाशी हैं और वे जब ईश्वरको शक्तिरूपसे रहते हैं, तब ही वे परिवर्त्तन हीन और दूसरेकी सहायसे चालित या वशीभूत नहीं हैं। यह शक्ति ही ईश्वरका यथार्थ रूप, और जगतरूपी कार्य्यसे पृथक् है। प्राणियों का अदृष्ट उनकी वासना मात्र है, प्रकृत अवस्था नहीं है। क्योंकि नित्यवस्तुका परिवर्त्तन नहीं देखा जाता। इसीलिये समझना होगा कि, ईश्वर सदायुक्त और सदायुक्तरूपसे अदृष्टरूपी हुए हैं। त्रिसभाव सम्मिलित होकर ईश्वर तीन अंगमें विभक्त हुए। एक अंशमें गुणोंके व्यत्ययरूपी अदृष्ट नामसे रहे, दूसरे अंशसे अदृष्ट के पालन हेतु अमृत नामसे रहे। उस कारणावस्थाके पालनहेतु अपरांशसे अभय नामसे रहे। सप्तपाताल ही कार्य्य और कार्य्यकी लयावस्था हैं। भुवः स्थूल कारणावस्था है। स्वः सूक्ष्म कारणावस्था है। यह स्वः छः भागमें विभक्त है। ये छः भाग भी भुवः इन समस्त कारणभूमिको सप्त स्वर्ग कहते हैं और सप्त पातालको कार्य्य और विलयभूमि कहते हैं।

अमृत, क्षेम और अभय, यह तीन अंश ही ईश्वरका त्रिपाद है। यह अमृत सर्वत्र ही व्याप्त है। जगतसे कारण तथा सूक्ष्म कारण पर्य्यन्त उसकी व्याप्ति है; उसीसे अदृष्टको अमरण धर्ममें दीक्षित कर रक्खा है। क्षेम कहनेसे प्राप्तावस्थाकी रक्षा जानो। ईश्वर जगतलीला करनेको जिस भावसे रूपान्तरित होकर जिस

कारणावस्थाको प्राप्त होंगी, वह जिस शक्तिसे रक्षित होता है, उसी क्षेम कहते हैं। अपनी शक्तिको मायाके अतीत करण पूर्वक अपने में संरक्षण करनेका नाम अभयावस्था है।

यह भू, भुवः, स्वः इन तीनों स्थानमें ईश्वर पूर्व्वोक्त तीन अंशसे प्राप्त हैं। भूवादि लोकोंके शिरोदेशमें जिन सब लोकोंकी स्थिति है, वे क्रमान्वयसे इन तीन अंशीभूत ईश्वरको स्वरूपमें भोग किया करते हैं; क्योंकि वहां कार्य्य नहीं है। विशेष करके वासना स्वभावमें परिणत नहीं होती। स्वर्लोकके ऊपरमें महर्लोक है। प्रलयमें जब कार्य्य और स्थूलकारणावस्था विलय होकर उत्ताप चैतन्यरूपी संकर्षण की मुखाग्निसे सर्व्वतोभावसे नष्ट होती है, उस समय सूक्ष्म कारणावस्थारूपी महर्लोक उस उत्तापकी पीड़ाको कुछ भी स्पर्श नहीं करता। क्योंकि वह स्थूलभागके सन्निहित है। इसका भाव यह है कि, कार्य्यस्थलमें ईश्वरके तीन अंश परिवर्त्तनशील हैं। किन्तु सूक्ष्म कारणस्थलमें वैसा नहीं है। तब महर्लोक अतिसूक्ष्म नहीं है कहके अमृत और क्षेम चिरकाल तक नहीं रहता। प्रलय कालमें चञ्चल होता है। फिर महर्लोकके ऊपरमें जनलोक है; वहां अतिसूक्ष्म भाववशसे कार्य्यजगतके परिवर्त्तनसे अमृतक्षेमादि परिवर्त्तन संयुक्त नहीं होते। फिर उसके शिरोदेशमें तपोलोककी स्थिति है; इस स्थानमें अमृत क्षेम पूर्णावस्थाको प्राप्त होता है तथा अभयका सञ्चार हुआ करता है। तपोलोकके ऊपर सत्यलोक है। इस स्थानमें अमृत, क्षेम और अभय नियमित रहते हैं। क्योंकि उसके ऊपर वैकुण्ठलोक वा ब्रह्मलोक है, वही ईश्वरका परम स्वभाव है। वहां फिर विलय वा ईश्वरांशका तारतम्य नहीं है। इसीलिये ईश्वर भूतजगतमें अंशका परिवर्त्तन और सूक्ष्म स्वर्गमें अंशका नित्यत्व स्थापन करके स्वयं अविनाशी हुए हैं।

शि०। ब्रह्म चिन्तन करने वालोंकी गति कितने प्रकारकी है?

गु०। वेदमतसे ब्रह्मचिन्तक लोगोंकी त्रिविध गति हुआ करती हैं;—कल्पान्तगति, हिरण्यगर्भगति और भागवतीगति। जो लोग देह त्याग पूर्व्वक वासनाबलसे चैतन्यके सहित मुक्त होकर शून्यावस्थान करते हैं, वे लोग कल्पान्त उपस्थित होने पर महाप्रलयावस्थामें स्मृति क्रमसे पुनर्वार जगत सृजनकालमें वासनामत से आत्मत्व प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रलयकालमें भी यदि उनकी स्मृति शून्यावस्थामें रहके स्वरूप रूपमें लिप्त रहे, तो प्रलयान्तमें भी वह रहेगी। स्मृति रहनेसे ही वासना उसी मतकी हुई। वासना से ही आत्मत्व है। शून्यानुभवी वासना होनेसे आत्मा भी शून्यत्व में अवस्थान किया करता है। यही वैज्ञानिक मीमांसा है। मुग्ध लोगोंको अनुभव होना बहुत कठिन है। इसे ही ब्रह्मभावुक लोगोंकी कल्पान्तगति कहते हैं। नारद भृग्वादि प्रभृतिकी यही गति हुई है।

जो लोग भूतांशसे इन्द्रिय और वासनाको प्रकृतिमें लय करके जीवात्माको प्रकृतिमय करते हैं, अर्थात् अहङ्कारशून्य होकर प्राणायामसे वा अन्य किसी उपायसे भेदज्ञानरहित होकर "सोऽहं" भावसे अवस्थान करते हैं। वे महाप्रलय पर्य्यन्त स्मृति लाभ करते हैं। अर्थात् जितने दिनों तक उनकी साधनीय प्रकृतिसे लभ्य ज्ञान प्रकृतिका नाश न होगा, तब तक वे लोग जितनी बार फटे वस्त्र को त्यागकर नये वस्त्र धारणकी भांति नवीन देह ग्रहण करेंगे, उतनी ही बेर एक प्रलय पर्य्यन्त शुद्ध स्मृति रहेगी। इसे ही हिरण्यगर्भगति कहते हैं।

तीसरी भागवतीगति है। यही जीवन्मुक्त अवस्था है। जब कालशक्ति और चैतन्यसे कारण समूह तेजोमय हुए। तब उन्होंने शक्तिमय होकर प्रकृति नाम धारण किया। उस प्रकृतिके स्वभाव परिणाममें अनेकांश अनेक उपायसे विहित होकर जिस

अंशसे भूत प्रकाश होकर दृश्य जीवजगत प्रकाश हुआ, उसके प्रथमांशको महतत्त्व कहते हैं। उस महतत्त्वसे ही अहङ्कारका प्रकाश है। यह अहङ्कार मायाजात स्वभाव है। इस मुग्ध स्वभाववलसे जीव प्रकृतिके अधीन है। ज्ञान ही प्रकृतिसे स्वाधीन है। वह ज्ञान ही स्वरूपज्ञाता और वह ज्ञान ही शून्योपरि अवस्थित है। चैतन्य शून्यभावना में शून्यमय हो सकनेसे स्वयं ही ज्ञानमय हो सकेंगे। इसे ही ब्रह्माण्डान्तर्गत शून्यविहार कहते हैं।

उस अहङ्कारसे ही बोध प्रकाश होता है, उससे ही चैतन्यसे मन भूतक्रिया अनुभव किया करता है। भूतक्रिया त्याग करनेसे ही अपनेको ज्ञानमय किया जाता है। देहको क्रियास्थल आत्माको कर्त्ता करनेसे समस्त क्रिया कर्त्ताकी सेवाके लिये हुई है, यही अनुभव हुआ करता है। यही जीवन्मुक्त अवस्था है। इस अवस्था में जीवके ऊपर जीवत्व दीखता है, किन्तु अन्तमें जीव स्वयं शून्य भावसे अवस्थान करता है। इस अवस्थामें ध्यानेका प्रमाण यह है, जैसे—जिस प्रकार इन्द्रिय नियमन हेतु निद्रा उपस्थित होती है, और उस अवस्थाके अनुभवको स्वप्न कहते हैं। अधिक करके उस स्वप्नदृष्ट वस्तुमें लिप्त रहके जीवात्माका बोध होता है, वैसे ही योगनिद्रामें इन्द्रिय नियमन करके लय स्वप्नमें मनको पहिले पृथिवीमय करके चिन्तन करना होता है। ऐसा होनेसे मन स्वयं ही पृथिवीत्व प्राप्त हो जाता है। इसका प्रमाण यह है, जैसे—जिस प्रकार एक रङ्गीन कांचको आंख पर रखके देखनेसे सब ही रङ्गमय देखा जाता है, वैसे ही मनोरूपी चैतन्यचक्षुसे पृथिवीत्वरूपी कांच भावना धारणा करनेसे स्वयं ही मन पृथिवीत्व प्राप्त हो जाता है। क्योंकि भेदभावरूपी अहङ्कारको इन्द्रिय नियमनके सहित लय करना पहिले ही हुआ है। इस प्रक्रियासे पृथिवी भावना बोध होनेसे जलभावना, उसके बाद तेजभावना और

उसके बाद शून्यभावना उचित है। यह अवस्था ही सिद्ध अवस्था और जीवन्मुक्त अवस्था है। योगशास्त्रमें इसका विशेष प्रमाण है।

शि०। कल्प किसे कहते हैं?

गु०। सृष्टिके परिवर्त्तनात्मक समयको कल्प कहते हैं। कल्प तीन प्रकारका है, जैसे—ब्रह्मकल्प, अवान्तरकल्प और पाद्मकल्प। प्राकृत अर्थात् कारण सृष्टि ही ब्रह्मकल्प है; और वैकृत सृष्टिरूपी जीवसृष्टि ही अवान्तरकल्प हुआ है। पद्म सम्बन्धीय—पाद्म है। पाद्म सम्बन्धीय सृष्टिके परिवर्त्तन सूचक कालको पाद्मकल्प कहते हैं। पद्म कहनेसे ब्रह्माण्ड जानो। कालकी सृजन क्षमताके परिणामसे जिस अवस्थामें इस ब्रह्माण्डरूप पद्मका प्रकाश होता है, उसे पाद्मकल्प कहते हैं। इस सृष्टिकल्पको समझानेमें केवल मात्र विज्ञान न दिखा कर भगवान व्यासजीने अनेक प्रकारके उपाख्यानके सहित उसे समझाया है।

ईश्वर जगत्सृजनके लिये "मैं अनेक होऊंगा" ऐसी इच्छामय होकर जिस प्रकाश अवस्थापन्न होते हैं, उसे ही पद्मरूपी कहते हैं। मैं अनेक होऊं, यह इच्छा ही आदिसृष्टि है। किम्वा मैं अनेक होऊंगा, यह सगुण अवस्था ही आदिसृष्टि है। उसी अवस्थामें नाभिसे अजने जन्मलाभ किया था। नाभि कहनेसे मध्यदेश अर्थात् सक्रियभाव जानो। जिस मध्यभागके सहारे चन्द्र सूर्य्य सक्रिय होकर जीवदेहको क्रिया सम्पादन करते हैं। उसे ही नाभि कहते हैं। ईश्वरपक्षमें भी ऐसा ही समझना होगा। अर्थात् ईश्वरके उर्द्धभागमें निर्गुण और अधोभागमें विकारित गुणमय होनेसे उनका मध्यभाग सक्रिय होकर ब्रह्माण्ड प्रकाशक गुणमय हुआ करता है। इसीलिये ईश्वरके सगुणभागको नाभि कहते हैं। उस सक्रिय अवस्थासे ही अज जन्मे थे, अज कहनेसे;—अ=विष्णु; ज=जात; अर्थात् विष्णुसे जात किम्वा जन्म कहनेसे

जिस अवस्थामें दुःख सुखादिरूपी कालका परिवर्त्तन सह्य करना होता है। जो उस कालके संघटित परिवर्त्तनको नहीं प्राप्त होते, वे ही अज होते हैं।

इस अजका पौराणिक अर्थ ब्रह्मा है। ब्रह्माण्ड प्रकाशक सूक्ष्मकारणावलीकी समष्टिको वा तेजको अज वा ब्रह्मा कहते हैं। उस ब्रह्माण्ड प्रकाशक शक्तिरूपी ब्रह्माको ईश्वरने निज महिमा प्रकाशक परमज्ञान कहा था।

ईश्वरने आत्मशक्तिसे जब विश्वनिर्म्माणके लिये कौशलरूपी अज (ब्रह्मा) को सृजन किया। उस समय अपनी ब्रह्माण्डनिर्म्माणेच्छा-शक्ति और तत्त्व सब ही उनमें प्रदान किया। क्योंकि जब तक घूमनेकी शक्ति कुम्हारके चाकमें रहती है, तब तक ही वह घूर्णित हुआ करती है। परमज्ञान किसे कहते हैं? ब्रह्मको जिस शक्ति से जाना जाता है, उसे ही परमज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान इ निर्म्माण कौशलरूपी ब्रह्मामें न प्रदत्त होनेसे ये जीव और जगतस किस नियमसे दृष्ट हो सकते। वही जो ईश्वरका वर्त्तमानत्वज्ञान है, उसे ही सुरगण भागवत कहते हैं। इन्द्रियादि सूक्ष्मतत्त्वको सुर वा देवता कहते हैं। इन्द्रियादि मानसशक्तिके सहारे ही जीव क्रियापर हैं; वे इन्द्रियगण ब्रह्माके मध्यगत ईश्वरके वर्त्तमानत्व-सूचक आलोचना करके उस ज्ञानको भागवत अर्थात् ईश्वर बोधक ज्ञानशास्त्र कहते हैं।

शि०। ज्ञानके बीच कौन ज्ञान श्रेष्ठ है?

गु०। इन्द्रियशक्तिगणोंकी समष्टि एकत्र होनेसे ही ज्ञानरूपी क्रिया करती हैं। उस ज्ञानके सहारे पूजित होकर ब्रह्मबोधके लिये जो ज्ञानका परिवर्त्तनात्मक भाव उपस्थित होता है, उसके जरिये ज्ञानात्मक इन्द्रियशक्ति समूह पवित्र हुआ करती हैं। इसलिये ब्रह्मज्ञान ही ज्ञानप्रकाशक शक्तियोंके बीच श्रेष्ठशक्ति है। तत्त्व-

ज्ञानरूपी तत्त्वके बीच ब्रह्मज्ञान आकर्षित होनेसे ही आत्मबोध और ब्रह्मबोध हुआ करता है।

शि०। भगवान यदि सब जीवोंमें चैतन्यमय हुआ करते हैं, तो ऐसा होनेसे मनुष्योंके सिवाय अन्य अन्य जीव स्वभावानुभव क्यों नहीं कर सकते।

गु०। परमात्माकी जीवलीलाके बीच स्वरूपानुभवलीला ही मानवशरीरोकी लीला है। यह ठीक है कि, भगवान सब जीवोंमें ही चैतन्यमय हुआ करते हैं; किन्तु उससे वे स्वरूपानुभव नहीं कर सकते; क्योंकि उन्हें चैतन्य प्रदान नहीं किया है। मनरूपी तेजका जो चैतन्यमिलनी अंश है, वह मनुष्योंसे भिन्न अन्य किसी को भी नहीं है। इसीलिये अन्यान्य जीवोंको मन न होनेसे वे ज्ञान प्रकाश करनेमें असमर्थ हैं। ज्ञान उदय न होनेसे अपनेको स्वयं प्रत्यक्ष नहीं किया जाता। अपनेको स्वयं प्रत्यक्ष न करनेसे विज्ञान प्रकाश नहीं होता। विज्ञानावस्था उपस्थित न होनेसे परमात्माका अनुभव नहीं होता।

शि०। यदि सब ही ईश्वरकी लीला हुई, और वह यदि स्वयं ही अनुभवके लिये इस देहलीलाको करते हैं, तब फिर उन्हें चिन्तन करनेका क्या प्रयोजन है?

गु०। अपनेको स्वयं देखनेकी इच्छा करके ईश्वरने मनुष्य देहरूपी दर्पण बनाया है। यह दर्पण भी निजका तेजांश है। इस तेजांशके संस्थानके लिये मायाजात देहक्रिया निर्द्धारण की है। और उसे शोधन करनेके लिये मनुष्योंको स्वाधीन वृत्ति स्थिर किया है। उस स्वाधीन वृत्तिरूपिणी चैतन्यका नाम वासना है। वह वासना मायामें मिलकर देहयात्रा निर्व्वाह करती है। इस माया और वासनासे क्रियाजात मिथ्याभूत एक उपाय प्रकाश होती है, वही अविद्यांश कहके जगतमें प्रकाशित है। वह अविद्या भीषण

राक्षसी केवल कामादि रिपुओंको प्रसव करके इन्द्रियादिको उनका दास बनाकर मनको उनका हो प्रभुत्व अनुभव कराती है; इससे जीवात्मारूप दर्पणमें उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है। जीवात्मा ईश्वर तेजसे देहमें विराजित रहनेसे वह अगत्या इस मायाजात व्यापारमें लिप्त होकर ईश्वरको दिखाई नहीं देता। इसीलिये इन्द्रिय और वासना मायाजात क्रियातीत न होनेसे मन परिशुद्ध न होगा। मन परिशुद्ध न होनेसे जीवात्माको अविद्या नामी मायावरण नाश न होगा। इस मायावरणके गत न होनेसे ईश्वर निज स्वरूप जीवात्मा को देख कर सन्तुष्ट न होंगे। और जीव भी ईश्वरके प्रतिबिम्बसे बिम्बित होकर ईश्वरमय न हो सकेगा। इस मायावरणको विनाश करनेके लिये जीवको जिसमें ईश्वर देखे, और जीव ईश्वरमें जिस प्रकार प्रतिबिम्बित हो सके, इन सब उपायोंके विधानके लिये पूर्व्वोक्त योगसमूह प्रकाश हुए हैं।

शि०। इन्द्रियातीत होना अवस्था किसे कहते हैं?

गु०। इन्द्रिय प्राणादि क्रियापर होकर देहमें अवस्थान करते हैं। इस क्रियासे परमार्थ साधन और माया साधन दोनों कार्य्य ही हुआ करते हैं। परमार्थ साधनको उपाय ही इस स्थानमें प्रकाश होती है। इन्द्रियादि और प्राणादि माया साधन त्याग करके अर्थात् निज निज क्रिया मनमें प्रतिभात न करके ईश्वरने जिस प्रकार प्रत्येकको प्रत्येकके तेजसे क्रियापर करके सृष्टि किया है, उसी भावसे क्रियापर होनेका नाम इन्द्रियातीत वा प्राणातीत होना है। योगीका कर्त्तृत्व जब जीवात्मामें समर्पित होता है, तब ही योगी लोग परिशुद्ध होकर क्रम वा जीवन्मुक्त अवस्थाके पथिक होते हैं। इस अवस्थामें जीवात्मा ईश्वरको निज तेज दर्शनसे प्रतिबिम्बित करके जैसे समुद्र और तरङ्ग अभेद है, तथा तरङ्गरूपी जीवात्मा जो समुद्रको क्रिया प्रकाशक स्वरूप है, उसे समझाकर

स्थिर हुआ करता है। यही वेदान्तका "सोऽहं" भाव है। ज्ञान भक्तिमय साधकोंका "सारूप्य-निर्व्वाण" और प्रेममयकी "समाधि-अवस्था" है। उस अवस्थामें मन फिर इन्द्रियादिका अनुभवकर्त्ता नहीं है। इन्द्रियादि उस समय देह संरक्षणके लिये निज निज क्रियामें तत्पर होती हैं। नासिकामें सुगन्ध प्रवेश करके अन्तरस्थ वायुयन्त्र परिष्कार किया करती है; उस सुगन्धमें मनकी आसक्ति प्रकाश नहीं होती। रसना मीठे वा तीते रसका आस्वाद लेकर उदरसात् करनेसे तैजोत्पादन और औषधादिकी क्रिया करती है; उसमें भी मन अनुरत नहीं होता। त्वकमें उस समयमें शीतोष्ण स्पर्शन होता है; किन्तु मन उससे सुख दुःख अनुभव नहीं करता। कान शब्द मात्र पाते हैं, उस शब्दसे मन भय वा उत्साहादि क्रियापर नहीं होता। प्राण, अपान, समानादि पांचो वायु देहका चैतन्य सम्पादन मात्र करते हैं, मनको रिपुपर नहीं कर सकते। इन सब क्रियाओंको ही योगीके पक्षमें इन्द्रियातीत होनी अवस्था कहते हैं। इस अवस्थामें योगी परमानन्द प्राप्त होकर वाह्यविकार रहित होके योगबलसे सहस्रदलमें रमण किया करते हैं। यदि संसारी व्यक्ति संसारलीलाके आस्वादनमें वीततृष्ण होकर मुक्त होनेकी इच्छा करें। तो अनायास ही मुक्त हो सकेंगे।

शि०। क्या संसार निन्दनीय स्थान है? संसारमें न रहनेसे ईश्वरके प्रजावृद्धिरूपी नियमका लङ्घन होनेकी तो सम्भावना है?

गु०। संसार शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे देखा जाता है,—"सं पूर्वक सृ धातुके उत्तर अ प्रत्यय" करके संसार शब्द निष्पादित हुआ है। सं शब्दका अर्थ पीड़ा है, सृ धातुका अर्थ प्रवेश है; जिसमें पीड़ा सर्वतोभावसे प्रविष्ट है, उसे संसार कहते हैं। माया अर्थात् सदसदात्मिकाशक्ति कालके सहारे क्षुब्ध होकर त्रिगुण सहयोगसे क्रियाशाली होके दो स्वभाव विशिष्ट होती है। एक ईश्वर चैतन्यसे

सम्मुखावस्थित है, और एक उनके पश्चात्‌में अवस्थित है। सन्मुखावस्थित स्वभावको विद्या कहते हैं। पश्चात् अवस्थित स्वभावको अविद्या कहते हैं। ये दोनो स्वभाव प्रकाश और अन्धकारकी भांति एक वस्तु केवल प्रकाश तथा अप्रकाश तेज मात्र हैं। ये दोनो स्वभाव, गुण, क्रिया, काल चैतन्यके सहयोगसे जहां क्रिया किया करते हैं, उसे ही संसार कहते हैं। जीवात्मा इन्द्रियोंके अधीन और इन्द्रियां रिपुके अधीन होनेसे ही उस जीवात्मामें अविद्यावरण पड़ता है, जीवात्मा अविद्यास्वभावजात मिथ्याभूत अहङ्कारसे उन्मत्त होकर स्नेह, मोह, जरा, पीड़ादिमें आवद्ध होकर ईश्वरसे विच्छिन्न हो जाता है। मनुष्य जीवके पक्षमें यह अवस्था ही अधिकांश उपस्थित हुआ करती है। इसीलिये इस मायांशको संसार कहते हैं। इतना ही मत जानो कि, संसारमें केवल मनुष्य ही रहते हैं; संसारवासी कहनेसे शास्त्रमतसे अविद्यांशजात सब प्रकारके जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज जीव समझना होगा। इस संसारमें जो जीवात्मा विद्यास्वभावसे मण्डित हैं, वे ईश्वरके सन्निहित हैं। विद्या स्वभावसे अति अल्प जीव ही रहनेमें समर्थ हुआ करते हैं। संसारमें ही जन्म है, जन्म कहनेसे ही यदि संसार आदरकी वस्तु होता, तो जीवोंके पक्षमें संसारकी अपेक्षा मातृगर्भको आदरका स्थान कहना होगा। तब क्यों गर्भ यन्त्रणा भोग कहके लोग दुःख करते हैं। संसारमें निष्कामभावसे माया मोहादिमें अभिभूत न होनेसे ही लोग वैरागी हुआ करते हैं। किन्तु संसारमें परस्परके अविद्याधिक्य प्रवल रहनेसे एक जीवको कणामात्र अग्नितुल्य विद्याप्रकृतिको सागरतुल्य अविद्याके वीच रक्षा असम्भव है, इसीलिये वैरागियों वा मुमुक्षु लोगोंके पक्षमें संसार त्याग उचित होता है। किन्तु संसार त्याग होनेसे ही जो भागवती गति लाभ हुई उसका ठीक नहीं है। जैसे संसारमें माया मोह

के योगसे जीवने आवद्ध होकर सब अहङ्कार संसारमें दिया था; वैसे ही फिर ऐसी अभिलाष और वासनाको ईश्वरमें समर्पित करना होगा। ऐश्विक समर्पणको भक्तियोग कहते हैं। इस भक्तियोग से क्या सकाम क्या निष्काम सब ही निस्तार पावेंगे। निष्काम भी स्वरूप चिन्तामणि पावेंगे। सकामी कामनाका फल पावेंगे। यह श्रुति तन्त्रादिमें विशेष प्रमाणित है। संसारी यदि मुक्त होने को इच्छा करें, तो उसके लिये अनेक उपाय हैं। संसारीके पक्षमें दान यज्ञादि श्राद्ध तर्पणादि विहित हैं। उससे क्षणिक मोक्षरूप स्वर्गलाभ होता है। इस स्वर्गलाभको वासना और आत्माकी परिशुद्धि मात्र कहते हैं। ईश्वर विच्छेद नहीं होता। किन्तु निष्कामीकी उपायरूप तपस्या, योग प्रभृतिसे जैसे ईश्वरकी मुक्त गति समूह लाभ हुआ करती हैं। सकामीको वह नहीं होती। जो लोग मुक्तपक्षमें चाहे कोई कार्य्य क्यों न करें भगवानमें भक्ति-योग सर्वतोभावसे विधेय है।—उन्हें भक्तियोगमें आवद्ध करके पूर्व्वोक्त भागवती गतिमें उपस्थित होनेकी इच्छा करनेसे भी पाया जाता है और पुण्यफलरूपी स्वर्ग भी पाया जाता है।

शि०। भक्तियोगका साधन क्या है?

गु०। जीव किस भावसे उन्हें स्वरूप दिखावेगा और उनका स्वरूप अनुभव करके समुद्र और तरङ्गरूपसे अभेद होगा, उसके उपायका प्रथम द्वार ही भक्तियोग है। इस भक्तियोगका साधन करना हो, तो कामनामें व्याप्त होना होता है। कामना मनका धर्म्म वा तेज है। यह कामना सकाम वा निष्काम भावसे क्रिया-वान है। मन सकाम और निष्कामभावसे अवस्थान करके पुरुष रूपसे अपने तेजसे वासना नाम्नी नारीके तेज रतिके सहित दाम्पत्य प्रणयमें आवद्ध है। वासनासे रतिमें सम्मिलित न होनेसे किसी प्रकारसे कोई उद्देश्य सिद्धिके लिये विकास प्रकाश नहीं होता।

विश्वास प्रकाश न होनेसे प्रेम वा ज्ञान नहीं पाया जाता। प्रेम वा ज्ञान न मिलनेसे परमपदार्थ नहीं पाया जाता। इसीलिये भक्ति योगके क्रियाकी प्रधान अंग रति है। रति भिन्न किसी वस्तुका अनुभव नहीं होता।

शि०। रति किसे कहते हैं?

गु०। रम धातुके उत्तर ति प्रत्यय करके रति शब्द लाभ होता है। कामना संयुक्त मनका रमणस्थल ही रति है। एक विषयमें एकान्त अर्थात् चञ्चलभाव हीन रमणको रति कहते हैं। एक ईश्वर भिन्न अपरपात्रमें यह चैतन्यभाव प्रकाश नहीं होता। तब संसारमें पवित्र क्रिया करनेसे इस रतिसे एक प्रकार पवित्र क्रियाका प्रकाश होता है, उसे ही अनुराग प्रेम इत्यादि कहते हैं। संसारके बीचमें ऐसी जो प्रिय सामग्रीरूपो जननी, रमणी, कन्या, पुत्रादि हैं; उन सबमें भी जीवकी इस वृत्तिकी छाया स्वरूप अनुराग और प्रेमादि संघटित होता है; यथार्थ रतिकी क्रिया नहीं होती।

शि०। यह रति क्या मदनदेवकी स्त्री है?

गु०। इसी कामना युक्त मनको पुराणमें मदनरूपसे कल्पित किया गया है। और उसकी स्त्रीको रति कहके कल्पना किया गया है। इस रतिको कामना तेजयुक्त स्वभावरूप मन और रतिके सहयोगसे ब्रह्माने जगत्प्रकाश किया है। इस अवस्थाको सकाम भाव कहते हैं। और अकामयुक्त रतिके प्रभावसे ब्रह्मा ईश्वर प्रकाश करते हैं, इसे ही निष्कामभाव कहते हैं। इस निष्कामभावका रूपक ही महादेवका "मदनभस्म" पुराणमें कल्पित हुआ है। और सकामभावका चित्र ही ब्रह्माका "सावित्री मिलन" कल्पित हुआ है। एक ईश्वरने जब अपनी चैतन्यशक्तिको सदसदात्मिका तेजसे मिलाया है। तब कार्य्य कारण कर्त्ता ब्रह्मा नामधारी हुए हैं।

चैतन्यशक्तिको सावित्री किया है। जब काल तेजसे अपनी चैतन्य शक्तिको मिलाया है, तब ही अपनेको महारुद्र महादेव और चैतन्यशक्तिको उमारूपसे कल्पित किया है। जब स्वरूप तेजसें अवस्थित रहते हैं, तब अपनेको विष्णु और चैतन्यशक्तिको लक्ष्मी नामसे कल्पित किया है। यही पौराणिकोंकी कल्पना है। अति गूढ़भावसे यह सब आलोचित होती और प्रकाशित हुआ करती हैं। ब्रह्माका "सावित्री मिलन" सकामभाव, गङ्गाका मिलन निष्कामभाव, रुद्रका—क्या उमा क्या गङ्गा दोनों हो निष्कामभाव है। उसके बीच निष्काम उपासनामें जिस शक्तिसे फलकी आशा रहती है, तत्प्रकाशिका वासना ही निष्कामशक्ति है। उमारूपिणी और पूर्णनिर्वाण वा मोक्ष प्रदायिकाशक्ति ही गङ्गा है। विष्णुके पक्षमें गङ्गा सर्वमोक्षप्रदायिका और लक्ष्मीको विभूतिप्रकाशिका अर्थात् जगत्प्रकाशिका समझना होगा। इस प्रकार गूढ़ आलोचना से पुराणोंमें कूटार्थ प्रकाश स्वयं ही हुआ करते हैं।

शि०। मदनभस्मका गूढ़भाव क्या है?

गु०। जब जीवका अविद्यांश त्याग हुआ, तब जीवने क्या अपनी अवस्था देखा? नहीं, अपने प्रभावरूप इन्द्रियादिरूपी इन्द्रादिदेवताओंको मोहरूपी रिपुने मुग्ध करके स्वर्ग किया है। अविद्या नाशसे विद्या चैतन्यप्रभावसे इन्द्रियादिने उस समय वृह-स्पतिरूपी बुद्धिके सहायसे अपने चिन्मय ब्रह्मके निकटमें रिपु दमन की उपाय स्थिर करनेके लिये गमन किया। जीवस्वभाव चैतन्य रूपी ब्रह्माने बुद्धिके सहित इन्द्रिय देवताओंको रुद्ररूपी कालशक्ति के सहित ऐशिक फललाभरूपी उमानाम्नी विद्याशक्तिका मिलन करानेको कहा। इस विद्याशक्तिको महामाया कहते हैं। इसका कारण यह है कि, कालकी क्रिया शक्ति है, और ईश्वर चैतन्ययुक्त मायामें इस क्रिया संयुक्त जीव किस भावसे ईश्वर सान्निध्य हो सकता।

यह स्वयं ही प्रकाश हो जायगा। इन्द्रियादि मनके अधीनमें रहके सकाम थे। इस समय निज निज सकाम वृत्तिरूपी काम नाम तेजके सहित रति संयोगसे वसन्तरूपी भक्तिके सहित कालके सन्मुख आगमन किया। कालके मस्तकमें निष्काम चैतन्यशक्ति गङ्गा क्रिया करती हैं। सकाम मनरूपी मदनने वासना तेजरूपी रतिके सहयोगसे अपना सकाम तेज कालके अधीन किया। काल ने उस तेजसे आकर्षित होकर त्रिनयनरूपी सत्त्व, रज, तमो नाम त्रिनयनके शिरस्थित सत्त्व नाम नयनसे सत्त्वज्योति प्रकाश करके सकाम मनरूपी मदनको भस्म किया। अकेली रति रही। भक्तिरूप वसन्त भी रहा। भक्तियोगसे निष्काम रति ईश्वरमें मग्न हुई। कामना ने अपना तेज इसके पहिले कालको देहमें कराया था वाहकी कालकी सकामशक्ति उमाको ग्रहण करके उसके गर्भसे विज्ञान अवस्थारूपी कार्त्तिकेयका जन्म देना हुआ। यही कासना और रति व्याप्त जीव प्रतिविम्वभुज ईश्वरकी लीला इसका ही सारभाग मात्र है। भक्ति योगसे निष्काम रतिको आत्माके सहित यदि सम्मिलन किया जाय, तो जीवको पूर्व्वोक्त भागवतीगति लाभ होती है। आत्मामें भक्तों की निष्कामरति स्थिर होनेसे उसमें ही विश्वास स्थिर हुआ समझना होगा।

शि०। जिसके अनुभव होनेको उपाय नहीं है। उसके प्रति विश्वास किस प्रकारसे स्थिर होगा?

गु०। ईश्वर अनुभवकी वस्तु हैं। सब कोई ही अनुभव कर सकते हैं। ईश्वरको अनुभव करना हो, तो न्यायके अनुमापक लक्षणको सहाय लेना होता है। क्रियादर्शनसे अन्तर्य्यामी कर्त्ता के सिद्धान्त कारणोपायको ही अनुमापक लक्षण न्याय कहते हैं। जैसे आग्नेय पर्व्वतके अन्तरमें अग्नि है, यह पर्व्वतके वाहिरी धूआं को देखकर निश्चय किया जाता है। वैसे ही दैहिकक्रिया दर्शनसे

आत्मा की स्थिरता होती है। आत्मा स्थिर होनेसे परमात्मा ईश्वर प्रत्यक्ष हुआ करता है। जैसे सब काष्ठोंके बीच अग्नि है। घर्षणसे ही प्रकाश होती है। वैसे ही ईश्वर सब जीवोंके अन्तरमें निविष्ट हैं, जीवात्मारूपसे लीला करते हैं, और उस लीलाजात क्रियासे ही जीवात्मारूपसे स्वयं ही निज स्वरूपानुभव करते हैं। जैसे कुठार-धारी निज हाथसे कुठार न पकड़े, तो कुठारको कुछ भी सामर्थ नहीं है कि, वह क्रियावान हो। वैसे ही बुद्ध्यादि पदार्थ हैं। क्योंकि सदसदात्मिकाशक्तिमें चैतन्य और काल जब तक संयुक्त न होंगे, तब तक वह किसी क्रमसे भी चैतन्यवान वा क्रियावान नहीं हो सकती। जड़ और चैतन्य इन दोनों वस्तुओंके संयोग तथा वियोगसे ही जगतका प्रकाश और ह्रास कल्पित हुआ करता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार ये चारो ज्ञानेन्द्रियोंके अनुभावक यन्त्र हैं, इन सब यन्त्रोंमें जब तक चैतन्यका आवेश न होगा, तब तक ये किसी क्रमसे भी क्रियावान न हो सकेंगे। इसीलिये उनकी क्रिया देखकर देहमें जो चैतन्यमय वस्तु है, तथा वह भी अन्तर्य्यामी रूपसे है, यह प्रमाण हुआ। अधिक करके प्रत्यक्षानुभव हुआ। उस चैतन्यप्रद तेजको ही आत्मा कहते हैं। आत्मा शब्दकी व्युत्पति करनेसे यह अर्थ लाभ होता है कि,—"जो वस्तु सर्वत्र निज तेजसे व्याप्त है"।

शि०। इस समय आत्माका अनुभव हुआ, किन्तु परमात्मा का प्रत्यक्षानुभव इस अनुमापक न्यायसे किस प्रकार होता है?

गु०। प्रत्यक्षानुभव करना हो, तो इसी लक्षण सहयोगसे सत्य मिथ्या स्थिर करना होता है। जो सत्य है, वह अनुभवपक्षमें प्रत्यक्ष है। जैसे मरीचिकामें तथा क्षुद्रोर्म्मियुक्त सरोवरमें तृषा-तुरको अभिलाष तृष्णा निवारण करना है। यद्यपि अनुमापक लक्षणके सहारे दूरसे दोनोंको ही जलाशय कहके स्थिर हुआ।

किन्तु तृषातुरकी अभिलाष जिससे मिटेगी, उसे ही सत्य करके स्थिर होगा। मरीचिकाकी सामर्थ नहीं है कि, वह तृष्णाकी शान्ति करे। इसलिये अनुमापक लक्षणसे ईश्वरनिर्णय करनेकी जाकर ईश्वर निर्णयरूप उद्देश्य परितोष न होनेमें कभी भी ईश्वर का प्रत्यक्ष करना नहीं होता। इस समय भक्त लोग फिर आत्मामें और ईश्वरमें अनुमापक न्यायसे विचार करें, तो ईश्वरका प्रत्यक्षानुभव होगा। वेदान्त प्रभृति शास्त्रोंमें इस सिद्धान्तकी मीमांसा करनेमें आत्माकी तरङ्ग और ईश्वरको सागर कहके तुलना करके ईश्वरके अन्तर्यामीत्वका निश्चय और सत्त्वका निश्चय किया है। जैसे सागरको देखने जानेसे केवल उसकी तरङ्ग ही दीखती है। सागर उसी तरङ्गरूपसे परिणत होकर जगद्व्याप्त शरीरमें अवस्थित है। किन्तु अपना गुण, क्रिया, और प्रभाव उस तरङ्गरूपी क्रियाके सहारे जगतमें प्रकाश करता है। इस घटनाको देखकर इस गुण क्रिया स्वरूपी तरङ्ग दर्शन करके कौन व्यक्ति समुद्रकी सत्ताको अनिश्चित कह सकता है। वैसे ही आत्मारूप सच्चैतन्यमय ईश्वरकी लीलावस्तु जो उनकी क्रियामें ही क्रियावान हैं, यह स्थिर हुआ। समुद्र जैसे अपने अंशको तरङ्ग करके लीला करता है, ईश्वर भी वैसे ही अपने चैतन्यांशरूपी आत्माके सहारे जागतिक लीला करके समुद्रकी भांति आत्माके अन्तरमें अन्तर्यामी रूपसे हैं। इसी प्रकार न्याय और वेदान्त मतसे ईश्वर जो प्रत्यक्ष अनुभव वस्तु हैं, इसलिये सत्य हैं; वह वर्णित हुआ। वेदान्तमें जो "सोऽहं" बीज है, वह भी सत्यका चूडान्त दृष्टान्त है। क्योंकि (स × अहं) सोऽहं। सः शब्दसे ईश्वर, अहं शब्दसे आत्मा जानो। और न्याय के तटस्थ वा स्वरूप लक्षणसे जीवात्मा ईश्वरका क्रियाधार कहके निर्दिष्ट हुआ है।

शि०। तटस्थ और स्वरूप लक्षण कैसा है?

गु०। किसी एक विषयको मीमांसा करनेको कहनेसे उस मीमांसाके हेतुको स्वरूपलक्षण कहते हैं और उसको क्रियाको तटस्थ लक्षण कहते हैं। यद्यपि एक वस्तु है, तब समान भाव और सक्रियभाव इतना हो भेद है। जैसे किरण और सूर्य्य। सूर्य्य जिस तेजमय वस्तु हैं किरण उसका तेज तथा तेजप्रकाशक अंश है। इस स्थलमें किरण तटस्थलक्षण और सूर्य्य स्वरूपलक्षण हैं। इसी प्रकार ईश्वर और जीवमें अभेद है।

शि०। यदि ईश्वर और जीवमें अभेद ही हुआ, तब जीवके पक्षमें पुनर्वार ईश्वर स्मरणका क्या प्रयोजन है?

गु०। जैसे समुद्रमेंसे एक अंश जल लेकर अन्य पात्रमें रक्षण करने से उस जलांशका समुद्र नाम नहीं रहता और समुद्रको भांति किम्वा वह जब समुद्रमें था, उस अवस्थाको भांति क्रियावान नहीं होता। वैसे हो जीव, रिपु और अविद्या मायारूप पाशमें पतित होकर तत्क्रियावान वा तत्शक्तियुक्त हुआ करते हैं। जीवात्माका उद्देश्य चैतन्यप्रकाश मात्र है। ईश्वर चैतन्यमय हैं, उनका चैतन्यांश जड़में पड़कर कौनसी लीला प्रकाश करता है, उसे वह अनुभव मात्र करते हैं। जैसे समुद्रसे आधारभूत जल होनेसे फिर उसके सहित समुद्रका कुछ सम्पर्क नहीं रहता। वैसे ही जीव चैतन्य रिपुपर होनेसे फिर उसके सहित ईश्वरका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। इस स्थलमें रिपु कहनेसे अविद्यासम्पन्न रिपु समझना होगा। आधारभूत जलांश जैसे फिर आधार विनाशसे समुद्र में मिल सकता है और समुद्रमय होकर स्वरूप क्रियावान होता है, वैसे ही जीवात्मा भी ईश्वरमय हो सकता है। तब अविद्या संयुक्त रिपुगणोंको अविद्यासे वियुक्त करना होता है। तब वे रिपु समूह विद्याभावसे मंडित होकर इन्द्रियादिको शुद्ध चैतन्य प्रदान करते हैं। तब जीवात्मा और परमात्माका मिलन होता

है। इस क्रियाके लिये ही योग तपादि निष्कामभावका प्रयोजन है। दान यज्ञादिको सकाम भावका प्रयोजन समझना होगा। जिससे ईश्वर चेतन्य जीवात्मारूपी चैतन्यांश अविद्यायुक्त रिपुमें पड़कर ईश्वरसे वियुक्त नहीं होता। उसके लिये जीवात्माके पथ प्रदर्शक मनको सर्वदा ही हरिकथा श्रवणादि करना होता है। उसमें सत्त्वगुण रहता है, तमोयुक्त अविद्या प्रवेश नहीं कर सकती। जीवात्माका जागतिकविकार नहीं होता। इसी मीमांसासे सब के हृदयमें ही ईश्वर जो सबके पक्षमें स्मर्त्तव्य, श्रुतयोग्य और कीर्त्तन योग्य हैं, वह मीमांसित हुआ।

शि०। मनुष्यके पक्षमें मुक्ति देनेके लिये ईश्वरने स्थिर किया है, अन्यान्य जीवोंके लिये क्यों नहीं किया?

गु०। जीवात्मा यदि परमात्माको देखे, तो वह क्यों अविद्या के अन्धकारमें रहेगा, और अविद्याके अन्धकारमें न रहनेसे जीवकी संसार लीला नहीं होती; ईश्वरके जीव देहकी क्रिया नहीं होती। अन्य जीव अविद्यावलसे मग्न होकर ईश्वरकी क्रिया मात्र करते हैं; वे तो अविद्यासे पीड़ित नहीं होते। जैसे जिनका जलमें जन्म है, वे जलको ही प्रिय समझते हैं, जलके विना मर जाते हैं। वैसे ही अन्य जीवदेहमें ईश्वरने मायालीला करेंगे कहके अपनी इच्छा से अविद्याके बीच ही उन्हें सृजन किया है। इसलिये वे लोग अविद्याको ही आश्रय समझकर उसमें ही मग्न रहते हैं। किन्तु मनुष्य विद्याशक्तिसे जन्म लाभ करता है, इसलिये उसे अविद्या-पीड़न अनुभव होता है। क्योंकि जीवात्मा इसी जन्मसे ही स्वरूप में जा सकता है; और सारूप्य प्राप्त होनेके लिये ही इस मनुष्य जन्मको स्वयं ईश्वरने अपने स्वरूप तेजसे सृजन किया है। इसी लिये मनुष्योंके पक्षमें यज्ञ, दान, तपस्या प्रभृति सकाम और निष्काम कर्म्ममें पूर्व्वजन्मजात अविद्यायुक्त जीवात्माकी मलिनता

विनष्ट हो जाती है। इसीलिये साधकके हितके लिये तन्त्रमें ब्रह्म का रूप कल्पित हुआ है।

शि०। जीव और ईश्वरका क्या सम्बन्ध है?

गु०। ईश्वर सगुण भावसे माया मध्यगत होकर ही जीव भावापन्न होते हैं; उस समय उनका पूर्व्व सम्बन्ध बोध नहीं होता। इसीलिये रामचन्द्र रावणके वधकालमें आत्मविस्मृत हुए थे।

शि०। एक ब्रह्म ही यदि जीवरूपी हुए, तब जीवोंके बोध भी क्यों प्रभेद देखा जाता है?

गु०। माया मध्यगत होकर जीव ब्रह्मस्वभाव भूल जाता है। और वह जीवभाव नाना स्वभावीय देह पाकर उसे प्राक्तन स्वभावके सहारे आवृत होनेसे, परस्पर भिन्न कहके बोध मात्र होता है; यथार्थमें भिन्न नहीं है।

शि०। यदि ब्रह्म सगुणसे जीवभाव हो गये। और विभिन्न भावापन्न होकर स्वरूप भूले; तो उनके मुक्तिको क्या उपाय है?

गु०। काल और प्रकृति वा माया अर्थात् जिन सब प्रधान शक्तियोंके सहारे इस जगत और जीव रूपसे ईश्वर परिवर्त्तित होते हैं, उन शक्तियोंके अतीत जो निर्गुण रूप है, उसका आश्रय लेनेसे ही जीवका मैं और मेरा भेदत्व तथा ब्रह्म जीव सम्बन्धत्व नष्ट होने से स्वरूपभाव प्रकाश हुआ करता है।

शि०। यदि माया ही सृष्टिशक्ति है, तो मायाको किस प्रकार से त्याग किया जावे?

गु०। इस विषयमें पाठक लोग ब्रह्माको मनुष्यकी भांति न चिन्तन करके जगत्व्याप्त ऐशिकविधाननिहित चैतन्यतेज कहके चिन्तन करें। ऐसा होनेसे समझ सकेंगे कि, सृष्टिप्रकाशक चैतन्य-तेजके बीचमें ही चैतन्यकी जनकास्वरूप ईश्वरतत्त्व उनमें निहित

है। वे तत्त्व ही भागवत तत्त्व हैं और उन्हें ही जीवका जानना उद्देश्य है। क्योंकि जैसे क्रोधीके क्रोधके उद्देश्यको विचारनेसे क्रोध नाश होता है, वैसे ही मायामण्डित ईश्वरांशके जीवके पक्षमें भी मायां विचार करनेसे और वह बोध होनेसे माया दूर हो सकती है। सृष्टिशक्ति ही सृष्टिवासना किया करती है।

शि०। जीवस्वभाव मायावरणसे आवृत्त रहनेसे कैसी अवस्थापन्न हुआ करता है?

गु०। संसारमें जीवस्वभाव मायावरणसे आवृत्त रहने पर द्विभावापन्न हुआ करता है। एकको स्वभावका स्वधर्म्म कहते हैं। दूसरेको स्वभावका वैधर्म्म कहते हैं। पूर्व्वकर्म्मफल हेतु वा असंस्कृत विज्ञानबुद्धि हेतुसे जीव अपना सत्यभाव भूलकर सत्यको आवरक जो मिथ्या है, उसमें ही रत होता है, उसे ही वैधर्म्मभाव कहते हैं। और इस सत्यभावमें अवस्थानका नाम स्वधर्म्मभाव है। इन द्विविध भावोंके बीच अनित्यभाव नित्यभावके सहारे निराकृत हो सकता है, और वैसे ही ईश्वरका उद्देश्य है।

शि०। मायाके प्रभावसे किस प्रकार ज्ञानदृष्टि होती है?

गु०। पूर्व जन्मार्ज्जित या प्रलयके पूर्व्वोर्ज्जित कर्म्मफल लेकर वासना नाम बीज पञ्चतत्त्व नामक क्षेत्ररसमें अंकुरित होकर ईश्वरके चैतन्य और काल नाम आयु लेकर इस विश्वमें सजीव पदार्थोंको उत्पादन करता है। वह वासना ही मायाके सूक्ष्मांशसे उत्पन्न है। मायामें जो विद्या और अविद्यारूप दर्पण हैं, उसमें विद्यादर्पणसे मायाभेद करके ज्ञानदृष्टि प्रकाश की जाती है; और अविद्यादर्पणसे मायाभेद नहीं की जाती। वासना उस अविद्या और विद्याके सूक्ष्मांशसे उत्पन्न होकर ईश्वरके चेतनाको लीलामय करती है। अधिकांश जीव वासनाको निम्न अवस्थामेंसे उन्नत अवस्थामें आगमन करते हैं। अति सामान्यांश जीव ही परिशुद्ध

वासनामें जीवत्व लाभ किया करते हैं। लोग जन्मसे ही मायामें आबद्ध रहते हैं; तब कोई कोई कुछ ज्ञानलाभ करके मायाभेद करने की चेष्टा किया करते हैं। कोई मायाको ही श्रेष्ठ देखकर मोहित हुआ करते हैं। जैसे एक श्वेतवर्णसे ज्योतिके तारतम्यसे सबुजवर्ण होता है, और सबुजवर्णके बीच नयन रखनेसे फिर श्वेतवर्ण नहीं देखा जाता। किन्तु सबुज देखकर उसका विचार करनेसे सबुजके भीतर ही श्वेतकी दृष्टि हुआ करती है। वैसे ही अज्ञानी लोग पहिले सन्दिहान होकर मायामें मुग्ध होके मायाको, ही श्रेष्ठ कहके जानते हैं। फिर जितना ज्ञानोत्कर्ष होता है, उतना ही मायाके बीच जो भगवान वासुदेवभावसे अवस्थान करते हैं, उसे जान सकते हैं।

भगवानने विश्वलीलाके लिये मायाकी सृष्टि की, यों—जैसे नाना भूषणोंसे भूषित होकर अपनी मूर्त्ति देखनेसे द्रष्टाको आनन्द होता है, वैसे ही ईश्वर मायाके सहारे भूषित होकर जीवलीला मात्र करते हैं। यह मत जानो कि, उनने जीवोंको मुग्ध करनेके लिये मायाको किया है। वह माया ही संसार है और वह माया ही उनका एक प्रकार भूषितरूप है। किन्तु दुर्बुद्धि मनुष्य लोग भूषित वस्त्वावस्तुको अन्वेषण करके अपने परमतत्त्वको न जानकर परमवस्तुके भूषाको ही सर्वश्रेष्ठ कहके स्वयं ही मुग्ध हुआ करते हैं; और उस मायाकी ममता ही अहंतत्त्व है। उससे ही जीवों के परमवस्तुके विच्छेदसे सोऽहं भाव विनष्ट होकर अहं दृढ़ीभूत हुआ करता है। जैसे कर्णधारहीन नौका अगाधसागरमें चञ्चल हुआ करती है। वैसे ही जीव अहंभावसे उन्मत्त हो परम पदार्थ को भूलकर इस मायामण्डित संसारमें स्वयं ही जन्मान्ध होता है। यह विश्व उसी भगवानका रूप है। तब जो कोई उसे अपना करके नहीं जान सकते हैं, उसे केवल निज निज दुर्बुद्धिका दोष

समझना ; क्योंकि मायामें वे लोग मुग्ध हुए हैं।

शि०। किन किन वस्तुओंमें जगत और जीव प्रस्तुत होकर क्रिया होती हैं?

गु०। पञ्चभूत तन्मात्रा जगतको उपादान स्वरूप हैं। कर्म्म कहनेसे पूर्व्वजन्मार्ज्जित वासनाका परिणाम जानो ; उसे ही जन्म का निमित्त समझना होगा। काल कहनेसे आयु और चैतन्य संयोगसे जन्मके तथा उसके क्षोभकारी अर्थात् प्रकाशक और विनाशक जानो। स्वभाव कहनेसे जन्मका निमित्त स्वरूप कर्म्म का परिणाम अर्थात् प्रकाश्य कार्य्य है। जीव कहनेसे भोक्ता जानो। यही ऐशिक तेज है। इन कई एक वस्तुओंसे ही जगत और जीव प्रस्तुत होकर संसारक्रिया हुआ करती है।

शि०। अन्तर्ज्जगत और वाह्यजगत् किसे कहते हैं?

गु०। अन्तर्जगतमें मनन करना हो, तो वाह्यजगतसे नेत्रदृष्टि तिरोहित हुआ करती है। विज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, अन्तरमें जिस भावका उदय होता है, उसकी क्रिया अनेकांशसे कार्य्यमें प्रकाश हुआ करती है। अन्तरमें आनन्दमें निमग्न होनेसे सर्व्वाङ्गके वाह्यदेशमें प्रफुल्ल अवस्था प्रकाश होती है। इसी प्रकार अन्तर्लीन महायोगावस्थाको योगी लोग, भगवत्लोक वा वैकुण्ठ-लोक कहते हैं। इसी अवस्थामें जीवका फिर जीवभाव या सांसारिक दुःख भाव नहीं रहता। एक प्रकार अलौलिक परमानन्दका भाव उदय हुआ करता है।

लौकिकभावको लीलागत भाव कहते हैं। इस लीलागत भावको नृलोक कहते हैं। नृ शब्दसे तत्त्व जानो। सब तत्त्व जिसके आश्रयमें रहती हैं, अर्थात् प्रकाशित होकर अद्भुतभावसे क्रियामान होती रहती हैं, उस सक्रिय अवस्थाको नृलोक अर्थात् वाह्यजगत कहते हैं।

शि०। दृष्टि किसे कहते हैं ?

गु०। चैतन्य ज्योतिकी क्रियाको दृष्टि कहते हैं। दृष्टि दो भागमें विभक्त है। आन्तरिक और वाह्यिक। वाहिरसे चैतन्यके जिस तेजके सहारे अनुमान संग्रह होता है, उसे वाह्यदृष्टि कहते हैं। यह अनुमान अन्तरमें जिस तेजके सहारे अनुभूत होता है; उसे अन्तर्दृष्टि कहते हैं। सत्यानुभव करना ही दृष्टिकी प्रधान क्रिया है। इन्द्रियदोषसे सत्यानुसन्धानमें अक्षम होनेसे उसे ही दृष्टिहीन कहते हैं। ये दृष्टिहीन दो अवस्थामें होते हैं। एक पीड़ासे; और एक अधर्माक्रान्त रिपुकी मायासे। वाह्यदृष्टि ही क्रियापर है। अन्तरदृष्टि अनुभवपर है। जिनकी वाह्यदृष्टि रिपुमय है, वे असत्यको सत्य कहके अन्तरको क्रियापर करते हैं। जैसे कामके वशीभूत होकर कामुक कुत्सिताका सहगामी होकर उसे अच्छा देखता है, किन्तु उसकी अपेक्षा निज स्त्री सुन्दरी होने पर भी उसका रूप उसके नेत्रमें अच्छा नहीं दीखता। ज्ञान-विचारसे भिन्न सत्यदृष्टि प्राप्त नहीं होती। वेद कहते हैं कि, हे जीवो ! तुम्हारे पक्षमें आत्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, कीर्त्तितव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य होता है। श्रुतिके अनुसार—श्रवण, मनन, कीर्त्तनादि ही सेवाभावके उपयुक्त है। जिसे कभी देखा नहीं, उसके विषय वा कार्य्यको सुननेसे उसके कार्य्यको समझकर उसे अनुभव करनेसे ही मानसदृष्टि हुआ करती है। वह दर्शन ही महासिद्धि है, उसे ही निदिध्यासन कहते हैं।

शि०। ईश्वरसाधनापक्षमें सेवाभाव श्रेष्ठ है वा ज्ञानभाव श्रेष्ठ है ?

गु०। जो लोग अन्तःकरणको परिशुद्धमात्र करके ईश्वरानुभवानन्द उपभोग करनेकी इच्छा करें, वे ही सेवाभावके अनुगामी होते हैं। इस सेवा भावसे ईश्वरको पृथक् करना होता है;

क्योंकि प्रभु और मैं, यह द्वैत बोध न होनेसे सेवा नहीं होती। यह भाव केवल साधारण लोगोंके प्रवृत्ति परिशुद्धिके लिये है। क्योंकि द्वैतभाव रहनेसे देहमें ममता रहेगी ; अर्थात् मैं रूपी देही न रहनेसे ईश्वर वा प्रभुको कौन चिन्तन करेगा ? यह भाव प्रथमावस्थाके पक्षमें बहुत ही प्रयोजनीय है। यह श्रुतिका मत है। किन्तु इस भावसे जब तक ज्ञानोदय न होगा, तब तक वैकुण्ठ प्राप्ति न होगी। इसीलिये स्वयं मैत्रेयजीने कहा है, "प्रतिलभ्य-बोधं" अर्थात् वैराग्यबलसे भक्त लोग बोध प्राप्त कर सकनेसे वैकुण्ठ लाभ कर सकेंगे। इस बोध शब्दका अर्थ ज्ञान है। ऐसा स्वयं स्वामीने भागवतके अनेक स्थानोंमें अर्थ किया है।

मैत्रेयके मतमें और श्रीधरस्वामीके मतमें इसका यह अर्थ है कि—ईश्वरको इस दो भावसे लाभ किया जाता है—एक भावसे ईश्वरकी महिमा वर्णनादिको सुनते सुनते भक्ति बढ़नेसे विषय आशा नाश करते हुए अन्तःकरण परिशुद्ध होनेसे, उसमें वैराग्यबलसे ज्ञानलाभ करनेसे वैकुण्ठ वा मुक्तिलाभ हुआ करता है। वैराग्य कहनेसे तत्त्वज्ञान द्वारा आत्मामें निरत होकर अनित्य विषयमें विरति होना जानो। इसे सेवाभाव कहते हैं। क्योंकि पहिले श्रवणादि हेतुसे आत्माको वा ईश्वरको प्रभु और अपनेको पापी जीव अर्थात् दास भावसे उपासना करके शेषमें वैराग्य आश्रयकालमें प्रभुदास्यभाव नाश होकर आत्ममय होना होता है ; अन्यथा विषय दुःख वा आध्यात्मिकादि दुःख नाश नहीं होता।

अपरभावसे यम नियमादिके सहारे देह और चित्तको शान्ति स्थापन करते हुए प्रकृतिजात अध्यात्मिकादि पीड़ासे उपरत होकर आत्म-समाधिके सहारे जीवन्मुक्त होते हुए अन्तमें उस मुक्त पुरुषमें प्रवेश करना होता है।

सेवाभावसे ;—यम, नियमादि और आत्मसमाधि आचरण

पूर्व्वक ईश्वरमें स्वतः आत्मसमर्पण नहीं करना होता ; ज्ञानभावसे साधकभावमें जो ईश्वर सर्व्वमय हैं, उन्हें जो प्रकृतिके सहारे पीड़ित होकर जान नहीं सके, उस प्रकृतिको पीड़ाको जय न करनेसे कालसे फिर प्रकृतिपीड़ासे आक्रान्त होनेसे क्षणिक ईश्वरानन्द नष्ट हो सकता है। इसलिये भूख, प्यास, रोग, शोक, स्नेह, ममता, रिपु, वायु, अग्नि, जल, सूर्य्य, चन्द्रादिके पीड़नादिसे एकवारगी अपनेको स्वाधीन करनेके लिये जीव उसी ईश्वरका प्रतिविम्ब है, यही चिन्तन करके वासनाको ईश्वरपर करते हुए स्वयं ही ईश्वरमें मिश्रित होता है। यह यम नियम समाधि प्रभृति योग अवलम्बन के लिये पहिले परिश्रमको आवश्यकता हुआ करती है। उस परिश्रममें कृतकार्य्य होनेसे प्रलय पर्य्यन्त साधककी अखण्ड मुक्तावस्था रहती है। साधारण लोग यदि इस अवस्थापन्न न हो सकें, तो केवल चित्तको ईश्वरपर करनेसे भी उसमें मुक्ति है ; इसी नियम से महाप्रभुने नूतनरूपसे सेवाभाव प्रकाश किया है। इस सेवासे ऐहिक अति सामान्य आनन्द है। क्योंकि भूख, प्यास, प्राकृतिक और रिपुगत पीड़ासे सेवकोंकी देहमें शान्ति न मिलनेसे भौतिक देह सर्वदा स्वस्थ नहीं रहती।

वह अस्वस्थ्यता जिस समय नहीं रहती, ऐहिकमें साधक लोग उसी समयमात्रमें आनन्दलाभ किया करते हैं। किन्तु चित्तकी शुद्धि हेतु परलोकमें उनकी पक्षमें योगीके सहित समान गति हुआ करती है। किन्तु प्राकृतिक पीड़ाको जय न करनेसे यह चित्तकी शुद्धि होना और तत्त्वज्ञान लाभयुक्त वैराग्य प्रकाश होना बहुत ही दुरूह है।

सेवाको श्रेष्ठ करनेसे अनेक भावसे ईश्वर दूषित होते हैं। जो प्रभु सेवकके सहारे निज महिमा प्रचारको आवश्यक समझते हैं, और जो सेवक उनकी सुख्याति अधिक प्रचार करता है, वैसे

कीर्त्तिंच्छु, प्रभु ही उस सेवकको अधिक प्रिय समझते हैं। ईश्वरने स्वयं कहा था, कि आत्माको अन्वेषण करके उसका दर्शन करो, तब मेरा दर्शन पाओगे ; मुझे अपना समस्त अर्पण करके एक हो जाओ, मुझमें मुक्त होगे। सेवाभावसे ईश्वरके समीप आत्मसमर्पण असम्भव है, और आत्मदर्शन असम्भव है, इसलिये सेवाको श्रेष्ठ कहनेसे ईश्वरको श्रुतिके मतसे कीर्त्तिके वशीभूत कहना होता है। इसलिये उस भावके सेवक होनेकी अपेक्षा हृदय परिशुद्ध करनेके लिये सबको हरिसेवक होना उचित है। किस प्रकारसे ? जैसे चुम्बकका धर्मत्व लाभ करने से लोहा भी चुम्बकको प्राप्त हुआ करता है।

जो लोग चैतन्यादि भक्तिके सम्बन्धमें आसक्त होकर अपने अपने अनित्य तेजको तुच्छ समझते हैं। उनके पक्षमें ईश्वर आत्मभावरूपी वैकुण्ठ दान करते हैं ; विशेष करके जो लोग आत्मसमाधि रूपसे चैतनशक्तिके सहारे ईश्वरमें प्रविष्ट होते हैं, उन्हें भी ईश्वर आत्म-स्वभावरूपी मुक्तिदान करते हैं, अर्थात् वे लोग ईश्वरेच्छाके वशवर्त्ती हुआ करते हैं।

शि०। उपदेश श्रेष्ठ है, वा ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि श्रेष्ठ हैं ?

गु०। साधनाके विना कदापि ज्ञानादि उपार्ज्जन नहीं हो सकते। जो साधक साधनाका प्रकरण नहीं जानता, उसकी साधना भी नहीं हो सकती। इसलिये पथप्रदर्शक वा पथकी सीमा अथवा अवस्था निर्द्देश प्राप्त होनेसे जैसे पथिक अभीष्टस्थानमें जा सकता है, वैसे ही पूर्व्वसूरिगणोंने (जिन्होंने आत्मज्ञान पाया है) आत्मज्ञान उपभोग करके आत्मज्ञानलाभके लिये जो सब उपाय वा साधन प्रकरण प्रकाश किये हैं वे अवश्य ही यथार्थ हैं। यदि कोई कहे कि, साधनसे ही फल लाभ होता है, किन्तु साधकोंके पक्षमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्यादि उपदेशके अतिरिक्त लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि उपदेशके सहारे वस्तुनिर्द्देश न होनेसे साधक

ज्ञानसे क्या अनुभव करेगा? भक्तिके सहारे किसमें विश्वास स्थापन करेगा? वैराग्यसे किन विषयोंको त्यागकर कौनसे विषयमें अनुरत होगा? उपदेशके विना विषयोंका निर्देश असम्भव है।

शि०—काम्य वा निर्व्वाणोपदेष्टा गुरु श्रेष्ठ है, वा जीवन्मुक्त गुरु ही श्रेष्ठ है?

गु०—काम्य वा निर्व्वाणोपदेष्टा गुरुसे जीवन्मुक्त गुरु ही श्रेष्ठ है; क्योंकि काम्य कर्म्मसे रति और प्रवृत्तिकी अधीनतामें वासना के उत्तम मध्यम सुकृति निष्कृतियुक्त जन्मलाभ करना होता है। इसलिये काम्यकर्म्म मुक्तिच्छुके पक्षमें कल्याणकारी नहीं है।

निर्व्वाणउपदेश—वासना विलय करके योगमार्गसे आत्माको स्वरूपानन्दमें रखके "सोऽहं" भावसे जीवनको विलय कर जीवात्मा को परमात्मामय करके भोग्यभोग स्वरूपी देहको नाश करना होता है। देहजात मन नाम इन्द्रियसे ही अनुभव होता है। यदि देहके कष्ट निवारणके लिये जीव निर्व्वाणसुख मनमें अनुभव करने वा दूसरेको बोध कराने न सके, तो मनुष्योंकी आशा क्या सफल हुई? इससे ही एकावारगी निर्व्वाणको सर्व्वश्रेष्ठ कहके बोध नहीं होता।

जीवन्मुक्त सबसे श्रेष्ठ अवस्था है। जाग्रत, सुषुप्ति, स्वप्न, इन तीनों अवस्थाओंको त्याग करके तुरीय अवस्थामें मन रखकर चित्र-पटस्थ चित्रकी भांति मायाचित्रको हृदयमें अनुभव करके मुक्तभाव से अवस्थान करना ही जीवन्मुक्तका उद्देश्य है। यथार्थ ईश्वर जिस भावसे इस जगतमें रहके भी निर्लिप्त हैं। जीवन्मुक्तिको भी उस ही भावको अनुकरण समझना होगा। सब देखा, सब किया, किन्तु किसीमें आसक्त नहीं हुए। रति न रहने, प्रवृत्ति न रहनेसे आसक्ति कहां रहेगी? आसक्ति न रहनेसे जैसे सोतमें तरङ्ग फेंकने

से तरङ्ग ही जैसे स्रोतके वेगसे भासमान होता है ; स्रोत तरङ्गके अधीन नहीं होता ; वैसे ही जीवन्मुक्तका स्वभाव जगतमें भासता रहता है। जगत उसे मुग्ध नहीं कर सकता।

शि०। मन किस प्रकारसे देहके बीच अनुभवकर्त्ता हुआ ?

गु०। हिम और उत्तापकी साम्यावस्थाको चैतन्य कहते हैं। हिम और उत्तापसे सबकी क्रिया प्रकाश होती हैं। हम लोग भूतगणोंके बीच हिम और उत्तापको अनुभव करते हैं, इसीसे अनुभव कर सकते हैं। अन्यथा वे इतने सूक्ष्मभावसे अवस्थान करते हैं कि, उनके बोधगम्य होनेकी उपाय नहीं है। इस सूक्ष्मांशके बीच हिमांश चन्द्र नामसे विख्यात है और उत्तापांश सूर्य्य नामसे प्रसिद्ध है। हिमरूपी चन्द्र और उत्तापरूपी सूर्य्य चैतन्यके आकर्षणसे क्या जीव और क्या जगत सब ही आकर्षित होकर यथानियमसे हैं। हिम और उत्ताप ये परस्परमें परस्परके बोधक होकर विशुद्ध अवस्थामें चैतन्य नाम धारण करके नित्यभावसे ईश्वरमें शक्तिरूपसे अवस्थान करते हैं। केवल हिम नाम चैतन्यांशसे मनका प्रकाश होता है। सब चैतन्यशक्तिका अनुभवकर्त्ता ही मन है। क्या जीवदेहमें क्या जगतमें सर्वत्र हिम ही उत्तापका अनुभावक है, यह विशेषरूपसे मीमांसित है। उत्तापाधिक्य होनेसे जैसे उत्तापका परिमाण नहीं पाया जाता, पर हिमकी अधिकता होनेसे उत्तापका परिमाण पाया जाता है, उससे ही हिममय चैतन्य सबका अनुभवकर्त्ता यथार्थ है। यह हिममय चैतन्य ही चन्द्र है। यह चैतन्यांश जब द्रव्यात्मक सात्विक अहङ्कारमें प्रविष्ट होता है, तब ही मन नामसे देहमें वा जगतमें प्रकाश होता है। इसीलिये चन्द्रको मनका अधिष्ठाता कहते हैं। पूर्णशक्तिसे अंशीभूतशक्ति भूतान्तरमें अवस्थिति करती है। इसके बीच उस पूर्णांश को अल्पांशका अधिष्ठाता कहते हैं। इस नियमसे मनका अधि-

छाता चन्द्र हुए। इस ही लिये मन देहके बीचमें अनुभवकर्त्ता कहके विज्ञानसे आलोचित हुआ है।

शि०। चैतन्यके उत्तापांशसे क्या क्या प्रकाश हुआ?

गु०। शून्य (आकाश) के मेलसे जो उत्तापमय चैतन्यशक्ति मनको बोधक होती है, उसे दिक्‌देवता कहते हैं। शून्यके शब्द-गुणसे बोधकरूपसे एक स्वभावका प्रकाश होता है। यह शून्यांश उत्तापमय चैतन्यांशमें मिश्रित रहनेसे शब्दविषयभूत वस्तु वा घटना मनके सहारे अनुभूत होती है। प्रत्येक देहके वा जगतके शून्यांशको स्थान वा द्वार हैं। उसी द्वारसे मन शून्यबोधक चैतन्य अनुभव करता है। यह दिक्‌शक्ति जिस द्वारसे मनके गोचर होती है, उसे कान कहते हैं। वायुभूत वायु नहीं है। चैतन्यरूपी मनको वायु नाम महाभूत बोधक ज्ञापात्मक अहङ्कार मिश्रित चैतन्यशक्ति समझना चाहिये। इसी शक्तिके सहारे भूतरूपी वायु मनके गोचर होता है। यह जिस पथसे मनके अनुभूत होता है, वही त्वक् नामसे देहमें कल्पित हुआ है। त्वक् कहनेसे स्पर्श-क्षमता प्रकाशक शक्ति जानो। वह शक्ति भी चैतन्य सम्मिलनसे कर्मगत होकर मनको गोचर हुआ करती है।

जो उत्ताप चैतन्यशक्ति तेज नाम भूतके बीच अहङ्कारके साथ मिश्रित होकर मनको विषयीभूत होती है, उसे अर्क दर्शनशक्ति कहते हैं। तेजका गुणरूप इसमें मिश्रित होनेसे यह शक्ति जिस द्वारसे मनके गोचर होती है, उसे नेत्र कहते हैं; और इसीलिये नेत्र प्रकाश भावापन्न रूप देखने पाते हैं। तेज ही रूपका प्रकाश कर्त्ता है। नेत्रसे ही देहस्थ तेज प्रकाश होकर अपरका रूप आकर्षण किया करता है। इसीलिये तेजको रूपका प्रकाश-कर्त्ता और नेत्रको तेजका बोधक वा प्रकाशकर्त्ता कहते हैं।

जो उत्ताप चैतन्यरसके बीच मिश्रित होकर अहङ्कार सहयोग

से मनके गोचर होता है, उसे प्रचेताशक्ति वा देवता कहते हैं। यह जिह्वाके सहारे मन समस्त रसानुभव कर सकता है। जो उत्तापमय चैतन्य गन्धयुक्त पृथ्वीतत्त्वके बीचसे अहङ्कार सहयोगसे मनके गोचर होता है, उसी शक्तिको अश्वीदेवता वा शक्ति कहते हैं। इसके सहारे मन गन्ध सहयोगसे पृथ्वीतत्त्व अनुभव करता है। जिस पथसे यह तत्त्व मनके गोचर होती है, उसे नासिका कहते हैं। इस नासिका द्वारसे वायु हृदयके बीच प्रविष्ट होकर पञ्चप्राणका कार्य्य करता है, और पञ्चप्राणके सिवाय देवदत्त, धनञ्जयादि वायुका भी कार्य्य किया करता है। देह संरक्षणके लिये जितने प्रकारके वायुकी क्रिया होती हैं, सब ही केवल नासाद्वारसे देहके बीच प्रविष्ट हुआ करती हैं। इसीलिये देहके पक्षमें नासिकाको ही वायुका उत्पादक और प्रकाशक समझना होगा।

जिस उत्तापका चैतन्यांश अग्निमयशक्तिके अर्थात् तेजके बीच होकर अहङ्कार सहयोगसे मनके गोचर होता है, उसे वह्निशक्ति कहते हैं। इस तीव्र सूक्ष्मशक्तिके कार्य्यको वाक्य कहते हैं। वह्नि कहनेसे तेजका तीव्रभाव समझना होगा। तीव्रभाव है, इसीलिये वाक्य अति शीघ्रतासे मनके गोचर होती है।

जो उत्ताप चैतन्य वायुके बल नाम गुणके मध्य होकर मनके गोचर होता है, उसे इन्द्रशक्ति वा देवता कहते हैं।

जो उत्ताप चैतन्य पवनके सहः नाम गुणके मध्य होकर मनके गोचर होता है, उसे उपेन्द्र देवता या शक्ति कहते हैं। उपेन्द्र-शक्ति अपरशक्ति तथा भूतादिका भार वहन करती है। यह शक्ति पद नाम देहस्थ इन्द्रियकी प्रकाशक है।

जो उत्ताप चैतन्य पवनके प्राण नाम गुणके मध्य होकर मनके गोचर होता है, उसे मित्रशक्ति कहते हैं। पवनका प्राण नाम

स्वभाव दश भागमें विभक्त होकर राजसिक और तामसिक अहङ्कार में संयोजित किया करता है। प्राण शब्दका प्रधान अर्थ सबका परस्पर आकर्षण है। पवनके प्राण स्वभाव हेतुसे अपरापर भूतोंके सहित पवन मिश्रित रहके अपना गुण प्रकाश किया करता है। इस परस्पर आकर्षणशक्तिको देहके बीच देहधारणशक्ति कहते हैं। भूतोंको चैतन्यमय रखनेके लिये और देहके सारासारको विभाग करके उसे स्वस्थ रखनेके निमित्त प्राणका आविर्भाव है। यह प्राण भूतदेह संरक्षणके लिये प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, इस पांच नामोंसे अविहित है और इन्द्रियोंके संरक्षणके लिये नाग, देवदत्त धनञ्जय, कूर्म्म, कृकर, इन पांच नामोंसे अविहित है। यह प्राण स्वभाव जब अपने स्वभावसे रहता है, तो उससे मन अभाव बोध किया करता है। भूख और प्यास ही देहका अभाव है; प्राणसे उसका बोध होता है। प्राण समान नाम स्वभावसे यह अभाव दूर करनेके लिये बाह्यिक भूतांशसे तेज लेकर यथा स्थानमें सन्निविष्ट करता है। प्राणके अपान स्वभावसे अभाव पूर्ण होनेसे अवशिष्ट असार द्रव्यको बाहिर करता है तथा अन्तरस्थ तेजको उर्द्धमें ले जाता है और व्यानके स्वभावमें चैतन्य तथा तेजको सर्व्वशरीरमें व्याप्त करता है।

मित्र शब्दका अर्थ बन्धु है। अर्थात् जो जीवके सब कार्य्योंको उत्तम रूपसे निर्व्वाह करते हैं। चैतन्य पवन संमिश्रणसे भूतोंके संरक्षण के लिये प्रधानद्वारस्वरूप अपानस्थानमें अवस्थान करता है। उसका तेज लेकर प्राणादि क्रियापर होते हैं। अपानकी क्रिया आदि यदि क्षीण हों, तो प्राणादि उसके सहयोगसे नाशको प्राप्त होते हैं। इसीलिये विज्ञानविद लोगोंने अपान अर्थात् वायुदेशमें एक इन्द्रियशक्तिकी स्थिति प्रकाश किया है; और सर्वसंरक्षण क्षमता देखकर उसका नाम मित्र रक्खा है।

जो उत्ताप चैतन्य, पवनके ओजः नाम स्वभावके सहित मिलकर मनके गोचर होता है, उसे प्रजापति देवता वा शक्ति कहते हैं। इस शक्तिके सहारे जीव भूततेज और चैतन्यतेज प्राप्त होकर बीज-रूपसे अनेक होकर प्रकाश हुआ करते हैं। सात्त्विक अहङ्कारसे जीवका चैतन्य और भूतसम्मिलन बोध होता है। इसीलिये इस बीजप्रकाशक शक्तिका नाम प्रजापति है। प्रत्येक जीवदेहमें निज निज भूतगत और चैतन्यगत तेजको प्रकाश करनेकी सामर्थ है। वासना इसी तेजसे जीवको लेकर अनेक होकर प्रकाशित हुआ करती है। समस्त तेजके सहित वासना इस शक्तिकी सहायसे जीवको क्रियापर करती है, इसीसे देहस्थ सकल संयोगसे भूत और चैतन्य उसके सहित मिश्रित होकर एक प्रकारका अनुभव प्रकाश करते हैं। यह अनुभव ही आनन्द है। ऐशिक सब शक्तियोंमें इसी प्रकार मनके सम्मिलित होनेसे आनन्दका आविर्भाव होता है। इसीलिये विज्ञानविदोंने ईश्वरके आनन्दसे सब कोई जन्मे हैं, यह श्रुतिवेदमें उपदेश दिया है। देहके बीच इस आनन्द को मैथुनानन्द कहते हैं। भूतगत और चैतन्यगत सारभागको ओजः कहते हैं। यह ओजः इतना सूक्ष्म है कि, वह वायुधर्ममें मिश्रित होकर वायुका एक गुणरूपसे निर्दिष्ट हुआ है। वासना इस ओजके सहयोगसे जीवांश लेकर अपरजीव प्रकाश करती है। देहके जिस द्वारसे जीवका प्रकाश होता है, उसे उपस्थ कहते हैं। इस उपस्थ इन्द्रियको प्रजापतिकी शक्तिके अधीन कहके विज्ञानविद लोग अनुभव करते हैं। इसलिये सात्त्विक अहंकारसे चैतन्यका प्रकाश समझना होगा।

शि०। राजसिक अहंकारसे क्या क्या प्रकाश हुआ?

गु०। अहंकार जिस भांति त्रिधा हुआ, वह कथा इसके पहले वर्णित हुई है। उसके बीच सत्त्वगुण और शुद्ध चैतन्यमिश्रणसे

काल, कर्म्म, स्वभावमतसे सात्त्विक-अहंकारकी उत्पत्ति हुई थी। चैतन्यांशरूपी ज्ञान, क्रिया और रजोगुणके मिश्रणसे काल, कर्म्म, स्वभाव संयोगसे राजसिक वा तैजसिक अहंकारकी उत्पत्ति हुई थी।

इस राजस अहङ्कारमें ज्ञान और क्रिया अन्तर्हित थीं, इस समय काल, कर्म्म और स्वभाववशसे उनका प्रकाश होना आरम्भ हुआ। चैतन्यानुभावक भूतगतशक्तिको ज्ञानशक्ति कहते हैं। यह ज्ञानशक्ति जब भूतगत होकर जीवके काल, कर्म्म और स्वभावधर्म्म से सक्रिय होती है, तब उसे बुद्धि कहते हैं। चैतन्यको भूतगत करके भूतोंको क्रियापर करनेमें चैतन्यकी जो शक्ति रूपान्तर होती है, उसे क्रियाशक्ति कहते हैं। यह क्रिया भूतगत होनेसे प्राण नामसे अविहित हुआ करती है। इन दोनों बुद्धि और प्राण के कार्य्य प्रकाश होनेके लिये देहमें जो दश अंश प्रकाश होते हैं, उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। दशों इन्द्रियोंके नाम और कार्य्य सब कोई जानते हैं। यह जो बुद्धिकी बात कही गई, यह चैतन्यके सहारे चालित होकर वासनाका भाव अर्थात् जीवकी इच्छा प्रकाश करती है। सात्विक और तामसिक इन दोनो अवस्थाओंके सम्मिलनसे चैतन्यमय पदार्थ बुद्धि नामसे रहनेसे, वह मन और दश देवतादि सात्विक तथा भूतादि तामसिक इन दोनों अवस्थाओंमें ही क्रिया-पर हुआ करते हैं। प्राणका परिचय पहिले दिया है। ये दोनों शक्ति सात्विक और तामसिक अंशसे मिश्रित होकर जीवका कार्य्य करके इस देहलीलाको सम्पादन करती हैं। इन्द्रियां अपने प्रकाश शक्तिरूपी देवतागणोंकी सामर्थसे मनके गोचर होती हैं; बुद्धि और प्राण उसी मनसे चैतन्यगत तथा भूतगत सब स्वभाव अनुभव करके देहके तथा जीवके शुभाशुभ कार्य्य किया करते हैं। इसकी अपेक्षा मूलकारण स्थूल और सूक्ष्मभेदसे और नहीं पाया जाता। इस समय कारणसृष्टिसे कार्य्यसृष्टि हुई।

शि०। ईश्वरको क्यों कार्य्यका कारण कहा जाता है?

गु०। जैसे पञ्चभूत-रस मिलनेसे गो देहमें दूध उत्पन्न होता है। ऐसा होनेसे क्या भूतसमष्टि, हो दूधको कारण होगी? कदापि नहीं; क्योंकि वे गोदेहको न पानेसे दूधमें परिणत नहीं होते। इस समय दूधके मुख्य कारण यद्यपि पञ्चभूत हैं, किन्तु चैतनास्थानीय गऊ है। इसोलिये ईश्वरको कार्य्यका कारण कहा जाता है।

शि०। क्या कारणसमूह स्वयं कार्य्यक्षम नहीं हो सकते?

गु०। जैसे अपनेसे उद्भूत डिम्ब (अंडे) को पक्षी तेज प्रदान न करनेसे उसकी जीवनीक्षमता नहीं होती, वैसे ही कारण-समूह चैतन्यविशिष्ट न होनेसे कदापि कार्य्यक्षम नहीं हो सकते।

शि०। कारणसे किस प्रकार कार्य्य प्रकाश हुआ?

गु०। जगत्पर्य्यालोचना करके देखनेसे कार्य्य दो भागमें प्रकाशित हैं। एक अवस्थाको समष्टि और एक अवस्थाको व्यष्टि कहते हैं। यह समष्टि अवस्था ही जीवावस्था है। इसी अवस्थामें पूर्व्वोक्त मन तथा इन्द्रिय भूत-गुणादि अनेक प्रकार जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज जीव-भावसे अवस्थान करते हैं। व्यष्टि अवस्था में वे जगतभावसे अवस्थान करते हैं। अब तक भी पूर्व्वोक्त समष्टि और व्यष्टि कोई कार्य्य भी प्रकाश नहीं हुए; केवल ईश्वरसे मूल-कारणसमूहकी उत्पत्तिमात्र है।

जीवको आयतन (स्थान) देह है। जगतका आयतन चैतन्य का अंशाकर्षण है। इस चैतन्याकर्षणको ध्रुवपथ वा सौरपथ कहते हैं। क्योंकि चैतन्यका उत्तापांश ही सूर्य्य और हिमांश ही चन्द्र है। एक एक सूर्य्य नाम चैतन्याकर्षणपथमें अनेकों पृथिवी ग्रहरूपसे घूर्णित तथा चालित होती हैं। प्रत्येक ग्रहोंका हिम-

द्वारा चन्द्र ही केवल भिन्न है। सूर्य्य एक है। इसी प्रकार एक एक सूर्य्यके आकर्षणसे जितने भूत समष्टिभूत तथा व्यष्टिभूत ग्रह-पिण्ड संरक्षित होते हैं, उन्हें एक एक विश्व वा जगत कहते हैं। इसी प्रकार अगण्य जगत ब्रह्माण्डमें विराजते हैं, यह विज्ञानसे अनुमित हुआ करता है।

इस भगवतशक्तिको ही ईश्वरकी वासना समझना हो, तो ईश्वरकी शक्तिसे सब उपादान प्रस्तुत होने पर उसमें वासनासंयुक्त न रहने से उपादानादि ईश्वरके काल, कर्म्म और स्वभाव धर्म्मके वशीभूत किस प्रकार होंगे? उसके लिये ईश्वर जीवभावसे थे। इस समय अपना स्वभाव जीवमें अर्पण किया, जीव वासना नाम स्वभाव पाकर ईश्वरके धर्म्मजात काल, कर्म्म, और स्वभाव मतसे कारणसमूहको समष्टि-भूत करके अपने जीवलीलाका शरीर निर्म्माण किया। इस शरीरके अतिरिक्त जो कारण समूह अमिलित होकर रहे, उसे ही व्यष्टि-भाव कहते हैं। वेही फिर जगतरूप से प्रकाशित होंगे। इस अमिलित अवस्थामें चैतन्यका उत्तापांश सूर्य्यरूपसे सबका आकर्षक होके रहा; हिमांश चन्द्र और पञ्चभूतादि अपनी अपनी सूक्ष्मता, लघुता और व्यावर्त्तकता मतसे भिन्न होकर जीवोंको पालन करने लगे।

"काल कर्म्म स्वभावस्थ जीव है", जो चैतन्य प्रदान करे, वही जीव है। ईश्वरचैतन्य जब काल, कर्म्म और स्वभावके मध्यस्थ होता है, तब ही वह जीव वा आत्मा नामसे अभिहित होता है। क्योंकि ईश्वर जीवभाव अवलम्बन पूर्व्वक अपना जगत्कार्य्य निज कृत नियम अनुसारसे प्रकाश करनेके लिये निज शरीरस्थ काल, कर्म्म, स्वभावके मध्यगत हुए। यह जीवभाव ईश्वर की सचेतनात्मक शक्ति है। यह शक्ति केवल ईश्वरमें अवस्थित रहती है, उसकी इच्छा न होने से किसीमें भी प्रतिबिम्बित नहीं होती। एकवार स्वभावं

अंशसे कारण प्रकाश हुए; उससे कारणगत स्वभावादि कारणमें ही रहे। उनका व्यवहारकर्त्ता न रहनेसे वे किसी नियमसे कार्य्यमें परिणत न हुए। इस अकार्य्यकर अवस्थामें जब कारण-समूह अवस्थान करते हैं, तब ही उन्हें "अजीव" कहा जाता है।

बहुत समय तक वह ईश्वरशक्ति मिश्रित कारणावली अकार्य्य-पर थी। अनन्तर ईश्वरने काल, कर्म्म स्वभावगत आत्मारूपसे अपनी शक्ति देकर सबको सजीव किया।

इस समय जीवत्व मिश्रित होनेसे कारणसमूह निज निज कार्य्यमें परिणत होने लगे। सब कार्य्योंमें ही जीवकी वासनाके अनुवर्त्ती हुए। इसके पहिले कारणावलीका जो व्यष्टिभाव था, वह भी विनष्ट न हुआ और उस व्यष्टिभावसे संयुक्त होके जीव समष्टिभाव प्रकाश करने लगे। इसी स्थानमें व्यष्टि और समष्टिभाव से कारणसमूह कार्य्यपर हुए।

ईश्वर जीवभावसे निज चैतन्यशक्तिको काल, कर्म्म, स्वभावके मध्यस्थ करके कारणरूपी पुरीके बीच रहते हैं, उसीलिये जीवको पुरुष कहते हैं। वह पुरुष नाम जीव कारणके बीचमें काल, कर्म्म और स्वभावके सहित प्रवेश करके सबको सचेतन मात्र करनेसे उसकी व्याप्ति सब कारणोंमें ही हुई। सब कारणोंमें व्याप्ति होने से सब कारण मिश्रितभाव त्याग करके जीवकी वासना और काल, कर्म्म, स्वभावके अनुवर्त्ती हुए। जब कारणावस्था जीव स्वभावसे नाश होकर जीवमय हुई, तब वह जीवोंकी स्वभावादिमतसे करोड़ों जीवरूपसे जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज भावसे प्रकाश हो गई। सब ही जीवके सम्बन्धसे सम्बन्धीभूत होकर जीवको कर्त्ता करके स्वयं जीवकी वासनाके अनुयायी कार्य्य हो गये।

हाथ, पांव, मुख, मस्तकादि कहनेसे, मनुष्य की भांति जिसमें

कोई न समझे ; क्रिया अनुसारसे अङ्गोंके नाम हुए हैं, ऐसा समझना होगा। इन्द्रिय तेज शरीरके जिन अंशोंमें क्रियामान होते हैं, उनके गुणभेदसे हाथ पांव आदिके नामकरण हुए हैं। हाथसे आकर्षणक्रिया होती है। वृक्षोंकी शाखा ही हाथ कहके कल्पित हैं। इन शाखाओंसे प्रकृतिक तेजको आकर्षण करके वृक्ष जीवित रहते हैं। मुखसे खाया जाता है। वृक्षोंके रसग्राही शिरादिको ही मुख और मूलको ही पदरूपसे कल्पित होना समझना होगा। इसी भांति किसी जीवको प्रकाश्यइन्द्रिय हैं, किसीको नहीं हैं। क्योंकि कीट पतङ्गादिको इन्द्रिय प्रकाश्य नहीं है ; किन्तु इन्द्रिय-शक्ति उनके जीवका कार्य्य सम्पन्न किया करती हैं। विज्ञानविदों ने इसी प्रकार आलोचना करके समस्त जीवदेहमें ही इन्द्रिय प्राणादिका अधिष्ठान स्थिर किया है।

मनुष्यदेह चौदह अंशमें प्रकाश्य भावसे विभक्त है, अन्य जीवोंका भी चौदह अंश सम्भव है। किन्तु मनुष्योंकी भांति प्रकाश्य नहीं है। इसीलिये मनुष्योंके अवयवको लेकर जीवोंकी व्याप्तिका परिमाण होता है। मनुष्योंके कटिदेशसे देह दो भागमें विभक्त हुई है ; उरुदेशके पश्चात् सूक्ष्मांशको कटि कहते हैं ; सम्मुखांशको जघन कहते हैं। इस कटि और जघनको केन्द्र करके क्या मनुष्य क्या वृक्ष देह सबके ही पद और मस्तक भागकी क्रिया हुआ करती है। कटिदेश ही देहका आधार है ; इसी स्थानमें आधारपद्मकी भी स्थिति है। इस आधार-पद्मसे देहकी क्रिया विभक्त होकर निम्न-गामी और उर्द्धगामी हुआ करती है। इस कटिसे समस्त पदतल एक भागमें भाजित हुए हैं ; जघन देशसे शिरस्थान पर्य्यन्त दूसरे भागमें भाजित हुए हैं।

यह जो चतुर्द्दश अंशमें जीव विभक्त हुआ, उसके बीच सप्त उर्द्ध-तन और सप्त अधःलोक हैं। भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य

और ब्रह्म, इन सप्तलोकोंको सप्तसर्ग कहते हैं। इन सातअंशमें जीव ईश्वर चैतन्यसे क्रमसे विशुद्धभावके विकारी होकर जगतमें व्याप्त हुए हैं।

पूर्व्व पूर्व्व कारण समूह भी सप्तभागमें अवस्थान्तरित होकर अति सूक्ष्म होके क्रमसे जितने स्थूल हुए हैं, जीवोंके स्वभाव भी उनके सहित उतने ही स्थूल हुए हैं—ऐसा समझना होगा।

ईश्वरके सहित कारणशक्ति सबके नित्यावस्थानावस्थाका नाम ब्रह्मलोक है।

ईश्वरकी वासनाके सहारे सतकी क्षोभक अवस्थाका नाम सत्यलोक है।

प्रधान अवस्थाका नाम तपोलोक है।

महतत्त्व अवस्थाका नाम महर्लोक है।

महतत्त्वके बीच कालादिकी मिलित अवस्थामें त्रिगुणके प्रकाशावस्थाका नाम जनलोक है।

अहङ्कारावस्थाका नाम स्वर्लोक है।

मिश्रित अहङ्कार भूत इन्द्रियादि कारण प्रकाशावस्थाका नाम भुवर्लोक है।

कटिदेशका नाम अतल है, उरुदेशका नाम वितल है। उभय जानुदेशका नाम शुद्ध सुतल है। उसके उभय जङ्घादेशका नाम तलातल है; गुल्फदेशका नाम महातल है; पदका ऊपरिभाग रसातल है। दोनों पावोंके तलदेशका नाम पाताल है। इसी प्रकार यह लोकमय हुए हैं। इस देहमें जीवात्मा जैसे स्थूलरूपसे आवरित होकर सूक्ष्मरूपसे समस्त इन्द्रिय; रिपु और वासनाजात उपभोग मनकी सहायसे भोग करता है, ईश्वर भी वैसे ही मायाके मध्यगत होकर स्थूलभावसे जगत नाम अपना आवरण अपनेमें प्रकाश करके कूर्म्मावयवकी भांति रहकर सूक्ष्मरूपसे सब गुणजात,

कर्मजात, स्वभाव और कालजात विभूति उपभोग करते हैं।

शि०। वाक्‌शक्ति किस प्रकारसे जीवोंमें प्रकाश हुई ?

गु०। अग्निदेवके सूक्ष्मकारण निर्देश होने पर केवल ईश्वरकी शक्तिके सिवाय और कुछ भी नहीं पाया जाता। इसलिये ईश्वरके सुखरूप कार्य्यकी उत्पत्तिस्थानसे इस कार्य्यके सूक्ष्म कारण प्रकाश होकर क्रमसे स्थूलभावसे जीवदेहमें प्रकाशित हुए हैं। ईश्वरने वाक्‌शक्ति दिया ; वह वाक्‌शक्ति वासनाका अभिप्राय न पानेसे क्या प्रकाश करेगी। उसी अभिप्राय संयोजनाके लिये वासनाके सहित स्वभावकी संयोजना करनी होती है। स्वभावमतसे वासना जो अभिप्राय प्रकाश करती है, मन उसे वाक्यके सहारे विस्तार करता है। इस अभिप्रायवाचक शब्दका शब्दांश ही छन्दोरूपसे श्रुतिमें लिपिवद्ध हुआ है। छन्दोमतसे सब शब्द सज्जित होकर अभिप्राय प्रकाश हुआ करती हैं। कोई एक कृतभावको प्रकाश करना हो, तो स्वभावमतसे वासनागत तेज मनमें प्रतिफलित होनेसे मन उसे इन्द्रियदेवताओंको प्रदान करता है। तब इन्द्रियदेवतागण इन्द्रियसहायसे वाक्यसे कहते, हाथसे ग्रहण करते और पांवसे चला करते हैं। जब वासना मनको निज अभिप्राय ज्ञापन करती है ; तब उसे सूक्ष्म चैतन्यमय भूतांशके मध्यसे मनके गोचर होना होता है ; क्योंकि मन सर्वदेह व्यापी है, किन्तु एक स्थानमें क्रियापर है। जो अभिप्राय वा भाव लेकर वागिन्द्रिय कार्य्य करती है, उसे छन्द कहते हैं। वेदके बीच इसीलिये वाक्य सब छन्दोंके बोध ग्रथित है और वे छन्द सबके प्रकाशक शक्तिरूपी देवता और उद्देश्यरूपी ऋषिसमष्टि हैं। श्रुतिका अभिप्राय ही इसीलिये छन्दोरूपसे और उद्देश्य ऋषिरूपसे जगत्‌में प्रकाशित है। अभिप्रायप्रकाशकशक्तिको छन्दः कहते हैं। ये छन्दः ऋषिभेदसे सात नामोंसे गिने गये हैं। प्रथम गायत्री, दूसरा अष्टि, तीसरा अनु-

ष्टुप, चौथा वृहती, पांचवां पंक्ति, छठवां त्रिष्टुप और सातवां जगती है। इस सातो छन्दोंमें ब्रह्मका अभिप्राय अर्थात् आत्मतत्त्व वेदके बीच निहित है।

शि०। शब्द नित्य हैं, या अनित्य है?

गु०। सङ्कल्पभावके द्योतक अन्तःकरण वृत्तिजात स्वरग्रामके संयोजक इङ्गितको शब्द कहते हैं। वे शब्द नित्य हैं, उनमें लय वा भ्रम नहीं है। उन शब्द संयोजनीय जो कल्पना होगी, उसमें भ्रम हो सकता है, किन्तु शब्द कदापि अनित्य नहीं हो सकते। क्योंकि ख-पुष्प कहनेसे ख-शब्दका अर्थ शून्य (आकाश) है, और पुष्प शब्द भी नित्यबोधक है; किन्तु दोनोंमें जो कल्पना होगी, वही उद्देश्य भ्रमात्मक है, क्यों भ्रमात्मक बोध हुआ? असम्भव अर्थसे, आकाशमें पुष्प प्रस्फुटित नहीं हो सकते, इसीलिये कल्पना का अनित्यत्व शब्दने ही समझा दिया। इसो निमित्त शब्द कभी भी अनित्य नहीं हो सकते।

शि०। किन लोकोंमें वासना परिशुद्ध रहती है?

गु०। मायासे ईश्वर चैतन्यमें जो सब लोक कल्पित हुए हैं, वही भूतलसे सप्त पातालकी कल्पना है। और ईश्वरकी विभूति चैतन्यमय होकर जिस अंशमें है, उसे ही स्वर्गादि सप्तलोक कहा करते हैं। ये सब ही कल्पना हैं। ये चतुर्दश भुवन ही केवल कर्मफलके चरमस्थान वा आनन्द तथा निरानन्द हैं। ईश्वरको अनुभव कर सकनेसे उस आनन्दके तारतम्यसे जो सब लोक कल्पित हुए हैं, वे ही स्वर्गादि आनन्दांशमात्र हैं; उनमें मायाका अधिकार नहीं है, दुःखका पीड़न नहीं है। वासना उन्ही लोकोंमें परिशुद्ध रहती है, अर्थात् इन्हीं लोकोंमें परमपद पाया जाता है।

शि०। परमपद किसे कहते हैं।

गु०। साधक लोग परित्राणकी इच्छा करनेसे भक्तिके प्रदित

भगवानका जो परमपद है, उसे ही ज्ञात होंगे। निर्गुणावस्था को ईश्वरका परमपद कहते हैं। उस परमपदका परिचय क्या है? अजस्र सुख विशोकमय ब्रह्म। अजस्र कहनेसे नित्य जानो। सुख कहनेसे आनन्द, विशोक कहनेसे ज्वराशोकादि रहित और ब्रह्म कहनेसे अपरिमित जानो। इसका एकार्थ यह है, जैसे— नित्यानन्दमय ज्वरा मरणादि रहित अपरिमितवस्तु।

शि०। ईश्वरको नित्यानन्दमय कहके किस प्रकारसे बोधगम्य होगा?

गु०। वह ईश्वर विज्ञानके विचारसे शश्वत प्रशान्त कहके अनुमित हुए हैं। शश्वत प्रशान्त कहनेसे सदाशान्तिमय जानो। विज्ञानालोचनासे जाना गया है कि, निर्गुणब्रह्मको कोई क्रिया नहीं है, वह अपनी सब शक्ति जगतलीलामें व्याप्त रखके स्वयं शान्तिमय हुए हैं। इससे उन्हें साधक लोग नित्यानन्दमय कहके जानें।

शि०। ईश्वरको ज्वरा मरणादि रहित क्यों कहा?

गु०। त्रिगुणके भेदसे कालके सहारे जीवका वा जगतका जो अवस्थान्तर होता है, वही ज्वरा मरणादि दुःख कहके श्रुतिमें प्रकाश है। ईश्वर इस ज्वरादि संयुक्त नहीं हैं। वह अभय स्वरूप होते हैं। जिसके निकट द्वितीय वस्तुका भय नहीं है, वही अभय हैं। निर्गुणावस्थामें ईश्वरमें द्वितीयभाव विज्ञानसे लक्षित नहीं होता। इसीलिये ईश्वरको विज्ञानविद लोग अभयस्वरूप कहते हैं। वह किस प्रकारसे अभय हुए? उनमें भेदशून्य समभाव वर्त्तमान है। समभाव किस प्रकारसे बोध होगा? वह प्रतिबोध मात्र होते हैं। प्रतिबोध कहनेसे ज्ञान जानो। सबके सूक्ष्मदर्शनको ज्ञान कहते हैं। सबका सूक्ष्म ही एक होता है; इसी भावसे विज्ञानविद लोग ईश्वरको सूक्ष्मदर्शन वा समभावापन्न वा ज्ञानमय कहा करते हैं। वह किस प्रकारसे समभावापन्न हुए? वह

शुद्ध अर्थात् निर्म्मल होते हैं। क्योंकि ब्रह्म निर्गुणावस्थामें कालादि के क्षोभसे विकारित होकर जगत भावापन्न नहीं हुए। उस ईश्वर से ही जब कार्य्यका प्रकाश है, तब वह कार्य्यरूपी मनके प्रकाश-कर्त्ता होकर किस प्रकारसे निर्गुण हुए? वह सदसत्‌रूपी हैं। सदसत् कहनेसे कार्य्यके प्रकाशक होके भी सङ्गशून्य जानो। यदि ईश्वर इसी भावसे रहे, तब वह मायामय जीवोंको किस भांति बोध हो सकते हैं? ईश्वर आत्मतत्त्वस्वरूप होते हैं, माया मध्य-गत जीव नामधारी आत्मा ही उस ब्रह्मका स्वभाव होता है। सावत्र लोग वासनाके सहारे आत्माको प्रत्यक्ष कर सकनेसे पूर्व्व अवस्थापन्न ब्रह्मको निश्चय ही बोध कर सकते हैं।

शि०। क्या निर्गुणब्रह्म मायाके अधीन हैं?

गु०। रक्षण, हरण, पालन, उत्पादन, ये चारो ही क्रिया हैं। इन चारों क्रिया अनुसार ईश्वर शब्द बहुकारकवान् अर्थात् ब्रह्मादि, देवतादि, भूतादिरूप जगतका कारकवान हुआ करता है। निर्गुणावस्थामें ईश्वर शब्द उस प्रकार कारकवान् नहीं होता। ईश्वरके सतभावको स्थितिको निर्द्देश करनेमें ब्रह्मा बोले—"माया उनके अभिमुखमें विलज्जमाना होकर दूर गमन करती है।" सृष्टिकी क्रियादिमें ही मायाका प्रयोजन है। जब ब्रह्म निर्गुण है, तब मायारूपिणी प्रधानाशक्ति भी दूरमें गमन करती है।

शि०। सगुणईश्वर श्रेष्ठ है, या माया श्रेष्ठ है?

गु०। ईश्वर दो स्वभावापन्न हुए हैं। एक स्वभावसे वह निर्गुण और दूसरे स्वभावसे सगुण हैं। जगतपक्षमें वासनाहीनअवस्था को निर्गुण अवस्था कहते हैं; और जगतपक्षमें सक्रिय वासनायुक्त अवस्थाको सगुणावस्था कहते हैं। इस निर्गुण अवस्थासे ईश्वरस्वभाव सर्व्वत्र विस्तारित होकर सृष्टिकार्य्यके लिये सगुण हुआ है। इस सगुण

भावसे जगत सृजित, पालित और लीन होता है। इस सृजनावस्थाको कारणभाव कहते हैं। पालनावस्थाको कार्य्यभाव कहते हैं। लीनावस्थाको लय कहते हैं। ये त्रिभाव ही ईश्वरके सगुण मूर्त्तिके तीन अंश है। उनके बीच तीन स्वरूपमें स्थित और एक मायामध्यगत है। स्वरूपमें स्थित तीन अंशको वर, अभय और क्षेम कहते हैं, और मायागत अंशको संसार वा प्रवृत्ति कहते हैं।

माया कहनेसे इस स्थलमें स्वरूपशक्ति जानो। ईश्वर कहनेसे इस स्थलमें सगुण ईश्वर है। स्वरूपशक्ति ही सगुणईश्वरको क्रियापर करके त्रिगुणमतसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर नाम और महिमा प्रकाश करती है। चैतन्य अपना स्वभावमात्र ज्ञात हो सकता है; यही विज्ञानका नियम है। सगुणईश्वरके स्वभावके सहारे जगत प्रकाश होता है, वह जगतपक्षमें ही जान सकते हैं। मायापक्ष जाननेमें उनका अधिकार नहीं है; क्योंकि वह मायाके सहारे चालित होते हैं।

कार्य्यप्रकाशक मानसिकशक्तिको बुद्धि कहते हैं। स्वभाव बुद्धि शक्तिके सहारे जीवको कार्य्यपर करता है। ब्रह्माके पक्षमें सृजनादि कार्य्यप्रकाशकशक्ति ही बुद्धि है; महादेवके पक्षमें शासन, वर्द्धन प्रभृति कार्य्यकरण ही बुद्धि है। नारदादि सप्तर्षियोंके पक्षमें चैतन्य विस्तार ही बुद्धि है।

बुद्धि जिस ओर लीन रहेगी, उसमें ही अहंतत्त्व विस्तृत होकर कर्त्तव्य बोध होगा। ब्रह्माने देखा कि, उनके स्वभावने जो शक्ति दिया है, उससे सृष्टि रूपसे ही कार्य्य प्रकाश होते हैं। उस सृष्टिके अहंतत्त्वके मतसे वह स्वयं कर्त्ता बोध करके सृष्टिपक्षमें जो कर्त्तव्य है, वही करते हैं। इसीलिये जगत्प्रकाशकशक्तिका किसी प्रकार विकार होनेकी सम्भावना नहीं है। ब्रह्माने इस स्वभावको देखकर बोध किया

थे, कोई उद्देश न रहनेसे, वह सृष्टिविषयमें ही क्यों स्वभाव धावित करेंगे? वह उद्देश्य अदृष्ट ही माया वा स्वरूप शक्ति है।

कालको पुराणमें महादेव कहते हैं। महादेव भी ब्रह्माकी भांति किसी शक्तिके सहारे चैतन्यक्षोभक क्षमतामें नियुक्त हुए हैं, उसे अपने स्वभावमात्रसे जान सकते हैं। इसीलिये माया नाम स्वरूपशक्तिकी स्थितिमात्र पाया, किन्तु वह मायातीत नहीं हैं, इसीलिये मायाका परिणाम दर्शन नहीं कर सकते।

ब्रह्मा, काल और रुद्रादिसे इन्द्रियशक्ति अर्थात् देवताओंका उद्भव है। इसी प्रमाणसे ब्रह्मादि जब मायासे वशीभूत होकर कार्य्यपर होते हैं, तब ब्रह्मादिसे हीन देवतागण किस प्रकारसे उस मायाको समझ सकेंगे।

देवतादि कहनेसे सब जीव ही समझे गये, क्योंकि इन्द्रियशक्ति के सहारे ही जीवमूर्त्ति प्रकटित हुई है। ब्रह्मा कालादि जगत और जीवोंके कारण हैं; वह भी जब मायाके अधीन हैं, तब जीव के सूक्ष्म चैतन्यादि किस प्रकारसे मायाका प्रभुत्व निर्णय कर सकेंगे। तब स्वभाव देखकर स्वभावप्रकाशक एक महाशक्ति है— यह अनुभव बोध करना मात्र है।

शि०। क्या ईश्वरको तत्त्वविचारके सहारे बोध नहीं किया जाता?

गु०। जीवचैतन्य अपने अपने सत्त्वरूपसे अर्थात् मनकी निवृत्ति वाचक गतिके सहारे कारण निर्णयको तत्त्व कहते हैं। जब कारण ही तत्त्व हुए, तब तत्त्वातीत जो वस्तु है, वह तत्त्वके सहारे किस प्रकारसे प्रमाणित होगी। तब तत्त्वोंको जब किसी शक्ति तथा चैतन्यसे प्रकाश होते देखा जाता है, तब तत्त्वातीत जो कोई सत्ता है, उसमें कुछ सन्देह नहीं है। उस सत्ताको ही सर्वसत्ता अर्थात् निर्गुण पूर्णब्रह्म कहके जानना होगा।

तत्त्व और तत्त्वातीत वस्तुकी येही दो अवस्था हैं। विज्ञानके सहारे जो भाव प्रमाण किया जाता है, उसे तत्त्व कहते हैं। और उसको अपेक्षा सूक्ष्मांश अर्थात् जो विज्ञानसे प्रमाण नहीं किया जाता, वह अनुभवमात्र होता है, वैसे ही सूक्ष्मभावको तत्त्वातीत कहते हैं। इस तत्त्वातीत अवस्थाको भी तत्त्व कहना होगा। तत्त्वातीत वस्तु अनुभव हुआ करती है,—ऐसा समझना होगा।

मनको दो अवस्था इस मनुष्यस्वभावमें वर्त्तमान हैं। एकके सहारे तत्त्वबोध होता है, उसे सङ्कल्प कहते हैं। दूसरेके सहारे तत्त्व ह्रास होती है, उसे विकल्प कहते हैं। इस सङ्कल्पअवस्थामें चित्त स्थिर होनेसे जो ज्ञानशक्तिका आविर्भाव होता है, उसे निश्चयात्मक कहते हैं। इस भावमें मन उपस्थित होनेसे ही ब्रह्म तत्त्वको दर्पणमें प्रतिबिम्ब दृष्टिकी भांति देखा जाता है।

ज्ञान शब्दका अर्थ तत्त्वबोध है; तत्त्वबोध होनेसे तत्त्वातीत वस्तुका अनुभव सहजमें ही हुआ करता है। जैसे अंकुर देखनेसे वृक्षका अनुभव होता है, और अंकुरको देखनेसे ही उसके प्रकाशक तत्त्वातीत कारणका अनुभव होता है, वैसे ही जिस सामर्थके सहारे तत्त्वका तथा तत्त्वातीतका प्रमाण और अनुभव होता है, उसे ज्ञान कहते हैं।

वेही भगवान "ज्ञानमय" होते हैं। ज्ञानमय कहनेसे सब तत्त्वोंसे मण्डित और इतना सूक्ष्म कि, उनके अतीतभावसे वर्त्तमान है। अर्थात् ईश्वर ऐसे भावसे तत्त्वोंके मध्यगत हैं कि, वह निश्चयात्मक तत्त्वके मध्यगत और उसके अतीत होते हैं।

ईश्वर "विशुद्ध ज्ञानमय" हैं। विशुद्ध कहनेसे आकारहीन जानो। आकार कहनेसे इस स्थलमें विषयाकार समझना होगा। कई एक तत्त्वोंके मेलसे जैसे घटादिका आकार होता है; उसे विषयाकार कहते हैं। उसी विषयाकार भावसे यह जगतरूपी घट वर्त्तमान है। ईश्वर इस भावमें भी स्वरूपमें नहीं हैं।

आकारकी :विकार सम्भावना है। आकार और विकार जिस सूक्ष्म वस्तुसे प्रकाश हुआ करते हैं, उसी अवस्थाको विशुद्ध कहते हैं। यदि उसे कोई जाननेकी इच्छा करे, तो पहिले उन्हें इसी भाव से जाने ;—वह जगदादि विकाररूपी नहीं हैं, तत्त्व और ज्ञानरूपी नहीं हैं, वह इस विकार और तत्त्वके मध्यगत निश्चयात्मक सूक्ष्म-तत्त्वरूपी होकर विशुद्ध तथा केवल ज्ञान वा तत्त्वमय होते हैं।

"वह सब वस्तुओंमें ही सम्यक् प्रकारसे वर्त्तमान हैं।" वस्तु कहनेसे कारणावली जानो। सम्यक्प्रकार कहनेसे सन्देहहीन होकर जानो। वर्त्तमान कहनेसे विराजते हैं।

जैसे एक बीजमें वृक्षत्व यथार्थ ही है, किन्तु बोध नहीं होता। वैसे ही जगतके कारणके बीच सूक्ष्मकारणरूपसे ईश्वर वर्त्तमान हैं। किसी वस्तुको चाक्षुष देखकर अपरापर प्रमाणसे सिद्धान्त होने पर, उसे "सन्देहहीन कहते हैं।" कारणके मध्यगत तत्त्वके सहारे मीमांसा नहीं होती, इसीलिये ईश्वरके सत्तापक्षमें प्रमाण और अनुभवमतसे सन्देहहीन होना होता है।

शि०। निर्गुण और सगुणमें क्या प्रभेद है?

गु०। किसी निर्गुण वस्तुका परिचय नहीं दिया जाता, किन्तु प्रति वस्तुओंमें ही सगुणत्व और निर्गुणत्व है ; केवल सगुणत्व परिचयके सहारे निर्गुणत्व प्रमाण मात्र होता है।

जैसे एक कमला नींबूको हाथमें लेकर उसका विचार करना हो, तो पहिले उसका वर्ण, फिर सुगन्धि, फिर उसका आस्वादन, फिर उसके रसको तथा बीजकी उपकारिता स्थिर करनी होती है। जो विचारसे पाया गया, वही कमलानींबूके पक्षमें सगुणभाव है। और जिस महासारसे उसकी उत्पत्ति हुई है, वही निर्गुण है। निर्गुण यद्यपि नेत्रसे नहीं देखा गया, किन्तु सगुण पानेसे निर्गुण है, यह प्रमाण हुआ और बोध हुआ। वैसे ही

ईश्वरपक्षमें जगत सगुण और जगतपक्षके श्रेष्ठ चैतन्यमय कारणको निर्गुण कहते हैं।

"वह निर्गुण, सत्य, पूर्ण और आदि तथा अन्तहीन होते हैं।" कार्य्यावस्था चाहे कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हो, उसकी अपेक्षा सूक्ष्मकारणावस्था लाभ होती है; क्रमसे तत्त्ववाद द्वारा जो सूक्ष्म कारणावस्थासे सत्तामात्र प्रमाण होती है और कुछ स्थूल प्रमाण नहीं होता, उसे निर्गुण अवस्था कहते हैं। उस निर्गुण अवस्थाको ब्रह्माने सत्य कहा है, जिससे मिथ्या प्रकाश होकर उसे आवरण करके स्वयं वर्त्तमान होता है, उसे सत्य कहते हैं। तात्त्विषयरूपी जगतको लयपराधीन कहके पण्डित लोग इसे मिथ्या कहते हैं। यह मिथ्या जगत् जिस अनुकरणसे प्रकाश होकर उसे अन्तरमें रखके स्वयं ही सर्व्वस्व कहके प्रतीत होता है, उसे ही सत्य कहते हैं।

कोई एक द्रव्य किसी एक अंशमें हीन रहनेसे उसे अपूर्ण कहते हैं। इस विश्वरूपी परिपूर्ण कार्य्यावस्था जिससे प्रकाशित है, वह जो पूर्णरूपसे वर्त्तमान हैं, उसमें सन्देह ही क्या है?

आदि कहनेसे जन्म; और अन्त कहनेसे मृत्यु वा लय जानो। जन्म शब्दका भाव प्रकाश है। जिस तत्त्वातीत तत्त्वसे सबका प्रकाश अर्थात् विकार है, उसका विकार असम्भव है, इसीलिये वह अजन्मा है। और विकारी वस्तु जिसमें लय होती हैं, उसको लय असम्भव है। इसीलिये वह अन्त अर्थात् मृत्युहीन हैं।

जब वृक्ष लयको प्राप्त होता है, तब बीज लय नहीं होता। इसी प्रमाणसे सर्वकारणरूपी ईश्वरको लय नहीं है, यह अनुमानीय है।

नित्य कहनेसे सर्व्वदा वर्त्तमान जानो। क्या सृजनकाल, क्या प्रलयकालमें सर्वदा ही उनकी सत्ता दृष्ट और विज्ञानसे अनुमित

होतो है; इसीलिये वह नित्य हैं; वह नित्य न होनेसे पूर्ण न हो सकते। क्योंकि वर्त्तमान न रहनेसे कार्य्य प्रकाश असम्भव है। इसीलिये वह निर्गुण भाव सर्वदा वर्त्तमान है, उससे सगुणभाव-रूपी कार्य्य प्रकाश बोध करना होगा।

शि०। जिसका कार्य्य जड़भाव वा मिथ्या प्रकाश होता है, उसे सत्य कैसे कहें?

गु०। चैतन्यशक्तिरूपी ब्रह्मा चैतन्यको आकर्षण करके चैतन्य और जड़मय जगत प्रस्तुत करते हैं। जो सब जड़भाव आकर्षण करके लीन करते हैं, वे ही हरि हैं। ब्रह्मा सूक्ष्मसे स्थूलजगत् व्याप्त चैतन्यभाव है। वही भाव जिस पूर्ण चैतन्यसे प्रकाशित है, वे ही हरि हैं। इससे ब्रह्मभाव जो केवल मात्र हरिपर है, वह समझाया गया। हरि सत्यस्वरूप हैं। सत्य ही चैतन्य व्यापक है। जैसे सुख और दुःखमें सामान्य प्रभेद है, उनके विलयसे आनन्द प्रकाश होता है; और वह आनन्द ही उनका प्रकाश कर्त्ता है। वैसे ही सूक्ष्म और स्थूल जगतके बीच जो सत्य है, वही हरि हैं। उस हरिसे जो प्रकाशित है, वही भावाभाव बोधसे मिथ्या और सत्य कहके परिचित है। जैसे एक अङ्गके पीड़ामय होनेसे पीड़ा के अधिकानुभवका नाम दुःख है, और सामान्यानुभवका नाम स्वस्ति वा सुख है; तथा पीड़ाके मूलोच्छेदनका नाम आनन्द है। इससे भलीभांति समझा जाता है कि, जीव आनन्दके स्वभावापन्न, किसी प्रकारकी भौतिक पीड़ासे आच्छन्न होकर सुख और दुःख का रूपान्तर होके पीड़ा अनुभव कराता है। वैसा ही यह संसार है। यह आनन्दका एक विकार है। वह विकार ही सुख और दुःख है। इस सुख और दुःखकी भांति सत्य और असत्य हैं। उद्देश्य ही सत्य और उद्देश्यका नाश ही मिथ्या है। एक सत्यका रूपान्तर ही मिथ्या है। यह सत्य हो चैतन्य है; मिथ्या

जड़गामी चैतन्य है। सुख और दुःखकी भांति ये परम चैतन्य से कार्य्यावस्थामें अर्थात् जगत अवस्थासे भिन्न हुए हैं। यथार्थमें ईश्वरमें मिथ्या नहीं है; क्योंकि उनमें कार्य्य नहीं है। ब्रह्मा कार्य्य प्रकाशक हैं। वह कार्य्य अर्थात् जगतमें परिणत नहीं हैं, इसीलिये वह जड़ता वा मिथ्या नहीं हैं। जैसे अग्नि उत्ताप ही प्रकाश कर सकता है, वेसे ही चैतन्य वस्तु सत्य ही प्रकाश कर सकती हैं।

शि०। ईश्वर क्या वाह्यनिर्णयसे निर्णीत नहीं होते ?

गु०। ईश्वर वाह्यनिर्णयसे निर्णीत होनेकी वस्तु नहीं हैं। इन्द्रियके सहारे निर्णयको वाह्य निर्णय कहते हैं। चैतन्यके सहारे निर्णयको अन्तर्निर्णय कहते हैं। वाह्य निर्णयसे स्थूल बोध होता है। अन्तर्निर्णयसे लीन होना होता है। योगसे इन्द्रियोंके सहारे चैतन्यसाधन होता है; उससे तत्त्वबोध मात्र होता है। ईश्वरमें लीन न हो सकनेसे ईश्वर निर्णय अनुभव नहीं होता। योगसे ईश्वरका अस्तित्वरूप तत्त्व बोध होता है। उससे लीन होना आनन्द भोग नहीं होता। बुद्ध आदि तत्त्ववादी थे। इसी लिये उनके प्रचारित उपदेश सम्पूर्ण सत्य हैं; किन्तु ईश्वरके निर्णायक नहीं हैं। उसका कारण यह है कि, तत्त्ववादी होकर तत्त्वातीत न हो सकनेसे ईश्वरदर्शन नहीं होता। ब्रह्मा तत्त्व-शक्तिके कारण स्वरूप हैं। तत्त्ववादी लोग तत्त्व निर्णय करके ब्रह्मा नाम स्वभावशक्तिको ही श्रेष्ठ समझते हैं। वे तत्त्व ही ईश्वर से प्रसूत हैं, इसीलिये वे मायासे मोहित न होकर शुद्ध अवस्थामें रहती हैं; और तत्त्व बोध होनेसे अतत्त्वरूपी जो माया कुहुक है, उसमें पतित नहीं होते। साधना ही भगवत् परा-यण है।

शि०। साधना भगवतपरायण क्यों हुई ?

गु०। विज्ञानविद लोग कहते हैं, आश्रित वस्तुमात्र ही प्राय आश्रयदाताके गुणको प्राप्त हुआ करती हैं; और अपर वस्तु यदि उन आश्रितोंको आश्रय लें, तो उन्हें भी पूर्व्वाश्रयके वश-वर्त्ती होना होता है। जैसे एक बीजको मिट्टीमें डालनेसे ही वह अपने स्वभाव क्रमसे उस मिट्टीके रसके वशवर्त्ती हुआ करता है। उसी रससे उसके अंकुरादि होकर उसे मृत्तिकागत जन्म धर्म्म यथार्थ ही ग्रहण करना होता है। मनुष्यादि अपर लोग यदि औषधके लिये उन अंकुरादिका आश्रय ग्रहण करें, तो उन अंकुर-गत मृत्तिकाका जो रसगुण रहता है, वही तिक्त और मिष्ठादि गुण मनुष्यको भी लेना होता है। वैसे ही साधना यदि ईश्वर-क्षेत्रमें न रहके ईश्वर रसमय न हो, तो उसकी क्या सामर्थ है कि, वह ईश्वरपथमें मनुष्यको लेजाय।

साधना बिना देहसे कोई फल भोग नहीं कर सकते। जीवों के पांचवर्षसे कर्म्मके प्रति ज्ञानसञ्चार होना आरम्भ हुआ करता है, उसी ज्ञानावस्थामें जो जीव पूर्व्वजन्म परिशुद्धता हेतुसे साधनाका आश्रय पाया करते हैं; इस जन्ममें ज्ञान स्फुरित होते ही उनके सत्कार्य्य प्रकाश हुआ करते हैं। किसीको सामान्य शिक्षाको आवश्यकता होती है, किसीको सिद्ध साधना अन्तरमें निहित रहने से एकबारगी सत्‌भाव प्रकाश हुआ करता है। क्योंकि, साधना आजन्म ही ईश्वरके तत्त्वमें निमग्न रहती है।

शि०। असंस्कृत अवस्थासे मनुष्यत्वमें जीव आके, परमात्म-भाव प्राप्त हुआ है, वा नहीं? किस उपायसे वे बोध करेंगे?

गु०। ईश्वर मनुष्यदेहमें परमात्मरूपसे आविर्भाव होते हैं,— ऐसा नहीं है। मनुष्यको जिसमें आत्मभाव दिखा सकें और जीव तथा अपना जो अभेद है, इसे समझ सकें, उसके लिये ही स्वयं अकर्म्मी होकर कर्म्म किया करते हैं। चित्त शुद्धिके उपायरूपी

योग, ज्ञान तथा यज्ञादि जो कर्म हैं और यह निर्गुण होनेसे स्वयं अकर्म्मी होते हैं। इसी प्रसाणसे भक्त लोग आत्मसत्ता अहङ्कार भूलकर चित्तनिरोध पूर्व्वक प्रेममें उन्मत्त होते हैं। विज्ञानी लोग इसे ही सोऽहं कहते हैं।

शि०। ईश्वर यदि जगत हो, तो जगतका लय है, इसलिये ईश्वरका नित्यत्व किस प्रकारसे रहेगा?

गु०। ईश्वर निर्गुण हैं। निर्गुण कहनेका तात्पर्य्य यह है;—किसी एक वस्तुके प्रकाशभावको गुण कहते हैं। महत्तत्त्वसे लगाय जगतकी समस्त वस्तुको ही विज्ञानसे विचार करनेसे गुणान्वित देखा जाता है। इसी हेतुसे सब गुण स्वतः ही प्रकाश हो रहे हैं। किन्तु ईश्वरमें यदि ऐसे ही किसी प्रकारके गुण रहते, तो उस गुणकी क्रिया जगतमें प्रकाश होती ही होती। जीवात्मासे भूतजगत पर्य्यन्त जो कुछ देखा जाता है, सबमें ही गुण हैं अर्थात् प्रकाश क्षमता है; किन्तु ईश्वरमें नहीं है। चन्द्रका गुण स्निग्ध ज्योति है। पूर्णिमामें किसी गृहाभ्यन्तरमें रहनेसे भी सब कोई चन्द्रकी उस ज्योति अनुसार अनुभव कर सकते हैं और स्वतः देख सकते हैं; क्योंकि गुण मात्र ही इन्द्रियों और तेजके गोचर हुआ करते हैं। यदि ईश्वर उसी प्रकार कोई गुणान्वित होते, तो गुणका प्रकाश देखकर लोग उस नियन्ताके निकट जा सकते। इसीलिये विज्ञानविद लोग ईश्वरको निर्गुण कहते हैं।

शि०। ईश्वर यदि निर्गुण हुए, तो उनका जगतकार्य्य किस प्रकारसे प्रकाशित होगा?

गु०। ईश्वर अपनी स्थिति, सर्ग और निरोधात्मक विविध कार्य्यके लिये माया-स्थित सत्त्व, रजः और तमो नाम गुण कर्तृक गृहीत होते हैं।"

जब जगत चैतन्यमय है, तब ईश्वरके चैतन्यमय होनेसे कुछ

भी सन्देह नहीं है। जगत जब प्रकाश होता और निरोध होता है, तब ईश्वरमें जो ये सब शक्ति हैं, उसमें कुछ सन्देह नहीं है। इससे ईश्वरका रहना प्रमाणित हुआ; प्रकाश और अप्रकाश वा निरोध नाम दो कार्य्य भी प्रमाणित हुए। और सजीवभावसे स्थित तथा जगत जो कोई एक वस्तु है वह भी प्रमाणित हुआ। इस स्थान में सांख्यमतसे—ईश्वर जगतकी उपादानरूपी वस्तु और उसकी स्थिति, निरोध तथा सर्ग (सृजन) ये तीन कार्य्य प्रमाणित हुए। कोई एक कार्य्य प्रकाशित होनेसे उसके निमित्तकारण उसके बीचसे प्रमाणित होते हैं। जब कार्य्य हुआ है, तब इच्छा से भिन्न कार्य्य नहीं हुआ। इच्छा ही निमित्तकारण है।

इन कई एक सूक्ष्म विचार करनेसे ईश्वर, चैतन्य, वस्तु उसके दो कार्य्य और इच्छा, ये छः मूल फल लाभ होते हैं। कार्य्य देखनेसे ही विश्वाससे उसके कारण निर्णीत होते हैं। प्रकाश और अप्रकाश ये दो कार्य्य एक शक्तिसे हुआ करते हैं। क्योंकि सूर्य्य स्वयं ही प्रकाश होनेसे सब प्रकाश होता है और आवृत्त होनेसे स्वयं हो सब अप्रकाश हो जाते हैं। वैसे ही ईश्वरके वासनाकी ऐसी एकमात्र शक्तिकी चालना प्रमाण होती है कि, उसके सहारे प्रकाश और अप्रकाश ये दोनो क्रिया ही हुआ करती है। विचार मतमें ऋषिगणोंने ईश्वरकी सत्ता पाया; उनकी चैतन्यशक्ति पाया उनके प्रकाश उपयोगी सदसदात्मिकाशक्ति पाया, उनकी प्रकाशक और अप्रकाशक क्रियामय कालनाम शक्ति पाया और उनकी इच्छाशक्ति भी पाया।

किसी एक वस्तुकी सत्ता रहनेसे उसका कार्य्य प्रकाश नहीं होता, क्योंकि गुण न रहनेसे किस प्रकारसे कार्य्य प्रकाश होंगे? प्रकाशके स्वभावको जब गुण कहते हैं, तब गुण न रहनेसे वह स्वभाव कार्य्यमें कदापि परिणत नहीं हो सकता। जैसे एक चना

के दानेका गुण पुष्टिकारक और अंकुरोत्पादक है। वह गुण ही चनाके बीजका स्वभाव है। तब स्वभाव और गुणमें जो अतिसूक्ष्म प्रभेद है, वह किसी उपायसे गुणमें परिणत होता है। उसी कर्म्ममें बीजका पूर्व्व भाव रहता है और स्वभावसे वह भूतके मध्य निहित रहता है तथा गुणके सहारे वह प्रकाशित होता है। इससे भलीभांति देखा जाता है कि, गुण ही चनाके पूर्व्वस्वभाव और पूर्वकर्म्मका प्रकाशकर्त्ता है।

प्रकाश और अप्रकाश धर्म्म जब ईश्वरकी कालशक्ति और उसका सजीवत्व धर्म्म जब ईश्वरका चैतन्येव है, तब इन दोनों नित्य वस्तुओंकी सत्ता अन्य किसी वस्तुके सहयोगसे ही विकारीकृत होकर गुण नामसे प्रकाशित हुई है। इसी प्रमाणसे विज्ञानविद लोगोंने ईश्वरके पूर्व्वोक्त पञ्चधा नित्यत्वको कार्य्यपर कहके निर्देश करते हुए जगतका प्रकाश स्थिर किया है। इस चनाके उदाहरणसे गुणके सहारे जब वे धर्म्म स्वभावके नित्यत्व प्रकाशित होते हैं, तब गुण कदापि इन कई एक नित्य वस्तुओंके बीच नहीं गिने जा सकते। क्योंकि जो नित्य है, वह विकारित वा परस्परमें अमिलित नहीं रहता।

ईश्वरकी इच्छाशक्ति जगत प्रकाशक कार्य्यकी इच्छा करनेसे ईश्वर ही जगतकी उपादानरूपी सदसदात्मिकाशक्तिको प्रकाश करनेके लिये ईश्वरस्थ कालशक्तिका मिलन करते हैं। इस कारण सदसत् और इच्छाशक्ति, तीनोंके मिलनेसे प्रधान नामसे एक मिलित वस्तुका प्रकाश होता है। उस प्रधानको निज शक्ति अनुसार कार्य्य करानेको स्वयं चैतन्य सम्मिलित होता है। इन चारों शक्तियोंके सम्मिलित होनेसे जिस प्रकारकी शक्ति मिश्रण होती है, उसे माया कहते हैं। सदसत् जगतकी उपादान है। उसे लेकर काल प्रकाश स्वभाव और चैतन्य सजीवत्व तथा पालन

स्वभाव सहयोगसे मिलित हुआ। इस प्रकाशन और पालन क्षमताके सहित सदसतमें सबके सूक्ष्म सत्तारूपी बीज स्वभाव रहा।

इन सबसे बीजके प्रकाश और अप्रकाश सामर्थ लाभ होनेसे बीज ये दो भाव अपनी शक्तिसे प्रकाश कर सके और उस बीजके सहयोगसे चैतन्य संयुक्त रहनेसे वह बीज अपनेमें अपनी स्थिति. शक्ति भी प्रकाश कर सका।

यह बीज ही माया है। और कालजात प्रकाश अप्रकाश क्षमता बीजमें मिश्रित होनेसे यही रजः और तमोगुण; और बीजने अपनी स्थितिशक्ति चैतन्यसे जिस क्षमतासे लिया, उसे ही विज्ञानविद लोगोंने सत्त्वगुण कहा। इस मतसे मायाका त्रिगुण प्रमाण हुआ। इन तीनों गुणोंकी क्षमता ही काल और चैतन्याकर्षण है। जैसे एक बीज उर्वरा क्षेत्रमें पड़नेसे अपने गुणके सहारे अपना पूर्वस्वभावरूपी अदृष्ट, आकार, कर्म और उसका परिणाम प्रकाश किया करता है। पञ्चतत्त्व सम्मिलनी स्थानको उर्वरा कहते हैं। तब बीजके तत्त्वानुसार न्यूनाधिक पञ्चतत्त्व न मिलनेसे अंकुर नहीं होता। मायाकी सक्रिय तीन शक्तिके नाम ही तीन गुण हैं। तमोगुणसे माया प्रकाशरूपका परिवर्त्तन करती है और जड़भाव सम्पादन करती है। रजोगुणसे माया अपने स्वभावको प्रकाश करती है और सत्त्वगुणसे कुछ कालके लिये उस स्वभावको संरक्षण करती है। ईश्वरके वासनाकी सामर्थसे ईश्वरका अंश ही तीनों गुणोंमें प्रविष्ट होनेसे वे तीनों गुण ऐसा कोई कर्म पावेंगे कि, उससे प्रकाश विलय स्थिति साधन करेंगे।

जगत् कहनेसे वस्तु नहीं है। जो प्रकाश हो और विलय होकर स्वरूपमें अवस्थान करे। प्रकाश और विलय कहनेसे ही किसी वस्तुकी सत्ता प्रकाश होती है। वह सत्ता पूर्वोक्त किसी शक्तिमें नहीं है। वह सत्ता ही ईश्वरका स्वतेजः है। यह स्वतेज

पाकर उसे उपलब्ध करके ये तीनों गुण जगत् प्रकाश करने लगे। इस स्वतेजको आत्मा कहा जाता है। इससे प्रमाणित हुआ कि, ईश्वर यद्यपि सबके कारण हैं, किन्तु उनकी स्वतः ऐसी शक्ति नहीं है कि, प्रकाशित हो। इसीलिये उनकी शक्ति समूह मायामें परिणत होनेसे उसमें जो तीन शक्तिका प्रकाश होता है, उसी त्रिगुण कर्त्तृक वह आकृष्ट होके, निज स्थिति, सर्ग, निरोध ये ही जगत्कार्य्य करते हैं। अर्थात् उसी मायासंयुक्त पुरुषको लेकर द्रव्य, ज्ञान क्रियात्मय तीनों गुण, कार्य्य कारण कर्त्तृत्वमें आवद्ध करते हैं।

शि०। ईश्वरको मायासंयुक्त पुरुष क्यों कहा?

गु०। माया जिसे कहते हैं, वह पहिले प्रकाशित हुआ है। माया ईश्वरको निज गर्भमें धारण करके अपनी स्वभावशक्ति उनमें आरोप करनेसे गर्भस्थ ऐशिक तेज त्रिगुणमय हो जाते हैं। इस त्रिगुणमय ईश्वरांशको मायासंयुक्त पुरुष कहते हैं। यह गुण संयुक्त पुरुष ही जीव वा आत्मा है।

जैसे स्वयं ही समुद्रांश वायुके आघातसे तरङ्गमें और हिम तेजके आकर्षणसे स्रोतमें परिणत हुआ करता है; वैसे ही ईश्वर ईश्वरत्वमें रहे; और उनकी निज वासनाजात अन्यान्य शक्तिसम्मिलित माया उनके अंशको लेकर क्रियापर हुई। ईश्वर स्वतः अवस्थित हैं। जीव मायाके मध्यस्थ ईश्वर है। क्रियापर शक्ति मण्डित निज अंशसे ईश्वर जीव हुए और इस जीवलीलाके अन्यान्य कार्य्योंको सम्पादनके लिये स्वयं स्वतन्त्र रहे। यह सत्य है कि, ईश्वर ही जीव हुए, किन्तु मायाके स्वभावसे जो ईश्वरांश जीवत्वमें परिणत हुआ, वह फिर अपने प्रकाशक और अभिन्न ईश्वर दर्शन नहीं कर सका।

शि०। जीव क्यों नहीं ईश्वरको देखने पाता?

गु०। "तीनों गुण संयुक्त होकर लिङ्गभाव धारण करनेसे सब की अलक्षित गति हुई है।" सप्तदश अवयवको लिङ्गभाव कहते हैं। पञ्चतन्मात्रा अर्थात् भूतोंके सूक्ष्मांश, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-कर्म्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि, ये ही सप्तदश अवयव कहके वेदान्तमें निर्द्दिष्ट हुए हैं। ईश्वर आत्मरूपसे सब वस्तुओंके नियोजक होकर जब सबके फल क्रिया प्राप्त होनेके लिये जीवरूपसे परिणत होते हैं, तब वह जीवसत्ता जो सूक्ष्मांश संयुक्त मायामें लिप्त रहके आवरण प्रकाश करती है, उसी मायायुक्त सप्तदश सूक्ष्मांश संयुक्त देहको लिङ्गभाव कहते हैं। मायामें आत्मरूपसे ईश्वर तीनों गुणों में संयोजित होनेसे माया अहंभावापन्न हो जाती है। अहं शब्द का अर्थ सत्ता वा सजीवत्व है। यह अहंकार सत्त्व, रजः और तमोगुण भेदसे वैकारिक वा सात्विक, राजसिक तथा तामसिक नामसे विख्यात होता है। तमोगुणके सहित अहंकारके मिश्रण को तामसिक अहंकार कहते हैं। इस तामसिक अहंकारसे भूतांश का प्रकाश होता है। अहंकारका जो अंश रजोगुणके सहित मिश्रित हुआ, वह राजसिक अहंकार नामसे प्रकाश हुआ, इस राजसिक अहंकारसे भूतादिमें सजीवत्व प्रकाश हुआ करता है। अहङ्कारका जो अंश सत्त्वगुणके सहित मिश्रित हुआ उसे सात्विक अहङ्कार कहते हैं। इस सात्विक अहङ्कारसे मन और इन्द्रिय देवताओंका प्रकाश हुआ करता है। यह अहङ्कार ही सत्ता वा जीवात्मा अर्थात् सबका नियोजनकर्त्ता है; और सबके मध्यगत रहके फलाफल भोग करता है। वही जीव कहके विज्ञानसे आलो-चित होता है। इस अहङ्कारके सहित जो इन्द्रियादिका समन्वय हुआ, उसे ही लिङ्गभाव कहके समझना होगा।

ईश्वरके अपरापर सब स्वभाव अर्थात् चैतन्य कालादिसे अहं रूपी सत्ताभाव भिन्न है। जीवका स्वभाव केवल स्वाधीन वृत्ति

वा वासना हैं। जीव निज स्वभाव वासनाको लेकर अन्यान्य मिश्रित ऐशिकशक्तिके मध्यगत होनेसे ईश्वरके सहित एक सम्बन्धी मात्र रहा, किन्तु जीवको ईश्वरदर्शनकी सामर्थ न रही। क्योंकि जीवका स्वभाव मायाके मध्यगत रहा। इसी प्रमाणसे ईश्वर पूर्णरूपसे जीवोंके अलक्ष्यगतगति हुए हैं। स्वभावके परिणामको गति कहते हैं। जीवको केवल वासना और सत्ता स्वभाव है। ईश्वरके काल, चैतन्य, सत्ता प्रभृति पांच नित्य स्वभाव हैं। जीव निज स्वभावमतसे ईश्वरका पूर्णभाव नहीं पासकता और अन्य पदार्थोंकी भांति उन्हें देख नहीं सकता; तब अपरशक्तियोंका सहयोग रहनेसे केवल ईश्वरानुभव मात्र होता है; और अपर शक्तियोंके लयके सहित निज लय हुआ करती है।

ईश्वरके जगत्प्रकाशक अवस्थाके बीच जो भाव जीवावस्थामें न परिणत होकर जीवप्रकाशकभावसे अवस्थित रहता है, उसे ही प्रकृति वा ब्रह्मा कहते हैं। इसी भावसे ईश्वर रूपान्तरित हुए हैं कहके पूर्ववत् पूर्णांश स्वभावके विना प्रकृति पूर्णांश स्वभाव संयुक्त ईश्वरको नहीं देख सकती।

शि०। ईश्वर जो सब जीवोंके हृदयमें वर्त्तमान हैं, उसे किस प्रकारसे समझें?

गु०। एक मशा (मच्छड़) को पकड़ कर सामान्य आघात करनेसे वह निज यातनासे चीत्कार किया करता है। वह चीत्कार क्यों किया करता है? अपने क्लेशके उपशमके लिये। अवश्य किसी आश्रयदाताके आश्रयके विना इस क्लेशके उपशम होनेको उपाय नहीं है। विज्ञानविद लोगोंने बालकका रोदन और वाक्-शक्ति तथा ज्ञानशक्तिहीन जीवोंका आत्मरक्षाके लिये चीत्कारादि देखकर अनुभव किया है कि, वे उस समयमें चीत्कार और क्रन्दनसे अन्य किसी अभयदाताका आश्रय चाहकर अपना अभाव और क्लेश

मिटाया चाहते हैं। जब उन लोगोंने उसे स्थिर किया, तब देखा कि, बालक तथा अन्यान्य समस्त जीवादि ही परस्परमें परस्परसे शङ्का किया करते हैं; किन्तु उनके बीच आत्मपर अहङ्कारकी भी सम्भावना नहीं है, तब किसे वे लोग आश्रयदाता समझकर निःशङ्क होकर आश्रय भिक्षा करते हैं? निज निज आत्मसत्ता को। वह आत्मसत्ता ही ईश्वररूपसे उनको रक्षणावेक्षण किया करती है। वह जीवभावापन्न आत्मसत्ता ही सब जीवोंके जीवत्व की हेतु होती है। जब मनुष्यसे क्षुद्र कीट पर्य्यन्त निज चैतन्यबल से एक जनका आश्रय चाहा करते हैं, तब वह आश्रयदाता जो सबके हृदयमें वर्त्तमान है उसमें और सन्देह ही क्या है?

ज्ञानियोंने यह समझ कर देखा कि,—परस्परके दुःख और आनन्दबोधक एक अन्तःकरण वृत्ति मनुष्योंमें है। उस वृत्तिके सहारे मनुष्य लोग सकल जीवभावके दुःख और आनन्द बोध करके दया प्रभृति सात्विक स्वभावधर्म्ममें दुःखसे कातर तथा आनन्दसे हृष्ट होकर जगतमें जगत्कर्त्ताकी सत्ता बोध करके प्रेममें मुग्ध हुआ करते हैं। उस अन्तःकरण वृत्तिका नाम ही भक्ति है। वे धर्म्म-रूपी हिंसा द्वेषादि परित्यागसे जीव स्वधर्म्मानुसार भक्तिमय होकर सर्वजीवोंमें ईश्वरकी सत्ताके सहयोगसे उनके दुःखसे कातर और आनन्दसे आनन्दित होकर लीलामयकी लीलासे प्रेममें विमुग्ध हुआ करते हैं।

शि०। इस जगतमें आनन्दित कौन है?

गु०। जो लोग मूढ़तम हैं, वे एक प्रकारसे आनन्दित हैं; और जिनको बुद्धि एकबारगी प्रकृति भेद करके ईश्वरमें प्रतिविम्बित हुई है, उन्हें ही सर्वतोभावसे आनन्दित कहना होगा। किन्तु जो लोग दोनों अवस्थाओंके मध्यवर्त्ती रहते हैं, उन्हें ही संसारादि अनेक क्लेश उपस्थित हुआ करते हैं।

मूढतम क्रइनेसे सारासार विविक्त रहित जाने। अर्थात् जो लोग धर्म्म बन्धन वा समाज बन्धन वा विषयचिन्ता प्रभृति किसी प्रकारके बन्धनमें आबद्ध नहीं हैं; केवल पशुओंकी भांति जन्म लेकर स्वभावके अनुवर्त्ती आहार, निद्रा, भय, क्रोध, मैथुनादि स्वाभाविक वृत्ति चरितार्थ करते हैं; वे एक प्रकारसे सुखी हैं। क्योंकि वे आत्माकी उन्नति वा अधोगतिकी भावनाको प्राप्त नहीं हुए हैं। सत् असत् कर्म्म-को बोध नहीं कर सके हैं; रिपु प्रभृतिसे आक्रान्त नहीं हैं और आशाके भी अनुवर्त्ती नहीं हैं। इसलिये वृक्षादिके फलादि नदीके जल प्रभृति खाते पीते और उपयुक्त समयमें रति त्यागादि किया करते हैं तथा ऐहिक और पारलौकिक किसी चिन्तामें ही चिन्तित नहीं होते। जिन्हें चिन्ता नहीं है, अन्तरमें भय नहीं है, उन्हें सुखका क्या अभाव है? इन्हें किसी क्रमसे भी संशय उपस्थित नहीं हो सकता। जिनकी बुद्धि किसी विषयमें परिणत नहीं हुई, वे बुद्धि चालनामें असमर्थ हैं। बुद्धि भ्रममें पड़नेसे ही संशय उपस्थित हुआ करता है। जिन्हें बुद्धिको चलाना नहीं होता, उन्हें संशय भी नहीं है। और संशय किसे नहीं है? जिनकी बुद्धि एकबारगी ईश्वरमें लीन हुई है। कृतनिश्चयात्मक बुद्धिवालेको संशय नहीं हो सकता। तब संशय किसे होता है? जो लोग बुद्धिको चलाते अर्थात् साधना करते हैं। मूढ़ोंकी भांति ज्ञानप्रभा शून्य नहीं हैं और विज्ञानमय भी नहीं है—ऐसी साधक अवस्थामें संशयरूपी क्लेश होता है। संशय एक साधारण क्लेश नहीं है, क्योंकि जानते हैं कि, ईश्वरज्ञानके अतिरिक्त मुक्ति नहीं होती; किन्तु उसकी सिद्धि लाभ नहीं कर सकते हैं, इसकी अपेक्षा और क्या कष्ट हो सकता है। इससे यह समझा गया कि, जो लोग सिद्ध हैं, वे सुखी हैं और जो लोग घोरमूढ़ हैं, वे भी सुखी हैं। साधक लोगोंको ही संशयान्वित समझना होगा।

जगतमें जितने अनात्मधर्म्म अर्थात् कर्त्तृत्वादि सुख दुःखादि देखे जाते हैं, या भाग्यसे उपस्थित होते दीखते हैं, उन सबके लिये क्षुब्ध होना उचित नहीं है, क्योंकि वे सब अनात्मधर्म्म हैं। जीव होकर जीवधर्म्मको अर्थात् ज्ञान चैतन्यादिको त्याग नहीं किया जाता, इसके सिवाय सकल धर्म्मको परित्याग किया जाता है। उसी नियमसे धीरजके सहारे विपद, उपदेशसे सम्पद, शान्तिसे दुःख, पवित्रतासे पाप और योगबलसे आहारादि पञ्चस्वभावको नाश करना होता है। इसी भावसे जीवन अतिवाहित करनेसे ही ज्ञानको ज्ञानमय संसारलीला हुई समझना होगा।

शि०। "दैव कर्त्तृक विडम्बित"—यह दैव क्या है?

गु०। दैव कहनेसे देवसम्बंधीय जानो। देव कहनेसे दिव अर्थात् स्वाभाविक वा कृतकर्म्मफल समूह जिस स्थानमें रहते हैं, उसी स्थान-संयुक्त शक्तिको दैव कहते हैं। कर्म्मफल दो प्रकारके हैं, स्वाभाविक और कृत। मनुष्य लोग स्वाधीन वृत्ति अनुसार जो अविद्या वा विद्या-गत कर्म्म करके वासना का संस्कार वा मालिन्य करते हैं, उसे कृत-कर्म्मफल कहते हैं। और प्राकृतिक नियमसे ग्रहादिके आकर्षण वा काल माहात्म्यसे जो सब अनियम जीवोंके भाग्यमें घटित होते हैं, उन्हें ही स्वाभाविक कर्म्मफल कहते हैं। ये दोनो प्रकारके कर्म्मफल वासना सहित जिस कालांशमें संग्रहीत होते हैं, उसे दैव कहते हैं। उसी प्रकार दैव द्विविध हैं; देव सम्भूत और असुर सम्बन्धीय। सुकर्म्मफलमय परिणाम जो कालके सहारे जीवोंके अदृष्टमें संघटित होते हैं, उसे देवसम्भूत दैव कहते हैं। और ग्रह आदिके आकर्षण वा नैसर्गिक परिणाम वा जीववृत्तिके हेतु जो कर्म्मजात कुफल जीवभाग्यमें प्रकाशित होते हैं, उसे ही असुरसंभूत दैव कहते हैं।

वह दैव दो उपायसे जीवोंके भाग्यमें क्रियामान होता है। एक भावसे पूर्व्वजन्मजात कर्म्मसमूहसे और एक भावसे इह जात

कर्म्ममतसे। इस उभयात्मक कर्म्ममतसे जीवादृष्टसे दैव प्रकाश होकर जीवको बद्ध और मुक्त करते हैं। इस स्थलमें जो दैवके सहारे जीव बन्ध होता है, उसे ही उल्लेख किया जाता है।

जीव अधर्म्मशील होने पर दुःख पाया करते हैं। और ईश्वर उस दुःखके नाश करनेके लिये सर्व्वदा ही अनुग्रह प्रकाश करने के निमित्त प्रस्तुत हैं।

इस दुःखको विज्ञानमें क्लेश कहते हैं, जीवोंके आन्तरिक अभाव को क्लेश कहते हैं। जीव यदि आत्म स्वभाव से रहे, तो परम आनन्दित रहता है। वह आनन्द ज्ञानशक्तिसे अन्तःकरणमें क्रिया-मान होने से जीव मुक्त रहता है। दैव अर्थात् जीवोंकी दुस्कृति अपने प्रभावसे ज्ञान नाश करनेके लिये वासनाके सहित मिलित होकर ज्ञानको जड़भावापन्न करके स्वयं सक्रिय होकर, मेघरूपसे ज्ञान सूर्य्यको आवरण करके अन्तःकरण अधिकार करती है। अन्तः-करणके अभिप्राय मत से जीव कर्म्मी होते हैं। अन्तःकरण दुष्कृतिसे आक्रान्त होनेसे जीव को उसका दासत्व करना होता है। उस दुष्कृतिसे जीव पूर्व्व स्वभावसे विच्छिन्न होकर एक प्रकार महास्वभाव में पतित होता है। वह अभाव ही दुःख वा क्लेश है। उस अभावको दूर करनेकी चेष्टा करके जब बहुत साधनासे अपने को किञ्चिन्मात्र ज्ञानपर करके अभाव मोचन करने की चेष्टा करता है; उससे ही जिस आनन्दकी छाया देखकर जीव कर्म्म करता है, उसी महानन्द को क्लेश का शुभ अंश वा सुख कहते हैं। और जब ज्ञान एकबारगी आवरित रहता है, उसे दुःख कहते हैं। इस सुख और दुःख व्याघातके लिये जीवात्मा को क्लान्त होकर कभी सुखके आश्रयके लिये कर्म्म करना होता है, कभी दैव मतसे मोहमें पड़कर फिर दुःखमें आना होता है, ये सुख वा दुःख दोनो ही क्लेश वा दुःखमूलक हैं। इस दुःख को नाश करनेके लिये जो

आनन्दशक्ति सर्व्वदा तत्त्वज्ञानके बीच विचरण करती हैं, उसे ही ईश्वरका अनुग्रह कहते हैं। क्योंकि दुष्कृतिको त्याग करके सहज में ही कुदैवको नाश करते हुए लोग मङ्गलमय सुदैवके अधीन होकर आनन्दके अधिकारी हो सकते हैं। यही दैव और दुःखका भाव समझना होगा।

शि०। पार्थिव सम्भोग नित्य है या अनित्य? और इस सम्भोग से आनन्द पाया जाता है या नहीं?

गु०। माया मोहादिको ईश्वरका पार्थिव ऐश्वर्य्य कहते हैं। पार्थिव कहनेसे असत् या अनित्य जानो। इस अनित्य ऐश्वर्य्यको पाकर मनुष्य लोग एकवारगी उन्मत्त होकर नित्यवस्तुरूपी हरिको प्रत्यक्ष करना या अनुभव करना नहीं चाहते। इसका भाव यह है कि,—जो लोग पार्थिव ऐश्वर्य्यरूपी धनमद, काममद, भोगमद-रूपी अनित्यभावसे आशु (शीघ्र) फल देखकर सहजमें आकृष्ट होकर उसकी अपेक्षा जो कोई नित्यआनन्द है और उस आनन्दको जो नित्य सत्ता है, उसे स्थिर नहीं कर सकते। यही महायोगकी कथा है। सांख्यशास्त्रकारने इस पार्थिवसम्भोगको दुःखका कारण कहा है।

विज्ञानवादियोंने इन सबको क्यों अनित्य कहा है, उसे कहता हूं। नित्य और अनित्य एक वस्तुका अन्यतरभाव समझना होगा। जैसे रोशनी नित्य है और अन्धेरा उस नित्यवस्तुका सत्त्वांश लेकर प्रकाश है, किन्तु उसमें सत्तामात्र नहीं है। वैसे ही स्त्री सम्भोग विषयभोग, स्नेह ममतादि एकमात्र नित्य आनन्दसे प्रकाश हैं, किन्तु उनकी निज सत्ता नहीं है।

जिसका आश्रय लेकर अनित्यको दूर किया जाता है, वही नित्य है और उसमें मुग्ध होनेसे फिर जीवोंको ह्रासाधिक्य भोगाशा नहीं रहती, वही नित्य है। लोग अच्छी तरह आहार करें, थोड़ी देर बाद ही आहारकी इच्छा होगी और उसके सह-

योगसे भोगकी वृद्धि होगी। इस वृद्धिभावके सहित अन्तःकरण आशाका परिणाम न देखकर कितना दुःख पावेंगे, इससे भलीभांति देखा जाता है कि, जिसकी सत्ताकी स्थिरता नहीं है, अनुभवसे इन्द्रिय सुखमात्र होनेसे इच्छाकी वृद्धि होती है। उसे नित्य किस उपायसे कहा जा सकता है? किन्तु इन सब दुःखोंके अतीत जो आनन्द है, उसको ह्रासाधिक्य नहीं है। उसकी छायामात्र इन सब सम्भोगादि दुःखोंमें देखी जाती है, इसीलिये लोग उसमें सुख हुआ करते हैं।

इन सब पदार्थ योगका विषय लिपिकौशलसे प्रकाश करना दुःसाध्य है, तब सामान्यभावसे समझानेके लिये कहता हूं। जब तक जीवोंकी चित्तवृत्ति स्थिर नहीं होती, तब तक जीवगण दुःख का ह्रास बोध नहीं कर सकते। लोग कामिनी सम्भोग क्यों करते हैं। उससे एक प्रकार अलौकिक सुखका आविर्भाव होता है। यदि उस समय चित्तका विक्षिप्तभाव जीवमें रहे, तब वह यह सुख अनुभव नहीं कर सकता। जिस सुखकी आशामें लोग कामसुख होते हैं, वह चित्त निरोधक सुख आनन्दकी छायामात्र है। इसी-लिये विज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, आनन्दकी छाया कहके क्षण भरके बाद उसका तिरोभाव होता है। किन्तु वह यदि नित्या-वस्था होती, तो समभावसे रहती और उससे जीवोंके दुःख प्रकाश न होते।

इन सब भावोंको ही पार्थिव ऐश्वर्य्य कहते हैं, इस ऐश्वर्य्यसे जीव सहजमें ही आकृष्ट होकर तन्मध्यगत नित्य सत्तारूपी ईश्वर की उपलब्धि नहीं कर सकता।

बहुतेरे लोग जिज्ञासा कर सकते हैं;—ऐश्विक सत्ता इस प्रकार अनित्यके बीच क्यों रहती है, और जीवको क्या वह साव-धान नहीं कर सकती। इसके उत्तरमें विज्ञानी लोग कहते हैं

कि,—सब जीवोंकी अपेक्षा मनुष्योंमें एक स्वाधीन वृत्तिका आविर्भाव है। उसीसे मनुष्य स्वभाव अपेक्षा स्वाधीनभावसे रह सकते। जिस ईश्वरने करुणा सञ्चार करके मनुष्योंको ऐसा स्वाधीन किया है, उसको अपेक्षा उनका और क्या देय है। उस स्वभावकी स्वाधीनता ही विज्ञानवृत्ति है, उसके सहारे जीवगण प्रत्येक अवस्थाका कारण निर्द्देश करके नित्यानित्य बोध कर सकते हैं। तब जो सब कोई नहीं सकते, वह केवल उनके पूर्व्वजन्मजनित अज्ञानतासे समझना होगा। इसी भांति पार्थिव ऐश्वर्य्य की अनित्यतासे जीवगण ईश्वरको लक्ष्य न कर सकनेसे भ्रान्त होकर अनित्यमें ही मुग्ध होते हैं।

शि०। वैषम्य पथ कैसा है?

गु०। मनुष्य जन्म ही केवल ईश्वरपथमें धावित होनेके लिये जीवगण पाया करते हैं। जो मनुष्य श्रेणी भगवत् अनुभव शून्य होकर देहको ही आत्मा समझके ऐहिक सुखके अनुसारी होकर केवलमात्र काम्यकर्म्मकी उन्नतिसूचक निवृत्ति और काम्यकर्म्मकी अवनितिसूचक प्रवृत्तिमें धावमान होते हैं, उन्हें ही पाषण्ड कहते हैं। ये पाषण्ड लोग जिस युक्तिमें निर्भर करके अपने ज्ञानको चरितार्थ करते हैं, उसे ही वैषम्यपथ कहते हैं। समता जिसमें पायी न जाय, उस धर्म्ममार्गको वैषम्यपथ कहते हैं। इस वैषम्य पथानुवर्त्तियोंके बीच जो लोग देह और काम्यकर्म्मकी उन्नतिके लिये लौकिक सद्वृत्तिमें धावित होते हैं, शास्त्रमें उन्हें बौद्ध वा श्रेष्ठ पाषण्ड वा भगवद्भक्तिहीन कहते हैं। जो लोग इन्द्रियसुखमें निरत होकर दुःख और सुखको स्वभाव ज्ञानके सहारे रिपु आदिसे आक्रान्त होकर भगवद्भक्ति रहित हुआ करते हैं, उन्हें पापी पाषण्ड कहते हैं।

प्रथम श्रेणीके वैषम्यधर्म्मावलम्बी पाषण्डियोंके कर्त्तव्य अति

परिशुद्ध होनेसे तथा भ्रान्त विश्वास होनेसे अदृष्ट अनेक अंशमें परिशुद्ध होकर जन्मजन्मान्तरमें भगवद्भक्ति लाभ कर सकता है, इसीलिये शास्त्रमें पापियोंके बीच उन्हें पुण्यवान कहके कीर्त्तन किया गया है। पापसे बुद्धिको इसी भांति शुद्ध प्रवृत्ति-पर करनेके लिये जो नियन्ता प्रकाश हुए थे, उस असीम करुणा-मय धार्मिक जनकी सात्त्विकवृत्तिपर देखकर शास्त्रमें उन्हें भग-वानका—पापनाशी बुद्धावतार कहते हैं।

इन पापी और बुद्धगणोंको पाषण्ड कहते हैं और उनके प्रवृत्ति-गत धर्मको वैषम्यपथ कहते हैं, वैषम्यपथमें भी शुद्धाचार प्रकाशित है।

शि०। तप शब्दकी उत्पत्ति किस प्रकारसे है?

गु०। ईश्वरके निर्गुणस्वभावसे जब सगुणस्वभाव प्रकाश हुआ, तब उसके सृष्टि तेजने कारणावलीको कार्य्योन्मुखी करनेकी चेष्टा किया। हिम और उत्ताप ही तेज है। सत्‌शक्ति ही कारण और कारणवारि है। मिश्रित और तरलावस्था प्रलयके अन्तमें भी विश्वप्रकाश कालमें कारणशक्ति रहती है, इसीलिये कविलोग इस अवस्थाको वारि वा सागर कहा करते हैं। सृष्टितेज और कारण रहे। वे ही सृष्टितेज जिसमें कारणको लेकर कार्य्यपर कर सके, उस स्वाभाविक क्षमताको ही ब्रह्माकी तपस्या कहके पुराणमें कल्पित है। चैतन्य प्रवेश न होनेसे कार्य्य प्रकाश होने की उपाय नहीं है। इसीलिये कार्य्योपयोगी होनेमें सृष्टिशक्तिका विलम्ब हुआ था। जैसे एक कटाह दूधमें उत्ताप देने पर उत्ताप चैतन्य दूधके स्निग्ध चैतन्यको ग्रास न करनेसे उसे अपने वशसे लाकर शुद्ध स्वभावमें नहीं लेसकता। वैसे ही सृष्टिशक्ति चैतन्य-मिश्रणके बिना कार्य्य अभिव्यक्त नहीं कर सकती। चैतन्य प्रवेश करने से कारण पीड़ित होकर परस्पर आलोड़नसे प्रथम जो शब्द होता है,

उसे ही कवि लोग स्पर्शन षोड़श (त) और एकविंश (प) वर्ण संयोगी तप शब्द कहते हैं। तप कहनेसे अन्तर्गतभावका तापन जानो। यही अन्तर्गतभाव पीड़ित करके ब्रह्माने सृष्टि की थी। इसे विज्ञान से प्राप्त होकर मायामयजीव मायाको नाश करके उस विज्ञानको ज्ञात होनेके लिये निज निज अन्तरको तापित करके विज्ञानबुद्धि तापित कर लेते हैं। समझना चाहिये कि, तपस्याकी विधिसे चैतन्यक्षमता वृद्धिको प्राप्त होती है।

शि०। ब्रह्माने उस तप शब्दको सुनकर कैसी तपस्या कियी?

गु०। ब्रह्माने अखिललोक प्रकाशक तप किया। उस लौकिक तपस्वीके वेश सज्जित करनेके लिये वाक्, मन और इन्द्रिय रोध कथा मात्र कही है, वह प्रकृतभाव नहीं है। अर्थात् ब्रह्माने तप इस शब्दसे कहीं भी कुछ न देखके निर्गुणब्रह्मका आदेश चिन्तन किया। कहीं कुछ न देखनेका भाव यह है कि, ईश्वरकी अन्य कोई शक्ति उस समय प्रकाश नहीं हुई थी। अपरशक्ति जब तक ब्रह्मामें न प्रकाश होंगी, तब तक वह सृष्टिके लिये तापित होनेसे पुनर्व्वार ईश्वर अपर सगुणभाव उनमें प्रकाश करेंगे।

शि०। ईश्वरने ब्रह्माको तपोरत देखकर कैसा भाव प्रकाश किया?

गु०। भगवानने उन्हें निज अवस्थानीय वैकुण्ठलोक दिखाया। जहां विकारभाव एकवारगी कुण्ठित होता है, उसे वैकुण्ठ कहते हैं। वहां रजः, तम और सत्त्वका विकार नहीं है। कालका विक्रम नहीं और मायाका प्रकाश नहीं है। सगुण अवस्था ही त्रिगुणभावापन्न हैं। कालका विक्रम ही प्रलय है। माया कहने से सृष्टिका विधान जानो।

वे सब विकार भावापन्न वस्तु जहां नहीं हैं, ऐसा जो स्थान है, उसे वैकुण्ठ कहते हैं। उस वैकुण्ठकी अपेक्षा श्रेष्ठस्थान और नहीं

है। वहां क्लेशादि कुछ भी नहीं हैं, वहां रिपु प्राबल्य नहीं है। आत्मज्ञानी लोग ही उस स्थानमें वास कर सकते हैं। यह श्रेष्ठ-स्थान समझनेमें ;—सत्वगुण हीन ब्रह्मावस्था समझना होगा। रिपु प्राबल्य कहनेसे माया जानो। आत्मज्ञानी कहनेसे तत्त्ववेत्ता जानो।

उन तत्त्ववेत्ताओंकी मूर्त्ति चतुर्बाहुयुक्त है। चारों ओर सम-भावसे अवस्थित होने अर्थात् समदर्शन होनेका रूपकही चतुर्बाहु-युक्त समझना होगा और अन्य अलङ्कारादि और वर्णादि केवल प्रशान्त अवस्थाका चिन्हमात्र समझना होगा। इसका गूढ़भाव यह है कि, जो लोग भगवानकी निर्गुण अवस्था समझ सके हैं, वे लोग समदर्शन और भुवनमोहन अन्तःकरणकी गठनसम्पन्न तथा सुरासुर पूजित हुए हैं। सुरासुर कहनेसे इन्द्रिय और रिपु जानो। उनके स्वभावसे श्रेष्ठत्व लाभ करनेको मुक्तावस्था वा वैकुण्ठवासा-वस्था कहते हैं। इस वैकुण्ठवासका अर्थात् मुक्तिका जिस भांति वर्णन किया गया, वह इस जीवनमें होनेसे जीवन्मुक्त कहते हैं। और देहान्तमें घटित होने पर आत्माका उसी भावापन्न होना समझा जाता है।

शि०। ब्रह्माने उस निर्गुण ईश्वरको किस भावसे देखा?

गु०। विद्या महा विद्यादि मायाकी सात्त्विकी शक्तिसमूह हैं, ये शक्तियां स्वतः निर्गुणईश्वरसे सगुणमयी होकर माया नाम धारण किये हैं। महात्मा कहनेसे चैतन्यमय पुरुषशक्ति जानो। विमान कहनेसे आधार जानो। आधारके सहित चैतन्य पुरुषशक्ति (जिसके सहारे परमें काल चैतन्यमय अर्थात् अभिव्यक्त होगी।) वे उसी निर्गुणअवस्थामें जैसे निकटमें आकाश सविद्युत मेघसे शोभित रहता है, वैसे ही शोभित हैं।

जहां लक्ष्मी अनेक प्रकारकी विभूति लेकर उसी उरुगायकी

पादपूजा करती है। अनेक रूपसे जिसकी लीला गायी जाती है, उसे उरुगाय कहते हैं। उसी लीलाधारके पद अर्थात् अंशोंमें लक्ष्मी अर्थात् महाविद्या सेवा करती है। विद्यारूपिणी लक्ष्मी जो सरस्वती कहके प्रकाशित हैं, वह सुस्वरसे उनकी लीला गान करती हैं। प्रकृतिका उत्पादन ही उनकी सेवा और प्रकृतिकी शोभा ही उनकी लीलागान समझना होगा। इसी अवस्थापन्न निर्गुणब्रह्म भक्तोंके आराध्य हैं।

ऐसी ही अवस्थासे अनेक ऐश्वर्य्य प्रकाश करके भगवान किसीमें भी आसक्त न होके ही उस निज धाम जो वैकुण्ठ है, वहां अवस्थान करते हैं। इसका भाव यह समझा गया, ईश्वर ब्रह्माको सगुण दिखाके भी स्वयं जो निर्गुणभावसे ब्रह्मासे अतीत हैं, इसे ही ब्रह्माने देखा।

शि०। ईश्वरने ब्रह्माको किस प्रकार प्रत्यादेश किया था?

गु०। तपस्या ही भगवानकी शक्ति है। वेदके बीच तपस्याको ज्ञानमय कहते हैं। वह ज्ञान ही ऐशिकशक्तिरूपसे सर्व्वत्र वर्त्तमान है। वही ईश्वर बोध करा देता है। वह ज्ञान ही चैतन्य है। ज्ञानसे सृष्टि, संहार और पालन हुआ करता है। ईश्वरकी सृष्टि संहार पालनकारिणी चैतन्यशक्ति है, उसने स्रष्टारूपी ब्रह्मको कर्म्ममें विमोहित देखा था। कर्म्म विमोहित कहनेसे स्वभाव वा सृष्टि प्रकाशहीन जानो। चैतन्य न मिलनेसे कर्म्म प्रकाश नहीं होता। वह चैतन्य प्रकाश ही पुराणमें विष्णुका तपोदान कहके कल्पित समझना होगा।

भगवान् बोले हे ब्रह्मन्! अनुभवसिद्ध और परम गोपनीय भक्तिसंयुक्त समबोधक ज्ञान और उसकी साधना कहता हूं, सुनो।

मैं जिस रूपी, मैं जिस अवस्थापन्न हूं और मैं जिस भावसे गुण कर्म्मादि प्रकाश किया करता हूं,—मेरे अनुग्रहसे तुम वह

सब जानो। हे ब्रह्मन्! जब स्थूल सूक्ष्म और उनके कारणादि किसीका भी प्रकाश न था, तब मैं ही था; फिर जिससे यह विश्व प्रकाश हुआ, वह भी मैं ही होता हूं। फिर जिससे इस विश्वकी प्रलय होगी, वह भी मैं ही होता हूं, ऐसा जानना।

शि०। माया जब लोगोंको भुलाकर भ्रममें पतित कराती है, तब माया किस प्रकारसे ईश्वरविभूति वा ईश्वरशक्ति हो सकती है?

गु०। जैसे प्रकाश (रौशनी) सत्‌वस्तु है और उसका अप्रकाश ही अन्धकार है; इससे लोग अन्धकारको जो पदार्थ कहके बोध करते हैं, वह केवल उस प्रकाशरूपी सत्यकी सत्ता रहनी प्रयुक्त है; निज में अन्धकारकी कुछ सत्ता नहीं है। वैसे ही इस जगतमें सत्‌वस्तु को आश्रित होकर जो मिथ्याशक्ति सत्यकी भांति प्रतिभात होती है, उसे ही माया कहते हैं। जैसे लोग तत्त्वबोध होनेसे अन्धकार को सत्‌वस्तु कहके बोध नहीं करते, और प्रकाश स्वभावसे अन्धकारकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही सत्य तत्त्व न समझकर इस सत्यवस्तुके स्वभाव प्रकाशित नितयवस्तुको सत्य कहके विवेचनाभाव करते हैं। इसे ही माया कहके जानो। यह विचार विज्ञान बोध्य है।

शि०। प्रकाशसे मिथ्याभूत अन्धकारकी जिस प्रकार उत्पत्ति है, माया भी वैसे ही मिथ्या है। इससे यह जिज्ञासा हो सकती है कि, प्रकाशका तत्त्वबोध होनेसे जैसे अन्धकारको मिथ्या कहके बोध होता है, उस प्रकार ईश्वरका प्रकाश तत्त्व कहां है?

गु०। महाभूत समष्टिसे जैसे जगत और जीव हुए हैं अर्थात् जीव और जीवोंके कारण होकर सर्व्वत्र वर्त्तमान हैं, ईश्वर भी वैसे ही सबके बीच कार्य्यरूपसे और सबके बाहिरमें कारणरूपसे वर्त्तमान हैं। इसका वैज्ञानिकभाव यह है—ईश्वर ही सबकी

आत्मा हैं। उस ईश्वरमें ही पञ्चभूतादिका विकार हुआ है। ये पञ्चभूतादि जिस सूक्ष्म कारणसे प्रकाश हुए हैं, वह भी आत्मा है। वह आत्मा ही सत्य और ईश्वर हैं, अन्य सब उसके विकार वा मिथ्या हैं। वह मिथ्या ही माया है। उस मायासे लोग किस प्रकार मुग्ध होते हैं, उसका दृष्टान्त यह है,—जैसे एक शिशुको देखकर पिता माता मुग्ध होते हैं। उस शिशुकी हांसीसे अङ्ग-शोभासे पिता माता आनन्दित होते हैं, और उस बालकको मृत्युसे पिता माता एकबारगी शोकान्वित होते हैं। यह आनन्द और शोक ही एकत्रमें मिलकर मोह नामसे शास्त्रमें निर्दिष्ट है। पहिले शिशुको समझना होगा। अर्थात् उसमें ईश्वर जीवरूपसे हैं और उस ईश्वरके विकारसे उसकी देह हुई है। उस देहकी स्वभावसे वह हँसता नाचता है। इस समय तत्त्वविद् पिता यदि उसकी जीवनरक्षा कर्त्तव्य है, ऐसा विचारकर लालन पालन करता, तो वह बालकके अनित्यरूप, मधुरशब्द, स्नेहरस और मनोहरगठनमें न भूलता, केवल जीवका पालन सर्वतोभावसे कर्त्तव्य समझकर रूपादिमें अनासक्त हुआ रहता। स्नेहादिरूपी मिथ्यावस्तु उसे जड़ीभूत न कर सकती। किन्तु तत्त्वबोध न होनेसे बालककी जीवनरक्षा बोध हो वा न हो, उसके गठनके स्नेहमें ही पिता माता भूलकर उस गठनके विलयमें उन्मत्त होके रोते हैं। सत्‌रूपी आत्माका विकारीय प्रकाश भूतादिसे प्रकाशित, जो अनित्य रूपादि हैं; उसमें लोग मुग्ध होते हैं, इसलिये इस स्थलमें माया-रूपी मिथ्यावस्तु जगतमें है, यह प्रमाणित हुआ; और उसमें जो लोग मुग्ध होते हैं, वे भ्रममें पतित रहते हैं, यह भी प्रमाणित हुआ; और इसमें ईश्वरका उद्देश्य नहीं है कि, लोग मायासे मुग्ध हों, किन्तु लोग अपने स्वभावसे उसमें मुग्ध रहते हैं। इसलिये आत्मा ही देहका प्रधान कारण है, ऐसा न होनेसे कुछ भी दृष्ट

कहके बोध न होता ; उस आत्मबोध होनेसे किसीको मिथ्याभूत रूपादि सम्पन्न सृष्टिमें मुग्ध नहीं होना होता।

शि०। ब्रह्मतत्त्वरूपी लक्षण कितने प्रकारका है ?

गु०। दश प्रकारका है, जैसे—कारणसृष्टिको ही विसर्ग कहते हैं। वैकुण्ठविजय कहनेसे वैकुण्ठप्राप्ति जानो। वह वैकुण्ठ-प्राप्ति ही जीवोंके पक्षमें स्थान अर्थात् आधार वा स्थिति है। ईश्वर जो चैतन्योदयरूपसे जीवोंके प्रति कृपा करते हैं, वही पोषण वा पालन है। प्रत्येक युगान्तरमें ईश्वरके सहारे जीव जिस भावसे स्वभाव प्राप्त होते हैं, उस स्वभावको ही धर्म्म कहते हैं। इस जीवधर्म्म प्रकाशक कालको मन्वन्तर कहते हैं। अदृष्ट वा वासना मतसे स्वभावके परिणाम अर्थात् कर्म्मकी उन्नति और अवनति विधानको ऊति कहते हैं। प्रलयको निरोध कहते हैं। माया त्यागपूर्व्वक स्वरूपमें अर्थात् ब्रह्मभाव (निर्गुणभाव) में अवस्थानका नाम मुक्ति है। एक ब्रह्म अर्थात् निर्गुणव्याप्ति ही आश्रय होती है।

शि०। कालके सहारे किस प्रकारसे लय होती है ?

गु०। काल द्वारा यह जगत पालित, वर्द्धित और हृत हुआ करता है। उस कालशक्तिके सहारे मायामध्यगत सत्त्व, रजः और तमो नाम तीनोंगुण क्रियापर होकर इस भूतप्रपञ्चके सहित इस जीवप्रपञ्चका कारण प्रकाश करते हैं। उस सत्त्वगुणके सहारे दैशिक प्रपञ्च आकर्षित होनेसे कालके जरिये वे ही क्षुब्ध होकर जगतको चैतन्यमय कर देते हैं। क्रमसे वे ही सत्त्वांश रजो और तमोगुणमें मिलित होनेसे सत्वकी पूर्णसत्ता लोप हो जाती है। जैसे सरोवरके मध्यस्थलमें एकवारमात्र हाथसे जल आलोड़न करने से उससे एक प्रकार गोलक तरङ्गकी उत्पत्ति होती है। क्रमसे उस तरङ्गकी गोल रेखा क्षुद्र आयतनसे वृहत्वमें व्याप्त होकर सरोवर

की सीमापर्य्यन्त जाकर लय हो जाती है। हाथकी शक्ति सरोवर के जिस तरङ्ग उत्पादक जलीयांसके सहारे आकर्षित होकर चक्र-रेखा उत्पन्न करती है, उसे ही तरङ्गपक्षमें मुख्यांश समझना होगा। उस मुख्य और क्षुद्र अंगको आश्रय करके पेषण क्रमसे जैसे वृहत् तरङ्गरेखा उत्पन्न हुई, उसमें प्रथमोत्पन्न मुख्यरेखाकी लय होती है, उस लयके सहित हाथके सहारे आलोड़ित तत्कालीन तरङ्गपक्षकी कारणशक्तिका भी लय होता है। वैसे ही ईश्वर कालके सहारे क्षुब्ध सत्त्वगुणके आकर्षणसे आकर्षित होकर मानव चैतन्यमें आत्मविम्ब प्रकाश करते हैं। यही ईश्वरकी आविर्भाव अवस्था है। क्रमसे वही चैतन्य जैसे विज्ञान अवस्थासे माया-मध्यगत होकर स्थूलभावसे रिपु प्रभृति अज्ञानमयत्वमें परिणत होता है, सत्त्वगुणका भी उसके सहयोगसे लय होता है। सत्त्व की लयके सहित उसकी प्रकाशक कारणशक्ति स्वरूप ऐशिक आविर्भावरूपी विज्ञानचैतन्यकी भी लय हुआ करती है। यह सब कालः सात गुण समझना होगा।

कालके सहारे जगतका अभाव प्रतिक्षणमें ही पूरण होता है, वह पूरणांश जगतपक्षमें महाकारणांशसे कालके सहारे आकृष्ट हुआ करते हैं। इसीलिये पुराणमें कहते हैं कि, जब धर्म्मांश क्रमसे स्थूल होकर अधर्म्ममय हो जाता है, तब मानवचैतन्य एकवारगी हीनदीसिमान हो जाता है। उस समयमें काल ही फिर सूक्ष्म-कारण प्रकाश करनेके लिये पुनर्वार ईश्वरकी सत्ताको आकर्षण करके कारणमध्यगत किया करता है। वह कारण ही सत्त्व-गुण—ईश्वरकी सत्ता ही परमात्मा वा विज्ञान चैतन्य है।

शि०। जीवदेहकी कितने प्रकारकी अवस्था है?

गु०। तीन प्रकारकी, जैसे—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। जीवको कोई देखने नहीं पाता, किन्तु जीवकी तीन

अवस्था प्रत्यक्ष होनेसे वह जो अनुचितभावसे वर्त्तमान है, उसका प्रमाण होता है। इस देहकी तीनों अवस्थामें एक सर्वकर्त्ता प्रमाण होता है। उस कर्त्ताकी सब कर्म्मोंमें मति होती है, उसमें ही आंख, कान, हाथ, पांव आदि क्रियमान कहके देखे जाते हैं। वही आध्यात्मिक अवस्था है। उन आंख, कान आदिको क्रियमाण करनेमें भी विभिन्नशक्तिका अस्तित्व विचारमें पाया जाता है; क्योंकि जीवन रहते भी बहुतेरे पंगु काने इत्यादि हुआ करते हैं। उस शक्तिके अस्तित्वका नाम आधिदैविकांश है। पूर्व्वोक्त कर्त्तृतांश और शक्तिअंश विच्छेद प्राप्त अर्थात् विभिन्नभावसे क्रियमाण जिस अंशकी सहायसे प्रकाश होते हैं, वही आधिभौतिक अर्थात् भूत-सम्मिलनांश समझना होगा। ये तीनों अवस्था ही उस एकमात्र जीवकी उपाधि हैं। अर्थात् जिस परम ज्योतिके सहारे ये तीनो दैहिकभाव सजीव होकर देहरूपसे वर्त्तमान होते हैं, उसे ही जीव कहते हैं।

शि०। ये तीनो स्वभाव जब भिन्न चैतन्यांशसे प्रकाश हैं, तब उनके बीच जीव कहके कोई वस्तु रहनी किस प्रकार सम्भव हो सकती है?

गु०। यदि ये तीनो अवस्था निज निज स्वभावसे यह देह-यात्रा करतीं, तो एकके अभावमें दूसरेका प्रकाश क्यों लोप होगा? अर्थात् इन्द्रियशक्ति यदि रहे, किन्तु भौतिक देह न रहे, तो देहकी गठन असम्भव है; और इन्द्रियशक्ति भौतिक देहमें रहने पर भी यदि शवाकार देह हो, परम ज्योतिरूपी जीव न रहे, तो उसका प्रकाश कहां होता है? इससे स्थिर प्रमाण है कि, जीव-रूपी भोक्ता है। और भोक्ता परमात्माके आश्रयसे आश्रित है। उस परमात्माका अनुभव करना हो, तो ये तीनो अवस्था जिस अवस्थासे प्रकाश हुई हैं, उसी अवस्थाकी भावना करनी होती है, उसे ही श्रुति स्मृतिमें परमात्मा कहते हैं।

शि०। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, ये तीनो भाव और यह जगत तथा जीव किस प्रकार उस ईश्वरसे प्रकाश हुए हैं?

गु०। यह विराटपुरुष जब कारणांडभेद करके बहिर्गत हुए, तब उनने स्वयं अपने आधारस्थानको इच्छा करके परिशुद्ध अप सृजन किया। कारणांश कहनेसे पञ्चभूत सूक्ष्मांश जानो; अहङ्कारांश और महत्तत्त्वांश ये ही सप्तावरण वेष्टित कारणमय जगत है, उसमें जैसे ईश्वर सगुणभावसे प्रविष्ट हुए, तब वे कारणांश कार्य्य में परिणत होनेसे सब मिलित हो गये। उस मिलित अंशको अप वा तत्व कहते हैं। ये ही सर्व प्रविष्ट आत्मा हैं। भूतोंके बीच भूतात्मा, जीवोंके बीच जीवात्मा और महत्तत्त्वके बीच कारणात्मा नामसे त्रिपद विष्णु वा सहस्रमस्तक हस्त पादवान कहके पुराण वा विज्ञानमें कल्पित हैं।

यह भगवान जब मैं अनेक होऊंगा कहके योगशय्यासे उठे, तब उनने निज हिरण्मय वीर्य्यको मायाके सहारे तीन हिस्सेमें विभाग किया। वह त्रिधा वीर्य्य आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक नामसे विख्यात है। हिरण्मयवीर्य्य कहनेसे, कारणमय तत्त्वं जानो। माया कहनेसे इस स्थलमें वासनाशक्ति जानो। मैं अनेक होऊंगा, इस वासनाशक्तिके सहारे ईश्वरने कारणतत्त्व को त्रिधा किया। यह त्रिधा ही आध्यात्मिकादि नामसे कथित है।

कारण मध्यगत ईश्वरके शरीरमें जो आकाश था; उसके बीच ईश्वरने कार्य्यमें व्याप्त होनेकी इच्छा किया; उससे ओजः सहः बल प्रकाश हुए और उनके सूत्रात्मा प्राणका प्रकाश हुआ। "आकाश कहनेसे व्यवधान" जानो। कोई व्यवधान प्रकाश न करनेसे कार्य्य किस उपायसे हो सकता है। यह शून्य नाम

व्यवधान उनके शरीर मध्यस्थ कहा गया है, उस व्यवधानमें कार्य्य-शक्ति और तन्नियोजकशक्ति प्रकाश हुई। इन तीनों कार्य्यशक्तियों के बीच ओजःसे इन्द्रियशक्ति है, यही आधिदैविक है, सहःसे मनःशक्ति है, यही आध्यात्मिक है। बलसे देहशक्ति अर्थात् भूतसंलग्न शक्ति है, यही आधिभौतिक नामसे कल्पित है। इन तीनों शक्तियों की संयोजक और कारणक एक सूक्ष्मतम प्रधान शक्ति है, उसे प्राण कहते हैं। यह प्राण ही जीवशक्ति है। इससे जीव और जीवकी उपाधिरूपी विभाव प्रमाण हुए, ऐसा समझना होगा।

सब जन्तुओंमें ही अर्थात् जीवदेहमें ही प्राण चेष्टायुक्त होनेसे ही इन्द्रियादि चेष्टायुक्त होती हैं; और जैसे प्रभुगणोंके अनुवर्त्ती सेवक लोग होते हैं, वैसे ही प्राण चेष्टाहीन होनेसे इन्द्रियादि भी चेष्टाहीन हुआ करती हैं।

शि०। जीवदेहमें इन्द्रियादि किस प्रकारसे आविर्भाव हुई?

गु०। प्राण अन्तरमें चालित होनेसे ही भूख और प्यासका प्रकाश होता है, और उन भूख प्यासके निवारणके लिये पानी पीने और आहारीय आहारके लिये पहिले मुखका आविर्भाव हुआ।

उस मुखसे तालुका प्रकाश होता है। रसना नाम इन्द्रिय वहां उत्पादित होती है, उस तालुमें अनेक विध रसकी उत्पत्ति जिह्वाका बोध हुआ करता है।

जीवको बात कहनेकी इच्छा होने पर मुखके बीच अग्नि प्रकाश होती है, उस तेजसे ही वाक्य प्रकाश होती है। वह तेज तालु प्रकाश्य रसमें चिरकाल ही निरुद्ध रहके प्रकाश होता है।

जीव वायु चालित करनेकी इच्छा करने पर नासिका नाम इन्द्रिय प्रकाश होती है, वह आघ्राण करनेकी इच्छा करनेसे वायु ही वहां गन्ध पहुंचाता है।

जीव जब प्रकाश शून्य निज देहको प्रकाशरूपसे देखनेकी इच्छा करता है, तब दोनो नेत्र प्रकाश होते हैं। उनके बीच जो ज्योतिशक्ति है, वही सर्वरूपका आकार ग्रहण करती है।

आत्माकी ऋषिगणज्ञात शब्द (वेद) बोध करनेकी इच्छा होने पर कान प्रकाश हुए। उनमें दिग्बोधक श्रोत्रशक्ति आविर्भूत होकर शब्दवेदसे ग्रहण किया करती है।

किसी वस्तुकी मृदुता, काठिनता, लघुता, गुरुता, उष्णता, शीतलता अनुभव करनेके लिये जीवके अङ्गमें त्वक्‌का प्रकाश होता है। उस त्वक्‌में लोमसमूह रहते हैं और उसके भीतर तथा बाहिरमें वायु व्याप्त रहनेसे वायुका स्पर्शगुणत्व प्राप्त होता है।

जीवको अनेक कर्म्म करनेकी इच्छा होने पर हाथ नाम इन्द्रिय प्रकाश होती है; उसमें आदान प्रदानादिकी आश्रयीभूत बल नाम शक्ति अवस्थान करती है।

वह जीव अभीष्टकामना परिपूरणके लिये गतिकी इच्छा करने पर पादअंश प्रकाश होते हैं। उस पदमें स्वयं हरि अर्थात् यज्ञशक्ति वर्त्तमान रहती है। उसके सहारे मनुष्यलोग यज्ञादि कर्म्म आहरण किया करते हैं।

व्याख्या। यह पदइन्द्रिय प्रकाशकभाव कुछ गूढ़ है, इसलिये व्याख्याकी आवश्यकता है। जीवने निज वासनाके सहारे भोगयन्त्ररूपी इन्द्रियादि अपनी इच्छासे ही प्रकाश किया है। ये इन्द्रियादि ही आध्यात्मिकादि त्रिभावसे प्रतिजीवदेहमें प्रकाशित हैं। जब जीव अभिष्टकामनाकी गति इच्छा करता है अर्थात् इष्टस्थानमें गमन वा ब्रह्मसन्दर्शन सबही उस गति नाम गमनरूपिणी आकर्षणीशक्तिसे सहारे हुआ करता है। यह गति ही योगमार्गमें अलक्ष्यभावसे विचरण कर सकती है। इस गतिके सहारे ब्रह्मगति लाभ करानेके लिये यज्ञरूपी ब्रह्मसाधनकर्म्मका

साधन समय आहरण किया करता है। यह गति जीववासनाके बीच ब्रह्मपथमें धावित होती है कहके विष्णु यज्ञ अर्थात् क्रियाशक्ति रूपसे इसमें अवस्थित हैं। प्रत्येक इन्द्रियादिमें अपरापर शक्ति हैं।

वह जीव; अपत्य उत्पादन आनन्दानुभव और स्वर्गादिलाभ वासना करने पर शिश्न प्रकाश होता है। उसके बीच स्त्री सम्भोग-जनित सुख और पूर्व्वोक्त अपत्यादिकी प्रकाशक उपस्थ नाम शक्ति का प्रकाश होता है।

शरीरगत असारांश त्याग करनेकी इच्छा करने पर जीवकी गुह्येन्द्रिय प्रकाश होती है। उससे पायुशक्ति प्रकाश होती है। उस गुदा और पायुके अधिष्ठाता शक्तिस्वरूप मित्रशक्ति वहां अवस्थान करती है।

उस जीवके देहान्तरगमन सुविधाके लिये नाभिद्वारमें अपान-शक्तिका प्रकाश है, उससे एक देह सम्बन्धसे सम्बन्ध पृथक्कारी मृत्युका प्रकाश हुआ करता है।

उस जीवके अन्न पानादि कार्य्यके लिये कुक्षि और उसके मध्य-गत अन्त्र तथा नाड़ीका प्रकाश होता है। नदी और समुद्र ही उनकी शक्ति हैं तथा उनके सहारे तुष्टि और पुष्टि साधित हुआ करती है।

व्याख्या। उदरके आधारस्थानको कुक्षि कहते हैं। जिस यन्त्रके सहारे आहारादि गृहीत होते हैं, उन्हें अन्त्र कहते हैं, और पानादि जिस यन्त्रसे गृहीत होते हैं, उसे नाड़ी कहते हैं। नदी कहनेसे स्रोतमयीशक्ति जानो। सागर कहनेसे असीम रसशक्ति जानो। अन्नादिमें स्रोतका प्रयोजन होता है, इसीलिये अन्त्रकी शक्तिको विज्ञानमें नदी कहते हैं। और असीम रस-पानीयके सहारे आहृत होता है, इसीलिये नाड़ीकी शक्तिको-

सागर कहते हैं। उदर चेष्टा पूरण होनेसे ही तुष्टि होती है। रस के पवित्र परिणामको पुष्टि कहते हैं।

मायायुक्त आत्माको अर्थात् जीवको चिन्ता करनेसे हृदयका प्रकाश होता है; वहां मनरूपी यन्त्रशक्तिका प्रकाश होता है; और सङ्कल्पात्मक कामना ही वहांकी अधिष्ठाता हुआ करती है।

त्वक, चर्म्म (सूक्ष्म और स्थूलभावके भेदमात्र), मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि; येही सातो धातु, भूमि, जल और तेजोमय होती हैं; और प्राणशक्ति ही व्योम, वायु तथा वारिमय होती है। अर्थात् देहकी सातोधातु और प्राण सबही पञ्चभूतमय होते हैं।

इन्द्रियां भी गुणोंके अधीन होती हैं, गुण भी भूतादिसे प्रकाश हैं। (गुण कहनेसे शब्दादि पञ्चमात्रा) भूतसमूह अहङ्कारसे प्रकाश हुए हैं। इन सबके अर्थात् अहङ्कारके विकारसे ही मन और बुद्धिका प्रकाश हुआ करता है। उनके बीच मन ही सब विकारोंका सूक्ष्मतम स्वरूप है; तथा बुद्धि ही भूतादि तत्त्वबोधक विज्ञानरूपिणी होती है; इसीलिये सबकी सूक्ष्मावस्था मन और बुद्धि है। मनके सहारे स्थूल अनुभव किया जाता है और बुद्धिके सहारे उसका विचार किया जाता है।

ये जो महीसे लगाय पञ्चभूत हैं, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रधान ये ही आठ आवरण हैं; ये ही भगवानके स्थूल रूप होते हैं।

स्थूलदेहको कारणस्वरूप जो वह सूक्ष्म अवस्था है, वह अव्यक्त है; वर्ण आकारादि हीन है; उत्पत्ति स्थिति हीन है; नित्य और वाक्य मनको अगोचर होती है।

मैंने जो तुमको भगवानके उभय रूपकी कथा कहा, ये भी मायाके द्वारा कल्पित अर्थात् मायाके सहयोगसे प्रकाशित करते

हैं, माया त्याग करनेसे ईश्वर उपलब्धि होना दुरुह है। इसीलिये पण्डित लोग उन्हें नित्य वा सत्य कहके स्वीकार नहीं करते।

शि०। इन जीवोंके बीच कोई द्विपद, कोई चतुष्पद हैं; और वे भिन्नभाव क्यों धारण करते हैं?

गु०। मायाके सहारे ईश्वरने अपनेमें काल, कर्म्म और स्वभावका आविर्भाव किया। ईश्वरेच्छाका रूपान्तर ही माया है; उस मायसे द्रव्य, ज्ञान और क्रिया प्रकाश होती हैं। ईश्वरने इन तीनो उपादानोंको तीनों गुणोंके आकर्षणसे मायामेंसे पाके उसमें संलिप्त होनेसे ये ईश्वरमिलनसे जिस प्रकार परिणत हुए, उस परिणतिको विभिन्नता ही काल, कर्म्म और स्वभाव नामसे विज्ञानमें विख्यात हुई।

मायाजात गुणोंसे जीवने आवरण सूचक छः द्रव्य पाया। क्रिया प्रकाशरूपी ज्ञान पाया और अपनी वासना पालनके लिये क्रियारूपी इन्द्रिय पाया। किस भावसे वह जीव अवस्थित होता है वा किस भावसे ही द्रव्यादिको परिणति होती हैं, इसे आलोचना करनेसे विज्ञानसे समझकर देखनेसे जीवके सहित और भी तीन नित्यऐश्वरिकशक्तियोंका जीवके स्वभावमें मिश्रित होना देखा जाता है। इन तीनोंके बीच एकमें सत्त्व, रजः और तमोगुणको क्रियापर करके मिश्रित करती है, वही काल नामसे अवस्थित है, उसके सहारे वर्द्धन ह्रास इत्यादि प्रकाश होते हैं। दूसरा अदृष्टभाव है। अदृष्ट कहनेसे ईश्वरका रूपग्राहिणी तेज जानो। वह तेज ही वासनाको वशीभूत कर रखता है। उस अदृष्टको कर्म्म कहते हैं। उस अदृष्टवशसे कोई जीव गो, कोई जीव मनुष्यदेह वा छागरूपसे प्रकाश हुआ करते हैं। तृतीय नित्यतेजको स्वभाव कहते हैं। इसके सहारे जीवके वासनाकी परिणति होती है। अश्वके स्वभावमें अश्वकी वासना चालित होती है। मनुष्यके

स्वभावमें मनुष्यवासना चालित होती है। उस अदृष्ट वा कर्मके सहारे जीव नामसे मायी ईश्वर अनेक भावसे रूपान्तरित हुए। कालके सहारे गुणके क्षोभणसे बहु रूप प्रकाश हुए, और स्वभावमें जीवको वासनाको अदृष्टके अनुसार परिचालित किया। इससे ही मनुष्य मध्यगत आत्मा और गोमध्यगत आत्मा इतना भिन्नभाव धारण करता है।

शि०। ईश्वरको स्वकर्मक अवस्था किसे कहते हैं?

गु०। पण्डित लोग ईश्वरकी स्वकर्मक अवस्थाको ही अच्छी कहते हैं। ईश्वरने ही ब्रह्मादि रूप धारण करके प्राणियोंके रूप, गुण, कर्मादि विवेचनामें वाचक वा निर्देशभावसे नाम और वाच्य वा बोधकभावसे रूप कर्मादि सृजनमात्र किया है। वह मायामें पतित होकर स्वकर्म (जीवादि) हुए हैं। यथार्थमें वह अकर्मक और परमेश्वर होते हैं।

(उस भगवानने गुण रूपादि भेदसे वाच्यवाचक विवेचनासे निम्न लिखित सबही प्रयोग किया है) उस भगवानने प्रजापति मनु, देव, ऋषि, पितृ, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सर, नाग सर्प, किम्पुरुष, मनुष्य, मातृगण, रक्ष, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कुष्माण्ड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, मृग, खग, पशु, वृक्ष, गिरि, सरिसृप प्रभृति वाच्य वाचकभावसे सृजन किया है। इसके सिवाय दो प्रकारके (स्थावर जङ्गम) और चार प्रकारके (जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज) जल स्थल आकाशवासी जीवगणोंको भी उनने इस वाच्य वाचकभावसे सृजन किया है।

शि०। जीवजन्मके बीच श्रेष्ठजन्म किसे कहा जाता है?

गु०। जिसका आजीवन सङ्कल्प ही मङ्गलमय है, उसे ही साधु कहते हैं। जो कोई हों, जीव कहनेसे जरायुजादि सब ही जाने जाते हैं। जन्म कहनेसे मायामध्यगत होना है। माया-

मध्यगत होकर जो शक्ति ईश्वरनिष्ठ रहती है अर्थात् कार्य्यवर्जित होकर कारणनिष्ठ होती है, उसका ही जन्म श्रेष्ठजन्म है। ईश्वरानुगत साधनाके विना जीवकी अन्य कोई शक्ति ही ईश्वरका भावोद्दीपन नहीं कर सकती। वह साधना केवल मनुष्योंमें है, इसीलिये उक्त मनुष्यजन्मको श्रेष्ठजन्म कहा जाता है। क्योंकि इस अवस्थामें वे भगवानकी लीलाओंको अनुभव करके ईश्वरपर हुआ करते हैं। इसलिये सुख और दुःखके अधिकारी न होकर ज्ञानके अधिकारी होते हैं।

शि०। जीवोंकी कर्म्मगति कितने प्रकारकी है?

गु०। इन जीवोंके बीच कुशल, अकुशल और मिश्र ये त्रिविध कर्मगति वर्त्तमान हैं। सत्त्व, रजः और तमो इन तीनों गुणोंसे ही यह त्रिविध गति लाभ करके कोई सत्त्वाधिक्यसे देवतास्वरूप होते हैं, कोई रजोधिक्यसे मनुष्य होते हैं (ये ही मिश्र वा मध्यमावस्थामें हैं), कोई तमोगुणकी अधिकतासे नारकी अर्थात् तिर्य्यकादि योनिगत होकर अकुशल (अधम) अवस्थापन्न हुआ करते हैं।

उन उत्तम, अधम और मध्यम जीवोंके बीच प्रत्येकमें ही त्रिविधगति वर्त्तमान हैं, वे अपरके स्वभावको लेकर कार्य्य किया करते हैं।

वह जगदीश्वर ब्रह्मादिरूपसे पूर्व्वभावसे तिर्य्यक् देवतादि सृजन करके धर्म्मरूपसे उनका पालन करते हैं। और रुद्रभावसे कालाग्निके सहारे अपनेसे उद्भूत इस जगतको इस प्रकार संहार करते हैं, जैसे वायु मेघमण्डलोंको उड़ा देता है।

जिस भावसे ईश्वरको सगुणभावसे वर्णन किया गया; पण्डित लोग केवल इसी भावसे ईश्वरको नहीं देखते। (क्योंकि माया परित्याग करनेसे) वह भगवान इस जगतके जन्मादि कर्म्ममें आबद्ध नहीं रहते। मायाके संयोग हेतुसे ही उनका कर्त्तृत्व पण्डितोंने

प्रमाण किया है, वह केवल उन्हें अकर्म्मा ज्ञात करानेके लिये, क्योंकि माया त्यागसे जब उनका कर्म्म असम्भव है, तब वह विशुद्ध अवस्थामें निष्क्रिय होते हैं।

शि०। ईश्वरकी सृष्टि ऐसा जो संसार है, वह कष्टका स्थान क्यों होता है?

गु०। पृथिवी कहनेसे संसार जानो। जीवात्माके स्वरूप लीलाके लिये क्रियाभूमिको संसार कहते हैं। भूमि कहनेसे भूतगत आधार—मृत्तिका नहीं है। धर्म्माक्रान्त संसार होनेसे जीव स्वच्छन्दतासे आत्मलीला करके संसारको पालन करता है। उसमें अधर्म्म प्रचार होनेसे जीव सदा ही अधर्म्म प्लावनमें प्लावित होकर दुःखाक्रान्त हुआ करता है। उस दुःखसे और रिपुतेजसे भौतिक मानसिक सब प्रकार तत्त्वोंके क्षोभ होते हैं; उससे जीवका लीलाकरण कष्टदायक हुआ करता है। इसलिये जीवकी लीला लेकर ही संसारकी स्थिति है। उसका ह्रास वा विपरीतभाव उपस्थित होने पर संसार भी कष्टका स्थान हो जाता है।

शि०। संसार जड़ वा चैतन्यमय है, उसमें अधर्म्म वा धर्म्म कौन प्रकाश करता है?

गु०। प्राकृतिक मानवलीलाके निमित्त, सूक्ष्मतम समूह के समावेशको संसार कहते हैं। प्राकृतिक तत्त्वसमूह चैतन्य के समावेश मतसे एक एक भागमें वृक्ष और जीवजातिको उत्पन्न करते हैं। जिस उपायसे वृक्ष उत्पन्न होते हैं, उस उपायसे जीव उत्पन्न नहीं होते। जिस उपायसे जीव उत्पन्न होते हैं, वृक्षादि उस उपायसे उत्पन्न नहीं होते। वे वृक्षादि फिर विभिन्न जाति-मतसे जो जिस स्वभावापन्न अर्थात् प्रकृतिके हिमोष्णत्व, उर्व्वर-मरुत्व हेतुसे एक जातिके वृक्ष अपर जातिके उत्पादनस्थानमें पैदा नहीं हो सकते।

उसी प्रकार मनुष्य लोग जिस प्राकृतिक सूक्ष्म चैतन्यांशको आश्रय करके जन्म ग्रहण करते हैं, उसे ही संसार कहते हैं। ईश्वर की कालशक्ति ही जीवत्व और जगतत्व प्रकाश करती है। मनुष्यों के पक्षमें काल ही प्रकाश और पालनकर्त्ता होता है। वह चैतन्यांश सदा ब्रह्माण्डगत चन्द्र सूर्य्य ग्रह नक्षत्र और भूतादिकी सत्तासे पालित तथा प्रकाशित हुआ करता है। कालमतसे जब उन ग्रहादिकोंकी गतिकी तथा तद्गत तेजकी ह्रास वृद्धि हुआ करती हैं। उसके सहित संसार और तेज ह्रास वृद्धि हुआ करती हैं। इस ह्रास और पूर्ण वा वृद्धि भावके सहारे ही यह संसार क्रियापर होता है। उस ह्रासभावके सहारे चैतन्यगत ज्ञानादिका ह्रास होता है। ज्ञानादिके ह्राससे जीवपक्षमें अज्ञान वासनाको पापमय करता है, वह पाप वासना ही सब जीवोंको पापमय करती हुई जगतमें अधर्म्म विस्तार करती है। उस ह्रास वृद्धिका रूपक ही कालके पक्षमें युगान्तर है। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ही उस पूर्णांशके ह्रास तथा पूर्णभाव ज्ञापक कालमान होता है, इस ह्रासावस्थामें मनुष्योंके लिये ही शास्त्रविधि ईश्वर निर्देश प्रभृति लौकिक और अलौकिक क्रियामें स्थिर हुई हैं। इस कालके ह्रासभावमें अधर्म्मकी अर्थात् अज्ञानादिकी अधिकता होनेसे संसारका वैलक्षण्य उपस्थित होता है, उससे ही जीवगत गुणसमूह छिन्नभिन्न होकर जीवको निस्तार करनेके लिये उसकी सत्ताको आकर्षण करते हैं। इस प्राकृतिक नियमसे ही ईश्वर युगधर्म्मसतसे अवतीर्ण हुआ करते हैं।

शि०। अधर्म्म और धर्म्ममें क्या प्रभेद है?

गु०। धर्म्म चिरनियत्व दिखाकर जीवको शान्त रखनेके भोग अपवर्ग साधनमें तत्पर होता है। जैसे छायाके सहारे क्षणभरके लिये सूर्य्य आच्छादित होता है, अधर्म्म भी वैसे ही जीवके ज्ञानसूर्य्य

को आच्छादनमात्र करके स्वयं जीव हृदयमें कर्त्तृत्व करता है; कालके सहित जब वह सूर्य्यरूपी ज्ञानाग्नि जीवके हृदयमें सुख दुःख हिल्लोलमतसे प्रकाश होती है, तब अधर्म छाया अन्तर्हित हो जाती है। अधर्म अपनेसे ही स्वयं नाशको प्राप्त होता है; धर्म अपनेसे ही ईश्वरत्व जगतमें प्रकाश करता है। इसीलिये जो अनित्यवाचक अधर्मको जीव आश्रय करता है, कालके सहित संसारमें उसका विनाश साधन हुआ करता है।

शि०। जीवदेहमें किस उपायसे अधर्म प्रविष्ट होकर धर्मके विनाशमें उद्यत होता है?

गु०। जीव कर्म्मफल भोगी है। कर्म्मफल ही मनोराज्यकी शोभा है। राज्य कहनेसे प्रकृतभावसे देहराज्य वा प्रज्ञा बुद्धि जीवकी मनोराज्य जानो। धर्म दो प्रकारका है,—शिक्षित और स्वभावज। ईश्वरसे अदृष्ट लाभकर सब जीव ही स्वभावजकर्म्म करके अपनी जीवनयात्रा निर्व्वाह किया करते हैं। मनोराज्यके विचारमें उस स्वभाविक कर्मकी उन्नति और अवनति विवेचनासे जो विकारी स्वभाव प्रतिजीवोंमें प्रत्यक्ष होता है, उसे ही शिक्षित कार्य्य कहते हैं। इस उभयात्मक कर्मसे वासना जिस अनुराग-मण्डित होकर संसारमें क्रिया करती है, उस अनुरागको कर्म्मफल कहते हैं। यह अनुराग प्रकृत स्वभाव और शिक्षित स्वभावसे उद्भूत होकर नूतन शय्यामें सज्जीभूत होकर पहिले चित्तको, फिर बुद्धिको आक्रमण करता है, फिर अहमित्वरूपी अहङ्कारको ग्रास करता है। फिर मनको अधिकार करके जीवको आत्मवशमें लाके पापमय कर डालता है।

शि०। जीवकी मति जब अधर्माक्रान्त होती है, तब उसे धर्मका उपदेश देना उचित है वा नहीं?

गु०। उस समय उसे धर्मका उपदेश देना वृथा है। क्योंकि

अधर्म्ममति जीवको एकबारगी आच्छन्न करनेसे धर्म्मभाव उसके हृदयमें प्रकाश नहीं कर सकता। क्रमसे धर्म्मभाव ताड़ित होकर प्रस्थान करता है, जानेके समयमें आसन्न विपत्पातका चिन्ह ज्ञात करा जाता है। क्योंकि जीव भोक्तामात्र है। हृदयमें सुख वा दुःख जिस किसी अवस्थाका प्रकाश क्यों न हो, जीव भोगमात्र करता है, किसीमें आसक्त नहीं होता; किन्तु हृदयके अधीन है। हृदय कहनेसे मन जानो। हृदय अर्थात् मन चाहे कितना हो कलुषित क्यों न हो, वह सत्त्वगुणात्मक होनेसे उसकी उत्तम साधनाबोधक बुद्धि नाश नहीं होती। किन्तु मन अधर्म्माक्रान्त रहनेसे उस अवस्थामें बुद्धिकी कुछ सामर्थ नहीं रहती।

शि०। धर्म्मात्मिकाबुद्धि जीवको पापाक्रान्त देखकर पापांशसे निकलकर कहां अवस्थान करती है?

गु०। मनकी उत्तमाधम बोधक क्रियाचैतन्यको बुद्धि कहते हैं। उसके बीच उत्तमकृत निश्चयात्मम अंशको धर्म्मात्मिका बुद्धि कहते हैं। इसी तेजके सहारे जीवोंका परित्राण होता है। यह तेज ही जीवको संसारयातनासे सदा निस्तार रखता है। माया इस तेजको आक्रमण नहीं कर सकती। जीवकी वासना ही मुग्ध होती है। जीव उसे भोगमात्र करता है। जब यह वासना अधर्म्ममें मुग्ध होती है, तब यह तेज धर्म्मांशमें प्रस्थान करता है।

जैसे बादलोंसे जलराशि प्रकाश होकर नदी, सरोवर, जलाशय प्रभृतिमें परिणत होती है; फिर वर्षानाश होनेसे उत्तापके सहयोगसे फिर वह जल बादलमें परिणत होता है; वैसे ही संसारके सर्वत्र ही बुद्धिका तेज मनोराज्यके सहित विचरण करता है। घटादि गृहीत जलांशवत् जीवकी देह भोगके सहित वह खण्ड खण्डसे जीवके भोगगृहमें उसके प्रयोजनमतसे प्रवेश करती है; फिर जीव उसे व्यवहार न करनेसे वह महामनोराज्यमें प्रवेश

करती है। जैसे राजसिक अहङ्कारजात इन्द्रियादि और तामसिक अहङ्कारजात भूतादि जगतव्याप्त रहके प्रत्येक जीवके भोगगृहमें प्रत्यक्षीभूत होते हैं, वैसे ही सात्विक अहङ्कारजात मनोराज्य भी इस विश्वमें विस्तीर्ण हो रही है। उसी सात्विकी मनोराज्यमें भगवानका अधिष्ठान है। यह कथा वेदादिमें सर्व्वत्र ही विख्यात है। इस मनोराज्यमें भगवान आत्मबोधक होकर चैतन्यमयरूपसे अवस्थान करते हैं; इस मनोराज्यको ही जीवको चैतन्यदाता और भोगप्रदाता समझना होगा। प्रकृत मनोराज्यमें पापका लेश भी नहीं है, वहां जीवोंके शान्तिगृह, शान्तिमय, विश्रामस्थान, विहारस्थान (कुञ्ज) पुण्यमय कर्म्म वासना विराजती है, सर्व्वदा ही एकमात्र ईश्वरकी परम करुणामय अस्तित्व शोभित है। ऐसे मनोहर स्थानमें धर्म्मात्मिका बुद्धिने प्रवेश किया। इस अवस्थाको ही ब्रह्मचर्य्यावस्था कहते हैं।

शि०। असत्‌की उत्पत्ति क्यों होती है?

गु०। कोई एक वस्तुका पूर्णभाव-प्रकाश होनेसे ही उसका ह्रासभाव उसके साथ ही प्रकाश होता है; उजियाला था, उसी लिये अन्धकारका प्रकाश है। उष्णत्व था, तब ही हिमत्व प्रकाश है। वैसे ही ईश्वरका अनुभव सत्तारूपी धर्म्म है, इसीलिये उसका असत् स्वरूप अधर्म्म है। यह जो असत्‌भावका उत्पादन है, उसे मनुष्योंके पूर्व्वभावका प्रकाशमात्र समझना होगा। मनुष्यको चैतन्यमय योनि जानना चाहिये। जो जीवभाव पश्वादिमें समागत होकर कर्म्मफलसे मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है, उसका स्वभाव पूर्व्वजन्मजात कर्म्मानुसार पशुभावसे ही रहनेकी इच्छा करता है। वही मनुष्य होकर पशुभावमें आगमन ही विधर्म्म वा अधर्म्म है। इसलिये मनुष्योंके पक्षमें धर्म्मके लोप हेतुसे अधर्म्मका प्रकाश हुआ करता है। इसलिये समझना चाहिये कि, अधर्म्मको

प्रकृत सत्ता नहीं है।

शि०। योनि किसे कहते हैं?

गु०। ऐसा स्थान वा आकर (खान) जहां दो वा उससे अधिक सत्पदार्थ मिलित होकर कार्य्यत्व प्रकाश करते हैं, उसे योनि कहते हैं।

अनेक विध धर्म्मपन्था जिस स्थानमें वा आश्रयमें मिश्रित होकर जगतमें जीवके परित्राण कार्य्य प्रकाश करते हैं, उसे वा उस आश्रय-स्थानको धर्म्मयोनि कहते हैं। वह धर्म्मयोनि कौन है? भगवान् जनार्द्दन हैं। जन्य अर्थात् अविद्याजात अधर्म्म प्रबलताको जो ह्रास वा नाश करते हैं, वे ही जनार्द्दन हैं।

शि०। किस लिये मनुष्य पशुत्वलाभ किया करता है?

गु०। इस स्थलमें मन ही जीवका राजा है। मनकी मोहागार ही संसार है। जननभूमिको पृथिवी कहते हैं। अज्ञान-जनित रिपुगण ही मनकी प्रबल सेना हैं। मन क्यों पापी होता है? "वह त्रिमदसे उन्मत्त है",—विद्यामद, धनमद और आत्मा का भरणादिमद; इस त्रिविधमदके सहारे मनुष्य पशुत्वलाभ किया करते हैं। अहङ्कारात्मक विद्याको विद्यामद कहते हैं, अर्थात् शिक्षासे परमतत्त्व भूलकर नास्तिक भावालम्बन करते हैं। विषयाकृष्टावस्थाको धनमद कहते हैं। मेरा मेरा कहके अथवा विलापको आत्मीयभरणमद कहते हैं। ये त्रिविध मद ही अधर्म के कारण हैं। विज्ञानविदोंने स्थिर किया है कि,—जो जीवात्मा पशुयोनिसे मनुष्ययोनि प्राप्त होता है, वह मनुष्यत्वमें पशुत्वकी अपेक्षा आपातत: कितनी ही उन्नत अवस्था देखकर मुग्ध होजाता है। या तो उसे पशुत्वमें बहुत ही अज्ञान रहना हुआ था, मनुष्यत्वमें कुछ अशुद्ध ज्ञानालोकरूपी अशुद्धविद्या पाकर भूलके उसको अपेक्षा श्रेष्ठत्व जाननेमें विरत होना हुआ। याती उसे पूर्वजन्ममें

भूख प्याससे कातर होना होता था, धनोपायके सहारे आपातत शान्ति पाकर उसको अपेक्षा उसी नित्यकी सत्ताको भूलना पड़ा, याती उसे अकेला रहके विहार करना होता था, मनके भावको व्यक्त करनेको उपाय न थी, मनुष्यत्वमें आत्मीयादि पाकर वह दुःख दूर हुआ विचारके उसे ही प्रधान चिन्तन करना हुआ। विज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, अन्तरमें यदि अभावज्ञापक कोई शक्ति जीवके सहित न रहे, तो क्यों दरिद्र हो, कुछ धन पानेसे ही आपाततः सन्तुष्ट होगा। भूखा भूखको निवृत्त करने, कामी काम शान्त करनेके लिये क्यों चेष्टा करेगा ; बल्कि लतावल्ली ही क्यों निज आश्रयरूपी सहकार अन्वेषणमें रत होगी। उसी अभावके सहारे जीव लोग कोई असारमें मुग्ध होते हैं और कोई सारमें सारमय हुआ करते हैं। वह अभाव ही पूर्णावस्थाका तिरोभावमात्र है। अर्थात् जीवात्मा क्या चाहता है ? उस पूर्णतारूपी ईश्वरके सत्ता की ही प्रार्थना करता है। उस सत्ताका तिरोभाव ही अभावरूप से जीवको वासनामें रहनेसे वह सचेतनभावसे पालित होता है। वह तिरोभाव यदि न होता, तो जड़ और चैतन्यमें कुछ प्रभेद न रहता। और ईश्वरके निजयोगसे जीव तथा कर्मरूपसे लीला न होती।

ईश्वर जीवको मनुष्यत्वमें लाकर उसमें अपनी तिरोभाव अवस्था का आविर्भाव करते हैं, उसमें परांमुखी होनेसे ही मनुष्योंको दुःख भोग करना होता है। वह आविर्भाव संयोग ही मोक्ष है।

शि०। मनुष्योंके सिवाय अन्यजीवोंको तिरोभावजनित कष्ट क्यों नहीं होता ?

गु०। परब्रह्म निर्गुण और अज होते हैं, उनकी लीलाके लिये ही ये जरायुज स्वेदजादि जीवभाव ब्रह्माण्डमें हैं। मनुष्योंके अतिरिक्त प्रत्येक जीवभावमें ही उनका तिरोभाव हेतु जो अभरव

दीखता है, वही भ्रान्तिरूपसे सब जीवोंको आच्छन्न करता है। मनुष्योंके सिवाय अन्य जीवभावमें निज तिरोभावको ही ईश्वरको इच्छा है, इसलिये उन्हें तिरोभावजनित कष्ट नहीं होता। केवल एक अभावशक्तिके सहारे परस्पर उन्नति ज्ञापकशक्तिमात्र वे लाभ किया करते हैं। जीवत्व क्रमसे मनुष्यत्वमें परिणत होनेसे ईश्वर उसमें स्वरूपसे आविर्भाव होकर जीवके पूर्व्वोक्त अभावको मोचन करते हैं। अर्थात् निज लीलाको शान्ति करते हैं।

शि०। क्या देह विनाशसे आत्माका विनाश होता है?

गु०। निर्गुणब्रह्मसे गुणधर्म्म उनका सगुणत्व प्रकाश करके यह ब्रह्माण्डप्रकाश करने पर उस सगुणभावरूपी परमात्माने आत्म-मायारूपी कल्पनाके बीच आत्मविम्ब देकर पदार्थगत आत्मा नाम धारण किया। उस आत्माके प्रभावसे ही सब जीव प्रकाश हुए हैं। वह जीवांश ब्रह्मांश होनेसे वह चिरनिर्लेप है। कामना उसे जिस प्रकार रञ्जित करनेकी इच्छा करती है, वह उसमें ही रञ्जित होती है। उस रञ्जित अवस्थामें जीवात्माको सत्ताका हीनत्व उपस्थित होनेसे उसको सत्त्वरूपी आत्मा फिर उसका संस्कार करके ब्रह्मका कर्त्तव्य साधन किया करती है। आत्माकी सत्ता अर्थात् ब्रह्मसे जीवात्मा पर्य्यन्त अविनाशी, उसके तेज क्रमसे जड़भूत यह जगत हुआ है। उसका विनाश होनेसे क्षण क्षणमें जगतका विनाश होता।

शि०। ईश्वर सकल शुभफलोंके दाता हैं, इसे किस प्रकारसे समझें?

गु०। कर्मके सहारे जीव परिणाममें जो भाव लाभ करता है, उसे फल कहते हैं। वह भाव दो प्रकारका है। शुभ और अशुभ। जीवात्मा प्रसन्न होनेसे उस फलको शुभफल कहते हैं। जीवात्मा अप्रसन्न होनेसे उसे अशुभफल कहते हैं। शुभसे सुखकी

उत्पत्ति और अशुभसे असुख वा दुःखकी उत्पत्ति हुआ करती है। इस शुभफलका दाता ईश्वर है; अशुभफलका दाता मोह वा मायाजात स्वभाव है। क्योंकि उस ईश्वरसे हो भाव स्वभावविहित कर्मका प्रकाश ये हो प्रसिद्ध है। भाव स्वभाव कहनेसे (भगवानका स्वभाव है)। श्रीधर स्वामीने भावशब्दसे महदादि और ब्रह्मनिष्ठा ये दो अर्थ किया है। विज्ञानमें कहते हैं कि, जिसके मिलनसे वा जिससे किसी स्वभावका प्रकाश होता है, वही उसका कर्त्ता वा दाता हुआ करता है। ब्रह्मनिष्ठ लोग निरन्तर ब्रह्मका ध्यान करके जो सब कार्य्य जगतमें प्रकाश करते हैं, वे सब ही सत्य और शम दमादि श्रेष्ठ गुण, वा फलरूपसे जगतमें वर्त्तमान हैं। इसी-लिये इस स्थानमें ब्रह्म शमादि सद्गुणोंके प्रकाशक हुए। महदादि अवस्थाको स्वर्ग कहते हैं। ये अवस्थासमूह ईश्वरसे विकारित हुई हैं, इसलिये ईश्वर स्वर्गादिके दाता कहके प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध कहनेसे वैदिक विज्ञानसे स्थिरीकृत जानो। इससे ही ईश्वर शुभफलके दाता प्रमाणित हुए।

शि०। जीवको मृत्यु होने पर शुभाशुभफल कौन भोग करता है?

गु०। अज पुरुषरूपो जो आत्मा है, वही स्वधातु अर्थात् भूतादि (आत्मासे स्थूलरूपी भूतादिका प्रकाश है, इसलिये भूतादिको ब्रह्म आत्माकी धातु कहा) संयोगसे देह निर्म्माण करता है। कालसे यह अहङ्कार सम्पर्कीय देह नाश होने पर देहकर्त्ता आत्मा सर्वत्र व्याप्त शून्यरूपसे वर्त्तमान रहता है। वह कर्त्ता ही जन्म मृत्यु रहित और सर्वत्र प्रविष्ट हैं। वे ही फलभोगकर्त्ता होते हैं। इससे वैदिक विज्ञानविदोंने वासनाकी शुद्धिसे उत्तम जन्म और अशुद्धिसे अधम जन्म स्थिर किया है।

शि०। क्या मनुष्यमात्र ही वैदिक कर्मके अधिकारी हैं?

गु०। सत्त्व, रजः, तमोगुणी मनुष्योंके बीच सबही ईश्वरमें विश्वास करते हैं। कोई कोई कर्मके सहारे उनका चैतन्य प्रत्यक्ष करके मुक्तिके अभिलाषी होते हैं। कोई ज्ञानाहरणकी चेष्टामात्र किया करते हैं। और कोई केवल कर्मपर हुआ करते हैं।

मुक्ति वा स्वर्गाभिलाषी मनुष्यश्रेणीको सत्त्वगुणी कहते हैं। ज्ञान आहरणके लिये उद्योगी मनुष्योंको रजोगुणी कहते हैं। और केवल कर्मपर मनुष्योंको तमोगुणी कहते हैं। यह तीन प्रकारकी मनुष्यश्रेणी ही वैदिक कर्मकी अधिकारी हैं। और इनके लिये ही वेदने शास्त्रज्ञान प्रस्तुत किया है।

इन त्रिविध जातियोंके बीच सबको ही ईश्वरकीसत्ता अनुभव करनेकी सामर्थ है। वे लोग उस सामर्थको पाके ईश्वरको सर्वभूतगत और सर्वदुःखहरणकर्त्ता कहके अपने हृदयके बीच नहीं देखने पाते; उसका कारण यह है;—जैसे सागरके बीच प्रतिविम्बित चन्द्रको मछलियां स्वजातीय कोई मछली मानके चिन्तन करती हैं। वैसे ही काल माहात्म्यसे वे विजातीय मनुष्य लोगोंने उन्हें अपनी आत्मा अर्थात् जननकर्त्ता कहके जाना है, किन्तु भगवान जो संसार पीड़ाजात दुःख दूर करनेके लिये सबके समीपमें हैं, उसे जान नहीं सकते।

शि०। वासनाको किस लिये परिशुद्ध करना होता है? और वासनाको परिशुद्ध करनेकी कौनसी उपाय है?

गु०। दैवकर्तृक जिनकी मति नष्ट और इन्द्रियादि विमुख होती हैं, वे ईश्वरज्ञानपथमें धावित नहीं होते। मायायुक्त वा कर्मफलयुक्त कालकी सक्रिय अवस्थाको दैव कहते हैं। यह दैव क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी सब अवस्थाके जीवोंमें ही प्रकाशित होकर स्वभाव प्रकाश किया करता है। दैवके सहारे वासना जीवको कर्मपथमें और ज्ञानके सहारे वासना जीवको कर्मबोध कराके

विज्ञानपथमें धावित करती है। ज्ञानको प्रकाश करना हो, तो भी वासनाकी परिशुद्धि चाहिये। वासनाको परिशुद्ध करनेसे कर्मको परिशुद्ध करना चाहिये। जैसे एक जन शोकयुक्त होनेसे उसमें मोहादिकी अधिकता जितनी ही प्रकाश होगी, उतनी ही उस अनित्य वस्तुमें आसक्तिके लिये शोकान्वित जीवकी स्मृति और मन भ्रम तथा विस्मयमें आलुप्त होके उन्मत्त वा विकल्प अवस्था धारण करता है। इससे यह समझा गया कि;—लोगोंका कर्मोंके फलके सहारे मन आलुप्त होकर मोहादिके मिलनेसे वासनाका तेज एकवारगी अशुद्ध हो जाता है। वासनाकी परिचालनासे ही इन्द्रियादि चालित होती हैं। वासना शोकसे जड़ हुई, इसलिये कर्मशक्तिरूपी इन्द्रिय विकल्पभाव धारण करके जीवको पीड़ा देने लगीं।

किन्तु यदि उन शोकयुक्त जीवोंको वासनाकी शोकके सहारे मुग्ध न करके ज्ञानज्योतिके सहारे शुद्ध किया जाता, तो वासना परिशुद्ध होती। मोहनाशसे वासना ज्ञानमय होकर शोकको मिथ्या समझकर इन्द्रियशक्तियोंको ज्ञानपथमें धावित करती। उससे आत्माका दुःख किसी मतसे न होता।

इस समय कालके सहारे संग्रहीत मायागत प्रलोभन अर्थात् संसारार्थशक्तिके अनेक चित्र वर्त्तमान हैं, वासना उन चित्रोंके बीच यदि ऐसे फलोंके सहारे आकृष्ट हो कि, जिनके जरिये मति नष्ट हो जाती है अर्थात् उस मतिके संयोगसे वासना कालुषित होती है और जीव उस वासनानुसार कार्य्यमें दुःख बोध करता है। उस मतिमय होनेसे और ज्ञान प्रकाश नहीं होता। ज्ञान प्रकाश न होनेसे उस कालुषित वासनाके सहारे इन्द्रिय तथा मन चालित होकर विमुखी होते हैं अर्थात् ईश्वरपथमें वा विज्ञानचर्चामें वा जीवकी उन्नतिपथमें धावित नहीं होते। उस अवस्थामें वासना

कौन कार्य्यमें इन्द्रियादिको रत करती है। वासना पहिले सुखकी आशा करके कामको वा रतिक्रिया तथा रिपुकी आधिक्य सेवामें रत होती है। यद्यपि इन उभय अवस्थामें ही लेशमात्र सुख है, किन्तु वह अग्निमें कर्पूरकी भांति क्षणमात्र स्थायी है, अर्थात् लव प्रमाण समय स्थायी है। उस लवमात्र सामान्य सुखकी आशा में मोहित होकर वासनामतसे इन्द्रियशक्तिके अच्छादनमें जीव दीन अर्थात् दुःखित हुआ करता है, अर्थात् शक्तिहीन पीड़ासे तथा अनेक विपदमें जीव कातर होता है।

मन कदापि सङ्कल्पहीन नहीं है। इस अवस्थामें मन लोभमें पतित होता है, अर्थात् क्रमागत विपदमें पतित होते होते वासना स्वार्थके वशवर्त्ती होती है। लोभके सङ्कल्पके अतिरिक्त स्वार्थ प्रकाश नहीं होता; इसीलिये मनका सङ्कल्प लोभसे अभिभूत रहता है। लोभका ऐसा भाव है कि, वह एक भावसे नहीं रहता, उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त हुआ करता है। उस क्रमवर्द्धनात्मक अवस्था हेतुसे वह मनको सर्वदा व्यस्त करता है। उस अशान्ति हेतुसे सहजमें ही मन अकुशल अवस्थामें रहके सर्वदा भ्रमाच्छन्न रहता है।

ऐसी घटनाके सहारे समझा जाता है कि, वासना और वासनाको चालित करनेके निमित्त कोई उपादानसमन्वित शक्ति है। उपादानको ही कर्म्ममति कहते हैं। जानना चाहिये कि, काल ही कर्म्ममति लेकर वासनाको सक्रिय करके जीवको सकर्म्मक कर देता है। कर्म्ममति मायाधर्म्म है। विस्मय वा नव समागम वा नव स्वभावदर्शन तथा शिक्षामतसे विस्मयसे ही मति प्रकाश होती है। उस मतिको लेकर वासना इन्द्रिय कार्य्य कराती है। मति वा कर्म्मफल परिशुद्ध होने पर वासना परिशुद्ध हुआ करती है। इसीलिये ऋषियोंने ज्ञानके सहारे जीवको शिक्षित करके

वासनाको परिग्रह करनेको कहा है। (शिचा दासत्व करनेके लिये नहीं है, वह ईश्वरपदमें पहुंचानेकी द्वार स्वरूप है)।

शि०। जीव साधर्म्मको अतिक्रम करनेसे कैसी अवस्थामें पतित होता है?

गु०। जीव साधर्म्मको अतिक्रम करनेसे त्रिविधपीड़ाके सहारे सदा पीड़ित हुआ करता है। इसीलिये धर्म त्रिविधरूपसे परिपूर्ण है। भगवान कपिलदेवजी इसीलिये जीवोंके कर्म्मजनित त्रिविध दुःखनाश करनेके निमित्त ही विज्ञानधर्म वा ईश्वरके ज्ञान और लाभकी शान्तिका उपायको उपदेशरूपसे सांख्यशास्त्रमें प्रदर्शन करके जगतमें परित्राणको उपाय कर गये हैं।

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध स्वाभाविक पीड़ाने कलुषित वासनामय जीवको आक्रमण करके ग्रास किया है। आत्माको आश्रय करके जो स्वभावधर्म्म प्रकाश होता है, उसे आध्यात्मिकस्वभाव कहते हैं। जो पीड़ा उसे आश्रित करके प्रकाश होती है, उसे आध्यात्मिक पीड़ा कहते हैं। दैवको अर्थात् प्राकृतिकशक्तियों आश्रय करके जो सब पीड़ा प्रकाश होती हैं, उसे आधिदैविक पीड़ा कहते हैं। भूतोंके चैतन्यसंभव हेतुसे जो स्वाभाविक रिपुगत पीड़ा प्रकाश होती है, उसे आधिभौतिक पीड़ा कहते हैं। इन त्रिविध पीड़ाओंके बीच भूख प्यास और वायु पित्त कफादिका वैलक्षण्य आत्मा सम्बन्धीय स्वाभाविक पीड़ा है। शैत्य ग्रीष्म वर्षा अतिव्याप्त इत्यादि ऋतुगत और प्रकृतिगत परिवर्त्तनात्मक पीड़ाको दैवसम्बन्धीय पीड़ा कहते हैं। कामनादि क्रोधोन्मत्तता प्रभृतिको भूतसंभव सम्बन्धीय पीड़ा कहते हैं।

भूख तृष्णादिको पीड़ा कहनेका तात्पर्य यह है;—जैसे स्वाभाविक वस्तु आहरणके लिये शरीरयन्त्रमें जो अभाव प्रकाश होता है, उसके बीच आहारीयार्थ आशाको क्षुधा कहते हैं।

पानीयार्थ आशाको तृष्णा कहते हैं। उस आहारीय और पानीय अभावबोधक तेजके सहारे शरीरयन्त्र सदा पीड़ित हुआ करते हैं। उस पीड़ाको शान्त करनेके लिये ही ज्ञानमय जीव अनेक उपाय अवधारण करके बेर बेर मन्दकर्म्म वा शुभकर्म्म करके वासनाको शुभाशुभमय किया करते हैं। इस स्थलमें मन्दबुद्धि मनुष्योंका उदाहरण दिखाते हैं, इसलिये कहा जाता है कि ;—इस संसारमें भूख, प्यास, वायु, पित्तादि तथा शीत, ग्रीष्मादि काम क्रोधादि-रूपी स्वाभाविक पीड़ाके सहारे जीवको सदा आक्रान्त रहना होता है। इस स्वाभाविक पीड़ाके अतीतमें और दुःख कर्म्मगतसे भोग करना होता है। इसलिये इन सब दुःखोंसे जब सांसारिक किसी उपायके सहारे शान्तिलाभ नहीं होती। ऐसा देखा जाता है, तब शान्तिको क्या उपाय है? एकमात्र उस तत्त्वज्ञानमय भक्तियुक्त ईश्वर बोधकरण।

जो सब ज्ञानमयजीव ज्ञानस्वभावसे ज्ञान पाकर तत्त्वज्ञानमय नहीं होते, उन्हें सर्व्वदा ही इन सब स्वाभाविक और अस्वाभाविक पीड़ामें पीड़ित होना होता है।

क्योंकि मायागत पीड़ाको शान्ति न कर सकनेसे किसी मतसे ही वासनाकी परिशुद्धि न होगी। वासनाकी शुद्धि न होनेसे इन्द्रियादि सत्पथमें धावित न होंगी। मनेन्द्रियादि सत्पथगामी न होनेसे किसी क्रमसे ही जीवोंका दुःख नाश न होगा। इसलिये एक ईश्वरभक्तिके सिवाय जीवोंके दुःख नाशको अनिवार्य्य कहना होगा।

शि०। लोग क्यों संसारदुःख भोग करते हैं?

गु०। इसके पहिले कहा गया है कि, माया एक ऐसी तेज है कि, जिसके सहारे वासना कर्म्मी हुआ करती है। वासना क्या देखकर कर्म्म करेगी? यह कहनेका तात्पर्य्य यह है कि,

देहके सब अंश ही अपने अपने स्वभावसे कार्य्य करते हैं। उस स्वभावको ही उन्हीं उन इन्द्रियोंकी शक्ति कहते हैं। वे इन्द्रियशक्तियां वासनाके सहारे चालित होती हैं। वासना माया वा विस्मयके जरिये स्वभावसूत्रसे चालित हुआ करती है। इसी प्रकार परस्पर परस्परकी सहायसे परिचालित होकर देहका कार्य्य किया करती हैं।

इस समय जो कई एक इन्द्रिय वासनादिकी चालनादिकी कथा कहा है, इन सबका तेज चैतन्य है और जिसके स्वभावसे सबही कर्म्ममय होंगे, उस स्वभावको कर्म्मवीज कहते हैं। और जीवात्मा को ही सबकी सत्ता अर्थात् संग्रहकर्त्ता समझना होगा। जीवात्मा रहनेसे कर्म्मवीज जिस प्रकार होगा, वासना उसी पथमें धावित होगी, इन्द्रियादि उसी नियमके अनुसार कार्य्य करेंगी। जीवात्मा के स्वभावको चैतन्य कहते हैं। इस चैतन्य और जीवात्माके सिवाय जिस कर्म्मवीजसे जिस देहकी अस्तित्व दिखाई गई, वह केवल माया नाम तेज और भूतादि नाम उपकरणसे सृजित होकर जीव का उद्देश्य साधित करती है।

जीवके सहित इन सब इन्द्रियां मन वासना और कर्म्मवीजकी संयोगीभूत अवस्थाको संसार कहते हैं। इस संसारसंसर्गमतसे जीव कर्म्ममय होकर स्वयं जो इन्द्रियादिसे पृथक् है, उसे चिन्तन नहीं कर सकता। उसे न विचारके मायाधर्म्मको श्रेष्ठ समझकर उसके सहित अभिमानी अर्थात् स्वयं (मैं) ही कर्म्मी हो जाता है। उस कर्म्मी होनेसे उसके ज्ञानका प्रभाव ह्रास वृद्धिमतसे वह सद-सत् शिक्षाके पथमें धावित होकर सर्वदा ही अनेक प्रकार माया-धर्म्ममें स्वभावको परिणत करके रिपुपर होकर मनको कलुषित करता है।

यह जो संसृति वा संसार है, वह संसार केवल जीवको सत्ता

को आश्रय करके सत्य कहके प्रतिभात होता है ; वह मायाके तेजसे ही स्तजित हुआ है। जीवके सहित उसका भोगमात्र सम्बन्ध है ; इसलिये वह मिथ्या है। उस मिथ्यामें आसक्त होकर पूर्व्वोक्तरूपसे जो सब शोक, मोह, काम, क्रोध आदि यातना जीवको भोग करनी होती है, वह व्यर्थ है।

ये सब जो व्यर्थ हैं, यह ज्ञान कब होगा ? जब आत्मासे माया-बलसे गठित इन्द्रिय संहृति मिथ्या बोध होगी।

शि०। मायाको ईश्वरद्योतक अर्थात् प्रकाशक किम्वा वह हैं, इस भावोद्दीपनकारी क्यों कहा जाता है ?

गु०। जिस संसारजननी शक्तिके सहारे ईश्वरका आविर्भाव अलक्षित हुआ करता है, उसे माया कहते हैं। उसी मायाको देवमाया कहते हैं। देव शब्दका दो अर्थ है, एक द्योतक और दूसरा ईश्वर। कोई कोई वादी लोग कहते हैं कि, इस ऐशिक चैतन्यके आविर्भावकी प्रत्यचीभूत कारक एक शक्ति है, उसके सहारे जगतमें जीवगण सुख दुःखसे विचलित होकर आनन्द अन्वेषण किया करते हैं। मायामध्यगत जीव मायाजात मोहमें रहके ऐशिकसत्तारूपी आनन्दका अन्वेषण कर उसी आनन्दपथमें धावित होता है कहके मायाको ईश्वरद्योतक वा प्रकाशक किम्वा वह हैं, इस भावोद्दीपनकारी कहा जाता है ?

अपर वादीगण कहते हैं कि, ईश्वर स्वयं जीवभावसे लीला करनेके लिये एक शक्तिके सहारे आत्मभाव गोपन किया करते हैं। इस शक्तिको माया कहते हैं। जिस प्रकार सारथीहीन घोड़ेकी गति होती है, माया वशीभूतजीव भी वैसे ही मायाके सहारे आत्मसारथीरूपी ईश्वरको अप्रत्यक्ष करके सुख और दुःखरूपी अस्थिरगतिमें भ्रमण करते करते परिणाममें परम शान्तिमय आनन्दको प्रत्यक्ष किया करता है। विरह न होनेसे मिलनका

सुख वोध नहीं होता, इसीलिये ईश्वर जीवको आत्मविरहके सहारे मैं हूं, ऐसा जनाकर मोक्षादिरूपी मिलनमें चिरसुखी करते हैं। उस मायाकी ऐसी उत्तम सामर्थ्य सत्त्वसे जीवगण राजस क्षमतामें पतित होते हैं।

शि०। जीव राजसस्वभाव प्राप्त होकर ईश्वरको किस भावसे चिन्तन करता है?

गु०। राजस स्वभावापन्न होनेसे उन्हें वन्धु कहके चिन्तन करता है। समजातीय हितैषीको वन्धु कहते हैं। ईश्वर विराट-भावसे ये ही जीव और जगत सृजन करके निज कर्त्तव्य स्वरूप इनकी रक्षणादि करते हैं, उनकी इच्छा हम लोगोंके हित साधन करनेकी ही है, इसलिये उपासन वा कर्म्मके सहारे भक्तियोग सहित विज्ञान आहरण करनेका क्या प्रयोजन है? सुखी वा दुःखी जो कुछ क्यों न हों, सबही उनका अभिप्राय है; वह चाहे किसी अवस्थामें क्यों न रक्खें; हम लोगोंका हित साधन करेंगे ही, ऐसे विश्वासका नाम राजस स्वभाव है।

इसमें भक्ति रहित और प्रत्यक्षभावकी शून्यताहीन वशसे आनन्दलाभ नहीं होता कहके विज्ञानी भक्त लोग इस अवस्थाको निन्दा किया करते हैं।

शि०। ईश्वर द्वेष किसे कहते हैं?

गु०। जीव जिस भावसे संसारकी हितेच्छामें रत होता है, उसे शान्तभाव कहते हैं, उसके विपरीत भावको अशान्त वा असाधुभाव कहते हैं। जीवत्व इन सब भावोंसे मण्डित होकर आत्मसत्ताको आवृत्त करनेकी चेष्टा करता है। क्योंकि कोई बुराकर्म्म करता है, किन्तु वह विश्वभावरूपी लुप्तविवेक उसे करनेके लिये वाधा देता है। रिपु वा धर्म्मपर जीव उसमें उन्मत्त होकर मन्द (बुरा) को ही श्रेष्ठ चिन्तन किये हैं। इसलिये

विवेककी बाधा न मानके विवेकको नाशकर जीवत्वके अहितकार्य्य में निरत होता है। इस असाधुभावको ही भक्तोंके पक्षमें ईश्वर-द्वेष समझना होगा।

शि०। ईश्वरको दयालु क्यों कहा जाता है?

गु०। जीववृत्तिको त्रिताप वा दुःख नाश करणक अन्तःकरण वृत्तिका नाम दया है। आत्मस्वभावमें वह शक्ति स्वतः प्रकाशित होकर जीवोंको त्रिताप नाश करती है कहके वा आत्मसत्तासे ये त्रिताप नाश होते हैं कहके वैदिक विज्ञान ईश्वरको दयालु कहता है। जो आत्मपर बोधहीन, सर्व्वदा ही समभावसे सबको रखते हैं और किसीको भी अनादर नहीं करते; अधिक करके जो असत् को सत्में आनयन करते हैं, उनको अपेक्षा दयाका आधार और कौन हो सकता है? अर्थात् ब्रह्म परित्राणकर्त्ता हैं।

शि०। परित्राण किसे कहते हैं?

गु०। संसार कहनेसे:—युगधर्म्मके वैपरीत्यमें चैतन्यके ह्रास-भावसे दुःख और सुखके सहारे अदृष्टकी उन्नति और अवनति जिस प्राकृतिक अवस्थासे होती है, उसे ही संसार कहते हैं। दुःख और सुखके सहारे जो उन्नति और अवनति होती है, उसके जरिये ही जीवोंके उत्तमाधम जन्म हुआ करते हैं। जीव इस पृथिवीमें रहके दुःख और सुखसे अतीत होनेसे ही संसार अवस्थासे अतीत होकर फिर प्रवृत्तिगत जन्मलाभ नहीं करता। आनन्दमयभावसे रहता है। वह आनन्दमय अवस्था संसारमें प्रकाश होनी दुर्लभ है, इसीलिये विज्ञानवादी लोग कहते हैं; जो लोग ईश्वरानन्द लाभ करते हैं, उन्हें संसारमें प्रकाश नहीं होना होता; जीव न होकर वह मुक्त अवस्था ईश्वरकी व्याप्तिमें अर्थात् आत्मामें मिश्रित रहती है। जैसे स्वप्न अवस्थामें देहका सम्बन्ध बोध नहीं होता, तौ भी जीव सब कुछ अनुभव किया करता है; वैसे ही मुक्तजन निज

चैतन्य अनुभवमात्र करते हैं, लीला नहीं करते, इसे ही परित्राण कहते हैं।

शि०। आत्माका किस प्रकारसे दर्शन लाभ हो सकता है?

गु०। विज्ञानवादी लोग कहते हैं। उपमान, प्रमाण, अनुमान और शब्द इन चार उपायोंके सहारे और अहत् अजहत्, जहत्स्वार्थ और तटस्थ इन चारों लक्षणोंके जरिये एक विषयकी बुद्धि स्थिर कर सकती है। प्रत्येक दृष्टवस्तुके एक एक कारण हैं; उनके बीच उन कारणोंको निर्देश करनेके लिये इन चारों न्याय और चारों लक्षणोंका प्रयोजन हुआ करता है।

कारण दो प्रकारके हैं; एक अलक्ष्य और दूसरा लक्षित। उस लक्षित कारणको प्रमाणादिके सहारे स्थिर करना होता है। और अलक्षित कारणको उपमानादि उपायके सहारे स्थिर करना होता है। सूक्ष्म और नित्य कारणसमूह ही अलक्ष्य हैं। क्योंकि, शब्दादि पञ्चतत्त्वके जरिये जो गृहीत हो सकते हैं, वे ही नेत्र आदि इन्द्रियोंके सहारे ग्राह्य हो सकते हैं। पञ्चतत्त्वको भी जब स्थूल कहके बोध होता है, तब उसकी अपेक्षा जो सूक्ष्मभाव है, वह इन्द्रियोंके सहारे किस प्रकारसे प्राप्त हो सकेगा। मन और बुद्धिके सहारे ही अलक्षित कारण उपमित हुआ करते हैं।

ईश्वर वा आत्मा ही सब सूक्ष्म कारणोंकी अपेक्षा अलक्षित है, उसे मन और बुद्धिके सिवाय अन्य किसी उपायसे ही देखा नहीं जाता। जिस उपायके सहारे मन वासनाके नियमका दास होकर उसकी आज्ञा पालन करता है, उसे ही मनकी संकल्पावस्था वा साधनावस्था कहते हैं। यह साधना दो प्रकारकी है, संकल्पात्मक और विकल्पात्मक। विकल्पात्मक साधनाके सहारे पार्थिव इन्द्रिय और रिपुग्राह्य विषय सिद्ध हुआ करते हैं। उसे विकल्प क्यों कहते हैं?—पार्थिव और रिपुगत विषय उपभोगसे चित्त

स्थिर नहीं रहता, विक्षिप्त हुआ करता है। एक जनको सामान्य क्रोध होनेसे वह कदापि उसी भावसे क्रोधको नहीं रख सकता और उससे देहका अनिष्ट करता है। एक जनको सामान्य भूख होने पर फिर तदुपयुक्त आहारसे वह निवृत्त नहीं होती। उस के बाद ही वह अधिक खाकर भोगवृद्धि किया करता है, उससे उसका भीषण अनिष्ट हुआ करता है। एक जनको सामान्य मैथुनेच्छा होनेसे वह सामान्य सम्भोगसे विरत नहीं हो सकता, उत्तरोत्तर उसकी सम्भोगेच्छा प्रबल होकर उसे अनेक पीड़ासे पीड़ित करती है। इसी प्रकार पार्थिवविषयमें साधना करनेसे उससे जीवको उन्नति नहीं होती कहके विज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, यह साधनाका विपरीत भाव अर्थात् विकल्प है। मन इस अवस्थामें विपरीतपथमें धावित हुआ करता है।

संकल्पात्मक साधनाके सहारे ज्ञान विस्फारित होता है। उस ज्ञानके सहारे जीवको हिताहित बोध होकर विज्ञानभाव प्रकाश हुआ करता है। उसके जरिये मनुष्य अपने अन्तर्निहित पुरुषार्थके अभिलाषी हुआ करते हैं। क्योंकि संसारके दुःखसे अतिक्रान्त होना और वर्त्तमान अवस्थासे उन्नति लाभ करना मनुष्योंका स्वभावसिद्ध धर्म है।

इस सङ्कल्पभाव और उपमान उपायके सहारे मनुष्यबुद्धि आत्माका विचार कर सकती है और मन उसे अनुमान उपायसे अनुभव कर सकता है। वह साधनाके सहारे इस अनुमान और उपमानको मनमें तथा बुद्धिमें उपस्थित करता है, वह अवश्य ही ईश्वरनिष्ठ वा उनके बहुत ही सन्निहित है; ऐसा न होनेसे वह किस प्रकार अदृष्ट वस्तुका अनुमान तथा उपमान मनोबुद्धिमें लाता है। सूर्य्य ऊषाकालमें अलक्षित हैं कहके उनकी रोशनी प्रकाशित हुआ करती है। जिस उपायसे बुद्धिने इसे स्थिर किया और मन बुद्धिसे

समझ सका, वही आलोक दर्शनपक्षमें तथा सूर्य्यकी अलक्ष्य स्थिति प्रकाशकारणपक्षमें साधना समझनी होगी। यह शक्ति ही वासना-सहयोगसे विज्ञानशक्तिके सहित सूर्य्यादिको भावना करके सिद्ध-भाव प्राप्त होनेसे फिर बुद्धिमें और मनमें पूर्व्वोक्तभावका उदय हुआ करता है, ऐसा समझना होगा। इसी नियमसे साधना आत्मा को प्रत्यक्ष कर सकती, यह प्रमाणित हुआ। क्योंकि सृष्टिके प्रथम से वर्त्तमानकाल पर्य्यन्त उस अलक्षित कारणरूपी आत्माके दर्शनादि को प्रथा जब प्रचलित हुई आती है; तब यह प्रचलित ज्ञानशास्त्र शब्द कदापि मिथ्या नहीं हो सकता। जिसका विचार करके लक्षण तथा न्यायोपायादिके सहारे सिद्ध नहीं किया जा सकता, वही मिथ्या है। जैसे खपुष्प मिथ्या हैं, किन्तु वारिमध्यगत अग्नि-स्थिति मिथ्या नहीं है। आत्मा शब्दके सहारे प्रमाणित होनेवाला नहीं है; साधनाके विना वह अनुभूत नहीं हो सकता। इसी निमित्त अविश्वासी और असाधुओंके पक्षमें आत्मविषय कल्पना करके अनुभूत हुआ करता है, किन्तु सत्य साधना करनेसे ही मनुष्योंका भ्रम दूरीभूत हो सकता है। साधनाको ही ईश्वर-दर्शनात्मक स्वभावशक्ति समझना होगा।

शि०। ईश्वर-ज्ञान साधनाके मध्यगत होनेका कारण क्या है?

गु०। ईश्वरकी जो जिहीर्षु इच्छा है; इसे केवल युगसंस्कार-मात्र जानो। भविष्यतमें जगतमें जीव प्रकाश होंगे; उस समय वे किस उपायसे संस्कृत होंगे। अधिक करके आत्मज्ञान तथा ईश्वरज्ञानके सिवाय जब जीवका निस्तार नहीं है। तब वह ज्ञान किसके स्वभावके मध्यगत रक्खा जाय? ईश्वरने इसे चिन्तन करके देखा। साधना नाम सङ्कल्पवृत्ति आत्मज्ञानपर होनेसे ही मत्सान्निध्य प्राप्त होंगे।

शि०। साधनामें जब ईश्वर स्वभाव वर्त्तमान है, तब यह व्यक्ति सदा आनन्दित क्यों नहीं रहता ?

गु०। जीव ही निज स्वभावके सहारे कई एक ऐशिकशक्ति अर्थात् परमात्मप्रसूत आत्मरचणशक्तिरूपी मनादि, ज्ञानादि, इन्द्रियादिको क्रियापर करता है। उनके बीच जीवके पचमें सब ही अक्रिय हैं। जीव क्रियापर न होनेसे वे सक्रिय नहीं हो सकते। इसीलिये साधना बोली ;—जब जीव मेरे सहारे ईश्वरानन्द भोग करनेकी चेष्टा करता है, तब ही मैं आनन्दित होती हूं। जब जीव मोहादि दुःख भोग करनेकी चेष्टा करता है, तब मैं भी दुःख भोग करती हूं।

शि०। ईश्वरज्ञान किस समयमें साधना धारण करेगी ?

गु०। विज्ञानवादी लोग कहते हैं ;—प्रत्यह जो सूर्य्यतापसे दग्ध होता है, उसी क्रमसे उत्ताप सह्य हो जाता है ; और वह उत्तापकी महिमा नहीं जानता। मनुष्य अविद्यावच्छिन्न जीव हैं। इसके सम्मुखमें सर्व्वदा ईश्वर प्रत्यच होनेसे आत्मज्ञान प्रस्थित होने पर उस ज्ञानसे जो क्या उपकार है, उसे वे क्रमसे विस्मृत होते हैं। यह भ्रम जीवका स्वभाव धर्म है। यह भ्रम जीवमें न रहनेसे जीव और ईश्वर एक होते। जीवन्मुक्त अवस्था होनेसे वह भ्रम नाश हो जाता है। जैसे मरुभूमिविहारी पथिक जलके कष्टसे एक मन एक प्राणसे जलाशयका अन्वेषण करता है, वैसे ही मुक्तिके अनुसारी मनुष्य संसारमरुमें क्लिष्ट होकर आत्मज्ञान जलाशयकी आश्रय भिचा करनेसे उस कष्टलब्ध धनकी महिमा समझ सकता है। आनन्द प्रदान करना ही ईश्वरका उद्देश्य है।

शि०। ईश्वरको अमोघवाञ्छित क्यों कहते हैं ?

गु०। जिस उपायकी किसी घटना या व्याघातसे कोई परि-

वर्त्तन नहीं होता, उसे अमोघ कहते हैं। इच्छाशक्तिके कार्य्य प्रकाशक भावको वाञ्छा कहते हैं। ईश्वरने जगतके पथमें जो सब प्राकृतिक नियम निर्देश किया है, वह आदिसे वर्त्तमान पर्य्यन्त एक नियमसे अतिवाहित होते हैं, इसीलिये ईश्वरको अमोघवाञ्छित कहते हैं।

शि०। जीवन्मुक्त लोग कितने समय तक जीवन धारण कर सकते हैं?

गु०। जीव विषयपर होनेसे सुख दुःखादिके चक्रमें पतित होता है, उसी भोगमें पतित होने पर; अनुग्राहक ईश्वरके हृदय में दुःखका सञ्चार होता है। क्योंकि मनुष्यजीवन केवल मुक्ति के लिये ही सृजित हुआ है। उस उद्देश्यके विपरीतभाव धारण करनेसे ही मनुष्योंके ऊपर मुक्तिदाता ईश्वर क्षुब्ध होते हैं। क्योंकि अन्य कोई जीवभावको स्वाधीनवृत्ति नहीं है। ईश्वर क्षुब्ध होनेसे अर्थात् जीवांश पापपथमें धावित होनेसे ही ईश्वरकष्ट पाया करते हैं। यह भाव बोध होना बहुत ही दुरूह है। तत्त्व विज्ञानमें यहां तक तो स्थिर हुआ है। जैसे सम्पूर्ण देहके बीच अंगका एक स्थान उसका अंश है; वैसे ही विराटरूपी ईश्वर वा आत्माके पक्षमें जीवात्मा भी एक अंश है। जैसे देहके प्राण आदिका कोई अंश पीड़ित होने पर समस्त देहको कष्ट भोग करना होता है और उसकी पीड़ाको शान्त करनेमें देहके अन्य अंश चेष्टा किया करते हैं वैसे ही जीवात्मा प्राकृतिक नियमसे विपरीतपथमें पतित होकर पापी होने पर महा पापजन्य कष्ट भोग करता है; विषयपरता वा मोहादिमें पतित होनेसे तद्गुणमय होकर पतित रहता है, उससे आत्माका क्षोभ उपस्थित होता है। उस निमित्त आत्मा ही जीवका संस्कार ब्रह्मनियमानुसार किया करता है। काल-संस्करण करणात्मक शक्तिमान है। जीव जगतका जो अंश नित्य

विशुद्ध है, उसको लय नहीं होती। क्योंकि वह संस्कृत उपायके वशवर्त्ती नहीं होता। इसीलिये जीवन्मुक्त लोग कल्पान्त पर्य्यन्त जीवन धारण कर सकते हैं। उनकी इच्छामृत्यु होती है, काल-क्रंतपथको अनुसारी नहीं होती। बल्कि वे भौतिक देहको पुराने वस्त्रकी भांति त्यागकर इस जन्ममें ही नया शरीर धारण कर सकते हैं।

शि०। तपस्यामें अतप्त और विदग्धभाव कैसा है?

गु०। परितापित न होनेको अतप्त कहते हैं। अविचलित-भावसे तपस्या करते करते जब मनुष्य शान्ति पावेगा और दुःखके लिये परितापित न होगा, उसे अतप्तभाव कहते हैं। सांख्यके मतसे त्रिविध दुःख नाश करना ही पुरुषार्थका वा तपस्याका उद्देश्य है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन त्रिविध दुःखकी निवारक उपायको तपस्या कहते हैं; उसकी क्रियाको साधना कहते हैं।

ये दुःख ही जीवके पक्षमें ताप वा मोहके कारण हैं; रिपु और प्राणको क्रियाको अर्थात् कामादि और भूख प्यासको आध्यात्मिक-ताप कहते हैं। वायु पित्त कफगत पीड़ा वा वैलक्षण्यको आधि-भौतिकताप कहते हैं। माया, मोह तथा आकस्मिक विपद प्रभृतिको आधिदैविक ताप कहते हैं। इन त्रिविधतापोंके सहारे मनुष्य संसारमायामें मुग्ध होकर परमार्थ भूलकर उनको जिससे आपाततः निवृत्ति होती है, उसका अनुसरण करके सुख और दुःख के भोगी होते हैं। उस सुख और दुःखके वशवर्त्ती होनेसे जीव फिर इन त्रितापोंके एकान्त दुःखकी निवृत्ति लाभ करनेकी चेष्टा नहीं करते। एकान्त निवृत्ति न होनेसे उनको क्रमसे कालके सहित इन त्रितापोंकी वृद्धि होकर एकवारगी उन्हें अधमीपर कर डालते हैं। इन त्रितापोंकी एकान्त अर्थात् एकवारगी निवृत्तिकरणकी

ही "अतप्त तपस्या" कहते हैं। अर्थात् साधनाके सहारे जो मनुष्य एकवारगी त्रितापशून्य हुए हैं, वे ही परिशुद्ध होकर परमानन्द भोग करते हैं। अङ्गारत्व अग्निमें परिणत होनेसे जैसे उसे अङ्गार नहीं कहते, और अंगार अग्निके उत्तापके समान तापित होने पर जैसे वह अग्नि कर्त्तृक स्वयं ही आकर्षित हुआ करता है, वैसे ही त्रितापहीन होनेसे मनुष्य परिशुद्ध हुआ करते हैं। वे परिशुद्ध होनेसे आत्माको परिशुद्धिस्वरूप ईश्वरानन्द स्वयं ही भोग किया करते हैं।

जो लोग वितृप्त दर्शनोत्सुकी हुए हैं, वे भी ईश्वरको प्रत्यक्ष कर सकते हैं। तृप्तिका परिणाम जिसमें न हो, उसे वितृप्ति कहते हैं। मीमांसा संयुक्त विचारको दर्शन कहते हैं। इस जगतलीला को विचारकर जो लोग ईश्वरके कार्य्यमें एकवारगी आश्रययुक्त होकर इच्छाको क्रमागत तृप्तिमय भिन्न तृप्तिके शेष अर्थात् विरागान्वित नहीं किये हैं, वे ही उस प्रेममय ईश्वरको प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इन दोनों अवस्थाओंको ही विज्ञानसंयुक्त भक्तिके प्रकरणसे गठित समझना होगा।

शि०। क्या ईश्वर लुप्त रहते हैं; जो साधनाके सिवाय उन्हें देखा नहीं जाता?

गु०। ईश्वर स्वतः ही सर्वदा सब स्थानोंमें वर्त्तमान हैं। वह लोक अर्थात् जगतके लोचन अर्थात् प्रकाश स्वरूप हुए हैं। जैसे परिशुद्धपात्रके सिवाय किसी सत्ताका विम्ब प्रतिफलित नहीं होता, वैसे ही ईश्वरका विम्ब स्वरूप आत्मा परिशुद्ध चित्तके सिवाय नहीं देखा जाता।

शि०। ईश्वरका विम्ब स्वरूप आत्मा कहनेका तात्पर्य्य क्या है?

गु०। समग्र ब्रह्माण्डकी प्रकाशकमूर्त्तिका समग्र भाग क्षुद्र-

जीव कभी नहीं देख सकते। तब पृथिवीकी अपेक्षा हहत् सूर्यका बिम्ब जैसे पात्रगत जीवोंमें बिम्बित होकर आत्मसत्ता प्रदर्शन करता है; ईश्वरकी आत्मारूपी बिम्बसत्ता भी वैसे ही परिशुद्धजीवोंके हृदयमें बिम्बित होकर दिखाई देती है। इसीलिये ईश्वर सम-करुणामय और समव्याप्त होने पर भी ये त्रिविधगुणमलिन मनुष्य उन्हें देखने या उनका प्रेमानन्द भोग करने नहीं सकते। जो लोग साधनाबलसे चित्तको शुद्ध कर सकते हैं, वे ही उस शुद्धचित्तके आकर्षणके सहारे भगवानके बिम्ब अर्थात् आत्माको प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

शि०। ईश्वरको बिम्ब धारण या प्रकाश करनेका क्या प्रयोजन है?

गु०। ईश्वर निज योगमायाका बल दिखानेके लिये ही आत्म-बिम्ब प्रकाश करते हैं। जिस शक्तिके सहारे ईश्वरकी सगुणावस्था कारणावस्थासे जीवावस्थामें संयुक्त हुआ करती है, उसे योगमाया कहते हैं। यह योगमाया महाचैतन्यमयीशक्ति है, यही ईश्वरकी लीलाकरणीय वासनाका बल समझना होगा। ईश्वरकी जीव-लीलाके निमित्त आकर्षण करनेके पहिले निर्गुणभगवानसे जो वासना आविर्भाव होकर जगत तथा जीवको ईश्वरसत्ताके सहित क्रियापर करती है, उसे ही चित्शक्ति वा योगमाया कहते हैं। इस योगमायाकी सामर्थ्यमें ईश्वरत्वसे जीवत्वकी सृष्टि हुई।

शि०। योगमायाकी सामर्थ्यसे यदि जीवत्वकी सृष्टि ही हुई और जीवत्व यदि ईश्वरकी सत्ता ही हुआ, तब फिर वह बल देखनेकी किसे शक्ति है?

गु०। जीवत्व तो मायाके सहारे ही हुआ, उस लीलाका अनुभव कौन करे? इसीलिये ईश्वरने उस मायाके तेजसे ऐसी एक ज्ञातृत्वशक्तिका प्रकाश करके एक ऐसी श्रेणीके जीवोंको प्रदान

किया कि, वे लोग मानो उनकी मायाका वीर्य्य देखने वा समझने सकते हैं। उस शक्तिको ही विज्ञानशक्ति कहते हैं। योगमाया का वीर्य्य दिखानेकी शक्तिके सहित ईश्वरने अपना विम्ब इस जगत में मर्त्त्यलीलाके उपयोगी किया; इस उपयोगी कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, जीवमात्र ही मर्त्त्यलीलामें आवद्ध हैं, किन्तु वे मानो लीलावोध अर्थात् योगमायाके बल दर्शनके उपयुक्त हो सकें। इस लिये मनुष्यको ही इसके उपयुक्त जीव समझना होगा।

शि०। मनुष्य जीवलीलामें उस विम्बका क्या प्रयोजन है; और उसके दर्शनसे ही क्या फल है?

गु०। यह विम्ब मनुष्य जीवत्वके अङ्ग प्रत्यङ्गके जितने भूषण हैं, उनका भूषण अर्थात् शोभास्वरूप होता है। मनुष्योंके अङ्ग प्रत्यङ्गके भूषण कहनेका तात्पर्य्य यह है कि—भूषण कहनेसे मनो-नुयायी सज्जा जानो। अन्य जीवोंके अङ्गमें जिस उपायसे इन्द्रि-यादि अर्थात् हाथ पांव आदि सज्जित हैं, वे ईश्वरज्ञानपक्षमें अकार्य्यकर हैं केवल मनुष्योंके जिन अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें हाथ आदि इन्द्रियां हैं, येही ईश्वर ज्ञानपक्षमें कार्य्यकर हैं। इसलिये जीवोंके पक्षमें मनुष्यदेह और उसमेंके इन्द्रियादि मनोनुयायी सज्जा अर्थात् भूषण हैं। किन्तु जिस विम्बके सहारे मनुष्यदेह गठित हुई है, वह न होनेसे तो ये सब इन्द्रियादि भूषण मनुष्य पाने वा क्रियापर न करने सकते। इसीलिये आत्मा वा ईश्वरके विम्बको भक्त लोग अङ्गके भूषणका भूषण कहके वर्णन करते हैं।

वह विम्ब द्रष्टाके पक्षमें क्या फल प्रदान करता है, वही सौभाग्य और ऋद्धिका परमपद स्वरूप होता है। भाग्यकी उत्तमा-वस्थाको सौभाग्य कहते हैं। कर्म्म वा जीवादृष्टको भाग्य कहते हैं। उस अदृष्टकी उत्तमावस्था ही मोक्ष वा ईश्वरकी साहचर्य्य तथा दास्यादिभाव समझना होगा। त्रिविध दुःख निवृत्तिकरणक

सामर्थ्यको ऋद्धि कहते हैं। इसका प्रकृतभाव यह है, जैसे—उस विम्बमें मोक्षादि प्रापक और त्रिविध दुःख निवारक सामर्थ्य है। मनुष्य उस विम्बको पाकर इन सब फलोंके अधिकारी हो सकते हैं।

वह विम्ब इतना अनिर्व्वचनीय है कि, जो लोग ईश्वरसृष्टिकी सत्ता पर्य्यालोचना करके विज्ञानमय हुए हैं, वे भी आत्माका (विम्बका) प्रभाव देखकर विस्मित हुआ करते हैं। अर्थात् चाहे जितना विचार करें, उसके प्रभावका शेष नहीं कर सकते। भक्त लोग ऐसे विम्बको चित्तशुद्धिके सहारे दर्शन करके परमानन्दमें मग्न होते हैं।

शि०। ईश्वर प्रभाव विचार करनेके समय लोग भिन्न मतावलम्बी क्यों होते हैं?

गु०। श्रुतिमें ईश्वरको दयाका आकर कहते हैं। त्रिविध गुणजात जितने जीव मनुष्यरूपसे जगतमें दीखते हैं, सबको ही वे एकवेर दिखाई देते हैं। अर्थात् मैं हूं यह भाव निज विम्ब-जात मनुष्यको दिखा देते हैं। उस समयमें जो लोग सत्त्वगुणी होते हैं, वे उनमें लय होनेकी चेष्टा करते हैं। यह ऐशिक नियम है। जैसे खद्योत रोशनी देखनेसे ही उसमें आकर्षित हुआ करता है, जैसे हरिन वंसीध्वनिसे आकर्षित हुआ करते हैं, वैसे ही सत्त्व-गुणको सामर्थ्य ही ईश्वर विज्ञानविद होकर उसमें लय होती है, उस स्वाभाविक भावसे सत्त्वगुणी लोग भी उसमें लय होते हैं। रजोगुणी लोग उसमें लय होनेकी चेष्टामात्र करते हैं। और तमोगुणी लोग स्वप्नवत् मिथ्या चिन्तन करके उसे अनित्य—इसी भावसे भावना करते हैं; क्योंकि तमोगुणी स्वभाव उसे आकर्षण नहीं कर सकता। इसी अवस्थासे जीव त्रिविधक्रियापर होकर देव मायावशसे सब ही भिन्न मतावलम्बी होनेसे अनैक्य हो जाता है।

शि०। ईश्वर जो विम्बित होकर जीवभूत होके सब लीला करते हैं, वह कैसे समझा जाय?

गु०। कामादि समस्त रिपु ही जीवोंकी जीवनवृत्ति स्वरूप हैं। उनकी सत्ताके बिना यह जीवदेह शववत् हुआ करती है। इसीलिये आत्मज्ञान उन रिपुओंको अपने पथमें लाकर निज प्रभाव दिखाकर मुग्धकर डालता है। यह स्वाभाविक शक्ति है। एकत्रमें दश मनुष्योंको रखकर उनकी क्रिया विचारनेसे स्वच्छन्द ही उपलब्धि होगी कि, जिस मनुष्यका अन्तर जितना परिशुद्ध हुआ है, उनके रिपुगण उतने ही दया दानादि धर्ममें व्याप्त होकर भक्तिको आश्रय करते हुए जीवको ईश्वरपर करते हैं। और जिनका अन्तर जितना मलिन हुआ है, वे उतने ही मन्दकार्योंमें रतिहेतुसे अनेक दुष्क्रियामें रत होते हैं। इस दुष्क्रियामें जो लोग रत होते हैं, वे जब अतीव भीषण हो जाते हैं, तब एक प्रकार अलौकिक शक्ति उनके बीच आविर्भूत होकर उनके चैतन्यको उदय कर देती है। भक्तमाल ग्रन्थमें इसके बहुतसे दृष्टान्त हैं और संसारमें नित्य ही अनेकोंके चरित्रोंमें वे लक्षित होते हैं, सबको यह भावना होनेका हेतु यही है कि,—जिन जीवोंकी वासना जितनी अपरिशुद्ध है, उनकी परिशुद्धताके लिये उतने समयकी आवश्यकता होती है। एक जन्ममें न हो, तो अन्य जन्ममें हुआ करता है। भक्तोंने इसी विचारसे देखा है कि, इन सब अलौकिक काण्डोंकी किसी नैसर्गिक सामर्थ्यके सिवाय प्रकाश होनेकी उपाय नहीं है। यदि कोई कहे कि, वह जड़जगतका स्वभाव है, तो जड़जगतकी पर्यालोचनामें वह पाया नहीं जाता। चैतन्य जगतकी अर्थात् बुद्धि, मन, चित्तादिकी पर्यालोचनासे भी वह नहीं पाया जाता। तब ऐसी कौनसी नित्य सत्ता है कि, जिससे सब शासन प्रकाश होते हैं, वही ईश्वरका प्रभाव है। वह ईश्वरके विम्ब अर्थात्

प्राकाशसे स्वतः प्रकाशित हुआ करता है। यह प्रकाश स्वभाव इतना शान्त है कि, विपरीत व्यवहारी शत्रुओंको करुणा करके मुक्त अर्थात् विषय मगन होनेसे विरत किया करता है।

स्वप्रकाश अग्नि जैसे गुण क्रियानुसार काठके भीतर रहती है, क्रियासादसे ही प्रकाश होकर कार्य्यपर होती है, वैसे ही ईश्वरकी सत्ता सद्दतत्त्वके मध्यगत रहती है। जगत और जीवोंकी सूक्ष्म कारणावस्थाको महत्तत्त्वावस्था कहते हैं। इस प्रकार स्वभावके विपरीत कार्य्य आरम्भ होनेसे उनके जगत्पालन कर्त्तव्य-रक्षण हेतुसे वह स्वयं ही सब जीवोंमें आत्मभाव प्रकाश किया करते हैं। इन सब उपायोंको विशेषरूपसे आलोचना करने पर ईश्वर जो विस्मित होकर सब लीला करते हैं, वह समझा जाता है।

शि०। ईश्वरने जब प्राणीभाव धारण किया है, तब उन्हें क्यों नहीं निरूपण किया जाता ?

गु०। ईश्वरने अपनेको भोक्तारूपी आत्मामें परिणत करके उसकी वासना परिपूरक शक्तिरूपी देवको इन दिक् वायु प्रभृति देवतारूपसे और उनकी वासनाका अभिप्राय सम्पादनके लिये इन्द्रियं अर्थात् कर्म्मरूपसे रूपान्तरित किया ; इतना ही मत जानो कि, यह ईश्वर केवल प्राणीभाव ही धारण किये हैं, वह विश्व और प्राणीरूप होनेके लिये योगमायाका बल धारण किये हैं। काल चैतन्य और मूल-कारण शक्तिकी मिश्रणावस्थाको योगमाया कहते हैं। उनके आकर्षणसे ईश्वरका सगुणभाव आकर्षित होनेसे विराटभाव प्रकाशित होता है। इस विराटभावमें जीव और जगत् वर्त्तमान हैं।

इस भावापन्न ईश्वरको निरूपण करना अर्थात् उनके लीला-मत सब भाव व्यक्त करना अति दुरूह है, वरिक अनुभव करना भी

योगियोंके साध्यातीत हो जाता है। भक्तलोग ज्ञानबलसे उन्हें जितना ही ब्रह्माण्डमय अनुभव करनेकी चेष्टा करेंगे, उतना ही अनन्त लीलामय देखकर लीला निरूपण करनेमें असमर्थ होकर उनकी महिमामें मुग्ध होके ईश्वरपर होंगे, किन्तु निरूपण या लीलाकी सीमा न कर सकेंगे।

शि०। ईश्वर निर्गुण हैं और उनके सिवाय अन्य कोई नहीं है, तब वह किसके सहारे गुणपर हुए?

गु०। ब्रह्मकी काल नाम शक्ति उन्हें सगुण करनेके लिये जो चैतन्य सिञ्चित भावको आश्रय ग्रहण करती है, उसे ही योगमाया कहते हैं, ब्रह्माण्डकी सूक्ष्मताप्रकाशक शक्ति अर्थात् जिसके अभ्यन्तरमें निर्गुण ब्रह्मका सगुणत्व रचित होकर सृष्टि, स्थिति, प्रलयादि क्रिया प्रकाश हुआ करती हैं, उसे योगमाया कहते हैं।

इस योगमायाका ईश्वरसंस्पर्शन विषय बोधगम्य होना साधारण बुद्धिमें अत्यन्त दुष्कर है। तब नैयायिकोंने जिस पथको अवलम्बन किया है, वह अन्यान्य दार्शनिकोंकी अपेक्षा स्थूल है, यह स्थूल बोध होने पर सांख्य और मीमांसक दोनोंका उद्देश्य समझा जासकता है। बुद्धिवादी वा न्यायवादी लोग कहते हैं कि, जगतमें कोई एक वस्तुका प्रकाश प्राक् अभाव भिन्न नहीं होता; लौकिकमें जब किसीएक वस्तुका प्रयोजन होनेसे उस प्रयोजनबोधक अन्तःकरणवृत्तिके अनुसार कार्य्य प्रकाशित होकर वे प्रयोजन सिद्ध हुआ करते हैं, तब अलौकिकमें भी वे होते हैं। क्योंकि लौकिककी सत्ता ही अलौकिक होती है। जैसे एक भाण्ड (घड़ा) प्रस्तुत करनेके पहिले साधारणके हृदयमें एक ऐसी अभावबोधक शक्तिका उदय हुआ था, वह अभावबोध ही भाण्डके कार्य्यकी भांति घरमें प्रकाश हुआ। उस अभावबोधक शक्तिके सहारे ही जीवगण जिस प्रकार क्रियापर हैं, ईश्वर भी वैसे ही

क्रियापर हैं। उसी शक्तिके सहारे, ईश्वर मूलस्वभावसे, गुणमय होते हैं और, उसी शक्तिके सहयोगसे ईश्वरकी लीलाका परिमाण होता है, इसलिये उस शक्तिको पुराणमें योगमाया कहते हैं। विज्ञानमें चित्शक्ति कहते हैं।

वह स्वभाव ज्ञापकशक्ति जिसका जैसा स्वभाव है, उसके उसी स्वभावकी, अनुगामी होकर उसे क्रियापर करती है। निर्गुणब्रह्म का अर्थात् मूलचैतन्य-कारणका स्वभाव ही ब्रह्माण्डलीलाकारण है। इसीलिये ब्रह्मके उस स्वभाव मध्यगत लुप्तप्राय चित्शक्तिरूपी कालशक्ति परब्रह्मको सक्रिय करके सगुण किया करती है। कालशक्तिका प्रमाण प्रत्यक्षभावके जगतमें लौकिकलीलाके बीच प्रतिफलित होता है, उसे विचार करना, कष्टकर होनेपर भी प्रत्यक्ष है। ये काल और चित्शक्ति निर्गुणके स्वभावमें निहित हैं; और उसकी इच्छा हैं। वह इच्छा न होनेसे प्राक् स्वभाव प्रकाश न होता। इच्छा स्वभावके मध्यगत है। ये सब शक्ति मूल अवस्था में अक्रिय रहनेके हेतु वह ब्रह्म नाम धारण किये हैं।

शि०। ब्रह्म जो एक हैं और उनसे ही सबका प्रकाश है, उसे कैसे समझें?

गु०। यह जो एकरूपसे ब्रह्मकी स्थिति है, उसकी उपलब्धि करनेमें अत्यन्त ही विज्ञानसाध्य है। लौकिकबुद्धिसे वह स्थिर नहीं की जाती, यदि कोई योगावलम्बन किये हों और उनकी देहसङ्गत-वृत्ति यदि सहाभूतांशके सहित नित्य समाविष्ट कहके अनुभूत हो, तब ही वह सत्मात्र ब्रह्म जो एकके सिवाय दो नहीं हैं, उसे समझ सकेंगे। तब, सामान्य अनुभवके लिये सामर्थ्य अनुसार प्रकाश करना उचित विचारके कहनेमें प्रवृत्त हुए।

विज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, जगतके आदिसे अन्तके बीच जो कुछ कार्य्य दिखाई दिया करते हैं और वर्त्तमानमें दृष्ट होते हैं,

ये सब ही एक एक नियममें आवद्ध हैं। कार्य्य दो प्रकारके हैं, लुप्त-चैतन्य और अलुप्तचैतन्य। शुष्क काष्ठ आदि और विकारित अस्थि जीवत्वहीन मुक्ता, प्रवालादि सबको लुप्तचैतन्यकार्य्य वा विषय कहते हैं; और पञ्चमहाभूतसे लगाय जीवादि सबको ही अलुप्तचैतन्यविषय कहना होगा। यहां तक विज्ञानशक्तिके सहारे विशेष रूपसे प्रमाणित हुआ है कि, अलुप्तचैतन्यशक्तिके विकारसे परित्यक्त जो भूतांश वस्तु जिस भावसे अवस्थित होती हैं, उन्हें ही लुप्तचैतन्यमय वस्तु कहते हैं। वे कभी स्वतः उत्पन्न नहीं होतीं। इसी नियमसे देखा जाता है कि, एकमात्र चैतन्यशक्ति प्रविष्ट न होनेसे कोई विषय ही प्रकाश नहीं होते। वह चैतन्यशक्ति एक सत्ताके आश्रय में रहती है। सत्ताको संरचण करना ही चैतन्यका उद्देश्य है। सत्ता एक अदृष्टको आश्रय करती है। अदृष्ट एक क्रियापर शक्तिको आश्रय करता है। इसी हीको काल कहते हैं।

जगतमें देखा जाता है कि, अणुसे ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त सब प्राकृतिकवस्तुओंमें ही एक सत्ता है, सत्ताको पालनहेतु एक चैतन्यशक्ति है। सत्ता जिस भावमें परिणत होगी, ऐसी अदृष्टको एक आश्रय भी है और वह अदृष्ट सत्ताके बीच जिससे आत्मगुण प्रतिफलित कर सके, ऐसी एक कालशक्ति है।

इन चारों पदार्थोंके बीच सब ही एक एक नियमसे कार्य्य करते हैं। फिर देखा जाता है कि, चारों शक्तियोंके बीच एक के नाश होने पर अन्य नहीं रहतीं। इसमें यद्यपि चारोंके बिना अन्य किसीका सजीवत्व नहीं रहता; तथापि चैतन्य ही इन तीनों शक्तियोंके नियमके वशवर्त्ती होके सबको सजीव रखता है। चैतन्यको भी जब एक कर्म्मकरणशक्ति है, तब उसमें एक मूल-स्वभाव है। उस स्वभावमें चैतन्यके सहित अन्य तीन क्रिया प्रकाश हुआ करती हैं। विज्ञानसे विशेष विचार करके योगियोंने

देखा है कि, उस स्वभावके अधीनमें जब जगत और जीव प्रकाशक चारो शक्ति ही क्रियापर हैं, तब उनका कोई नियन्ता है। यह भलीभांति देखा जाता है कि, नियन्ता न रहनेसे कोई सत्ता कभो स्वभावमें परिणत नहीं हो सकती। वह नियन्ता ही निष्क्रिय निर्गुण, सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ब्रह्म है। वह नियन्ता जो कितनी दूर तक व्याप्त है, उसको सीमा नहीं। क्योंकि उनकी सब शक्तियोंका कार्य्यभाग ही जगत है। इसी नियमसे अति सामान्यभावसे ब्रह्म जो एक हैं और उनसे ही जो सबका प्रकाश है, यह प्रमाणित हुआ।

शि०। एक ब्रह्म ही थे, किन्तु जगत जो नहीं था अर्थात् क्या भूतादि क्या प्राणादि कुछ भी न थे, उसे किस प्रकार समझें?

गु०। एक ब्रह्म ही थे, द्रष्टा दृश्यादि कुछ भी न थे। अब जगतका अप्रकाश और ब्रह्मका नित्यत्व कहा जाता है। योगियोंने स्थिर किया है कि, प्रत्येक कार्य्य एक एक स्वभावके अन्तर्गत हैं। और कार्य्यको लय है, कारणकी लय नहीं है। भूतादि, ग्रहादि, प्राणादि सब ही जगतके उपादान हैं, अर्थात् इन्हें लेकर ही जब जगत है, तब उनके लयसे ही जगतकी लय अवश्य ही स्थिर होती है। प्रलय चार प्रकारकी है। महाप्रलय, प्राकृतिकप्रलय, नैमित्तिकप्रलय और नित्यप्रलय। ये प्रलय भी इन चारों शक्तियों के चार प्रकारके विकारसे हुआ करती हैं। इन चारों शक्तियोंका जब अत्यन्त विकार होता है, तब महाप्रलय होती है; जब विकार भावापन्न होता है, तब प्राकृत प्रलय होती है, जब किञ्चितविकार होता है, तब नैमित्तिकप्रलय या युगपरिवर्त्तन होता है। जब कालके सहारे विकारित होता है, तब नित्य प्रलय होती है। ये चारों प्रलय जो हो सकती हैं और प्रति वस्तुओंमें उनका प्रकाश हुआ करता है, यह पूर्व्वमें ही प्रमाणित किया गया है।

विज्ञानवादियोंने प्रतिवायुमें त्रिविध परिवर्त्तन देखकर स्थिर किया है कि, प्रलय, सृजन और पालन ये त्रिभाव वर्त्तमान हैं ; नहीं तो वे किसकी सामर्थके तेजके अनुसारी होकर जगतमें प्रत्यक्ष होते हैं। इसके पहिले ब्रह्मने जिस स्वभावसे स्थिति किया था, वही स्थिति इस प्रलयादि त्रिभावापन्न है। इस त्रिभावापन्न अवस्थाको सक्रिय करनेके लिये चारोंशक्ति प्रस्तुत हैं। जब चारों शक्ति और स्वभावके सहयोगसे यह ब्रह्माण्ड प्रकाश हुआ है, तब इन कारण शक्तियोंके परमें ये कार्य्य प्रकाश हुए हैं, इसे कौन विज्ञानवादी स्वीकार न करेंगे ? किन्तु इसका अनुभव होना बिना योगसाधनाके नहीं होता। तब बुद्धिको ईश्वरनिरत वा तत्त्वज्ञान निरत करनेसे केवल युक्तिमात्र सङ्गत कहके बोध हुआ करता है।

यह स्वभाव और शक्तियां ब्रह्ममें अगाड़ी आविर्भाव होती हैं ; फिर वे इस जगत्कार्य्यमें प्रकाश होती हैं ; जब यह सिद्धान्त हुआ, तब सृष्टिके पहिले स्रष्टाका होना निश्चित ही हुआ। सृष्टिके पहिले ब्रह्म थे, वह जब एक भावसे थे, तब कार्य्यादि प्रकाश नहीं हुए थे ; इसलिये द्रष्टा दृश्यादि नहीं थे। अनन्तर उनने ही अपने प्रभावसे सबको प्रस्तुत किया, इसलिये वह स्वयं ही सबकी आत्मा और पालनकर्त्तास्वरूप हुए हैं।

शि०। जब जगतरूपी कार्य्य प्रकाश नहीं हुआ था, तब वह एकमात्र (अकेले) होकर किस प्रकारसे थे ?

गु०। उस अवस्थामें वह विज्ञानवादियोंके सहारे एक राट् ब्रह्म कहके अविहित होते हैं। वह एकराट् ब्रह्म किस प्रकारसे थे ? यह असुमहत्‌ थे। इक् कहनेसे चित्‌शक्ति वा चैतन्य जानो। क्रियापर अवस्थाको असुम कहते हैं। चैतन्य कभी अक्रियापर नहीं रहता ; वह सदा ही अपने तेजसे प्रकाशमान है। यह चित्‌शक्ति ही ईश्वर वा ब्रह्मका तेज है। ब्रह्मकार्य्य

हीन अवस्था और जड़तावापन्न न होकर तेजोमय अर्थात् चैतन्यमय थे। इसे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, जैसे जीव अपनी सब शक्तियोंके सहित निद्रित होने पर भी उसका चैतन्य जाग्रत रहता है। वही चैतन्य फिर कालके सहित जीवको जड़त्वसे कियापर करनेके लिये जाग्रत किया करता है। विज्ञानमें विशेष आलोचनासे देखा जाता है कि, चैतन्यसामर्थ्यके सहारे जब प्राकृतिक सब शक्ति ही सजीवित हैं; तब उसका जड़भावापन्न होना असम्भव है। ईश्वरके तेजकी जड़त्वक्षमता (सामर्थ्य) देखकर ही तत्त्वज्ञोंने उस शक्तिका नाम चैतन्य रक्खा है।

शि०। ईश्वरको सृष्टि करनेकी इच्छा क्यों हुई?

गु०। पहिले प्रमाण किया गया है कि, स्वभावका सङ्कल्प रहनेसे उस सङ्कल्पको कार्य्यमें परिणत करनेके लिये स्वभावसे एक अभावकी आवश्यकता होती है। उस अभावको परिपूर्ण करनेमें ही कार्य्य प्रकाश हो जाते हैं। ब्रह्मका स्वभाव ही सिसृक्षादि-करण है। जब ब्रह्म अपना चैतन्य तेजके सहारे बोध कर सके कि, उनके स्वभावमें कोई अभाव है; तब उनने चिन्तन किया कि, मैं द्रष्टा होकर कोई अन्य दृश्य क्यों नहीं देखने पाता हूं?

यह अभाव उदय होनेसे ही उस अभावको पूर्ण करनेकी इच्छा प्रकाश हुई। इच्छा प्रकाश होनेसे उनने देखा कि, उनमें ही उनके पक्षमें दृश्यप्रकाश शक्तियां सुप्त हैं। स्वभावकी सामर्थ्य ही यह है कि, वह अन्तर्निहितभाव प्रकाश करता है, ब्रह्मपक्षमें अन्तर्निहितभाव क्या है? मैं द्रष्टा हूं। इसका भाव यह है, जैसे—दृश्य प्रस्तुत करनेके अनन्तर उसे दर्शन करना ही ब्रह्मका स्वभाव है। योगियोंने इसे क्यों कहा? यह जो विश्व है, इसके सहारे वह किसी उपकारकी प्रार्थना नहीं करते। इस कार्य्यके सहारे उनका कोई प्रयोजन साधन नहीं होता, तब यह उनके

पक्षमें कैसा है? द्रष्टकी भांति। जैसे लोग चित्रादि कारण क्षमतासत्त्वसे चित्र प्रस्तुत करके उसे देखकर आत्मसामर्थ्यकी चरितार्थलाभ करते हैं; वैसे ही ब्रह्म भी अपने स्वभावके संहारि द्रष्टा होकर दृश्य प्रकाशान्तर उस दृश्यदर्शनसे निज तेजकी लीलामात्र देखकर चरितार्थ होते हैं। इस सम्बन्धमें ईश्वरकी निर्गुण अवस्थाके सहित, इस जगदावस्थाके द्रष्टा और दृश्य सम्बन्ध होते हैं।

यह दृश्यवाचका अभाव उनकी अनुमति होनेसे उसके पूरणकी उपाय भी उनमें है, इसी समझानेके लिये ही तत्त्वज्ञ लोग कहते हैं कि, दृष्टिकारणात्मक उपायरूपी शक्तियां भी उनमें थीं। किस भावमें थीं? सुप्तप्राय। जैसे बालकके अन्तरमें आहार, निद्रा, भय, क्रोध और मैथुनात्मक स्वभाव अनेकांशमें सुप्तप्राय, रहता है, क्रमसे कालवशसे जितना ही बालकके चैतन्यका अधिकार होता है, उतना ही ये सब प्रकाश हुआ करते हैं। वैसे ही ब्रह्मावस्थामें सिसृक्षादिशक्ति लुप्त वा सुप्त प्राय थी। ये ही अनुमान है। यह विषय रचनाके सहारे बोध कराना असम्भव है। क्योंकि विज्ञानबुद्धि न होनेसे समझ सकाना दुःसाध्य है।

शि०। ईश्वरके निर्गुण अवस्थाके सहित इस जगदावस्थाकी द्रष्टा और दृश्य सम्बन्ध रहना किस प्रकार सम्भव हो सकता है?

गु०। दृष्टिशक्ति न रहनेसे द्रष्टा होना असम्भव है और दृश्य न रहनेसे दृष्टिशक्ति सामर्थ्य प्रकाशका भी असम्भव है। इन तीनों अवस्थाओंको सम्भवपर कर सकनेसे तब निर्गुणत्व बोध होगा और सब ईश्वरकी सत्ता बोध होगी।

जगतके सहित ईश्वरका वा ब्रह्मका अन्य कोई सम्बन्ध नहीं देखा जाता। जैसे केवल चित्रकार अपनी सामर्थ्य प्रकाश करनेके लिये उस क्षमताको चित्रमें परिणत करता है; वैसे ही ब्रह्मके

पक्षमें जगत्सृजन है। जैसे चित्र चित्रकारके पक्षमें दृश्यमात्र है। जगत भी ईश्वरके पक्षमें वैसे ही दृश्यमात्र है। चित्रकारके निजकी एक ऐसी सामर्थ्य है कि, जिसके परिणामसे चित्र तैयार हुए हैं। जब यह सामर्थ्य ही चित्रकी कारण है, तब वह क्षमता ही चित्रपक्षमें दृष्टि है। सङ्कल्पके अनुभव करणात्मक तेजको दृष्टि कहते हैं। मनमें जिस भावका उदय होता है, उसे सङ्कल्प कहते हैं, उस सङ्कल्पको कार्य्यमें परिणत करनेमें जिस शक्तिको आवश्य-कता होती है, उसे दृष्टि कहते हैं जैसे घड़ा गढ़ना कुम्भकारका सङ्कल्प है, वह भाव प्रकाशित होनेसे ही उसके पक्षमें दृश्य हुआ; और जिस सामर्थ्यके सहारे कुम्भकार सङ्कल्पके अनुसार गढ़ते गढ़ते निज सङ्कल्पके अनुसारी हुआ वा नहीं, ऐसा स्थिर किया, उसे ही दृष्टि कहते हैं। इसी भावसे ईश्वरपक्षमें जगतनिर्म्माणात्मक स्वभाव ही सङ्कल्प है और उस सङ्कल्पको कार्य्यमें परिणत करनेकी ही दृष्टिशक्ति कहते हैं। यह दृष्टिशक्ति यदि प्राणियोंमें न प्राप्त होती, तो कोई किसी प्रकारसे निज सङ्कल्पसूचक अभावमोचन न कर सकते। इस शक्तिको चैतन्य कहते हैं। शक्तिमात्रमें ही स्वभाव रहना उचित है, नहीं तो किस तेजसे वे क्रियापर होंगी? ईश्वरके चित्‌शक्तिमें क्या था? सदसत् था। सत् कहनेसे दृश्य और असत्‌को अदृश्य जानो। सङ्कल्पके परिणामको दृश्य कहते हैं। और सङ्कल्पके अभावको अदृश्य कहते हैं। अर्थात् ईश्वरको उस शक्तिमें सङ्कल्प प्रकाश यथार्थ हुआ या नहीं उसका स्थिरकारक (दृश्य) और सङ्कल्प क्या है; इस अभाववोधक दो गुण हैं। ये दो स्वभाव वा गुण रहनेसे ही ईश्वर उनके सहयोगसे इस ब्रह्माण्डको रचना किया करते हैं। इसलिये सब कोई उसे माया कहते हैं। जिस शक्तिके सहारे ब्रह्मका परिमाण किया जाता है, उसे माया कहते हैं। किसी एक वस्तुके स्वभाव और गुणादि वोध होनेसे

हो उसकी सत्ताका परिमाण अनुभूत हुआ करता है, इसी नियम से उस चैतन्यशक्तिके सहारे ब्रह्मका सङ्कल्प बोध हुआ करता है कहके योगी लोग उस शक्तिको माया कहते हैं।

शि०। ब्रह्म जगत्सृष्टि करनेकी इच्छासे किस भावसे अवस्थान्तरित वा क्रियापर हुए ?

गु०। ब्रह्म अपने स्वभावको परिणत करना आरम्भ करके जिस भावसे अवस्थान्तरित हुए, उस वर्त्तमान क्रियोन्मुखभावको ब्रह्म या ईश्वर कहा जाता है। इस अवस्थामें ईश्वर कैसे थे ? केवल चित्शक्तिमय थे। ब्रह्मावस्थामें ईश्वरने चित्शक्तिको अन्यान्य स्वभावके सहित एकत्र और जाग्रत बोध किया था। इसी अवस्थामें अन्यान्य स्वभाव और शक्तिको अपनेसे पृथक् करके जिस अंशके सहारे कार्य्योन्मुख हुए, वही अंश चित्शक्तिमय हुआ।

चित्शक्तिके सहारे ही दृष्टि अर्थात् कार्य्य कारणात्मकभाव उपस्थित हुआ करते हैं। इसीलिये ब्रह्म सिसृक्षावाचक अभाव-मोचन करनेके लिये संकल्पादि स्वभावादि प्रकाशक चैतन्यमय हुए। ईश्वर वीर्य्यभावापन्न हुए; उससे अवस्था प्रकाश होने पर उस अवस्थामें वे ही चैतन्यके अनुगत वा मध्यगत हुए। चैतन्यको आवरण करनेसे उनका नाम पुरुष हुआ। निज ब्रह्मभावसे वह अवस्थान्तर हुआ कहके उनका आत्मभूत पुरुष नाम हुआ। उस आत्मभूत पुरुष अवस्थाको परमात्मासे हीनावस्था वा सक्रियावस्था कहते हैं। कोई इसे ही आत्मा कहते हैं।

पहिले कह आये हैं कि, ब्रह्माण्डप्रकाशक शक्तियां ब्रह्ममें अलुप्त थीं। जब ईश्वर चेतनपर हुए, तब ही उनका अन्तरस्थ संकल्प और स्वभाव जाग्रत हुआ। अर्थात् जिस उपायसे वह दृश्यरूपसे परिणत होगा, वही उपाय विधानात्मक सुप्तशक्तियां चैतन्यको क्रियहेतु क्रिया हुईं।

वह सूक्ष्मशक्ति क्या है? गुणमयी कालवृत्ति है। किसी एक स्वभावको किसी नियममें परिणत होनेसे कितने ही संकल्पके अनुसारी करना होता है। उन संकल्पोंको ही परिणत अवस्थाके कारणमात्र समझना होगा। जगत ईश्वरका स्वभाव है; इसके प्रकाश अवस्थाके कारण ही ईश्वरके संकल्प हैं। उन कारणोंमें जिस शक्तिके सहारे निर्गुण अवस्था छूत थीं, उसे ही काल कहते हैं। कारणसमूह जिस शक्तिके सहारे नियमितरूपसे कलित अर्थात् संग्रहीत होते हैं, उसे ही काल कहते हैं। चैतन्यस्वभावरूपी जगतको प्रकाश इच्छा करनेसे जिस प्रकारसे ब्रह्माण्ड होगा, उसके कारणात्मक संकल्पमय कालशक्तिको सक्रिय अर्थात् अपने अनुयायी किया।

जगत्प्रकाशक सत्ता वा सूक्ष्मकारणको गुण कहते हैं। सूक्ष्म कारण वा संकल्प सब कालशक्तिमें रहते हैं, इसलिये गुणमयी कालवृत्ति कहा गया। वह कालवृत्ति चैतन्यको अनुसारी हुई करके कालवृत्तिमय आत्ममाया कही गई।

ब्रह्म ईश्वररूपसे प्रथममें चैतन्यके बीच रहके क्रियोन्मुख हुए। फिर क्रियाका संकल्प उसमें मिलाकर अपना स्वभाव उसमें आधान करनेके लिये पुरुषरूपी अर्थात् आत्मारूपी हुए। इस पुरुषरूपसे अर्थात् काल और चैतन्यमयी प्रकृतिके मध्यगत होकर अपना स्वभाव उसमें प्रदान किया। इस प्रभावको वीर्य्य कहते हैं।

ब्रह्मका स्वभाव ही जगतकरण है। कोई एक वस्तु बनानी हो, तो मनका संकल्प, मनकी सामर्थ्य और वस्तु विषयक उपादानका प्रयोजन हुआ करता है। नहीं तो कदापि एकवस्तु प्रकाश नहीं हो सकती। जगतको जब एकवस्तु कहा जाता है, तब जगत्कर्त्ताको भी इसी नियमके अनुवर्त्ती होना हुआ है। इस अवस्थाको लिपिचातुर्य्यसे प्रकाश करना वा आत्मज्ञान विहीनको

समझाना बहुत ही कठिन है, तब सामर्थ्यानुसार व्याख्या किया।

शि०। ईश्वर में वासना रहनी किस प्रकार से सम्भव है?

गु०। पहिले कहा गया है कि, चैतन्य चिरजाग्रत है। इसीलिये ब्रह्म चिरजाग्रत है; चिरजाग्रत सत्त्वमें उसकी वासना उस चैतन्यके सहारे पालित है, स्वयं चैतन्य भी उस वासनाके सहारे पालित है। वासना रहनेसे ही संकल्प और स्वभाव तथा उभय प्रकाशक अदृष्टशक्तिकी सत्ता रहती है। निर्गुणब्रह्ममें ये सब ही लुप्त थीं। इनका स्थिर क्या है? अब तक सब वस्तुओंके ही पूर्व्वलक्षण हैं; पूर्व्वलक्षण न रहनेसे कारण प्रकाश नहीं होते। ब्रह्माण्डपक्षमें सूक्ष्मविचार करके योगियोंने ऐसा ही पूर्व्वलक्षण स्थिर किया है?

ये पूर्व्वलक्षणसमूह एक प्रकारसे अव्यक्तभावसे रहते हैं; कार्य्य प्रकाश होनेसे वे कार्य्यके सहारे प्रकाशितमात्र होते हैं। जैसे कोई एक रोगको निर्णय करना हो, तो उसके पूर्व्वलक्षण और कार्य्यगत क्रिया स्थिर करनेसे रोगके कारण जाने जाते हैं; वैसे ही सब वस्तुओंको ही कार्य्यगत क्रिया और उस क्रियाके पूर्व्वलक्षण देखकर कारणकी स्थिरता हुआ करती है। जगतके पक्षमें माया ही कर्म्मशक्ति है। कालादि संग्रहशक्ति है। और ईश्वरकी वासना ही कर्म्मी तथा ईश्वरका स्वभाव और संकल्प ही उपादान है। इन सबके संयोगसे जो अवस्था प्रकाश होती है, वही दृश्य-रूपी कार्य्यकी कारणावस्था है।

शि०। ईश्वर आत्मासम्थ्यगत क्यों हुए?

गु०। चित्शक्तिमें संकल्प और स्वभाव निहित रहने हेतुसे वह अव्यक्त है, इसीलिये मायाको अव्यक्त कहा गया। चैतन्यका स्वभाव ही कालके प्रेरण और स्वभावसंकल्पके अनुसार रूपान्तरित

वा क्रियापर होता है। इन सब लक्षणोंके एकत्रित होनेसे एक अवस्था होती है। जो ज्ञानसे बोध होती है, किन्तु बुद्धिसे विचार नहीं किया जाता। उस अवस्थामें ईश्वर किस प्रकार हुए ? विज्ञानात्मा और तमोनाशकारी। क्रियोन्मुख अवस्थाबोधकशक्तिको विज्ञानात्म कहते हैं। इसका तात्पर्य्य यह है कि, कोई एक क्रिया प्रकाश होनेके लिये संकल्पादि सक्रिय होने पर स्वभावको उसके अनुयायी होना होता है। उसे ही क्रियोन्मुख अवस्था बोधक कहते हैं। जैसे कुम्भकार चाकपर मिट्टी स्थापन करके घूर्णा यष्टिके सहारे चक्रको घुमानेसे ही उसके सहयोगसे अपना घट गठनात्मक संकल्प और नियमात्मक स्वभावको मृत्तिका तथा चक्रपर किया करता है; वैसे ही चैतन्यका भी कालके पीड़नसे ब्रह्मसंकल्प क्रियापर होनेसे वह संकल्प जिस स्वभावापन्न होगा, वही अदृष्टबोधक होनेसे ईश्वरको उसके बीच रहना होता है; अन्यथा कर्त्ता न रहनेसे कर्म्मसम्पन्न होना असम्भव है। इस विज्ञानात्मकभावको ही आत्मा वा सर्व्वान्तः प्रविष्टभाव कहते हैं।

तमोनाशकारी कहनेसे:—लुप्तअवस्थाको तमो कहते हैं। सक्रिय अवस्था ईश्वरके स्वभावके सहारे प्रकाश होती है, इसलिये ईश्वर आत्मा अवस्थामें तमोनाशकारी हुए हैं।

इस अवस्थापन्न होकर क्या नियमावलम्बन करते हैं ? आत्म-देहस्थ लुप्त विश्वको प्रकाश आरम्भ किया। आत्म कहनेसे इस स्थलमें स्वभाव जानो। जिसके अन्तरमें कार्य्यप्रकाशक अदृष्ट वा बीज रहते हैं, उसे स्वभाव कहते हैं। वह बीज क्या है ? लुप्त प्राय विश्व है। विश्व कहने से समष्टि वाचक (प्राणादि) और व्यष्टि वाचक (भूतादि) ब्रह्माण्डावस्था प्रकाश आरम्भ किया।

शि०। ईश्वर ब्रह्माण्डप्रकाश आरम्भ करके किस किस

अवस्थापन्न हुए ?

गु०। ईश्वर अपनी शक्तियोंके सहारे ब्रह्माण्डप्रकाशके लिये जिस अंशसे शक्तिमय हुए; उस अवस्थाको अंशगुणकालाधीन कहते हैं। ईश्वरकी मायागत अवस्थाको आत्मा कहते हैं। वह आत्मा ही अंशादिके अधीन हुआ।

ईश्वरने जब चैतन्यके सहारे अपनेको द्रष्टा चिन्तन किया, उस समय दृश्यका अभाव चिन्तन किया था। उस दृश्यका अभाव नाश करनेके लिये जब अपनी शक्तियोंको क्रियापर करके इस अवस्थामें उपस्थित हुए, तब उनने अपने सक्रियभागको दृश्यरूपसे स्वयं ही देखा। दृश्य वस्तुको देखकर अपनी जो विश्वसृजनात्मक वासना थी, उसे उसके अनुसारी करके चैतन्यादिको क्रियापर किया; उस वासनाके अनुसारी होनेसे यह अंशगुणकालाधीन आत्मा विश्वप्रकाशक कारणादिके रूपसे रूपान्तरित हुआ।

बोध होता है कि, अनेक लोग ही इस रूपान्तर भावको हृदयङ्गम करनेमें समर्थ न होंगे। अनायास ही बोध होना कठिन है। तब सामान्य प्रमाणमें बाध्य हुए।

वासना ही ब्रह्मसे इस जीव पर्य्यन्त समानभावसे क्रियापर है। जीवकी वासना सुख, दुःख, आनन्द, भय, क्रोध, मैथुन, आहार, निद्रा जिस किसी स्वभावके सहारे आकर्षित होगी अर्थात् दृश्य-रूपसे प्रतिफलित होगी; वह जीवकी अन्य सब शक्तियोंको ही तत्पश्चात् उस दृश्यको अनुसारी करनेके लिये रूपान्तरित करने की चेष्टा करेगी, जो दुःखी होता है, उसके देहकी गठन और मनके चैतन्यका सब तेजको ही दुःखबोधक रूपान्तर प्राप्ति हुआ करती है, इसी नियमसे ब्रह्मने जैसा दृश्य देखा, वैसे ही उस दृश्यको अपनी वासनाके अनुयायी करनेके लिये रूपान्तरित किया। वासनामें विश्वका बीज प्रतिफलित था, इसी लिये यह आत्मावाचक

दृश्य भी विश्वसृजनका कारणात्मक होकर रूपान्तरित हुआ। इस स्थूलसे जगतका सूक्ष्मकारण प्रकाश हुआ।

शि०। जगत्का सूक्ष्मकारण कैसे प्रकाश हुआ?

गु०। ब्रह्माण्डकी जिस पूर्व्व अवस्थाको महत्तत्वावस्था कहते हैं, वह इसके पहिले प्रकाश की गई है। अब अहं तत्त्वावस्था प्रकाश होती है। तत्‌बोधक सूक्ष्मभावको तत्त्व कहते हैं। तत् कहनेसे कार्य्य अर्थात् ब्रह्माण्ड वा जीव या कार्य्यगत वस्तु जानो। जिसके सहारे जागतिक सब अवस्थाओंका सूक्ष्मबोध होता है, उसे तत्त्व कहते हैं। अहं शब्दका अर्थ आत्मा अर्थात् ईश्वर है, किम्वा इसके पहिले कहा गया है कि, ब्रह्मने जब देखा कि, मुझमें सत् अर्थात् दृष्टिभाव वर्त्तमान है, तब दृश्य अर्थात् इस सत्-भावके कार्य्य प्रकाशकी आवश्यकता है। उस अभावका बोध होने पर वह अपनी चैतन्यशक्तिके सहारे आकर्षित होकर प्रधानावस्थामें उपस्थित हुए। फिर कालके सहारे संक्षोभित होकर महत्तत्त्वावस्थामें परिणत हुए। पूर्वके जिस अभाव संयोगसे वह क्रिय हुए, वही अभाव इस स्थलमें सूक्ष्मरूपसे पूर्ण हुआ अर्थात् वह अहंतत्त्व हुए। अहं कहनेसे आत्मा वा ईश्वरका दृष्टिभूत विश्व जानो। और तत्त्व कहनेसे कार्य्य वा दृश्यकी सूक्ष्मावस्था जानो। अर्थात् ईश्वरने जो जगतको दृश्य करके स्वयं द्रष्टा होंगे; स्थिर किया था, उसकी सूक्ष्मरचना इस अहंकार अवस्थामें किञ्चित् प्रकाश हुआ। क्यों हुआ? वह इसी अवस्थामें ब्रह्माण्डके पक्षमें कार्य्य, कारण और कर्त्तात्मा हुए। मैं द्रष्टा हूं, यह भाव ही कर्त्ता है। जो देखूंगा, उसकी सत्ता ही कारण है और जिस उपादानसे वह दृश्य रञ्जित होगा वही कार्य्य है।

ईश्वरने इस त्रिभावापन्न होने पर अहङ्कार नाम धारण किया, किन्तु किस उपायसे इस त्रिभावापन्न हुए? इसके पहिले कहा

गया है कि, उस ब्रह्मावस्थामें दृश्य प्रस्तुत करनेके लिये शक्तियां सुप्त थीं। चैतन्यके सहारे कालशक्ति उन्हें क्षुभित अर्थात् सक्रिय करने लगी। इस सक्रियभावसे ये सूक्ष्म दृश्य अर्थात् जगतकी सूक्ष्म अवस्था जाग्रत अर्थात् ईश्वरकी वासनापर होनेसे त्रिविध हुई। उस त्रिविध सुप्तशक्तिको त्रिगुण कहते हैं। सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों ही त्रिगुण हैं। सत् अर्थात् दृष्टिक्षमता है किम्वा ईश्वरकी वासनायुक्त केवल चैतन्यमयी अवस्थाको द्रष्टा किया है अर्थात् इस शक्ति वा गुणके सहारे आत्मा जगत अनुभव करता है। कार्य्य वा जगत वा दृश्य चैतन्यके जिस अंशसे प्रकाश होते हैं, उसे रजोगुण वा रजोशक्ति कहते हैं। तमोगुणके सहारे उनके उपादान प्रकाश होते हैं। अर्थात् यह दृश्य जिस उपादान के परिवर्त्तनसे प्रकाश होता है, उसे तमोगुण कहते हैं। जिस असत् अर्थात् उपादान अवस्थाको लेकर यह दृश्यरूपी ब्रह्माण्ड सृष्ट हुआ है; वह उपादान एकभावसे रहनेसे कालका प्रभाव अप्रकाश होता है। क्योंकि कालके सहारे ही सुप्त अवस्था प्रकाश होती है। किसी एक वस्तुका प्रकाश आरम्भ होनेसे ही उसका स्वभावतः परिणाम होगा ही होगा। अन्यथा ईश्वरकी वासनाकी क्रिया प्रकाश नहीं होती। इस क्रियामें त्रिगुणका विकारमात्र होता है। चैतन्यशक्ति, कालशक्ति और ईश्वरकी वासना ये त्रिभाव ही दृष्टिभाव हैं। ये जब सुप्त दृश्यको प्रकाश करनेकी चेष्टा करती हैं, तब ये त्रिभाव ही इस सुप्त अवस्थामें प्रतिफलित होकर सुप्त अवस्थाको निज निज गुणापन्न किया करते हैं। इसीलिये सुप्तदृश्यके त्रिविध प्रकाश अवस्थाको त्रिगुण कहते हैं। इस सुप्त अवस्थाको असत् कहते हैं। चैतन्यशक्ति असत्में प्रतिभात होनेसे सत्त्वगुण होता है और ईश्वरकी वासनाशक्ति असत् में प्रतिभात होनेसे रजोगुण होता है। कालशक्ति इस असत्में

प्रतिभात होनेसे तमोगुण होता है।

इस त्रिविध गुणके सहित ईश्वर चैतन्य, काल और वासना इस त्रिविधशक्ति संयुक्त करनेसे जिस अवस्थाका परिवर्त्तन होता है, उसे ही अहङ्कारावस्था कहते हैं। अहंकारावस्थामें चैतन्य रूपान्तरित होनेसे जो अवस्था होती है, उसे ही कर्त्तृत्वावस्था कहते हैं। वासना जिस अवस्थामें रूपान्तरित होती है, उसे कारणावस्था कहते हैं। और काल रूपान्तरित होनेसे उसे कार्य्यावस्था कहते हैं। इन तीनों अवस्थाओंके सहित ये तीनों गुण संयुक्त होनेसे कर्त्तृत्वसे सात्विक वा वैकारिक; कारणसे रजो वा तैजस; कार्य्यत्वसे तामस, इन त्रिविध अहंभावका प्रकाश हुआ करता है। ब्रह्माण्डके पक्षमें ये त्रिविधभाव ही अति सूक्ष्मभाव हैं। इनके सिवाय अन्य भाव नहीं हैं। इन त्रिविधभावोंसे सात्विकभाव मनरूपी ब्रह्माण्डका सूक्ष्मकारण होता है, राजसिकभावमें इन्द्रियरूपसे और तामसिकभावमें भूतरूपसे ब्रह्माण्डके सूक्ष्म कारण परिवर्त्तित हुआ करते हैं।

जिस सत् अवस्थामें सब वस्तु अनुभूत होती हैं, उसे ही मन कहते हैं। यह मन ही परमात्माकी दृष्टि है। मन कहनेसे अब तक जीवगत नहीं; ब्रह्माण्डके कारणगत जानो। क्योंकि इसके परमें जगत प्रकाश होगा। यह मनावस्था ब्रह्माण्डगत आत्मा अवस्थाके सहित संयुक्त रहती है; जैसे पञ्चभूतादि तत्त्व भूतोंके मध्य रहते हैं; आत्मतत्त्वके सहित मन अवस्थान करता है। वह मन अनुभव करनेके लिये आत्माके स्वभावमें ही अपनी दैवशक्ति प्रकाश किया करता है। उस दैवशक्तिको देवता वा जिस शक्तिके सहारे अर्थाभिव्यक्त होता है अर्थात् ब्रह्माण्डके वा देहके कार्य्यगत अवस्थामें क्या होता है, उसका सार अनुभूत होता है, उससे ही आत्मा निज वासनाके सहारे तत्क्रिया सम्पादन किया करता है।

शि०। मनावस्था ब्रह्माण्डगत आत्मा अवस्थाके सहित संयुक्त रहती हैं, किन्तु ब्रह्माण्डमें आत्माका अवस्थान कहां है, वह तो दृष्टिगोचर नहीं होता ?

गु०। विज्ञानविद लोगोंने विशेषरूपसे योगबलसे देखा हैं कि, जो वस्तु जिस वस्तुमें रहती हैं, वही अन्यके सहारे गृहीत होती है। हमलोगोंको देहकी वाह्यांशमें पञ्चभूतोंके बीच वायुसे पृथ्वी तक ये चार भूत अनुभव होते हैं, इसलिये मुख्यरूपसे ब्रह्माण्डमें भी इन चारों भूतोंका संस्थापन अनुभव कर सकते हैं। नेत्र रूप ग्रहण करते हैं, इसलिये सूर्य्य, चन्द्र और अग्न्यादिका रूप देखते हैं। त्वक स्पर्श शक्तिमय होनेसे उसके सहारे उष्णत्व, शैत्य और वायु आदिकी सत्ता उपलब्धि करते हैं ; और रसादि पृथ्वी आदिको पूर्व्वोक्त मात्रा गुणमय होनेसे स्वच्छन्दतासे अनुभव किया करते हैं। शून्यादि अति सूक्ष्म होनेसे उन्हें अनुभव करनेमें कष्ट होता है। अपनेमें ही जब आत्माका अनुभव दुरूह है, तब ब्रह्माण्डगत आत्माका अनुभव किस प्रकार होगा ? जीव देहकी बीच जो अनुभव सिद्धि लाभ करेगा, उसे ही ब्रह्माण्डमें बोध कर सकेगा। इसी निमित्त अणिमादि अष्टसिद्धिका प्रयोजन है ; स्वभावको ब्रह्माण्डपर न करनेसे ब्रह्माण्ड बोध होना असम्भव है। तो भी हम सामर्थ्य अनुसार आत्माका अवस्थान दिखाते हैं।

इसके पूर्व्वमें अहंतत्त्व प्रमाणकालमें कहा है, ईश्वर गुणशक्ति समूहको क्रियमाण करके उसके सहयोगसे अहंकारावस्था हुए। ईश्वरका सत्‌भाव ही आत्मा है। वही कर्त्तृत्व, कारणत्व और कार्य्यत्वरूपसे परिणत है। यह त्रिभाव ही एकत्रीभूत अवस्थामें जगत है। ईश्वर विराटरूपसे आत्माभावसे ब्रह्माण्डमें सत् उपायसे रूपान्तरित होनेसे उनको कर्त्तृत्वका प्रकाश होना चाहिये। वह कर्त्तृत्व ही मन अर्थात् ब्रह्मदृष्टि है। वह मन जड़जगतमें सूर्य्य

और चन्द्रकी सत्तारूपसे विराजित है। चन्द्र और सूर्य्यकी सत्तासे ये जो प्रकृतिगत प्रत्यक्ष ग्रह वस्तुका आविर्भाव है, उसमें ऐसा गुण है कि, जिसके सहारे सर्व्वत्र चैतन्यका आविर्भाव होता है। चन्द्रके सहारे वह चैतन्य प्रविष्ट हुआ करता है; सूर्य्यके सहारे वह आकर्षित होकर जगतके कार्य्यगत क्रियत्वमें आरोपित हुआ करता है। ये चन्द्र और सूर्य्य इस प्रकार क्यों हुए वा उनकी प्रत्यक्ष अवस्था क्या है? उसे ज्योतिषके ग्रहवर्णनास्थलमें द्रष्टव्य है। इतना ही चिन्तन करना उचित है कि, उनके बिना जगत प्रकाश नहीं हो सकता; उनके विकारसे जगत विच्छिन्न हो जाता है।

यह चन्द्र और सूर्य्यगत सत्ता जिसे ब्रह्माण्डगत मन कहा, उसे ही ईश्वरकी दृष्टि कहते हैं। उसमें ही आत्माभावसे ईश्वर अवस्थित हैं। चन्द्र और सूर्य्य सत्तामें ईश्वर विराटरूपसे अवस्थित होनेसे ही ब्रह्माण्डके सर्व्वत्र ही अवस्थित हैं, इसे कौन नहीं समझेगा? इसीलिये ब्रह्मको सूर्य्यरूपसे कल्पना करके सूर्य्यको गायत्रीके बीच स्थापित किया गया है। ब्रह्माण्डके बीच आत्मा और मनके अवस्थानका आभास दिया; किन्तु विज्ञानविद पाठक न होनेसे यह भाव उपलब्धि होना असम्भव है।

शि०। दृश्य जगतके सूक्ष्मकारण किस प्रकार प्रकाश हुए हैं?

गु०। तैजस अहंकारसे ब्रह्माण्डका ज्ञान और कर्म्ममय इन्द्रियां प्रकाश हुआ करती हैं। ब्रह्माण्डके वा सुप्त अवस्थाके सहित जब चैतन्यके सहयोगसे ईश्वरकी वासनाशक्ति मिलित होती है, उस अवस्थाको तैजस वा राजसिक अहंकार कहते हैं। उस अवस्थासे ब्रह्माण्डमें ज्ञान और कर्म्ममय इन्द्रिय प्रकाश हुआ करती हैं। ऐसा एक भाव जिसके सहारे कर्त्ताकी इच्छा कार्य्यमें परिणत होती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं। इस स्थलमें ब्रह्माण्डपक्षमें जिस भावके सहारे ईश्वर अपनी वासनाशक्तिको

दृश्यगठनके लिये अभिव्यक्त किया करते हैं, उसे ही इन्द्रिय कहते हैं। वह इन्द्रियभाव दो प्रकारका है, एक कर्म्ममय दूसरा ज्ञानमय। अदृष्टको कर्म्म कहते हैं। जिस उपायसे यह ब्रह्माण्ड प्रकाशित होगा, उस गठनके ईश्वर वासनागतभावको कर्म्म कहते हैं। इस कर्म्ममय इन्द्रियके सहारे ब्रह्माण्डके भूतादिके संस्थापक कार्य्य प्रकाश हुआ करते हैं। अर्थात् उसको जो दृश्यरूपसे जगतकारणात्मक किम्वा जीव वा ब्रह्माण्ड करणात्मक वासना है, उसके ही स्वभाव प्रकाश हुआ करते हैं। अर्थात् जहां जिस भावके पदार्थ प्रयोजनीय हैं, वे अभिव्यक्त हुआ करते हैं। जिसके सहारे मन अर्थात् दृष्टिशक्ति, कार्य्यभावसे अनुभव करके कर्म्मको सुशृङ्खला स्थापन करती है, उसे ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। आत्मा चैतन्यशक्तिके सहारे अनुभव करता है। तैजस अहङ्कारके सहारे ईश्वर कार्य्यरूपी दृश्यमें अनुभव करणात्मक शक्ति का आविर्भाव करते हैं, ऐसा समझना होगा। इसके सहारे ईश्वरका सृष्टिकार्य्य प्रमाणित, और दृश्यजगतका सूक्ष्मकारण तथा चैतन्यव्याप्ति प्रमाण की गई।

शि०। भूतोंके सूक्ष्मभावका प्रकाश किस प्रकार हुआ है ?

गु०। तामस अहङ्कारसे भूतोंके सूक्ष्मभाव प्रकाश हुए हैं। प्राणियोंमें स्थूल और सूक्ष्मभावके परिवर्त्तनात्मक उपादानको भूत कहते हैं। उस स्थूल भागको सूक्ष्मकारणावली ही ब्रह्माण्डपक्षमें दृश्यवाचक उपादान है। इसके पहिले दृष्टिवाचक उपादान प्रकाश वर्णित हुआ है। अब दृश्यवाचक उपादान प्रकाश वर्णित होता है। काल सहयोगसे जो असत्‌भाग चैतन्यके सहारे क्रिय होता है, उसे ही तामस अहंकार कहते हैं। ईश्वरको वासनामें जगतपक्षमें जो सब अदृष्टभाव अर्थात् किस उपादान से ब्रह्माण्ड प्रस्तुत होगा किस उपायसे वह वर्द्धित और क्षयीभूत

होगा, यह स्वभावात्मक अदृष्ट उपादान रहनेसे उसे संग्रह करके चैतन्यके सहायसे जो शक्ति असत्‌को अर्थात् दृश्य प्रस्तुत होनात्मक सुप्त पदार्थके मध्यगत होती है, उसे काल कहते हैं। उस काल-शक्तिकी और असत्त्वकी मिश्रणावस्था ही तामस अहंकार है। कालमें जगतके अर्थात् दृश्यके सूक्ष्म उपादानादिरूपी अदृष्ट संयुक्त थे कहके इस समय असत्‌के आकर्षणसे वे प्रकाश हुए। वह प्रथम प्रकाश अवस्था अति सूक्ष्म कारणमय सर्वव्याप्त है। वह अवस्था ही ब्रह्माण्डगठनीभूत अवस्थाका पूर्वभाव है, इसीलिये उस का नाम भूतसूक्ष्मभाग कहा जाता है।

वह भूतसूक्ष्मभाग आत्माका लिङ्ग अर्थात् वोधकरूपसे आकाश अर्थात् सर्वव्याप्ति नामसे कथित हुआ करता है। यह वोधक अर्थात् जगतकी सूक्ष्म अवस्था ही दृश्य, और मनेन्द्रियादि दृष्टि-शक्ति तथा ईश्वर आत्मारूपसे सर्वद्रष्टा हुए। किसीएक अवस्थाके मध्यगत न होनेसे सत्‌भाव नहीं रह सकता; इसीलिये दृश्यके अर्थात् आकाशके मध्यमें ही द्रष्टाका संस्थान प्रमाण होनेसे आकाश को—श्रुति और पुराणमें ईश्वरका वोधक आवरण कहा गया है।

जैसे सामान्य दृश्य देखना हो तो, मनेन्द्रियके सहित आत्मा को तन्मध्यगत होना होता है। वैसे ही ईश्वर भी आत्मारूपसे ब्रह्माण्डके सूक्ष्म अवस्थारूपी शून्यके सहारे आवरित हुए हैं; इसीलिये आकाशको आत्माका लिङ्ग अर्थात् शरीर वा आवरण किम्वा वोधक कहा गया।"

कलांश कहनेसे ईश्वर—वासनागत अदृष्ट प्रकाशादि जानो। मायांश कहनेसे चैतन्यरूपी मनेन्द्रियादि हैं। इन दोनों अंशोंका संयोग होनेसे और वे ईश्वरकी दृष्टिशक्ति होनेसे जो ब्रह्माण्डका सूक्ष्म उपादानरूपी शून्य प्रकाश हुआ, वह आत्मारूपी भगवान कर्तृक वोधित हुआ।

इस शून्य (आकाश) की मात्रागुण शब्द है। अर्थात् जिस सूक्ष्मगुणके बोध होनेसे जीवोंके पक्षमें शून्य (आकाश) बोध होता है, उसे ही शब्द कहते हैं। भूतादि स्वभाव और मनेन्द्रियको शक्तिसमूह समविष्ट होकर एक बोधकभावको प्रकाश करती हैं; उसे ही शब्द कहते हैं। जैसे "हस्ती" यह शब्द उच्चारण होते ही वक्ताके पक्षमें पहिले मनादिके सहारे एक कल्पनाको स्थिर करना होता है, फिर इन्द्रियादिकी सहायसे अर्थात् वासनादिके सहारे उसे प्रकाश करना होता है और भूतादिके तथा वायवादिके सहारे उसे बोधकरूपसे परिणत करना होता है; तब "हस्ती" भाव प्रकाश होता और अपरका बोधक होता है। इसी प्रकार बोधकभावको शब्द कहा जाता है; कहके वायुको जो भाव बोध कराता है, उसका नित्यत्व वर्त्तमान है। उस बोधकभावको वैज्ञानिकोंने विशेष मीमांसा करके देखा है, स्पर्शादि किसीमें भी नहीं है और यही सबका प्रकाशक है। आकाशरूपी भूतसूक्ष्म का बोधकभाव सक्रिय होकर अर्थात् अपनी अन्तरस्थ सूक्ष्मअवस्था को स्थूल करनेके लिये स्पर्शमात्रात्मक वायुका प्रकाश किया करता है। शीतोष्णादि गुरु लघुत्वादि वाचक अवस्थाको स्पर्श कहते हैं। इस वाचक अवस्थामें एकमात्र गुण शब्द अर्थात् बोधक अवस्थान न रहनेसे ब्रह्माण्डमें कोई बोध न कर सकती। सूक्ष्मकारणावली किञ्चिन्मात्र स्थूल होनेसे उसकी एक प्रकार गति होती है अर्थात् कालादिके क्षोभणसे चैतन्यादिके कार्य्यत्वमें आरोपणसे शून्य (आकाश) अपनी बोधक सामर्थ्यके सहित स्पर्श-क्षमतामय एक पदार्थका प्रकाश करता है, वह प्रवाहित होता है, इसलिये उसका नाम वायु है।

ये शब्दादि मात्रागुण उनमें प्रकाश होनेका कारण यह है कि,—ईश्वर जब द्रष्टा हैं, तब दृश्यरूपी जगतको जिस सूक्ष्म

कारणके सहारे देखते हैं. उस सूक्ष्मकारणावलीकी बोधक मात्राको शब्द कहते हैं; उसके सहारे ईश्वर दृश्यरूपी जगत्कार्य्य बोध करते हैं, जीवगत आत्मा भी उसी नियमसे कार्य्यादि और रूपादि बोध करता है, ऐसा समझना होगा। जगतमें जो कुछ कार्य्य अब तक बोध हुए हैं, उनके बीच स्पर्शशक्तिकी अपेक्षा प्रथम बोधक और कुछ नहीं हैं। क्योंकि स्थूलभागकी अपेक्षा सूक्ष्मभाग सबसे अगाड़ी बोधक है और सब सूक्ष्म अवस्थाओंके बीच वायु ही सबकी अपेक्षा सूक्ष्म है। इसीलिये वायवीयांशको और उसके गुणको शून्यावस्थासे प्रथम प्रकाश कहके निर्णीत किया गया है। चैतन्य की आकर्षण और विस्फारण सामर्थ्य शून्यमें रहनेसे वायुमें वह प्रविष्ट हुई। वायु आकर्षण और विस्फारणादि सामर्थ्यके सहारे प्रवाहित हुआ।

आकाशका बोधक भाव और वायुका स्पर्शभाव ये दोनो भाव संयुक्त होकर आत्मामें एक प्रकार विम्ब प्रतिफलित होता है, उसे रूप कहते हैं। तेजके प्रतिफलित अवस्थामें जो प्रतिभाति प्रकाश होती है, उसे रूप कहते हैं, उस प्रतिफलन अवस्थाके सहारे तेज है, वह शब्द और स्पर्शादि गुणके जरिये ज्ञात हो सकता है। और तेज किसी प्रकार क्रियाहीनत्व अवस्थामें प्रकाश नहीं होता। इसीलिये विज्ञानमें स्थिर हुआ है कि, वायु ही सबकी अपेक्षा आकर्षण और विकर्षणादिके सहारे सक्रिय है। उस सक्रियभावसे तथा मूलके सूक्ष्मांशसे तेज प्रकाश हुआ करता है। इस तेजको रूपके सहारे ईश्वर बोध करते हैं। क्यों बोध करते हैं?—वासनादिका संयोग उसमें है, इसी निमित्त बोध करते हैं।

वायुके आकर्षणादि और तेजके उष्णत्वादिके सहारे एक प्रकार सूक्ष्मकारणावलीका द्रवीभाव अर्थात् मिश्रिकरणभाव होता है। वह मिश्रित अवस्था बोध होनेके लिये शब्द स्पर्शादि और

रूपादि संयुक्त एक प्रकार तेजज्ञापक आस्वाद उसमें रहता है, उस आस्वाद प्रकाशक मिश्र अवस्थाको रस कहते हैं। और मिश्रीभूत पदार्थको नभ वा जल कहते हैं। इस जलको तिक्तादि रस विशिष्ट और शून्यादि सब भूतांश तथा मूलकारणावलीकी सिन्धगावस्था समझना होगा।

तेजको द्रवीकरणशक्ति रहनेसे उससे वारिरूपका प्रकाश कहा गया। इन रसादिको इन्द्रियके सहारे ईश्वरने सृष्टि किया। अनन्तर उस द्रवत्वको तथा तेजको परस्पर वायु संघटनात्मक क्रिया और मूलकारण सहयोगसे एक प्रकार पदार्थ उत्पन्न होता है, उसे पृथ्वी वा मृत्तिका कहते हैं। उस मृत्तिकाका बोधक गुण गन्ध है। रसादि तिक्तादि भेदसे और शून्यादिकी सत्ताभेदसे तेजकी क्रियामतसे एक प्रकार विकारभाव होता है, उससे एक प्रकार सूक्ष्म वायवीय तेजका प्रकाश होता है, उसे गन्ध कहते हैं। मृदु कठोरादिमतसे गन्धकी अनेक प्रकारकी वृत्ति है। इस गन्धके सहारे ईश्वर पृथ्वित्व बोध करते हैं।

ये जगतमें भूतप्रपञ्च और उनके शब्दादि जो सब गुण चैतन्यके सहित मिलित रहनेसे ईश्वर बोध करते हैं, वह कहा गया। काल और मायांशका संयोग रहनेसे भूतरूपी जगतकी कारणावली ईश्वरको दृष्ट हुई, भूत कहनेसे सब कोई पदार्थ कहके बोध न करें। भूतादिकी जो कारणावस्था कही गई, इसमें अबतक जड़त्व का आरोप नहीं हुआ। ये पांचो ही सृष्टिके पक्षमें मूलकारण हैं। ये कारणसमूह कार्य्यमें परिणत होनेसे अनेक भागमें भाजित हुआ करते हैं। और उनके अन्तरमें अनेक जड़ पदार्थोंकी अवस्थिति होती है।

नभः आदि पांचभूत हैं; उनके बीच जो अगाड़ी प्रकाश हुए हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं, परवर्त्तीसमूह परस्पर परस्परापेक्षा कनिष्ट हैं।

जैसे आकाशकी अपेक्षा वायु कनिष्ट है वायुकी अपेक्षा अग्नि कनिष्ट है। कनिष्ट होनेसे ही उसे पूर्व्ववर्त्ती श्रेष्ठोंकि गुणोंका अधिकारी होना होता है। अर्थात् पृथ्वी पांचवांभूत है, उसका निज गुण गन्ध है; उससे श्रेष्ठ जलादि अन्य चारभूत रहनेसे उसमें उन चारोंकि गुण संयुक्त हुआ करते हैं। पूर्व्ववर्त्ती भूतोंके कारणके सहित परवर्त्ती भूतोंका संयोग रहनेसे उसे उनका गुणत्व लाभ हुआ करता है। ईश्वर चैतन्यके सहयोगसे हम सब गुणोंको अनुभव करते हैं अर्थात् सब ही उनके अनुभवके अन्तर्गत हैं।

शि०। क्या भूतप्रपञ्च ही ब्रह्माण्ड सृजन किया था?

गु०। आत्मस्वभावजात तीनों शक्तियोंसे सृष्ट होनेसे इन तीनों शक्तियोंसे युक्त गुणका रहना सम्भव होता है। ब्रह्मके सगुणभावको आत्मा कहते हैं। ईश्वरकी वासनामें इस ब्रह्माण्ड सृजन पालन और हरणात्मक त्रिविध प्राक्‌भाव था, उस अभावको कार्य्यमें परिणत करनेमें ईश्वर चैतन्यादिके आकर्षणसे सगुण हुए। क्योंकि क्रियाप्रकाशकशक्तिको चैतन्यशक्ति कहते हैं। ब्रह्मका जो कर्त्तव्य था, वही आत्माका स्वभावरूपी हुआ। क्योंकि बीजका गुणभाग ही वृक्षके स्वभावमें परिणत हुआ करता है। कालशक्तिके सहारे ब्रह्ममें कार्य्यप्रकाश अर्थात् सृष्टिशक्ति थी; उस सृष्टिप्रकाशकभाव को रजोगुण कहते हैं। आत्माके पक्षमें यह रजोगुण रजोस्वभाव-रूपसे परिणत होकर ईश्वरकी वासनामतसे कार्य्य आरम्भ करके पहिले भूतादिकी सृष्टि किया। चैतन्यशक्ति ब्रह्ममें थी, उसके सहारे कार्य्य प्रकाश वा परिणत होते हैं। उस शक्तिको सत्त्वगुण कहते हैं। उसके सहारे ऐशिकभाव संरक्षित रहनेसे वासना कार्य्यपर हुआ करती है। वह शक्ति आत्मामें प्रवेश होते ही आत्मा सत्त्वस्वभावमय हुआ। ब्रह्ममें जो असत् अर्थात् कारणमय

सुप्तशक्ति थी, वही काल और चैतन्यके पेषणसे आत्माकी आवरण अर्थात् तमोगुणरूपी हुई। आत्मा कारणावलीके सहारे आहत्त होता है, इसलिये उसे तमोस्वभाव कहते हैं।

इस त्रिविधस्वभावसे आत्मा इस ब्रह्माण्डको प्रकाश करके लीला करता है। ये त्रिविध स्वभाव कारण मध्यगत होकर ऐशिक प्रधानाशक्ति वासनासंयुक्त होनेसे ही इस चराचर ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुआ करती है। जब तक वासना इन स्वभावोंके मध्यवर्त्ती नहीं रहती, तब तक इन स्वभावोंसे जो सब कार्य्य प्रकाश होते हैं, वे वियुक्त रहते हैं। परस्परका संयोग नहीं होता। जैसे कीचड़, चक्र, यष्टिके बीचमें शक्ति कुम्भकारकी इच्छा सक्रिय न होनेसे कीचड़ आदिको कुछ सामर्थ नहीं है कि, घटादि प्रस्तुत करनेके लिये प्रयुक्त हो सकें। वैसे ही ईश्वरकी वासनाके विना भूतादिकी भी शक्तियोंको कुछ सामर्थ्य नहीं है कि, ब्रह्माण्ड प्रस्तुत करें। भूतसमूह निज स्वभावके आकार स्वरूप ऐशिक चैतन्यको सदा सर्व्वदा आकर्षण करने लगे।

शि०। यह ब्रह्माण्ड और उसके मध्यगतजीव किन किन उपायोंसे सृष्ट होते हैं?

गु०। ईश्वरके तेजसे भूतादि सृष्ट होते हैं; भूतसमूह आत्माके आवरणरूपी होनेसे यह ब्रह्माण्ड और तन्मध्यगत जीव सृष्ट हुआ करते हैं। जीव होना हो तो, आत्माको घटमध्यगत वारिकी भांति उपाधियुक्त होना होगा। और भूत तथा ईश्वर संमिश्रणसे सजीवत्वरूपी ईश्वर स्वभाव और सत्त्वादिगुणरूपी भूतस्वभाव उन्हें लाभ करना होगा। अर्थात् जिस स्वभावजात जो जो कार्य्य हैं, वे कार्य्य उसी स्वभावपर होनेसे ही शुभफल और कर्त्तव्यसाधन करना हुआ करता है। जीवगण और ब्रह्माण्ड उभय स्वभावपर होने पर भी ऐसी नैसर्गिकशक्तिकी आवश्यकता हुआ करती है कि,

जिसके सहारे जीव भूतको और ईश्वरको कर्त्तव्य दिखा सकते हैं। आहार, निद्रा, भय, क्रोध मैथुनादि जीवोंके भूतगत स्वभाव हैं और जीवत्व तथा ज्ञातृत्व ऐशिक स्वभाव है। ये दोनो स्वभाव जीवदेहमें जिससे स्थापित होते हैं, उसके कौशलको ही जीविका-रूपसे कल्पित किया गया है। श्वासादिकी शक्ति और इन्द्रियादि की शक्ति सब ही भौतिक स्वभाव प्रकाशकी उपाय हैं। और मन तथा वासनादि ऐशिकस्वभाव प्रकाशको उपाय हैं। ये दोनों उपाया-वली तथा जिस स्थलमें ये उपायावली क्रियापर होंगी ; विशेष करके यह ब्रह्माण्ड किस उपायसे प्रत्यक्ष होगा वा प्रस्तुत होगा, उसे ही स्थिर करनेके लिये भौतिक प्रकृति स्वयं ही कर्त्तव्य प्रकाश आरम्भ करती है।

शि०। तत्त्व किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं ?

गु०। इसके पहिले कहा गया है कि ;—महतत्त्वका पहिले प्रकाश हुआ है, उसके अन्तमें अहङ्कार, अहङ्कारसे मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चशब्दादि तन्मात्रा तथा पञ्च-भूत प्रकाश हुए। ये सब समेत त्रयोविंशति (तेईस) तत्त्व हुईं। जिस पदार्थको अमिश्रभावसे स्थिति है और उत्पत्ति, विनाश वा आविर्भाव तिरोभाव है ; उसी सूक्ष्मपदबोधक पदार्थको तत्त्व कहते हैं। विज्ञानविदोंने विशेष आलोचना करके देखा है कि ;—महतत्त्वसे पञ्चभूत पर्य्यन्त सबके ही मूलांश अमिश्र और सबके ही परस्पर आविर्भाव तिरोभाव लीलामय हैं।

आर्य्यवादी लोग कहते हैं कि, जगतके मध्यगत भूतादि सर्व्वदा ही प्रकृतिके आकर्षणसे क्रिया निमित्त परस्पर मिश्रित होकर विकार भावापन्न हो रहे हैं ; इसीलिये अमिश्र तथा विशुद्ध भूत-भाग पृथिवीके सन्निकटमें नहीं पाये जाते।

चन्द्र-सूर्य्यमण्डल सन्निहित वायु वा वारिको परीक्षा करनेसे

यह विशेष उपलब्धिभूत हो सकेगा। क्योंकि एकके तेजके सहित दूसरेका तेज साम्य.होनेसे तब मिलना हो सकता है। जैसे जलकी अपेक्षा तेल लघु शक्तिमान होनेसे जलके ऊपर अमिश्रभावसे वह स्थापित होता है, वैसे ही परस्पर शक्तिको असाम्यप्रयुक्त यह जगत और जीव संरचित होते हैं। जगतके बीच जीव सबकी अपेक्षा गुरु है। जीवकी अपेक्षा पृथिवी लघु है। पृथ्वीकी अपेक्षा वारि लघु है। जलकी अपेक्षा तेज लघु है। गुरु वस्तुओंको आकर्षण करनेके लिये अमिश्र लघुवस्तुओंके आधिक्यका प्रयोजन हुआ करता है; अन्यथा गुरुत्व लघुत्वको समीभूत करके महागुरु हो जाता है। इन सबका विशद विचार करके पंडितोंने देखा है, जीवकी अपेक्षा पृथिवीका विस्तार अधिक है, पृथिवीकी अपेक्षा वारि (जल) का विस्तार अधिक है; और अधिक होके भी उनके बीच जीव और जगत (विकारित भूतांश) भिन्न सब ही अमिश्र भावापन्न हैं। क्योंकि मिश्रणभाव रहनेसे गुरुअंश लघुशक्तिको अपनेमें प्रवेश कराके महागुरु हो सकते हैं। इसी प्रकारसे अमिश्रणगुण और तिरोभाव आविर्भाव गुणयुक्त ब्रह्माण्डगत कारणावलीको तत्त्व कहते हैं।

शि०। आपने त्रयोविंशति तत्त्व प्रकाश करके उनका गुणभाग निर्देश किया, किन्तु प्रकृतिके सहित चतुर्विंशति तत्त्व क्यों नहीं कहा? और प्रकृति जो परमें मिश्रित हुई है, उसका ही प्रमाण क्या है?

गु०। विज्ञानमें विशेष विवेचनासे जाना जाता है कि, स्वभावसे अद्यापि जो कुछ कार्य्य प्रकाश हुए हैं, अगाड़ी उनके उपकरण संग्रहीत होकर फिर उसके बीच संकल्पका प्रकाश होता है। जैसे एक बीजको अंकुरित करना हो तो, रस और पृथ्वीमें उसे डालनेसे पहिले बीज अंकुर प्रकाशक उपकरण वा उपाय

चिन्ह प्रकाश हुआ करते हैं। अर्थात् रससे वीज स्फीत होते हैं, फिर उसके आवरण द्विखंड होते हैं। फिर तेजके मेलसे अंकुरका प्राक्भाग (शिखामूल) प्रकाश होनेसे उसके अन्तरमें अंकुर प्रकाश हुआ करते हैं। वैसे ही यह ब्रह्माण्ड प्रकाश होनेके पहिले अगाड़ी जीव और जगतगत उपादानरूपसे ये त्रयोविंशति तत्त्व प्रकाश होनेसे तत्त्वके गुणभाग प्रकाश करनेके लिये ईश्वर-वासनायुक्त कालशक्तिने उसमें प्रवेश किया। इस कर्म्म प्रयोजिका कालरूपिणीशक्तिको महाप्रकृति कहते हैं। अर्थात् जीव वा जगत जिस उपायसे इन तत्त्व समूहोंके गुणोंसे प्रकाश होंगे उनके स्वभाव इस शक्तिमें हैं, इसलिये उसे जीव और जगतका स्वभाव वा प्रकृति कहते हैं। इस प्रकृतिको लेकर चतुर्विंशति तत्त्व गिनी गई हैं। ये तत्त्वसमूह इस समय परस्पर गुणभाग प्रकाश करने लगीं; किन्तु अमिश्रण गुणसे किसीके सहित न मिलीं; क्योंकि मिश्रण करणात्मक कर्म्मशक्ति न रहनेसे कौन सबको कार्य्यपर करेगा। वह स्वतः ईश्वरकी वासनाशक्ति है। उस शक्तिको ईश्वरने कर्म्म करानेके लिये उसमें आह्वान किया। उस शक्तिने ईश्वरके विम्व अर्थात् आत्माको पुरुषरूपसे लेकर उन तत्त्वसमूहोंको कार्य्यपर करना आरम्भ किया।

ईश्वरके स्वकीयशक्तिको लय नहीं है, इसलिये उसे तत्त्व नहीं कहा गया। जिससे ईश्वरको वासनागत और पूर्वप्रलयगत कारण-समूह संग्रहीत अर्थात् कलित रहते हैं, उसे कालशक्ति कहते हैं। कालको देवी कहनेका तात्पर्य्य यह है कि,—देवी, शब्दका अर्थ द्योतनकारिणी है, अर्थात् गुणप्रकाशकारिणी है। त्रयोविंशति तत्त्वोंमें जो समूहगुण थे, उसे यह शक्ति प्रकृतिरूपिणी होकर प्रकाश और ह्रास करती है; इसलिये उसका नाम काली देवी हुआ।

शि० । त्रयोविंशति तत्त्व किस प्रकार कार्य्यमें परिणत हुईं ?

गु० । ईश्वरने स्वशक्ति उसमें अनुप्रवेश कराके क्या किया ? उन गुण समूहोंको कार्य्यमें परिणत करने और उन गुणोंके बीच जीवोंके वा जगतके जिस प्रकार लुप्त अदृष्ट रहे हैं, उसे प्रकाश करनेके लिये तत्त्वसमूहोंको एकत्वमें संयोजन किया ।

त्रयोविंशतिगण ईश्वरके स्वरूपके सहारे सक्रिय और अदृष्ट प्रकाशको उपायको प्राप्त होकर अपना अपना अंश अर्थात् ब्रह्माण्ड विकाशक गुण जन्माकर एकत्वमें संयोजन किया । अर्थात् ऐशिक स्वभावमें उनके गुणसमूह एकत्वमें मिले । मिलने पर एक प्रकार रूपका वा शरीरका प्रकाश हुआ, उसे अधिपुरुष वा वैराजदेह कहते हैं । ईश्वर तत्त्वसमूहके मध्यगत हुए, इसलिये इस स्थलमें ईश्वरको पुरुष कहा गया । पुरुषको वेष्टन वा अधिकार करके ये गुणसमूह एक आवरणरूपी हुए, इसलिये वे अधिपुरुषरूपी विराटके शरीररूपी हुए ।

ब्रह्माण्डमें व्याप्त अदृष्ट विधाता और चैतन्यादि सब शक्तियोंके अधिष्ठाता आत्मारूप ब्रह्मविम्बको तत्त्वमध्यगत सगुण ईश्वरके विराट (अर्थात् विशेषरूपसे राजित) रूप कहते हैं । इस सर्व्व-व्याप्तिभावसे मिश्रित जगत और जीवभाव परमें प्रकाश हैं ।

प्रकृतिके सम्मिलनसे ये चतुर्विंशतिगणोंने ईश्वरको अर्थात् अदृष्ट-विधाता वासनायुक्त आत्माको अपने अपने मिश्रित गुणरूपी आवरणके बीच पाकर प्रकृति और ईश्वरेच्छाके सहारे सक्रिय होकर इस आवरणको एक प्रकार नूतन अवस्थामें अवस्थान्तरित किया । उस अवस्थाको ही ब्रह्माण्डकोष कहते हैं । वह अण्डकोष कैसा है ? उसमें ही परमें विश्व तथा जीव सृजित होकर स्थित होंगे ।

विराटरूपी ईश्वर त्रयोविंशतिगण सम्भूत मात्रासमूहके संयोगसे जो हिरण्मय * अण्डकोष वा ब्रह्माण्ड प्रस्तुत हुआ; उसके अन्तरस्थ तरलभागके अर्थात् सर्वकारणके मिश्रितभागके बीच तब तक वास किया, जब तक वह प्रकृति वा कालशक्ति जीव तथा जगतरूपसे इस जलरूपी कारण और आवरणरूपी मात्राको परिणत न करेगी। किसके सहित ईश्वर रहे? जीव और जगतके अदृष्टके सहित अर्थात् किस रूपसे कितने रूपसे जीव वा किस प्रकारसे जगत वा जीवात्मा प्रस्तुत होंगे, उसका विधाहगुण भाग लेकर रहे।

शि०। जीव सृष्टि किस प्रकारसे हुई?

गु०। प्रकृतिके सहारे कारणसमूहके परस्परगुण प्रकाश और रोमिकशक्तिमें संयोग होते होते ऐसी एक अवस्था उपस्थित हुई जिससे जगत और जीव प्रकाश हो सके; उसी अवस्थामें ईश्वरने अपने स्वभावको निज शक्तिगत जीव और जगत्प्रकाशक स्वभावको प्रत्येक वस्तुके अन्तर्यामी जीवात्मा वा चैतन्य विधाता शक्तिरूपसे एकभागमें भाजित किया। जीवके पक्षमें कर्मकारक, कर्मप्रयोजन बोधक प्राणरूपसे स्वभावके अपरांशको दश भागमें भाजित किया। और यह क्रिया तथा चैतन्यसंयोग भोग करनेके लिये स्वभावके अन्य अंशसे तीन अंशमय भोगदेह प्रस्तुत किया।

इन दश प्राणोंके बीच नागादि पंचप्राण शरीरके वाह्यद्वारमें रहके शरीरको सृजन करते हैं। प्राणादि पंचवायु शरीरके बीच रहके शरीररक्षा करते हैं। इन दश प्राणोंका परिचय योगशास्त्रमें ज्ञातव्य है। शरीरके तीन अंशका नाम अध्यात्म—अर्थात् जिस अंशमें जीवात्मा रहता है। अधिदैव—अर्थात् मनादि जिस अंशमें

---

* हिरण्य कहनेसे सूक्ष्मकारण जानो। इस स्थलमें तत्त्व-समूहको मिश्रित मात्राभाग वा गुणभाग है।

रहते हैं। अधिभूत—अर्थात् भौतिकांश जिस भागमें रहते हैं। स्वभावतः इस त्रिभागीय शरीरको भोगस्थल कहते हैं। क्योंकि भूतादिमें काल कर्त्वादिका सम्भोग होता है। मानसदेहमें अनुभवात्मक समस्त क्रिया उपभोग होती हैं। जीवात्ममयमें किम्वा इन्द्रियशक्तियुक्त अंशमें क्रियाके सहारे चारितार्थ लाभ हुआ करती है।

ईश्वरने जगतको आत्मा वा जीवात्मा रूपसे निज स्वभावको एकभागमें विभक्त किया। आत्माको क्रिया प्रकाश सम्पादनके लिये जीवभाव संरक्षणके निमित्त दश प्राणरूपसे विभक्त किया। यह संरक्षण और जीवभाव जिस अंशके सहारे सर्वकर्त्तव्य उपभोग करता है, उस भोगांशको अध्यात्मादि त्रिविधशरीर कहते हैं। इसी भावसे ईश्वर जीव कारणरूपी हुए।

ईश्वरके जिस स्वभावके सहारे इसके पूर्व्वमें प्राणादि, आत्मा और देहादि प्रस्तुत हुए, वे ही सब अंश प्राणित्वके हेतु वा जीवत्व होते हैं। अर्थात् इस अंशविशिष्ट मात्र ही प्राणी नामसे अविहित हुए।

यह आदिभूत आत्मातत्त्व सम्भूत मात्राके जिस अंशसे प्राणित्व-रूपसे अवतीर्ण हुआ, उस अंशको जगत अर्थात् भूतसंयुक्त प्राणियोंका आवास वा जगत कहा जाता है।

शि०। भगवान अण्डमध्यगत होकर कालमतसे विराटरूप धारण करके प्राणरूपसे दशधा, जीवात्मा अर्थात् अन्तःकरणरूपसे एकधा और शरीर त्रयांशरूपसे त्रिधा हुए। यह क्या किसी तत्त्वके बीच पाया जाता है?

महदादिगण सृष्ट होकर निज निज चैतन्य स्वभाववशसे सर्व्वकारणरूपी ईश्वरको जगत और जीवोंके निमित्त आकर्षण करते थे। ईश्वर उस आकर्षणको बोध करके अर्थात् आत्मचैतन्यसे उसे अनुभव करके उनकी कामना पूर्ण करनेके लिये विराटरूपी

हुए। वह दश प्राणरूपी संस्कारके सहारे विष्णुरूपसे इस विश्व को रक्षा करते हैं। अन्तःकरणरूपी जीवात्माके सहारे लीला अनुभव करते हैं। और शरीरगत तीन अंशोंके सहारे जगतके उपादान भोग करते हैं। यह जो विराट अर्थात् सर्वव्याप्ति ईश्वरभाव है, उसे स्वयं ही अपनेमें आलोचना करके प्रस्तुत किया। क्योंकि विज्ञानके सहारे विशेष देखा गया है कि, इन प्राणादिकी शक्ति समभावसे जगतमें और जीवोंमें क्रिया करती हैं, किन्तु किसी तत्त्वके बीच नहीं हैं। वे तत्त्वसमूहको संयुक्तमात्र करके लीला करती हैं।

शि०। जीव ईश्वरके सहारे संयोजित होकर किस प्रकार सज्जित हुआ ?

गु०। ईश्वरने विराटअंशसे जीवरूपी होनेके लिये प्रस्तुत होकर तत्त्वग्रामको एकत्रीभूत करनेके लिये दश प्राणरूपको निज-स्वभावके एकांशसे प्रकाश किया। उन तत्त्वग्रामोंने किस रूपसे किस अंशमें रहके आत्माका कैसा आकार होगा, उसके लिये उसे आध्यात्मादिभेदसे तीनभागमें व्यवस्थित किया। और उन तत्त्व-ग्रामोंके मध्यवर्त्ती होकर यह दृश्य तथा प्राकृतिक घटना भोग करनेके लिये अन्तःकरणरूपसे एकधा हुए।

जीवोंके ये प्राण, मन और भूतादिरूपी तत्त्वमय आवरणोंका कारणगत बीज वह ऐशिकचैतन्य वा इच्छा है। क्योंकि प्रकृति से ऐसी किसी सामर्थ्यका प्रकाश नहीं देखा जाता कि, जिसके सहारे भूतादि तत्त्वसे जीवोंको देहके मांसादि मनादि और अन्तः-करण प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार भोक्ता और भोगगृह और भोज्य प्रस्तुत करनेके बाद ईश्वर किस उपायसे जीवरूपसे समस्त भोग करते हैं, वही प्रकाश किया जाता है।

आत्माने पहिले दृश्य देखकर विस्मय हेतु मनोभाव प्रकाश किया। वह अन्तःकरण भाव तेजके सहारे प्रकाशित होनेके लिये शरीरमें वदनरूपी छिद्रका प्रकाश हुआ। उस स्थानसे भिन्न अन्तःकरणके वाच्य अभिप्राय प्रकाश सहजमें होनेके लिये स्वतः तेज वहां अधिष्ठित हो रहा। क्योंकि शक्ति न होनेसे वाच्यभाव प्रकाश होनेकी उपाय नहीं है। उस शक्तिकी सामर्थ्यसे जीवगण वाक्य प्रयोग किया करते हैं। वाक्य कहनेसे किसी एक भावके बोध्य अन्तःकरणका प्रकाश्य आभाष जानो। क्योंकि शब्द वा बोधकभाव न होनेसे ये वाक्यभाव अन्यके श्रुत नहीं हो सकते। बोधक होनेके लिये वायुकी आवश्यकता है, अन्यथा आघातमात्र स्पर्श होनेकी अन्य कोई शक्ति नहीं है। तेज न होनेसे वायु आकर्षित नहीं होता, वायु न होनेसे तेजकी व्याप्ति नहीं होती; शब्द वा बोधकरूपी शून्य न होनेसे आघातजात स्वरकी क्या अभिप्राय है, उसे बोध होनेकी उपाय नहीं है। अकेले तेजकी सहायसे ही अन्यान्य भूत वाक्यरूपी होकर उस ईश्वरकी वासना सेवा करते हैं। इसलिये वाक्य क्रियामें भूतरूपी देवगण, एकभावसे ईश्वर द्वारा रूपान्तरित होकर जीवकी सेवा करने लगे।

इसी प्रकार मुखके बीच रस ग्रहणके निमित्त एक स्थानका आविर्भाव हुआ; उसे तालु कहते हैं। तालु मुखके बीच एक ऐसा स्थान है, जिसके सहारे रसगत तेजका आस्वादन हुआ करता है। वह तालु प्रकाश होनेसे वरुण अर्थात् जलरूपी देवता वहां अधिष्ठित हुए। क्योंकि रस न होनेसे उसे ग्रहण करनेकी सामर्थ्य अन्य किसीको भी नहीं है। तेज तेजको ग्रहण कर सकता है। वायुसे वायुको ग्रहण कर सकते हैं। वैसे ही रससे ही रस को ग्रहण किया करते हैं। जलमय वरुणदेवता तालुमें अधिष्ठित होने पर उनकी क्रिया प्रकाशके लिये एक इन्द्रियका प्रकाश

हुआ ; उसे जिह्वा कहते हैं। जिह्वाकी सामर्थ्य से रसयुक्त वस्तुओं का ग्रहण करना तथा आस्वादन करना होता है। जिह्वाके सहित तालुका ऐक्य रहनेसे सदा जिह्वामें रस रहता है, उसी रसके सहारे जिह्वा अपरके रसको ग्रहण करके कटु तिक्तादि अनुभव करती है। तेजके तारतम्यसे रस ही किसी अंशसे मिष्ट किसी अंशसे तिक्त हुआ करता है। तेजसे जलका जन्म है ; और तालुमें तेज बोधकशक्तिरूपी वरुणशक्ति है कहके जिह्वाके सहारे रसादि बोध हुआ करते हैं। कटु तिक्तादि बोध करणात्मक सामर्थ्य एकमात्र अन्तःकरणमें है, उसके सहारे जीवात्मा बोध करता है।

इसी प्रकार पृथ्वीगत तेजको अर्थात् गन्धको अनुभव करनेके लिये जीवात्मा वा विराटरूपी ईश्वरके तत्त्वगठित देहमें एक ऐसे भावका आविर्भाव हुआ, जिसे नासिका कहते हैं। नासिका एक द्वारमात्र है, उसके बीच घ्राण बोध करनेको एक शक्ति है, उसे अश्विनीकुमार देवता कहते हैं। तेज और वायुमिश्रित ऐसे दो अनुभवात्मक स्थान नासिकाके बीच हैं, उसे युगल अश्विनी-कुमार कहते हैं। वह वायुके एक अंश हैं। उस शक्तिके सहारे जीवात्मा गन्धरूपी तत्त्वको अनुभव किया करता है।

इसी प्रकार अन्तःकरण वृत्तिको रूप देखनेकी इच्छा होने पर नेत्र नाम अंश देहके बीच प्रकाशित हुए। उन नेत्रोंमें आदित्यरूपसे तेजशक्ति अधिष्ठित हुई। उस तेजके सहारे अन्य तेज आकृष्ट होनेसे नेत्रके बीच एक रूपग्राही प्रतिफलनशक्तिका आविर्भाव होता है, उसके सहारे जीव रूप दर्शन करते हैं। जड़-जगतके समस्त द्रव्यके वर्णको ही रूप समझना होगा। विज्ञान-विद लोगोंने देखा है कि, नेत्रके तेजसे बाह्यजगतगत ज्योतिको ऐक्य होनेसे जिस भागमें ज्योति नहीं है, उस भागमें नेत्रसे एक

प्रतिफलित आभा पतित हुआ करती है। उस आभाके सहारे रूप दृष्ट हुआ करता है। देखनेकी जो शक्ति है, उसे आदित्य या त्वष्टा वा अर्क कहते हैं। इस शक्तिके सहारे दृश्य गृहीत होने से जीव रूप अनुभव करते हैं।

गुरुत्व और लघुत्व वा उष्ण शीतत्वके बोधकको स्पर्श कहते हैं। ईश्वरने जीवात्मारूपसे स्पर्शन बोधरूपी भोगकी इच्छा किया, तब स्पर्शशक्तिबोधक चर्मरूप आवरण तत्त्वमय शरीरमें प्रकाश हुआ। उस चर्मके सहारे जिससे जीवात्मा स्पर्श अनुभव कर सके, उसी लिये वायुरूपसे भूत देवता उसके अन्तरमें अधिष्ठित हुआ करते हैं। उस वायुके सहित अन्तःकरणके प्राणरूपी स्वभावका संमिश्रण रहनेसे आत्मा उसे अनुभव किया करता है। एक वायु अश्विनीकुमाररूपसे तथा स्पर्शात्मक अनिलरूपसे ईश्वरेच्छासे रूपान्तरित हुआ।

उस विभुकी सुननेकी वासनासे कान प्रकाश होनेसे उसमें दिक्शक्तिने अधिष्ठित होकर श्रोतेन्द्रियका प्रकाश किया। उसके सहारे जीवोंको शब्द (बोधक) ज्ञान लाभ हुआ करता है। शब्दके सीमा बोधकको दिक्शक्ति कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड महतत्त्वादिसे त्रयोविंशति तत्त्व प्रत्येक अमिश्र रहके चैतन्यके आकर्षणसे एक प्रकार आकर्षित होकर क्रमसे निम्न और उच्च अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म-भाव प्राप्त होते हैं। इस बोधवाचक अंशको दिक् कहते हैं। जैसे एकजनके अलक्ष्यमें अदूरसे उभय काष्ठमें आघात करनेसे उभय वस्तुकी गुरुता लघुता अनुसार आघातगत एक क्रिया हुई। वह क्रिया स्वरमें परिणत होकर वायुकी सहायसे प्रवाहित और शून्य की सहायसे बोध होते होते जब उस दूरस्थित मनुष्यकी बोधक हुई; तब वह आघातगत स्वर शब्दरूपसे वाच्य हुआ और वह शब्द अर्थात् बोध—कौनसे विषयगत है—उसे स्थिर करनेके लिये स्वरकी सीमा बोध करनी होती है। अर्थात् कहांसे स्वर उपस्थित

हुआ, उसे जाननेको अन्तःकरणवृत्ति धावित होती है। ये जो शब्दबोधक शक्तियां स्थान निर्देशके लिये ब्रह्माण्डमें और जीवोंमें हैं, उन्हें दिक्‌देवता कहते हैं। इन देवताओंके सहारे शब्द बोध होनेके लिये वह जीवात्माकी इच्छानुसार कानमें प्रविष्ट हुआ। इसीलिये जीव घात प्रतिघात स्वरसे शब्द सिद्धि वा गोचर करते हैं।

वस्तुओंको अनुभव करनेके लिये त्वच् प्रकाश हुआ, और उसमें ओषधी नाम देवतागत अधिष्ठित होनेसे लोम नाम इन्द्रिय प्रकाश हुई। उसके सहारे जीव कण्डु अनुभव करते हैं। चर्मके ऊपरीभागके अंशको अर्थात् जो लोमसंयुक्त और सूक्ष्म है, उस चर्मभागको ही त्वच् कहते हैं। उस त्वच्‌के सहारे कण्डुकी उपलब्धि होती है। गुरुता वा लघुताहीन तथा उष्ण शैत्यहीन अति सूक्ष्मबोधकको कण्डु कहते हैं। वह कण्डु लोमके ऊपरी मृदुसाधन तथा त्वच्‌गत अन्तस्थ रसाविर्भाव होनेसे प्रकाश हुआ करता है। शरीरके बीच व्यानवायुके सहारे चर्मगत सूक्ष्मनाड़ियोंसे एक एक छिद्रके असारवायु निकलनेके लिये देहके ऊपरीभागमें है, उसी छिद्रके आवरणरूपसे लोमरूपी केशश्रेणी त्वक्‌की ऊपरी इन्द्रिय अर्थात् कण्डुकार्य्य प्रकाशरूपसे हैं। उस असार आकर्षण और सूक्ष्म दोषानुभवात्मक ओषधि शक्तियां त्वक्‌के अन्तरमें निहित रहती हैं। ओषधिशक्तिके सहारे अमृत ग्रहण और असार त्याग होता है, इसलिये लोमकूपगत शक्तिको ओषधी कहा गया। शुद्ध वायवादिको अमृत कहते हैं; लोमकूपके सहारे वे गृहीत हुआ करते हैं। वा आकर्षण वा प्रसारण उभय क्रिया में हो प्रकाश होती है, इसलिये उस क्रियाको वस्तु कहते हैं। जीव लोम इन्द्रिय और त्वच्‌गत ओषधीशक्तिके सहारे एकमात्र वायुके गुणसे वा रूपान्तरसे वस्तु बोध किया करते हैं।

जिस शक्तिके सहारे महत्तत्त्वरूपी तत्त्वसमष्टिरूपसे सूक्ष्मांश

वीर्य्य प्रतिपालित होता है, उसे प्रकृति वा प्रजापति कहते हैं। उस वीर्य्य प्रकाशकरणात्मक आनन्द उपभोग करनेकी इच्छा करने पर मेढ़ कहके लिङ्गद्वार नाम इन्द्रिय प्रकाश हुई। उस इन्द्रिय-द्वारकी सहायसे रेतगृहीत और निस्तकालमें जिससे आनन्द लाभ हो, ऐसी बोधक एक शक्ति उसमें अधिष्ठित रहती है, उसे प्रजापति वा महत्तत्त्वांश कहते हैं। उस शक्तिके सहारे वीर्य्य निक्षेप-कालीन आनन्द उपभोग हुआ करता है। जिसके यह शक्ति नहीं है, उसे क्लीव कहते हैं। जीवात्मारूपी ईश्वरकी इच्छासे महत्तत्त्व-रूपी देवता वा तत्त्वांश उस स्थानमें प्रजापतिरूपसे रूपान्तरित हुए।

जीर्ण विकारांश त्याग करनेको विसर्गक्रिया कहते हैं। अर्थात् विष्ठात्याग। ईश्वरके जीवदेहके बीच असारांश बहिस्करणात्मक द्वारका प्रयोजन होने पर गुह्यद्वारका प्रकाश हुआ। उस द्वारकी क्रिया नियमित अतिवाहित करनेके लिये मित्रनाम तेजो शक्ति अधिष्ठित हुई। उस तेजमिश्रित क्रियाशक्तिके स्थानको पायु नाम इन्द्रिय कहते हैं, उसके सहारे जीव विष्ठादि त्याग करते हैं।

दान अर्थात् स्वार्थ त्याग और ग्रहण अर्थात् स्वार्थग्रहण इन दोनों वृत्तियोंके सहारे क्या आहारीय क्या अन्य विषयात्मक समस्त क्रिया ही निर्वाहित हुआ करती हैं। सब क्रियाओंकी उपाधि ही दान और ग्रहण है, इसी हेतु जीविका निर्वाहके निमित्त उपायविधानकारी शक्तिरूपी इन्द्र अर्थात् कर्म्मात्मक प्राण, इस कर्म्मात्मक इन्द्रियके बीच अधिष्ठित रहनेसे ही ये हस्तवाचक शरीरांश सक्रिय हुआ करते हैं।

अनन्तर विराटरूपी ईश्वर वा आत्माके गमन करनेकी इच्छा करने पर पदरूपी शरीरांशका प्रकाश हुआ और विष्णुरूपी पालना-त्मक तेज उसमें शक्तिरूपसे अधिष्ठित हुआ। अन्तःकरणमें जीवके

गमन करनेकी इच्छा करने पर विष्णुशक्तिकी सहायसे पद गमन किया करते हैं. वह शक्ति है, इसलिये उसके सहारे जीव पदसे गमन किया करते हैं।

बहुतेरे लोग समझ सकते हैं, हाथ पांव आदि जिस भावसे वर्णित हुए, उससे केवल मनुष्य समझा जाता है; इस वर्णनाका उद्देश्य वैसा नहीं है। प्राणिमात्रको हो इन्द्रियवृत्ति, मनोवृत्ति, भूतवृत्ति हैं, उनके बीच जिस प्राणीमें जो इन्द्रिय हो सक्रिय क्यों न हो, उस इन्द्रियको ही पूर्ववर्णित शक्ति और पूर्ववर्णित कारण निर्दिष्ट हुए हैं, ऐसा समझना होगा। जैसे हाथी शुण्डके सहारे वस्तु ग्रहण करता, गवादि मुखके सहारे आहारीय ग्रहण करते हैं; वह मुख और शुण्ड ही हस्तरूपी इन्द्रिय शक्तिरूपसे उनमें सक्रिय समझना होगा। हाथ पांव आदि संज्ञामात्र हैं। क्रियाबोधक होनेसे ही उपलब्धिमें सुविधा होगा, येही विज्ञानविधि होती है।

उस विभुकी मनन इच्छासे हृदय प्रकाश होनेसे मनोरूपी अंश के सहित चन्द्र नाम देवता उसमें अधिष्ठित होते हैं; उसके सहारे जोव संकल्पादि किया करते हैं। तेजको प्रतिफलन अवस्थाको चन्द्र कहते हैं। इस शक्तिके सहारे विश्वकी क्रिया प्रकाश होती है। जीवोंके पक्षमें स्वभावगत और प्रभावगत क्रिया उस मात्रा-त्मकशक्तिके सहारे ही प्रकाश हुआ करती हैं। यह शक्ति हृदय अर्थात् अन्तःकरणके सन्निहित वा वेष्टित प्रदेशमें अवस्थान करके मनका आविर्भाव करती है। उस मनके सहारे जीवगण संकल्प आदि क्रिया किया करते हैं। निज निज स्वभावगत क्रियाको संकल्प कहते हैं। उस संकल्पके सहारे सब इन्द्रियां सक्रिय हुआ करती हैं। इसके पहिले जिस सात्त्विक अहङ्कारका परिचय दिया गया था; उसके बीच चन्द्रांश अर्थात् मनोरूपी देवता इसी प्रकार रूपान्तरित हुए।

उस विभुके अहङ्कार प्रकाश होने पर उससे अभिमानरूपी रुद्र (अर्थात् तमोगुण) अधिष्ठित हुआ; उसके सहारे ईश्वरेच्छासे जीवगण कर्म्मके जरिये कर्त्तव्य बोध किया करते हैं। मनमें कोई एक संकल्प उदय होनेसे उसे कर्म्ममें परिणत करनेमें अन्तरमें जो एक अहंभाव उदय होता है, उसे अहंकार कहते हैं। मैं यह कर्म्म करता हूं, मेरेसे भिन्न इस कर्म्मको करनेका अन्य हेतु रहे वा न रहे; इसमें मेरा अधिकार है, इस अहंवाचक भावको ही अहंकार कहते हैं। स्वभाव अदृष्टरूपी कर्म्मको सक्रिय करके उसमें यह अहंकार जिस शक्तिसे वर्त्तित होकर कर्म्मबोध करता है उसे अभिमान कहते हैं। अभिमान तमोगुण वा रुद्रनामी देवता है। इसे भी उस तत्त्वांशगत एक देवता समझना होगा। इस अभिमानके सहारे जीवोंकी वासना पाप और पुण्यकर्म्म किया करती है। कर्त्तव्य कहनेसे करणीय अर्थात् इन्द्रियादिके सहारे जो करना होगा, मनमें संकल्प उदय होनेसे अहंकारके सहारे उसे करणीय करके अभिमान संयोगसे बोध होनेसे तब कोई एक बुरा वा सत्कार्य्य संसारमें प्रकाश होते हैं, ऐसा समझना होगा।

उस भगवानका सत्त्वभाव उपस्थित होने पर उसे सक्रिय होनेके लिये भगवान ब्रह्मा चैतन्यांशके सहित उसमें अधिष्ठित हुए, उनकी सहाय चैतन्यमय बुद्धिगत विज्ञान जीवगण उपभोग करते हैं। वासनाका और मनका संकल्प जिस भावसे सक्रिय होनेसे अभिलषित अनुष्ठान पूरण होता है, उसे स्थिर वा सत्त्वभाव कहते हैं। इस भावको जिस शक्तिकी सहायसे जीवगण बोध करते हैं, उसे चैतन्यगत ब्रह्मा वा "महत्तत्त्व" कहते हैं। लौकिकमें वा शरीरांशमें उसे बुद्धि कहते हैं। उसके सहारे जीवगण इस प्रकारका कार्य्य उचित है, यह विज्ञान बोध किया करते हैं। इस बुद्धिको शक्तिको महत्तत्त्व कहनेका तात्पर्य्य यह है कि,—ईश्वर

जब महत्तत्त्व प्रस्तुत करनेसे जगत कैसा होगा, उसका संकल्प उसमें साधान अर्थात् परिणामका भाव उसमें आधान किया था। बुद्धिसे जब परिणाम बोध हुआ करता है, तब वह जो उस महत्तत्त्वरूपी तत्त्वांशके सहारे हुए हैं उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

ईश्वर इस जगतप्रपञ्चमें तीन आवरणसे आवृत होकर कार्य्य करते हैं। एक आवरणका नाम प्राण है, वह दश प्रकार उपाय अवलोकन करके जीवको वेष्टन किये है। नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकर इन पञ्चप्राणोंके सहारे गीरण, उच्चारण, श्वास, चक्षुरुन्मीलन और श्रवणादि हुआ करते हैं। फिर प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन पञ्चप्राणोंके सहारे भूख प्यासका प्रकाश है; शरीरके तेजादिका समाधान, उद्गीरण और सारे शरीरमें रक्त सञ्चालन हुआ करते हैं। इन्द्रिय और इन्द्रियोंके ग्राह्य अर्थ कहनेसे—हाथ आदि अवयव और उनके कार्य्यभाव अर्थात् हाथकी ग्रहणात्मक-अवस्था जानो। जैसे हाथके सिवाय पांवकी ग्रहणात्मक शक्ति नहीं है, यह एक आवरणस्वरूप है। प्राण और इन्द्रियादि लेकर जीवोंके दो आवरण हुए। तीसरे आवरणका नाम इन्द्रिय शक्ति है। अर्थात् जो चैतन्यशक्ति इन्द्रियादिके मध्यगत होकर वासनाकी आज्ञा पालन किया करती है। ये जो तीन आवरण हैं, इनमें ही समस्त वर्णनाकी गई। क्योंकि, हाथ पांव आदि इन्द्रिय और उनकी शक्तिसञ्चारक शिरा स्नायु हड्डी आदिकी वर्णना की गई। इन्द्रियादि कहनेसे एक प्रकार भौतिक आवरण जानो। शक्ति कहनेसे चैतन्यगत आवरण और प्राणादि कहनेसे स्वभाविक आवरण जानो। इन त्रिविध आवरणोंसे आवृत होकर ईश्वर जीवरूपी हुए हैं।

शि०। ईश्वर किस शक्तिके सहारे जगत और जीवरूपी होते तथा अपने स्वरूपमें लीन होते हैं?

गु०। ईश्वर जब आज्ञानावरणसे आवृत नहीं हुए, तब उनके वासनाको क्रिया नहीं हुई। प्रवृत्ति न रहनेसे कोई कभी सक्रिय नहीं हो सकता। ऐसे जो पूर्ण सत्‌स्वरूप हैं, उन्हें भी जिस शक्तिके सहारे जगत और जीवरूपसे परिणत तथा अन्तमें स्वरूपमें लीन होना होता है, उसे ही माया कहते हैं। प्रमाणके सहारे ही वस्तुका अस्तित्व अनुभव हुआ करता है। जगत और जीव जब प्रत्यक्ष होते हैं, तथा इनका कारण जब ईश्वर कहके श्रुतिसे लगाय सब शास्त्रोंने प्रमाण किया है, तब ईश्वर जिस शक्तिसे जगत वा जीवरूपसे परिणत और प्रलयमें स्वरूपमें स्थित होते हैं, वह परिवर्त्तनात्मक प्रवृत्ति वर्त्तमान है। उसी शक्तिको माया कहते हैं। यह विराटरूपो होनेकी कथा कही गई; अनन्तर जीवभावकी कथा कहते हैं।

वह ईश्वरही फिर मायासंयोगसे त्रिगुण मध्यगत होकर प्रवृत्ति पाकर आवद्ध भी हुआ करते हैं। इस आवद्धावस्थाको जीवभाव कहते हैं। कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व तथा अहंकारादिवाचक जीवावस्था ही जीवोंके पक्षमें त्रिगुणवाचक वन्धनकी कारण है। इसलिये यह सब प्रत्यक्ष अवस्थान्तर देख कर ये अवस्था जो कल्पनामात्र हैं, वह भी समझा जा सकता है। तब ईश्वर इन्द्रजालमय किसी शक्तिमें जो सम्बन्धीभूत हैं, वह प्रमाण हुआ।

मायाको तर्कसे समझनेको उपाय नहीं है। क्योंकि नित्यसिद्ध-वस्तु तर्कसे प्रमाण नहीं होतीं। विरोधस्वभाव न रहनेसे सन्देह नहीं होता, सन्देह न होनेसे तर्क नहीं होता। मूलमें हृदय परि-शुद्ध और स्वयं ज्ञानमय न होनेसे माया उपलब्धिभूत नहीं हो सकती, तब तर्करूपी सन्देहावस्थामें उसका प्रमाण किस प्रकार साधित हो सकता है। प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष सब सिद्धमय वस्तु ज्ञानमय युक्तिके सहारे अनुभव हो सकती हैं। तर्क बुद्धिकी क्रिया है।

लौकिकभावसे तर्कके सहारे अनुमान सिद्ध हो सकता है, स्वभाविक सिद्ध वस्तु युक्तिके सहारे उपलब्धिमात्र होती हैं, किन्तु जानना चाहिये कि, विज्ञानभावके सिवाय स्वयं ही अनुभव नहीं होता ।

शि० । जब ईश्वर और जीव पूर्णत्व तथा अंशत्वभेदसे एक हैं, तब ईश्वर और जीवमें क्या प्रभेद है ?

गु० । ईश्वर और जीव समभावापन्न हैं, दोनो अकलुषित ज्ञानमय हैं, चैतन्यमय अर्थात् ईश्वरपक्षमें जो वर्त्तमान है, जीवमें भी वही वर्त्तमान है ; किन्तु जीव और ईश्वरमें यही प्रभेद है कि, ईश्वर पूर्णत्व हेतु मायाके सहारे आविर्भूत और तिरोभूतमात्र होते हैं ; जीव मायागत त्रिगुणके अर्थात् भोगादिके साक्षी स्वरूप होकर आवद्ध रहते हैं। इन कर्त्तृत्वादि गुणोंमें जीव स्वतः आसक्त नहीं हैं ; आवद्ध या साक्षीमात्र हैं। वह किस प्रकारसे ? जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नकी सामर्थ्यसे भ्रमसमात्रसे अपने मस्तकच्छेदनादिको सत्य कहके अनुभव करता है ; किन्तु यथार्थमें उसका शिरच्छेदन नहीं हुआ। वैसे ही मायाके सहारे ये कर्त्तृत्वादि अहङ्कारादिमें जीव साक्षीमात्र होकर अनुभव करता है ; इस अनुभवसे उसमें एक भ्रमात्मक स्वभावका आविर्भाव होता है ; उस स्वभाववशसे जीवको आत्मविस्मृति अर्थात् "सोऽहंभाव" का ह्रासमात्र होता है। जैसे रङ्गीनकांचके बीच नेत्र रखनेसे अपनेको रञ्जितविषयका द्रष्टा कहके अनुभव होता है, वैसे ही मायाके सहारे ईश्वरांश कर्त्तृत्वादि उपाधिमात्र प्राप्त होकर जीवभावको प्राप्त होते हैं।

शि० । जीवको तर्कके सहारे परीक्षा करनेसे ईश्वरवत् कहके अनुभव क्यों नहीं होता ?

गु० । जैसे जलके कम्पित गुणके मध्यगत चन्द्रविम्ब पड़नेसे तीरस्थित द्रष्टा विम्बको कम्पित देखता है, किन्तु आकाशके चन्द्रमाको कम्पित नहीं देखता। वैसे ही तर्कबुद्धिसे वाह्यविषय गृहीत

और परीच्छित होते हैं, इसलिये आत्माको मायागत उपाधिको भेद न कर सकनेसे जीवको कर्त्तृत्व और भोक्तृत्वादि गुणमय कहके स्वीकार करते और जीवको-सत्ता ईश्वरको उपाधिशून्य चन्द्रवत् परिशुद्ध कहके बोध करते हैं। किन्तु यथार्थमें कम्पनादि गुण जल का है, चन्द्रका नहीं है।

इसी प्रकारसे जीवत्वका एकत्व स्थापन एकभावसे दिखाया गया। ईश्वरको सर्व्वव्याप्त और स्वरूप शक्तिमान कहके सब कोई आकाशगत चन्द्रकी भांति उन्हें विशुद्ध कहके सहजमें ही अनुभव कर सकते हैं; किन्तु जीवको नहीं कर सकते। इसका सबब यह है कि, जीव अति क्षुद्र है, वह लीलाके लिये मायागत उपाधिविशिष्ट होकर कर्त्तृत्वादि गुणसे मण्डित हो रहा है। यदि कोई कहे कि, ये कर्त्तृत्वादि गुण जीवात्मामें वर्त्तमान हैं? उस सन्देह निवारणके लिये कहा गया है कि, चन्द्रके विम्बके ऊपर जलकम्पनादि अनुभूत होते हैं अर्थात् एक अवस्थाके ऊपर अवस्था-न्तर उपस्थित न होनेसे अवस्था बोध नहीं होती। ये कर्त्तृत्वादि यदि आत्मामें रहते तो नामान्तर वा कार्य्यान्तर होनेको उपाय नहीं है। जैसे जगत यदि कृष्णवर्ण होता, ऐसा होनेसे उसमें कृष्णत्व अर्थात् कृष्ण कहके एक वर्ण है कौन अनुभव कर सकता। श्वेतादि हैं कहके वर्णके अनेक प्रकारके अवस्थान्तर बोधगम्य होनेसे कृष्णवर्ण निर्द्देश किया जाता है। वैसे ही जीवके पक्षमें कर्त्तृत्वादि गुण यदि अकेले उस जीवात्मामें रहते, तो कर्त्तृत्वादि भेद बोध न होता; क्योंकि भेदावस्था न रहनेसे भेदानुभव नहीं होता। सुख, दुःख, कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व, ये सब भेदवाचक अवस्था कहके बोध होती हैं। अन्यथा जहां सुख नहीं है, वहां दुःख कहके किसीको बोध नहीं होता। और जहां भोग नहीं है, वहां कर्त्तृत्व बोध नहीं होता। वैसे ही आत्माकी सजीवत्वशक्तिमें

ये सब आवरण पड़नेसे ये सजीवत्वके ऊपरमें गुणान्तर करके साधित हुआ करते हैं। जब गुणान्तर संचित होते हैं, तब उनको प्रकाशशक्ति है। उस शक्तिके सहारे यह सजीवत्वरूपी जीवात्मा साक्षीस्वरूप हुआ है; क्योंकि जन्ममरणादि ही सजीवत्वके स्वभाव हैं; उनके प्रकाश न होनेसे सुख दुःखादि कदापि प्रकाश नहीं होते, इसी प्रमाणसे जन्म और मरणधर्मी आत्मामें सजीवत्व व्यतीत अनात्मधर्मरूपी ये कर्त्तृत्वादि अकेलो मायाके सहारे संयुक्तमात्र होते हैं। उनके सहारे आत्माका बन्धमात्र होता है; विकार नहीं होता।

आत्मामें भी ईश्वरगत असङ्ग वा सदा निवृत्तभाव वर्त्तमान है। साधनाके सहारे यदि जीवको वासनाको निवृत्तिधर्मपर करके ईश्वर भक्ति संयोग किया जाता है और उस भक्तिको सिद्धि यदि उससे हो; तो अवश्य ही जीवकी ये सुख दुःखादि तथा कर्त्तृत्वादि अवस्था नहीं रहती। जीव उस समय देहीधर्मी होकर भी सदायुक्त हुआ करते हैं। इससे प्रमाण होता है कि, सुखादि यदि आत्मधर्म होते, तो वे कदापि परित्यक्त न होते।

इसलिये जीव असङ्ग स्वभावापन्न हैं, किन्तु मायाके सहारे आवृत्त रहनेसे सहजमें उस भावका प्रकाश नहीं होता, कर्त्तृत्व-रूप मनको निवृत्तपर अर्थात् आसक्तिहीन करके भगवान्‌में सदा भक्ति स्थापन करनेसे जीव देहधारी होके भी असङ्ग हो सकते हैं।

शि०। ईश्वर अद्वितीय हैं, किन्तु जीव क्या ईश्वरकी भांति अद्वितीय स्वभाव पासकता है?

गु०। ईश्वर अद्वितीय हैं, अर्थात् अन्यसंयोगसे कर्मी नहीं हैं, जीवमें भी वह अद्वितीयत्व वर्त्तमान है, इसके पहिले कहा है कि, भक्ति सहित पवित्र होनेसे जीव असङ्ग हो सकते हैं। इन्द्रिय-शक्तियां जबतक विषयपर रहती हैं, तबतक किसको सामर्थ्य है,

जो अकर्मा हो सके। अद्वितीय कहनेसे अपनेमें अर्थात् आत्मस्वरूप में अपनी स्थिति है, अपनेसे भिन्न अन्यवस्तुके आश्रयमें कर्मीभावसे स्थिति नहीं है। इस अद्वितीय भावसे जीवको रहना होनेसे निष्काम होना होता है। इन्द्रियादि विषयासक्त रहनेसे उनकी शक्तिके तेजसे मनादि सबही सक्रिय रहते हैं। जीवको अद्वितीय होना हो, तो इन शक्तियोंसे अतीत होना होता है। ये जो शक्तिके कार्य्य हैं, शक्ति रहते कार्य्यप्रकाश किस प्रकारसे निवारित होंगे। उसका प्रमाण यह है कि,—देही निन्द्रित होने पर जैसे उसकी इन्द्रियादि आत्मामें प्रयुक्त होती हैं; कालके सहारे निद्रातिरोहित होनेसे इन्द्रियादि सक्रिय हुआ करती हैं।

जीवभावसे मनेन्द्रियादि निरत होनेको निद्रा कहते हैं। वह एक प्रकारकी लय है। शक्तिसमूह सक्रिय होने पर यह लय फिर प्रकाशरूपी हुआ करती है। ये शक्तियां यदि ईश्वरमें लीन होजायँ, तो जीवको स्वरूपलाभ हुआ करता है। क्योंकि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और विकार इन सब कार्य्योंमें जीव संसारी तथा मायायुक्त है, इन सबसे यदि इन्द्रियोंको ईश्वरके आश्रयमें रखा जाय, तो अवश्यही जीव आत्मास्वरूपमें अवस्थिति कर सके। जैसे निद्रित अवस्थामें आत्मा विषयहीन हुआ करता है।

शि०। महत्तत्त्वादिसे चतुर्विंशति (चौबीस)। तत्त्वोंकी प्रलय वा परिणाम कितने प्रकारका है?

गु०। महत्तत्त्वसे भूततन्मात्रापर्य्यन्त चतुर्विंशति तत्त्वही सूक्ष्मभावसे रहके यह जगत् और जीवके स्थूलरूपको प्रकाश करती हैं, यह श्रुतिगत विज्ञान निर्द्देश होता है। क्योंकि तत्त्वसंज्ञीय पदार्थमात्रको ही परिणामशील तथा परस्पर भिन्नभावापन्न समझना होता है। ये परिणाम दो प्रकारके हैं। प्रथम परिणामको परिवर्त्तनात्मक कहते हैं। दूसरे परिणामको—प्रति कारण लयगत परि-

वर्त्तन कहते हैं। दूषित भूतांशके शोधनात्मक अर्थात् प्राणी तथा स्थूलभूतादि विकारित होकर सूक्ष्मभावापन्न होनात्मक परिणामको परिवर्त्तनात्मक परिणाम कहते हैं। जैसे सूर्य्यके विषुवरेखाके समीपवर्त्ती सागरगत जलराशि उत्तापमयसे तरल तथा शैत्यविहीनादि अनेक दोषसे दूषित होकर निज निज आकर्षणगतसे सूर्य्य और चन्द्रके केन्द्राभिमुखमें जाकर शैत्यादि फिर प्राप्त हुआ करती हैं, पुनर्वार विषुवस्थलमें आके जीव और जगतके व्यवहार्य्य तथा दूषित होकर इसी प्रकार परिवर्त्तनमें गमन करती है। इसी प्रकार वायु, जल, पृथ्वी प्रभृति स्थूल और तत्त्वांशकी अवस्था शोधक परिणाम और पच्यमान प्राणी देहादिका किम्वा दह्यमानजीव देहादिसे भूत वा तत्त्वसमूहोंके परिणामको परिवर्त्तनात्मक परिणाम कहते हैं।

इसके सिवाय कारणगत लयात्मक परिणाम देखनेमें पाया जाता है। जैसे उत्ताप सहयोगसे जल तेजमें मिश्रित होता, तेज वायुमें मिल जाता है। वृक्षवीजमें परिणत, जन्म मृत्युमें परिणत होजाता है। इन सब परिणामको कारणगत अर्थात् जिस पदार्थ की जो अवस्था कारण है; उस कारणकी भी जो अवस्था कारण है; परस्पर परस्परमें लय हुआ करती है। इन द्विविध परिणाम भेदसे प्रलय अर्थात् कार्य्य प्रकाश सामर्थ्य—विहीनत्व—अवस्थाको वैज्ञानिकोंने चारि भावसे स्थिर किया है। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और महान् इसी चारि प्रकारसे जगतमें प्रलय प्रकाश है।

ये चारि प्रकारकी लय तत्त्वसमूहोंके परिवर्त्तनात्मक स्वभाव से प्रकाश होती हैं। पदार्थगत परिणामशील परस्पर भिन्न तथा कारणमय स्थूलभागको पदार्थ कहते हैं; और उनकी सक्रिय कारणात्मक अति सूक्ष्म चैतन्यमयी अनेक अवस्थापन्ना अवस्थाभेदको शक्ति कहते हैं। तत्त्वसमूहोंका परिणाम है, शक्तिसमूहोंका

परिणाम नहीं है। वे शक्तिसमूह प्रलयमें लय न होकर प्रलयके अन्तमें ईश्वरके सहित अवस्थान करती हैं। शक्तिसमूह ही स्वभाव और चैतन्यकर्त्री हैं। यदि इनका लय रहता तो जगत और जीव जड़भावापन्न हो जाते, जड़की लय न होती। क्योंकि चैतन्य वस्तुके आवरणरूपी स्थूल भाग ही जड़ हैं। जड़की ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है कि, वे सजीव और सक्रिय होकर लीला कर सकें, एवं सजीवता और संयोजक वियोगरूपी काल चैतन्यकी सहायसे जड़भाव गठित, वर्द्धित और पालित होकर अन्तमें उसी स्वभावके वैपरीत लयके अनुगामी हुआ करते हैं। इसी प्रकार अनेक परीक्षासे देखा गया है कि, काल चैतन्यादि माया प्रकाशिका शक्तिसमूह प्रलयमें ईश्वरमें अवस्थान करती हैं। उनके कार्य्यरूपी जड़ स्वभावीय जगत और जीव विकारित होकर लय हुआ करते हैं। ये हो जो शक्तिसमूहोंका अवस्थान है, उसे ही पुराणमें ईश्वरके शयानकालीन सेवक कहते हैं। निश्चेष्ट अवस्थाको शयान कहते हैं। प्रलयमें क्रिया नाश हुई कहके स्वशक्तिके सहित ईश्वर शयान रहे अर्थात् निश्चेष्ट हुए, यही पुराणका अभिप्राय है।

शि०। किस तेज वा स्वभावसे जीवोंके जीवत्व अर्थात् ज्ञानादि मनादि और भूतादिका मिलन तथा विलय प्रकाश हुआ करता है?

गु०। विज्ञानविदोंने अति सूक्ष्मविषयसे ईश्वरका पालन गुण निर्णय करके उसे चारि अवस्थापन्न कहके भेद किया है। इन चारोंके बीच एक ज्ञान वा मनरूपसे जीवभावसे जन्म ग्रहण करते हैं। अर्थात् जीव और जगतको पालन करते हैं। और एकसे चैतन्य वा चित्तरूपसे अवस्थान करते हैं। और एकसे बुद्धि वा स्वभावरूपसे अवस्थान करते हैं। और एकसे परिवर्त्तन वा अहंकाररूपसे अर्थात् जन्म मृत्यु विधादि अवस्थारूपसे अवस्थान करते हैं। जीवपक्षमें इन चारों अवस्थाओंको मन वा ज्ञान, चित्त

वा चैतन्यकी प्रतिफलन अवस्था ; बुद्धि तथा जन्म मरणात्मक ये ही चारि भावीय परिणाम कहते हैं। मन कहनेसे अनुभवशक्ति जानो ; वही ज्ञानका परिचायक है। चित्त कहनेसे चैतन्य अर्थात् स्मृत्यादि धारक जानो। वही चैतन्य का परिचायक है। बुद्धि कहनेसे निज निज स्वभावको क्रियाशक्ति जानो, वही स्वभाव की परिचायक है। अहंकार कहनेसे मैं सत् अर्थात् मुझसे सब कर्त्तृत्व होता है। येही—आत्माका परिचायक है।

ब्रह्माण्डके बीच इन चारों ऐश्विक अवस्थाको, ज्ञान वा स्वभाव की नियन्ता ; चैतन्य स्वभावको आधार ; ऐश्विकवासनाको स्वभाव और आविर्भावीय तथा तिरोभावीय सत्ता वा अहंकार कहते हैं।

इस विश्वके प्रकाश और निरोधक ऐश्विक तेजको संकर्षण वा अहंकार कहते हैं। यही अवस्था आविर्भाव वा वासना पर होनेसे जगतकी सृष्टि होती है ; और वासनाहीन होनेसे प्रलय हुआ करती है। वह आत्मारूपी सृजन प्रलयकारी अहंशक्ति-रूपी संकर्षण रूप ही जगतका नियन्ता और जीवका नियन्ता है। इस स्वभावसे ही जीवोंके जीवत्व अर्थात् ज्ञानादि मनादि और भूतादिके मिलन तथा विलय प्रकाश हुआ करते हैं।

शि०। जीवोंके आविर्भाव और तिरोभाव इन दोनो अवस्थान्तरका भेद कैसा है ?

गु०। आविर्भाव तिरोभाव स्थूल और सूक्ष्मकी अवस्था भेद-मात्र हैं। वस्तुगत भेदमत जानो। संहार न होनेसे जब प्रकाश असम्भव है ; तब लय वा अवस्थान्तर न रहनेसे कदापि प्रकाश कहके गणना नहीं होती ; तब ये दोनो अवस्था ही जो एक हैं, उसे कौन नहीं स्वीकार करेगा। स्वकार्य्यमतसे प्रलयापन्न ऐश्विक भाव और सृष्टिगत ऐश्विकभाव हैं अर्थात् ईश्वर एक हैं केवल कार्य्य-भेदसे अवस्थाभेदापन्नमात्र होवे हैं।

शि०। इस विश्वका एकबारगी संहार है वा नहीं?

गु०। आर्य्य विज्ञानविदोंने विशेष पर्य्यालोचनासे स्थिर किया है कि, एक वस्तु समभावसे रहनेसे उसकी वृद्धि वा रूपान्तर वा उससे किसी प्रकारकी क्रिया ही सम्भव नहीं होती। यदि एक जातीय एक वृक्षमात्र आदिमें सृष्ट होता, और उसका किसी प्रकार रूपान्तर न होता, तो कदापि उस जातिके वृक्ष जगतमें प्रकाश न रह सकते। एक ही मनुष्य वा एक प्राणी यदि सृष्टिकी आदिमें सृष्ट होते और उनका लय वा रूपान्तर न होता, तो किसी क्रमसे भी जगतमें एकजातीय प्राणीका क्रमसे प्रकाश न होता। रूपान्तर ही विस्तारकी प्रधान उपाय है।

इसका दृष्टान्त यह है, जैसे एक सर्षप गुल्म—उसका आदि भावरूपी सर्षप बीजसे उत्पन्न होकर क्रमसे ऋतुमतसे शाखा प्रशाखामें रूपान्तरित होने लगा। वैसे ही जो जिस बीजरूपी कारणसे प्रकाशित हुआ था, वैसे ही कारण सैकड़ों प्रकाश किया। इसी प्रकार जगतकी सब वस्तुओंका प्रकाश ही कारणसमूहोंके वर्द्धनके लिये समझना होगा। इससे यह प्रमाण हुआ कि, प्रकाशभाव वा जन्म अन्य कुछ भी नहीं हैं, अदृष्ट वा कारणके वर्द्धन हेतु हैं। जगतकी कार्य्यप्रणाली जब इसी प्रकार होती है, तब यह ब्रह्माण्ड जो इस नियमसे सामान्य अवस्थासे कारणावलीके परस्पर वर्द्धनके सहारे बहुत्व और अनेक कार्य्यत्व आरोपित होता आता है, उसमें और सन्देह नहीं है। इससे भलीभांति समझा जाता है कि, एक अवस्थाके ह्रासमे वैसी ही करोड़ों विस्तीर्ण अवस्था प्रकाश हुआ करती हैं। उस प्रकाश अवस्थाको ही जन्म कहते हैं। ह्रास अवस्थाको मृत्यु कहते हैं। इसी भावसे कारण-समूहके लयसे मानो उनका बहुत्व प्रकाश सिद्ध हुआ। यदि लय न रहती, तो कदापि एकसे कारणका बहुत्वविस्तार असम्भव

होता। वैसे ही जगतके इसी प्रकार भूतविस्तार और कारणविस्तार लय भिन्न कदापि स्थिर नहीं हो सकते। यह तो कार्य्यगत प्रमाण है।

फिर देखा जाता है कि, किसी कार्य्यको देखनेसे ही उसकी आदि हो गई है, यह समझा जाता है। आदि होनेसे उसका अन्त भी उस आदिमें प्रकाशित हुआ करता है। जैसे एक अंकुर वृक्षका आदि भाव है, किन्तु अंकुरके बीजरूपी पूर्व्वभाव न रहनेसे कदापि अंकुर सिद्ध नहीं होता। कारणके पूर्व्व भावको ही कार्य्य का अन्तभाव कहते हैं। इससे जगतका शिशुभाव वा प्राक्भाव रहनेसे वह आदिकी अवश्य किसी अवस्थासे प्रकाश होना कहना होगा। उसी कारणके प्राक्भावको कार्य्यका अन्तभाव कहते हैं। क्योंकि जगत जब उसी प्राक्भावसे आरम्भ हुआ, तब समझना चाहिये कि, जगतकी अन्तिम अवस्था उसमें आवद्ध थी। इसी प्रकार आदि और अन्तके सहारे जन्म तथा मृत्यु और सृजन तथा प्रलय प्रमाणित हुई है।

शि०। ईश्वर प्रलयकालमें शक्तिसमूहकी क्रिया व्यतीत निष्क्रिय अर्थात् कर्म्मकर्त्ताहीनभावसे अवस्थित थे, वह किस प्रकार अनुभव हो सकता है?

गु०। यह जगत ईश्वरकी शक्तिसमष्टि मात्र है। जैसे एक योद्धा युद्धसमयमें अपनी शक्तिको अनेक कौशलसे एकत्र करके लड़ाई करता है, फिर समरके अन्तमें अपनी शक्तिको अपनेमें ही लुप्त रखता है, वैसे ही समझना चाहिये कि, ईश्वरने जगत-रूपी कर्त्तव्य अपनी शक्तिसमूहको निज वासनाके सहारे अनेक भावसे रूपान्तरित करके प्रमाण किया है। उनकी वासनाके विराममें ये सब शक्ति उनमें लीन हुआ करती हैं। लीन होना केवल लीलाविस्तारके लिये समझना होगा। ईश्वर जिस आधार

से आत्मसत्ता रक्षा करते हैं, उस आधारस्वभावको पुरुष कहते हैं और उस आधार तथा कार्य्य दोनोंकी सम्बन्धकारक अवस्थाको शक्ति कहते हैं। वह आधार न रहनेसे ईश्वरसत्ता शक्तिसमूहको नियमित कार्य्यपर करनेमें असमर्थ होती। आधारके बिना जगतकी कोई वस्तु स्वभावसे एकभावमें अवस्थान नहीं कर सकती। फलपक्षमें त्वचा, बीजपक्षमें आवर्त्तन और जीवपक्षमें प्राणादि वायु ही आधारस्वरूप हैं। जैसे फलके त्वक् और प्राणियोंके प्राणादिवायु नष्ट करने पर कार्य्यप्रकाशक सब शक्तिका ह्रास होता है अर्थात् वे अकार्य्य हो जाते हैं और ये त्वकादि आधार जैसे फलादिसे भिन्न वस्तु नहीं हैं। वैसे ही ईश्वरने जगतकार्य्यके लिये जितनी शक्ति प्रकाश किया है, जितनी तत्त्व प्रकाश किया है, उन सबको ही अपने आधारके अधीन रखा है। अन्यथा कोई कार्य्य ही लीन न हो सकते; ईश्वरपक्षमें आधारको काल कहते हैं। इस कालके सहारे मायागत सब शक्ति ही धृत हुआ करती हैं; और ईश्वरकी सत्ता इस आवरणके अन्तरमें रहती है। जैसे प्राणियोंका प्राण जीवनकी तथा जीविकाकी सीमा प्रदान करता है; जैसे त्वक फलका पालनकारी है, वैसे ही इस कालको शक्तिका तथा समष्टिगत जगतका प्रकाशक, वर्द्धक और निरोधक समझना होगा। ईश्वरकी सत्ता उसके सहारे कर्षित होकर शक्तिरूपसे प्रकाशित होती है; और ऐशिक वासनामतसे सत्ताका प्रकाश लोप होकर प्रलय होती है। जगतके तत्त्व संग्रहकारी कहके इस ईश्वर प्रभावको काल कहते हैं। शक्तिके संयोगसे जगदादि कार्य्यमें रत होते हैं कहके उन्हें पुंभावापन्न कहा जाता है। माया का त्रिगुण उनमें संयुक्त होनेसे वही सत्त्वगुणमयसे विष्णु, रजोगुणमयसे ब्रह्मा और तमोगुणमय महादेव नामसे कल्पित होते हैं।

सृष्टिके आरम्भकालमें गुणका सम्मिलन; और प्रलयकालमें

गुणहीन होकर एक भावसे उस सत्तारूपी पूर्णब्रह्म भावको धारण किया करते हैं कहके उन्हें ईश्वरका विरामस्थानरूपसे कल्पना किया गया है। इस अवस्थामें ईश्वर निष्क्रियभावसे जिस प्रकार सब शक्तियोंके सहित प्रसुप्त होते हैं; उसे सर्वतोभावसे सङ्गत समझना होगा।

शि०। प्रलयकालमें ईश्वर किसके आश्रयमें रहते हैं?

गु०। इस ब्रह्माण्डकी आदि और अन्त दो प्रकारकी है। एक कार्य्यगत और दूसरी स्वाभाविक। स्वाभाविक कहनेसे एक ऐसा समय है कि, जब जगत वा जगतका कोई सूक्ष्मकारण न था। केवल एकमात्र ईश्वर थे। अर्थात् ईश्वर वा ब्रह्मके सिवाय कार्य्यादि और प्रलयादिका प्रकाश नहीं था, उस अवस्थाको अनादि अवस्था कहते हैं; वा ब्रह्मावस्था कहते हैं। कार्य्य होनेके लिये जब उसका परिवर्त्तन प्रकाश होता है; परिवर्त्तनकी अवस्था मतसे ब्रह्ममें आदि और अन्त सिद्ध हुआ करता है, यह आदि और अन्त अर्थात् सृष्टि और प्रलय, ये एक एक प्रकाश्य अवस्था के ऊपर हुआ करती हैं। उस अवस्थाके अतीत अर्थात् जब एकमात्र कर्त्ताकी स्थिति है, तब उसे अनादि अनन्त प्रभृति अति सूक्ष्म अनुभावीय अवस्थाके सहारे प्रकाश किया जाता है। अनुभवके सिवाय ज्ञानके सहारे और किसी रीतिसे प्रकाश होनेकी उपाय नहीं है। उस मूल अवस्थाको ही ब्रह्मावस्था कहते हैं। उस अकर्म्मी अवस्थासे ही जगतरूपी कार्य्य प्रकाश हुआ है और प्रकाश के अन्तमें इसके परिवर्त्तनमतसे ब्रह्माण्डके विस्तारके लिये तथा कारणसमूहके अवस्थान्तरके लिये जो परिवर्त्तन हुआ करता है, उसे आदि और अन्त किम्वा सृष्टि और प्रलय कहा जाता है। इस कार्य्यगत परिवर्त्तनकारी ऐशिकसत्ताकी संकर्षण कहके वर्णन किया गया है। यह प्रलय ही विश्वका शेष नहीं है और

सृष्टि ही विश्वकी सर्व्वादि नहीं है, इन्हें अवस्थान्तरमात्र समझना होगा। यह अवस्थान्तर क्या है? ईश्वर जब संकर्षण मूर्त्तिमय होते हैं अर्थात् प्रलयरूपी अवस्थान्तर होता है, तब सलिल (जल) रूपसे ब्रह्माण्डकी सूक्ष्म तत्त्वावली रहती हैं; काष्ठ-गत अप्रकाश्य अग्निकी भांति संकर्षणरूपी ईश्वरावस्था इस तत्त्वा-वलीके अर्थात् तत्त्वसलिलके बीच रहती है।

इससे समझा गया कि, जैसे बीजरूपसे तृणादिका अवस्थान्तर होनेसे तृणादिकी सत्ता उस (बीज) के अन्तरमें रहती है। वैसे ही जगतके सूक्ष्म उपादानरूपी सलिलके बीच जगतकी सत्तारूपी ईश्वर जगत्प्रकाशक कालात्मिकादिशक्तिके सहित अवस्थित रहे। किस अवस्थामें रहे? अपने अधिष्ठानमें; अर्थात् कारणसलिलके बीच रहे, किन्तु किसीके आश्रयमें नहीं। अपने ही काल अर्थात् सर्परूपी अधिष्ठानमें। इसे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, सत्वस्तु कारणरूपी असत् वस्तुमें कदापि मिलित नहीं हो सकती।

जगतकी सूक्ष्मकारणरूपसे कोई कोई वस्तु संकर्षणरूपी ईश्वरके अन्तरमें प्रलयकालमें रहती हैं,—सूक्ष्मभूतावस्थाको और काला-त्मिकादि शक्तिको ईश्वरने अन्तरमें रखा। भूत कहनेसे प्राणी जगत जानो। उसके सूक्ष्मभाग कहनेसे मनोबुद्धयादिरूपी लिङ्ग शरीर जानो; और कालात्मिकादि शक्ति कहनेसे चतुर्विंशति तत्त्वोंको प्रकाशक उपायादि जानो। इन दोनों प्रकारके भावको लेकर जगतके सूक्ष्मभावके सहित संकर्षणावस्थाकी स्थिति प्रकाश हुई। इससे परिवर्त्तन मात्र प्रकाश हुआ, ऐसा समझना होगा। इस प्रलयके सहारे विश्वके विस्तारादि अनेक अवस्थाओंका प्रकाश समझना होगा।

शि०। ईश्वर प्रलयकालमें कारणवारिमें योगनिद्रामें निद्रित थे। यह कथा कहनेका क्या तात्पर्य्य है?

गु०। निष्क्रियभावको निद्रा कहते हैं। उस समयमें शक्ति और जीवादृष्टादि उसमें संयुक्त होकर उसे निष्क्रिय करते हैं, इस लिये उनकी निद्राको योगनिद्रा कहते हैं। इस अवस्थाको निद्रा कहनेका तात्पर्य्य यह है कि—इस जगतमें अवस्थान्तर समझानेमें जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न, ये तीन प्रकारकी अवस्था प्रकाश होती हैं। उनके बीच स्वप्न भ्रमात्मक है। जाग्रत और निद्रा ये दोनों नित्य हैं। सक्रिय चैतन्यमय अवस्थाको जाग्रत कहते हैं। निष्क्रिय चैतन्यमय अवस्थाको निद्रा कहते हैं। इस अवस्थाके परमें फिर सक्रियचैतन्यका आविर्भाव होता है, इसलिये इसे मृत्यु न कहके नैमित्तिक प्रलय वा निद्रा कहते हैं। अर्थात् समझना चाहिये कि, इस अवस्थाके परमें फिर सृष्टि हो सकती है। यह प्रलयभाव भी पुनर्वार सृष्टिविस्तारकी कारणमात्र है; इसीलिये इस भावको ईश्वरपक्षमें सुषुप्ति कहके कल्पित किया गया है और उस समयमें उनकी सब सक्रियशक्ति उनमें संयुक्त रहती हैं, इसलिये उन्हें योगनिद्रित कहा जाता है।

शि०। प्रलयके परमें फिर जगत प्रकाश होता है, वह किस प्रकारसे अनुमान हो सकता है?

गु०। जगतके तथा जीवोंके सारे सूक्ष्म बीजभाव कालके सहारे संग्रहीत होकर प्रलयावस्थामें ईश्वरमें लीन रहते हैं, पुनर्वार जगत प्रकाश होना आरम्भ होनेसे जिस कार्य्यमें जिस उपादान जीवभावकी जरूरत होती है, काल उसे प्रदान किया करता है। यह अनुमान इस प्रकारसे होता है, जैसे—विज्ञानविद लोग कहा करते हैं,—प्राणीगत तथा जगतगत जो सब तत्त्व जिस स्वभावाक्रान्त होंगे; काल उसमें वैसा ही जीवभाव प्रदान करके तत्त्वसमूहको सक्रिय किया करता है। इसका प्रमाण यह है, जैसे—एक प्राणी वा वृक्ष शरीर मृत वा विकारित होकर पूर्व-

स्वभावसे च्युत होने पर, उसके मध्यगत तत्त्वसमूहको आश्रय करके करोड़ों कोट तथा पतङ्गादि जीवत्वका सञ्चार हुआ करता है। वे सब जीवत्वके अदृष्ट स्वभावादि और चैतन्यादि इसके पहिले इन प्राण्यादि शरीरमें न थे, क्योंकि विज्ञानमें विशेष विचारसे देखा जाता है कि, जो वस्तु जिस स्वभावापन्न है, उसके अंशसे उसी स्वभावापन्नका प्रकाश हुआ करता है। इसलिये पूर्व्वस्वभाव नाश होनेसे पञ्चादिके भौतिकांश तत्त्वरूपसे सूक्ष्म भावापन्न होते हैं। कालके सहारे जो तत्त्व जिस स्वभावके वा अदृष्ट धारणके उपयुक्त होती है, वह उसे प्राप्त होकर प्राणीलीला किया करती है। इससे भलीभांति समझा जाता है कि, विभिन्न अदृष्टादि और स्वभावादि लेकर ऐसा एक नैसर्गिक भाव भुवनमें विद्यमान है, जो सदा आत्म-कार्य्य साधन करता है। किसी तत्त्वको अनुपयोगी करके त्याग नहीं करता। उस नैसर्गिकशक्तिको अदृष्टको और आत्माको आधाररूपिणी कालशक्ति कहते हैं। इस शक्तिके सहारे वे आदि-कालसे संग्रहीत हो रहे हैं, ऐसा समझना होगा।

शि०। प्रलयके बाद जगतका प्रकाश किस प्रकार होता है?

गु०। प्रलय केवल सृष्टिविस्तारकी उपायमात्र है; सृष्टि उसको प्रकाशमात्र है। इस प्रलय और सृष्टिसे अतीत जो आदि अवस्था है; वही अदृष्ट तथा कारणावस्था है। उसे ही ईश्वरको वासनागत स्वभाव कहते हैं। सृष्टिके बीच, जो कुछ शास्त्रादि नामी महाभूतरूपी कारण प्रकाशित हैं, सब ही उस अदृष्ट वा ईश्वरस्वभावसे प्रकाशित हुए हैं। उस स्वभावका विलय नहीं है। उसे आश्रय करके ही तत्त्वसमूह फिर लीलामय होकर इस जगत और जीवत्वमें परिणत हुआ करते हैं।

वह अदृष्टादि ही तत्त्वसमूहको क्रिया और कारणस्थल होते हैं। उनको समष्टिको सूक्ष्मतत्त्वभाग कहके विज्ञानमें कथित

हुआ करता है। वह सूक्ष्मतत्त्वभाग ईश्वरेच्छा तथा चैतन्यादिके संस्पर्शनके विना किसी मतसे भी सक्रिय नहीं हो सकते। इसीलिये वेदादिमें ईश्वरने इच्छा की; तब सृष्टि हुई। ईश्वरने इच्छा त्याग की, तब प्रलय हुई, ऐसा कथित है। संकर्षण अर्थात् सर्व सूक्ष्मतत्त्वादिके तथा शक्ति-समूहको संग्राहक अवस्थारूपी भगवानने संग्रहीत तत्त्वावली तथा शक्तिसमूहको कार्य्यमें परिणत करनेकी इच्छा किया।

इन सूक्ष्मतत्त्वोंका परिचय कहा गया है, वे सृष्टिगत समस्त अदृष्टकी समष्टिमात्र है। अदृष्टको ही कर्म्म कहते हैं;—काल उन कर्म्मसमूहको आहृत करके अर्थात् अपने आश्रयमें रखके प्रयोजन अनुसार कार्य्यत्वमें प्रदान करता है। इस समय ईश्वरेच्छा से उससे कार्य्य प्रकाश होंगे कहके कालने आत्मधर्म्म अर्थात् सक्रिय करनेके लिये रजोगुण उसमें अर्पण किया।

रजोगुण प्राप्तिमात्रसे कालगतशक्ति इस ईश्वरस्वभावको उसके नियमानुसार कार्य्य करनेके लिये धावित करने लगी। पहिले वह ईश्वर स्वभाव कालके सहारे आकृष्ट होकर पद्मकोषरूपसे प्रकाशित हुआ।

पद्मकोष,—जिसके अन्तरमें सृष्टिगत—समस्त—सूक्ष्मतत्त्वव्याप्त हैं, ऐसी अवस्थाको पद्मकोष कहते हैं। अर्थात् इस अवस्थासे सृष्टिके जो कुछ प्रलयमें लीन उपादान वह प्रकाश होगा कहके उसे तत्त्वा[illegible]र वा पुराणमें इस अवस्थाको पद्मकोष कहा गया है।

कालके सहारे यह अवस्था प्रकाश होने पर उसका नाम हुआ;—आत्मयोनि वा स्वयम्भू (जो आत्मासे जन्मे हैं, वे ही आत्मयोनि) हैं, आत्मा इस स्थलमें विष्णु संकर्षणरूपी सगुणान्विता ब्रह्मावस्था हैं।

"वह आत्मयोनि किस भावसे रहे? जैसे सूर्य्य अपने प्रभावसे

सर्वत्र प्रकाशित रहके आत्मसत्ता वर्त्तमान रखते हैं, वैसे ही वह आत्मयोनि—विशाल विस्तीर्ण प्रलयसलिलमें ही सर्वांशसे आत्मतेज विद्योतित करके मध्यस्थलमें प्रकाश हो रहे। प्रलयसलिल कहने से लुप्त तथा विकारित तत्त्वसमूहकी मिश्रणावस्था जानो। वह लुप्तक्रिया तत्त्वसमूहको सक्रिय करके ईश्वर स्वभावरूपी आत्म-योनि कालके आश्रयसे इस विश्वको रचना करेंगे कहके प्रलय-सलिलके ऊपरमें सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होकर आत्मप्रभाव प्रकाश किया, अर्थात् तत्त्वसमूहको निज निज स्वभाव दान करना आरम्भ किया।

विज्ञानविद्लोग कहते हैं कि, कार्य्य ही कारण हो सकते हैं और कारण हो कार्य्य हो सकते हैं; किन्तु उनके बीच कर्त्तृत्व किसीका भी न रहेगा, किन्तु विश्वके बीच कार्य्यमात्रमें ही कर्त्तृत्व देखा जाता है; तब आदिसे इसमें एक ऐसा कर्त्तृत्व संयुक्त है, जो स्वभावादिको विधिवद्ध करके जिस स्वभावका जो कार्य्य, जिस अदृष्टकी जो गति और स्वभाव है, उसे विधान करता है। कीटसे मनुष्यादि पर्य्यन्त सबमें हो कर्त्तृत्वसंयुक्त कार्य्य देखे जाते हैं। वह कर्त्तृत्व कारणमध्यगत किस प्रकार हुआ, वही इस स्थानमें कहा जाता है।

पद्म किस प्रकार है? सर्वलोक अर्थात् जीवब्रह्माण्डका आश्रय-स्वरूप है। उस पद्मके बीच क्या है? उसमें जीव और जगतके उपा-दान अर्थात् प्राकृतिक समस्त उपादान ही हैं; इससे उसे कारणमय कहा गया। अर्थात् जिन सब उपायोंसे जगत और जीव प्रणीत होते हैं, वह तथा जिसके आश्रयसे जगत और जीव स्थित होते हैं, वे सब कारण ही उस आत्मयोनि स्वरूप पद्मकोषमें वर्त्तमान हैं। इससे कार्य्यका कारण स्थिर किया गया। विधिके बिना कार्य्य-प्रकाश असम्भव है। विधाता कौन हैं? स्वयं भगवान जोकि

प्रलयकालमें संकर्षणरूपसे थे; उनने इस समय विष्णुरूपसे विधाता होनेके लिये उसके बीच प्रवेश किया। विधाता कहनेसे सृष्टिगत सब विधानोंके कर्त्ता जानो। ज्ञानादि प्राखर्य्यके विना विविप्रकाश असम्भव है। क्योंकि सदसत् बोध न होनेसे वह किससे कैसा विधान अर्पण करेंगे? वह सिद्धज्ञानी अर्थात् वेदमय थे। स्वयं किस प्रकारसे जगतका कार्य्य करेंगे—यह वेद अर्थात् ज्ञान, ब्रह्म-स्वभाव हेतु उनमें नित्य था। उस वेदस्वभाव सहयोगसे वह—विधि दान करनेके लिये इस लोक तथा अदृष्टमय प्रपञ्चके बीच प्रविष्ट हुए।

प्रविष्ट हुए कहनेका तात्पर्य्य यह है कि;—जैसे रेशमका कीड़ा अपने शरीरगत रससे आवरण बनाकर उसमें आत्मसत्तारूपी सन्तान स्थापन करता है, फिर उस अन्तर्निविष्ट सन्तानको आत्म-स्वभावके सहारे अपनी वृद्धि और इच्छाके सहित उस आवरणको क्रमसे वर्द्धित किया करता है। वैसे ही ईश्वर स्वयं ही संकर्षण-रूपसे प्रलयके अन्तमें तत्त्व और अदृष्टादि संग्रह करके उसे आवरण करते हुए विष्णु अर्थात् आत्मरूपसे उसके बीच प्रविष्ट होकर निज अङ्गजात आवरणरूपी इस जगतको प्रकाशमान करते हैं, ऐसा समझना होगा।

इस सर्वकारण मध्यगत ऐशिकभावको विज्ञ लोग स्वयम्भुव अर्थात् ब्रह्मा कहते हैं। निजसे ही अपने जन्मको स्वयम्भुव कहते हैं। इसके पूर्वमें भगवान स्वयं ही संकर्षण थे, फिर स्वयं ही कारण मध्यगत विष्णु अर्थात् पालनेकर्त्ता हुए कहके अपनेसे ही निजका प्रकाश सूचित हुआ। इसीलिये विज्ञानमें इस कर्तृत्व और विधातृत्व अवस्थाको स्वयम्भुव तथा पुराणमें ब्रह्मा कहते हैं। ब्रह्मसे जगत है, इस अर्थसे ब्रह्मन् शब्दका उद्भव होता है। ब्रह्मन् शब्दके प्रथमाके एकवचनमें तथा सम्बोधनमें ब्रह्मा हुआ करता है।

इस ब्रह्माका परिचय देनेका तात्पर्य्य यह है कि, ब्रह्मारूपसे ईश्वर कर्तृत्वरूपी होकर प्रति प्रलयके अन्तमें प्रकाश होते हैं; और ईश्वरस्वभाव आत्मयोनि वा सूक्ष्म कार्य्य कारणरूपसे प्रति प्रलयके अन्तमें प्रकाशित होते हैं। कारण और कर्त्ता इसी प्रकार स्थिर हुए।

ऋषियोंने स्थिर किया है कि, ब्रह्म अपनेसे आत्माको प्रकाश करके उसके कर्त्तव्य उपकरण उसके सहयोगसे प्रदान करते हुए उसे कर्म्मी करनेके लिये पहिले उसमें विस्मय प्रकाश करते हैं। इस विस्मयको महामाया कहते हैं। उसके तेजसे ही प्रकृति अर्थात् ब्रह्मा कर्म्म प्रकाश करते हैं।

पहिले ब्रह्माने ब्रह्मचैतन्यसे अवस्थान्तरित होते ही मैं कौन हूं? जिस स्थानमें हूं, यह क्या है? जहां हूं, इसका मूल कहां या कौन वस्तु है? ऐसा चिन्तन करके विस्मित हुए। मैं कौन कहनेका तात्पर्य्य यह है कि,—किस कर्म्मका कर्म्मी हूं? पद्मादि क्या है कहनेसे उसके सहित मेरा क्या सम्बन्ध है? मूलमें कोई है या नहीं? इसका अर्थ यह है कि,—किसीके अभिप्रायसे मैं सकर्म्मी हूं, वा नहीं? इन कईएक चिन्ताओंको करके उन्हें कार्य्य में परिणत करनेके लिये—आत्माने पद्मके बीचसे पद्मनालमें प्रवेश किया। पद्म कहनेसे ब्रह्माण्ड और नाल कहनेसे ब्रह्मसे जगत पर्य्यन्त कर्म्मसूत्र जानो। इस सूत्रमें प्रविष्ट होनेका तात्पर्य्य यह है, जैसे—ये जो सब उपकरण हैं; इनके सहित मेरा क्या सम्बन्ध है? और इनका नेता कोई है या नहीं? नेताकी सत्ता देखनेका तात्पर्य्य यह है कि,—ये उपकरणरूपी वस्तुएं मेरे लिये हैं वा अन्य के लिये? ऐसा चिन्तन करके विस्मयके शासनसे आत्मा कारणके भीतर गया कहनेसे आत्मा सबके अन्तमें प्रविष्ट हुआ ऐसा समझना होगा।

आत्माने सबके अन्तमें प्रविष्ट होके उपकरणरूपी पद्म, प्रलय-

वारि और पद्मके लालका कोई प्रभु न देखा। इसका तात्पर्य यह है कि, वे सब उसकी व्यवहार्थ हैं, यह बोध हुआ। इस समय ये सब वस्तुएं उन्हींको बोध होने पर, वह उन्हें क्या करेंगे उसे जाननेके लिये आत्माने क्या किया ; उसे फिर कहा जाता है।

अर्व्वाकगति कहनेसे निम्नगति जानो। निम्न कहनेसे जगत है। अर्थात् कारणरूपी जगतके बीच आकृष्ट हुए। अकेले विस्मयके शासनसे आत्मा जगतके कारणके सहित संयुक्त हुए, यही भाव प्रकाश हुआ। इस स्वाभाविक शासनरूपी विस्मयके सहारे ब्रह्म—निर्गुण रहके अपनी शक्ति और पुरुषांश समूहको सगुणरूपसे जगतमें संयुक्त करते हैं। वह स्वयं सबके नियन्ता होकर शासन, शास्य और शास्ता प्रभृतिके प्रकाश होके तथा अतीत हो रहे हैं। क्योंकि ऋषियोंने स्वभावसे यह जो कौशल प्रकाश करके ब्रह्म निर्द्देश किया है; इसमें कोई भी सर्वकारणरूपी ब्रह्मको किसी सगुण जागतिकशक्ति वा पुरुषांशके सहित संयोग नहीं दिखा सकते। इस विस्मयरूपिणी मायाको न समझ सकनेसे निर्गुणब्रह्मको समझना अतीव दुरूह है।

शि०। मनुष्य देहस्थ पद्म वा "चक्र" कैसा है ?

गु०। चिन्ता क्रिया प्रकाशक अनुभवके गृहस्वरूप शून्यस्थानको देहस्थ पद्म वा चक्र कहते हैं। तन्त्रादिकी आलोचना करके भलीभांति जाना जाता है कि, जिन सब सूक्ष्म और स्थूल शिराओंमें अद्भुत सामर्थ्य है, वे जिन जिन स्थानोंमें संयोजित और वियोजित होकर अनुभाव्य क्रिया प्रकाश करती हैं, वे स्थान ही शून्यरूपसे कल्पित और पौराणिक तथा तान्त्रिकमतमें पद्म वा "चक्र" नामसे आख्यात हुआ करते हैं। पद्म विषयक वैष्णवी व्याख्या पाना दुर्लभ है। तब नारद पञ्चरात्रमें जो है, उसका अनुभव करना दुरूह है ; बल्कि जिन्होंने तन्त्र- पाठ नहीं किया है, उनके पक्षमें

बोधगम्य होना कठिन हो जाता है। तन्त्रमें पद्मका विवरण एक प्रकार विशदरूपसे वर्णित है। तन्त्रमतसे पद्म अनुभव करके शैव बीज न रखके उसमें वैष्णव बीज स्थापन करनेसे ही पाठक लोग वैष्णवी प्रथाका होना समझें। सबको सहजमें बोध होनेके लिये मैंने तन्त्रका आश्रय लिया।

इस पद्म विवरणमें तन्त्र और वैष्णवशास्त्रमें कुछ मतभेद है। वैष्णवोंने स्वाधिष्ठान और मूलाधार दोनो पद्मोंको एकमात्र मूलाधार आख्या देकर तालुमूलमें एक नूतन अनुभव स्थलरूप विशुद्धाग्र पद्मका आविष्कार किया है, किन्तु तान्त्रिक लोग कहते हैं कि, तालुमूलमें ऐसा कोई स्थान नहीं है कि, अनुभव हो सके। गुह्य-देशमें हो दो अनुभाव्य स्थान हैं। उनके बीच जो योनिका मूल है, उसे ही मूलाधार कहते हैं। जो इन्द्रिय प्रकाशक लिङ्गका मूल है, वही स्वाधिष्ठान नामसे प्रसिद्ध है। तन्त्रके मतसे मूलाधार योनिमूलमें है। वैष्णवशास्त्रके मतसे योनि और लिङ्गमुख प्राय एक स्थानमें अवस्थित हैं; इस विधिसे दोनो स्थानके पद्मको ही मूलाधार कहा जाता है। तन्त्रके तथा वैष्णवोंके मतसे नाभिमें मणिपुरपद्म है। तन्त्र तथा वैष्णवशास्त्रके मतसे हृदयमें अनाहत पद्म है। तन्त्रके और वैष्णवशास्त्रके मतसे कण्ठमें वा कण्ठके अधो-देशमें विशुद्ध है; केवल वैष्णवमतसे तालुमूलमें विशुद्धाग्र है। और तन्त्र तथा वैष्णवमतसे दोनो भौंके बीच आज्ञापद्म है।

यह प्रभेद अति सामान्य है हमें बोध होता है कि वैष्णवोंके इन्द्रिय विजयी होनेसे स्वधिष्ठानके किसी क्रियाकी आवश्यकता नहीं होती। इसीलिये इस पद्मकी भावना न करके प्राणायाम सिद्ध होनेके लिये तालुमूलमें स्मृतिक्रिया प्रतिफलित करनेके हेतु नूतनभावसे विशुद्धाग्रपद्मका आविष्कार किया है।

प्रत्येक पद्मकी ही अनुभाव्य और देहजात क्रिया प्रकाशक

नाड़ियोंके आश्रयस्थल इसे समझा सकनेसे ही पद्म क्या वस्तु है, उसे पाठक समझ सकेंगे। पहिले पद्मकी स्थिति दिखाकर फिर उसमें नाड़ी संयोजना जनावेंगे।

इस बातको प्राय सब ही जानते हैं कि, इस देहमें अनेक अवस्थाको नाड़ियां हैं। उनके बीच कितनी ही रस वहनकारी, कितनी ही शोणित वहनकारी और कितनी ही चैतन्य रक्षाकारी हैं। इस देहके गुह्यदेशको मध्यसीमा कहते हैं। इस मध्यसीमा के बीच जो पायुछिद्र है उसके दो वा तीन अंगुल उर्द्ध में एक स्थान है, वहां कई एक चैतन्य नाड़ियोंका संयोजन हुआ है, इसे ही मूलाधारपद्म कहते हैं। तन्त्रमें योनि और लिङ्ग इन दोनों शब्दों के स्त्री पुरुषत्व भेद नहीं किया गया है। विज्ञानविद् लोग काम रिपुके क्रियाप्रकाशक यन्त्रको लिङ्ग कहते हैं और क्रिया स्थिति-स्थलको योनि कहते हैं। कोषके तथा चर्म्म-लिङ्गके क्रियाप्रकाशक जिस स्थलमें अपान प्रदेश है, उसे पुरुषकी योनि कहते हैं; उसके उर्द्ध भागके यन्त्रको लिङ्ग कहते हैं। जरायु सहित छिद्रयुक्त काम-प्रकाशक यन्त्रको स्त्रीजातिकी योनि कहते हैं। और उसके क्रिया प्रकाशक छिद्रयन्त्रको लिङ्ग कहते हैं। इन दोनो जातिके योनिमूलमें तथा लिङ्गमूलमें चैतन्य नाड़ियोंका प्रथम संयोजन हुआ है। योनिमूलके संयुक्तस्थलको मूलाधारपद्म कहते हैं।

इस देहमें असंख्य नाड़ी हैं। चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेयादि-जात रस त्रिविध भागमें विभक्त होकर, जो भाग सुसदृश अवयव विशिष्ट लिङ्ग शरीरको परिपोषण करता है, वही वायुके सहित मिलकर प्राण नामसे ख्यात होता है। जो इस स्थूलशरीरको पुष्टि करता है, उसे धातु कहते हैं। यह भी प्राणांशमें मिश्रित होता है। तृतीयभाग असारभावसे मल और मूत्रादिमें परिणत होता है। वायुसे ही शरीरका तेज प्रकाश होता है। जब वायु

वो प्राणवायु इन सब रसोंमें मिलित होकर नाड़ीके बीच प्रवेश करती हैं, तब वे रसादि सहा तेजमय होकर शरीरका बलाधान करते हैं। देहमें भी वर्द्धन पालन आदि सब क्रिया करते हैं। जिन सब नाड़ियोंमें वायुकी गति है, वे ही प्राणमार्ग नामसे विख्यात हैं; उनकी संख्या चौदह है; उनमेंसे इड़ा और पिङ्गला विख्यात हैं। ये चौदह नाड़ियां इस मूलाधारमें आकर संयोजित होकर निज निज क्रिया प्रकाश करती हैं। इस मूलाधारमें और भी अनेक चेतन्यमय नाड़ी सूक्ष्मरूपसे अवस्थान करती हैं। उनके बीच कुलकुंडलिनी नाड़ी ही प्रधान है। सब चैतन्यसंस्कार इस नाड़ीसे हुआ करते हैं। चैतन्यका अनुभवकर्त्ता ही ज्ञान है। वह ज्ञान भी उस चेतन्यसे उद्भूत होकर मेरुदण्डके मध्यस्थित ब्रह्मरन्ध्रसे मूलाधार अवलम्बिता सुषुम्ना नाम नाड़ीमें विभाषित होता है। इस सुषुम्नाके दोनो मुख आवद्ध हैं। एक मुख ब्रह्मरन्ध्रसे अतीत होकर नासिका छिद्रके कुछ ऊर्द्धमें है, उसे वामनासापुटस्थित पिङ्गला और दक्षिणनासापुटस्थित इड़ा ये दोनो नाड़ी एकत्रमें मिलित होकर आवद्ध करके निम्नमुखी किये हैं। विज्ञान प्रकाश करने नहीं देता है। निम्नदेशमें चैतन्यमयी कुण्डलिनी त्रिकुण्डलभावसे अपनी पूंछ प्रवेश कराके सुषुम्नाका निम्नमुख आवद्ध कर रही है। वायु प्रवेश न होनेसे किसी नाड़ीमें ही कुछ क्रिया प्रकाश नहीं होती। बल्कि वायु दूषित होनेसे प्राणादि विनाश होनेकी सम्भावना है। योगी लोग योगबलसे निश्वास अवरोध करके इड़ा और पिङ्गला नामी वायु, पित्त, कफ प्रवाहिनी दोनों प्राणनाड़ियोंको इसीलिये पीड़न करते हैं कि, पित्त और कफबलसे ये दोनो नाड़ियां अन्य सब सूक्ष्म नाड़ियोंको मान्य क्रियावान वा क्रियाहीन करनेसे देही अलस, भ्रान्त और अज्ञान हुआ करते हैं। तेजकी सहायसे कफ और पित्त नाशको प्राप्त होते हैं। इसीलिये

वायुको प्रति नाड़ीसंयुक्त शून्य स्थानोंमें निरोध करनेसे इड़ा और पिङ्गला उस स्थानमें स्फीत होकर वायुजात तेजबलसे अन्यान्य नाड़ियोंके सहित कफ और पित्तहीन होती हैं। कफ और पित्त नाश होनेसे वायु सब नाड़ियोंमें प्रवेश किया करता है, उससे सब नाड़ियां स्फीत होकर क्रियावान होती हैं। प्रति प्रधान नाड़ियोंके बीच प्राणमार्ग, ज्ञानमार्ग और चैतन्यमार्गमें सब प्रकारके नाड़ियों की संयोजना रहनेसे क्रम क्रमसे सबमें ही वायु प्रवेश करके देहीको पुष्ट, कान्तिमय, शान्त और ज्ञान चैतन्यमय कर देता है। इस वायुधारणके लिये अनेक प्रकारकी तपस्याकी विधि है। जो योगी ऊर्द्धपद और निम्नमस्तकसे वायुसाधना करते हैं, उसका यही उद्देश्य है कि, नासिका छिद्रके ऊपरमें इड़ा और पिङ्गलामें सुषुम्ना का ऊर्द्धमुख बद्ध किया है, इस स्थलमें निम्नमस्तकसे वायु धारण करने पर वायु पीड़ित होके भ्रूमध्यमें इड़ा और पिङ्गलाको पित्त और कफहीन करते हुए लघु करके वेगसे सुषुम्नामें प्रवेश करता है। सुषुम्नामें वायु प्रवेश होनेसे योगीको ज्ञान प्रकाश हुआ। सुषुम्नाके सहारे वायु लिङ्गमें जाकर निम्नमुखसे जो कुण्डलिनी आवद्ध थी उसमें प्रवेश करता है। कुण्डलिनीके जागनेसे सब चैतन्य प्रकाश होगा। उससे दूरदर्शित्व, विचक्षणत्व, भूतभवाज्ञत्व उपस्थित होकर योगीको सिद्ध कर देता है। इस विधानसे प्राय सबने ही नाड़ीकी क्रिया और वायुसाधनका प्रयोजन समझा।

शि०। किस स्थानमें वायु रोध करनेसे क्या लाभ होता है?

गु०। मूलाधार भावना करके वायु साधन करने पर चैतन्य और ज्ञान प्रकाश होता है। मणिपुरमें वायुसाधना करनेसे प्राण-मार्ग प्रबल होता और दीर्घजीवी होते हैं। हृदयमें अनाहतपद्ममें वायु रोध करनेसे ज्ञानाधिक्य, चित्तस्थिर, दूरश्रवण और दूरदर्शन हुआ करता है। विशुद्धपद्ममें वायु रोध करनेसे चित्तधारणा होती

हैं; बाह्यविषयोंसे मन निवृत्त होकर अन्तरमें निविष्ट हुआ करता है। सर्वशरीरका दूषित वायु नाश होकर शरीरको स्वस्थ करता है। विशुद्धाख्य पद्ममें वायु रोध करनेसे प्राणायाम सिद्ध हो सकता है, और स्मृतिका विलय नहीं होता। भ्रूमध्यमें वायु स्थिर करनेसे परमात्मानुभव होता है। विज्ञान प्रकाशसे जीवन्मुक्त हो सकते हैं। इसी स्थानसे चैतन्य ब्रह्मपद्ममें मिल सकता है।

शि०। इन सब पद्मोंकी सहायसे जीवात्मा किस प्रकार इन्द्रियज्ञानादि चैतन्यादिके सहित देह त्याग करता है? और यह कैसे सम्भव हो सकता है?

गु०। प्राणवायुकी सहायसे ज्ञान चैतन्य और मन सब ही क्रियावान होते हैं। प्राणकी वासना तथा इन्द्रियशक्तिकी सहायसे जहां लेजावे, वहां ही चैतन्यमय जीवात्माको ज्ञानादि अनुभव होगा। इस देहमें पांच अंश हैं;—अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय और चैतन्यमय। इस अन्नमय अंशमें ही भूतोंका अधिकार है। और चारिमें वासनाका अधिकार है। जैसे मकड़ी अपने उत्तापसे चर्म्मकोषके मध्यस्थ अण्डेको जीवन्त करके चर्म्मकोषभेद कराके अन्य स्थानमें जाने देती है। वैसे ही वासना भूत समन्वय-रूप आवरणमें पूर्व्वोक्त चारों तेजोमय अंशको आवृत्त करके इह लीला करती है। जब वासना चैतन्यके सहित मिलकर उन्हें एकत्र करके भूतांश त्याग करनेकी इच्छा करेगी, तब ही सकेगी। ये चारि अंश रहनेसे ही भूतांशको रूपवान और क्रियावान देखा जाता है। यथार्थमें भूतांश कुछ भी नहीं हैं। जैसे कौशलसे काठकी पुतली नृत्य करती है फिर कौशलको ग्रहण करनेसे क्रियाहीन होती है। वैसे ही चारों सामर्थ्यकी सहायसे भूतांश क्रियामय हुए हैं। स्वभावसे अहङ्कार प्राप्त होकर आलस्य, जड़ता, कफ पित्ताधिक्यसे आत्मस्वभाव भूलकर भूतांशके

वशीभूत और इन्द्रिय विकारीक्षत रिपुके वशीभूत हो जाते हैं।

इन चारि कोषोंके सहित वासनाके गमनका नाम ही मध्यमुक्ति है। उससे किस प्रकार भूतांश त्याग किया जाता है, उसका क्रम यह है कि, पहिले योगी वायु रोध करके आन्तरिक प्राणको पीड़न करे। प्राण और वाह्यवायुका मिलन होनेसे प्राणको अधिक बलवृद्धि होगी। उस अवसरमें गुह्यदेशस्थ छिद्रके वीच निज पदका गुल्फ पीड़न करनेसे और समाधिके सहारे मूलाधारस्थ चैतन्य ज्ञानादिमें ईश्वर संस्थापन करके प्राणको उन्नमनशक्तिके सहारे मणिपुरमें लानेसे देहका निम्नभाग एकवारगी चैतन्यहीन होगा और निम्नदेहको मृतदेहप्राय समझना होगा। मणिपुरमें लाकिनी नामी प्रधान नाड़ियां प्राणके सहित संयोजित हैं। प्राणवायुको ही उस लाकिनीमें प्रवेश करानेसे मणिपुरमण्डलके चैतन्य-प्राण ज्ञानादि मूलाधारसे उन्नमित प्राणमें मिश्रित होंगे। यह आकर्षणीशक्तिकी सामर्थ्य है। सत् वस्तुकी अधिकतासे आकर्षणीशक्ति प्रकाश होकर अल्प सत् वस्तुका आकर्षण धारण करती है, यह विज्ञानसिद्ध है। उसी नियमसे यहांके प्राणादि पूर्व्व प्राणादिके सहित मिलनेसे वहांसे उन्नमनशक्तिको सहावसे प्राणको हृदयके वीच अनाहत पद्ममें आवद्ध करना होगा, ऐसा करनेसे नाभिपर्य्यन्त केवल भूतांशमय हुआ; वह भी शववत् हुआ, ऐसा समझना होगा।

फिर योगी निम्नभागस्थ प्राण, ज्ञान चैतन्यादि हृदयस्थ समाधिमय धारणाको ग्रहण करनेके लिये काकिनी नाम चित्तधारिणी महाज्ञानमयी नाड़ीमें प्रवेश कराके उसकी सहायसे वहांके चैतन्यादिको आकर्षणी सामर्थ्यसे हरण करे। फिर उदानवायुकी सामर्थ्यसे समस्त सम्मिलित प्राणको कण्ठके विशुद्ध पद्ममें लाकर आवद्ध करे।

उस कण्ठपद्मके सहित अन्यान्य चैतन्यादि नाड़ी संयोजिता शाकिनी नामसे विज्ञाननाड़ी है; निम्नागत प्राण उसको सहायसे उस प्रदेशके अन्यान्य सब नाड़ियोंके तेजको हरण करके शाकिनीमें प्रवेश करनेसे जीवात्मामय साधक उस प्राणको बहुत सावधानीसे तालुमूलस्थित विशुद्धाग्रपद्ममें ले जावे। वहां जाके जीवात्मा सब चैतन्य और ज्ञानादिको विषयचिन्तासे विरत देखकर स्वरूपानुभव करके सहस्रारक्षरित ब्रह्मानन्द रसपान कर सकेगा। क्योंकि इस स्थानमें जीवात्मा चैतन्यबलसे अवस्थान करने पर इन्द्रिय क्रियानाश प्राप्त होनेसे शुद्धभावसे तन्मित होता है और शून्यभावना में आके चारो ओर ज्ञानदृष्टिसे ज्योतिर्म्मय देखता है और वासना उसके दर्शनसे उस महाज्योतिमें मिलनेकी इच्छा करती है।

अनन्तर साधक वहांसे प्राणको सुषुम्ना छिद्रके सहारे मध्यस्थ आज्ञापुर चक्रमें ले जावे। वहां जानेसे सब चिन्ता दूर होगी। केवल ज्ञानमय होके अवस्थान करनेसे जीवात्मा परमात्मामय हो जाता है। अर्थात् वासनाजनित चिन्ता नाश हो कर उस पूर्वदृष्ट महाज्योतिमें मिश्रित हो जाता है। वासनामें मिलने पर जीवात्मा ज्योतिर्म्मयीभावसे अवस्थान करता है। इस अवस्थाको ही शिवत्व प्राप्ति कहते हैं और वैष्णवमतसे इसे ही सारूप्यप्राप्ति कहते हैं। इसी स्थानको तन्त्रमतसे काशी कहते हैं; वैष्णवमतमें वृन्दावन कहते हैं। इसी स्थानमें इड़ा और पिङ्गला वहमान हैं, उसे पौराणिक लोग वरुणा और असीनाम गङ्गांश कहते हैं, उसके ऊर्द्धमें सहस्रदल पद्मयुक्त ब्रह्मरन्ध्रमें प्राण सचेतनसे स्वयं ही गमन करता है। यह गङ्गारूपी इड़ानाड़ी ही वहां जानेकी उपाय विधान करके संयत प्राणवायु धारण करती है। इस ब्रह्मपद्मको ही स्वर्गका वैकुण्ठ, पृथिवीकी द्वारका और मथुरा कहके पौराणिक लोग विवेचना करते हैं। इस स्थानमें जीवात्मा आनेसे ही चैतन्य ब्रह्मद्वारके

सहारे स्वयं ही मुक्त हो जाता है, भूतांश पड़े रहते हैं। सद्य-मुक्तिका पथिक परमात्मामें विलीन हो जाता है।

हमने जिस प्रकार विशदवर्णना किया, उससे ही सब कोई सद्यमुक्तजात मृत्यु और पीड़ाजात मृत्युमें क्या प्रभेद है, उसे समझ सकेंगे; किन्तु बोध होता है, बहुतेरे लोग इस विषयमें सन्दिग्ध हो सकते हैं। यदि कोई महात्मा सांख्ययोग पाठ किये हों, तो सो सांख्यविज्ञानमें यह स्पष्ट लिखा है कि, द्वैतज्ञान अहंकार त्याग से एकत्व सम्पादन होता है या नहीं, इसे अनुभव करनेमें जीवत्वको ईश्वरत्वमें आरोप करना होता है। उसका अर्थ प्रमाण यह है कि, जैसे एक बांसके टुकड़ेमें अनेक कौशलसे छेद करके कण्ठनाल के वायु पेषण तथा फूकनेके तारतम्यसे उस वंशीसे अनेक स्वर सुने जाते हैं। क्या वे स्वर वंशीके हैं? कदापि नहीं; वे स्वर कण्ठ-जात वायुके हैं, वंशीक्रिया गृहमात्र है। क्रियात्याग होनेसे ही कंठके स्वर कंठमें ही अनुभूत हुए। वैसे ही ईश्वरसे चैतन्य ज्ञानादि अंशीभूत होकर क्रियामय होनेके लिये भूतोंकी सहाय लेते हैं। फिर भूतजात गृहरूप देहत्याग होनेसे जिस तेजसे क्रिया प्रकाश होती थीं, उनके उसी तेजमें मिश्रित होनेसे जीवत्व-त्यागसे ईश्वरत्व प्राप्ति होती है। वह अवस्था विज्ञानबुद्धिमें स्वप्ना-लोचना करनेसे अनुभव होती है। क्योंकि सपनेमें देहज इन्द्रियों को क्रिया नहीं रहती, और काल्पनिक अनुभव हुआ करता है।

शि०। योगियोंके आसन किस प्रकारके हैं।

गु०। घेरण्डसंहितामें बाईस प्रकारके आसन वर्णित हैं; जैसे—सिद्ध, पद्म, मुक्त, भद्र, वज्र, स्वस्तिक, सिंह, गोमुख, वीर, धनु, मृत्यु, गुप्त, मत्स्य, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, पश्चिमोत्तान, उत्कट, सङ्कट, मयूर, कुक्कुट, कूर्म, उत्तानकूर्मक, उत्तानमण्डूक, वृक्ष, मण्डूक, गरुड़, वृष, शलभ, मकर उष्ट्र, भुजङ्ग और योग, ये सब

आसन सिद्धिप्रद हैं। शिवसंहितामें लिखा है कि, चौरासी प्रकारके आसनोंके बीच सिद्ध, पद्म, भद्र और स्वस्तिक ये चारि सिद्धिप्रद हैं।

सिद्धासन, जैसे—यत्न सहित एक पादमूलके सहारे योनिप्रपीड़ित करते हुए अन्य पदमूल लिङ्गके ऊपरीभागमें स्थापित करे और ऊर्द्धनयनसे दोनों भौंवोंके मध्यस्थलको देखे। इसेही सिद्धासन कहते हैं। एकान्तमें स्थिर चित्तसे समकाय होकर इन्द्रिय दमन पूर्वक इस आसनका अभ्यास करना होता है।

पद्मासन, जैसे—दाहिना पांव वाम उरुके ऊपर और बायां पैर दाहिने उरुके ऊपर रखके दोनों हाथोंके सहारे पृष्ठदेशसे दोनों पावोंके अंगूठेको पकड़कर हृदयदेशमें चिबुक संस्थापित करे और नासिकाका अग्रभाग निरीक्षण करना होगा। इस आसनके सहारे रोग विनष्ट और उदरानल प्रदीपित होता है।

भद्रासन, जैसे—दोनों गुल्फ कोषके निम्नमें विपरीत भावसे रखकर दोनों हाथोंके सहारे दोनों पावोंके वृद्धांगुष्ठको पृष्ठभागकी ओरसे धारण पूर्वक जालन्धर बन्धका अनुष्ठान करे और नासिका का अग्रभाग निरीक्षण करना होगा।

स्वस्तिकासन, जैसे—जानु और दोनों उरुके अन्तरमें दोनों पदतल सम्यक्‌रूपसे धरके समकायसे अवस्थिति करनेकोही स्वस्तिकासन कहते हैं।

शि०। मुद्रा किस प्रकारकी हैं?

गु०। घेरण्डसंहितामें पञ्चविंशति मुद्रा वर्णित हैं, जैसे—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरी, योनि, वज्रोनी, शक्तिचालनी, ताड़ागी, माण्डवी, शाम्भवी, पञ्चधारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी और भुजङ्गिनी। इत्यादि।

शिवसंहिता और रुद्रयामलमें लिखित है कि, महामुद्रा,

महाबन्ध, महावेध, खेचरी, जालन्धर, मूलबन्ध, विपरीतकरिणी उड्डियान, वज्रोनी और शक्तिचालिनी ये दश मुद्रा सर्वश्रेष्ठ हैं। ये दशो मुद्रा जरा और मृत्युको पराजित करती हैं।

महामुद्रा, जैसे—गुह्यदेश बायें गुल्फके सहारे दृढ़भावसे पीड़न पूर्व्वक दाहिनाचरण विस्तृत करके हाथके सहारे पदांगुली धरे और कण्ठसंकोचन पूर्व्वक दोनो भौंवोंका मध्यस्थल निरीक्षण करना होगा। इसे ही महामुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा कामधेनु स्वरूप है। इसे आचरण करनेसे वाञ्छितफललाभ और इन्द्रिय-दमन हुआ करता है।

महाबन्ध, जैसे—दाहिना पांव विस्तृत करके बांयेऊरुके ऊपरी भागमें स्थापन पूर्वक गुह्य और योनि आकुञ्चनकर अपानवायुको उर्द्ध्वगत करके नाभिस्थ समानवायुके सहित संयुक्त करे और हृदयस्थ प्राणवायुको अधोमुख करके प्राण तथा अपानवायुके सहित जठरके बीच कुम्भकयोगसे संबद्ध करे; इसका नाम महाबन्ध हैं। इसके सहारे योगीको देहस्थ नाड़ियोंसे समस्त रस शिरोपरि समुन्नत होता है। इसके प्रभावसे साधक सारा मनोरथ सिद्ध कर सकता है।

महावेध, जैसे—पहिले महाबन्धका अनुष्ठान पूर्वक उड्डीयान बन्ध करके कुम्भकयोगसे वायु रोध करे; इसका ही नाम महावेध है। इसमहावेधके विना मूलबन्ध और महाबन्ध दोनो ही वृथा हुआ करते हैं। इस महावेधके प्रभावसे साधक सुषुम्नापथके वायुके सहारे ग्रन्थि विद्ध करके ब्रह्मग्रन्थि भेद करता है। इसे अनुष्ठान करनेसे जरामरण नाशिनी वायु सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं है।

खेचरी मुद्रा, जैसे—निरुपद्रव स्थानमें वज्रासनसे समासीन होकर दोनो भौंवोंके बीच दृढ़रूपसे दृष्टिपात किया करे। अनन्तर

जिह्वामूलके ऊर्द्धमें तालुप्रदेशमें जो अमृतकूप है, उसमें जिह्वाको विपरीत दिक्‌में सञ्चालित करके यत्न सहित संयुक्त करे। इसे ही खेचरी मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सिद्धिकी जननी स्वरूप है। जो साधक सदा इस मुद्रायोगसे सहस्रार निर्गत सुधाधारा तालुमूलमें जिह्वाके सहारे पान करता है, उसका शरीर सिद्ध होता और मृत्युभय नहीं रहता। दत्तात्रेय संहितामें लिखा है कि, अन्तःकपाल विवरमें जिह्वाको व्यावृत्त करके बन्धन करे और एक दृष्टिसे दोनों भौंवोंका मध्यभाग निरीक्षण करना होगा। ऐसा होनेसे ही खेचरी मुद्रा साधित होती है। घेरण्डसंहितामें लिखा है कि, जिह्वाके नीचे जिह्वामूलदेशके सहित जो नाड़ी संयुक्त है, उसे छिन्न करके सदा जिह्वाके अधोभागमें जिह्वाके अग्रांशको परिचालन करे और नवनीतके सहारे जिह्वा दोहन करके लौह लेखनी से कर्षित करना होगा। ऐसा करनेसे जिह्वा क्रमसे दीर्घताको प्राप्त होती है। उसको इस प्रकार दीर्घ करनेकी आवश्यकता यह है कि, अवलीलाक्रमसे उसके सहारे दोनो भौंवोंका मध्यस्थल स्पर्श कर सकते हैं। तालुके मध्यस्थलमें जो कपालविवर है, उसके बीच जिह्वाको ऊर्द्धदिक्‌में विपरीतभावसे प्रवेशित कराके दोनो भौंवोंका मध्यभाग अवलोकन करे। इसे ही खेचरीमुद्रा कहते हैं। जो व्यक्ति इस मुद्राको साधन करता है, उसकी जिह्वा में यथाक्रमसे लवण, क्षार, तिक्त, कषाय, नवनीत, घृत, क्षीर, दधि, मट्ठा, मधु, द्राक्ष, और सुधा, इन सबका स्वाद अनुभूत हुआ करता है।

जालन्धरबन्ध, जैसे—कण्ठसंकोचन पूर्वक हृदयके ऊपर चिबुक संस्थापन करनेको ही जालन्धरबन्ध कहते हैं। ग्रहयासलमें लिखा है कि, कण्ठ आकुञ्चनपूर्वक चिबुकको दृढ़भावसे हृदय पर सन्यस्त करे, इसे ही जालन्धरबन्ध कहते हैं। इसके प्रसादसे

सहस्रारनिस्सृत सुधा क्षयको नहीं प्राप्त होता। शिवसंहितामें कथित है कि, जीवगणोंकी नाभिस्थ अग्नि सहस्रारविनिर्गत सुधा-धारा पान करनेसे जीवोंको अमरत्व नहीं होता। इसीलिये जालन्धर बन्धका अनुष्ठान करना होता है। उसके प्रभावसे साधक इस सुधाको निम्नभागमें अवतारित न होने देकर ऊर्द्ध्वभागसे तालु-विवरके पथसे रसनाके सहारे पान कर सकता है, इसलिये वह साधक अमरत्व लाभमें समर्थ होता है और शरीरधारण करके ही त्रिभुवनमें विचरण कर सकता है। यह जालन्धर बन्ध सिद्धिगणोंको सिद्धिप्रद है।

विपरीतकरणी मुद्रा, जैसे—अपना मस्तक भूतलमें स्थापन पूर्वक दोनो पांव शून्यमें उत्तोलन करे और कुम्भक योगसे वायु-रोध पूर्वक अवस्थित होवे। इसे ही विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्राको प्रतिदिन अभ्यास करनेसे मृत्यु पराजित होती है। घेरण्डसंहितामें लिखा है कि, सूर्य्यनाड़ी नाभिमूल और चन्द्रनाड़ी तालुमूलमें अवस्थित है। सूर्य्यनाड़ीके सहारे सहस्रार निर्गत सुधाधारा पीत होती है; इसीलिये जीव मृत्युमुखमें पड़ा करते हैं। चन्द्रनाड़ीके सहारे उस सुधाको पान कर सकनेसे मृत्युको पराजित किया जाता है। इसी निमित्त योगबलसे चन्द्रनाड़ीको निम्नमें और सूर्य्यनाड़ीको ऊर्द्ध्वमें ले जावे। धरातलमें मस्तक स्थापनपूर्वक दोनो हाथ पतित कर दोनो पावोंको शून्यमें उठाकर कुम्भकयोगसे अवस्थित होवे। इसे ही विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। इसे साधन करनेसे जरा और मृत्युका भय नहीं रहता। यह मुद्रा परम गोपनीय है।

उड्डीयानबन्ध, जैसे—शिवसंहितामें लिखा है कि, नाड़ीके ऊर्द्ध्व और अधोदेशको तथा पश्चिमद्वारको समभावसे आकुञ्चन करना होगा अर्थात् कुम्भकयोगसे नाड़ीको अधस्थनाड़ियोंको

उदरमें समुत्तोलन करे, इसे ही उड्डीयान बन्ध कहते हैं। जो व्यक्ति प्रतिदिन इस मुद्राका अनुष्ठान करता है; उसकी नाभिशुद्धि और देहस्थवायु शुद्धि हुआ करती है। दत्तात्रेय संहितामें लिखा है कि, ऋषिलोग कहा करते हैं कि, उड्डीयानबन्ध अभ्यास करनेसे वृद्ध व्यक्तिको भी यौवन प्राप्त होता है। छः महीने तक इसका अनुष्ठान करनेसे निःसन्देह मृत्युको पराजय किया जाता है।

वज्रोणीमुद्रा, जैसे—घेरण्डसंहितामें लिखा है कि, धरातलमें दोनों हथेली स्थिरभावसे रखकर मस्तक और दोनों पांव शून्यमें उत्तोलित करे, इसे ही वज्रोणीमुद्रा कहते हैं। इसके सहारे देहकी बलवृद्धि और दीर्घ जीवन लाभ होता है। शिवसंहितामें लिखा है कि, वज्रोणीमुद्रा संसारान्धकार विदूरित कर देती है। यह मुद्रा गुह्यसे भी गुह्यतम है। गृहस्थव्यक्ति योगोक्त नियमके बिना चाहे जिस किसी प्रकारसे क्यों न हो, अवस्थित होकर इसका अनुष्ठान करनेसे मुक्त हो सकते हैं। यह मुद्रा भोगयुक्त व्यक्तिको भी सिद्धिप्रदान किया करती है। इसके सहारे योगी लोग समस्त सिद्धि पाया करते हैं।

शक्तिचालिनीमुद्रा, जैसे—शिवसंहितामें लिखा है कि, कुण्डली-शक्ति आधारकमलमें गाढ़ निद्रामें अभिभूत है। उसको बलपूर्वक अपानवायुमें आरोहण कराना होगा। इसे ही शक्तिचालिनीमुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सर्वशक्ति प्रदायिनी है। जो व्यक्ति प्रत्यह इस मुद्राका अनुष्ठान करता है, उसका रोगविनाश और आयुवृद्धि होती है। इसके प्रभावसे कुण्डलीशक्ति जागरित होकर ऊर्द्ध्व-गामिनी होती है; इस लिये सिद्धिकामी योगीलोग इसका अभ्यास करें; सर्वदा इसे करनेसे अणिमादि गुणदायिनी विग्रहसिद्धि हुआ करती है। जो व्यक्ति गुरुके उपदेश अनुसार इस मुद्राको साधन करता है, उसे मृत्युभय नहीं रहता। घेरण्डसंहितामें लिखा है कि,

आधारकमलमें सार्द्धत्रिवलान्विता कुण्डलिनीशक्ति भुजगीके आकारमें प्रसुप्ता है। जब तक वह प्रसुप्ता रहती है, तब तक जीव पशुकी भांति अज्ञानसे आवृत रहता है, उस समय करोड़ों योग साधन करने पर भी ज्ञानसञ्चार नहीं होता। जैसे कुञ्जीसे दर्वाजा खोला जाता है, वैसे ही कुण्डलीको जागरित करके सहस्रारमें ला सकनेसे ही ब्रह्मद्वार विभिन्न होकर ब्रह्मारन्ध्रपथ उद्घाटित होता है; तब ही जीवको ज्ञानसञ्चार हुआ करता है। गुप्तगृहमें अवस्थितिपूर्व्वक नाभिवेष्टन करके इस मुद्राका अभ्यास करना होता है। वितस्ती परिमित दीर्घ चारि अंगुली विस्तृत कोमल सफेद, सूक्ष्म वस्तुके सहारे नाभि परिवेष्टन करे। इस वस्तुखण्डको कटिसूत्रके सहारे बद्ध करना होता है। अनन्तर गात्रमें भस्मलेपन करके सिद्धासनसे बैठकर दोनों नासारंध्रके सहारे प्राणवायु आकर्षण करके अपानवायुके सहित एकत्रित करें। और जब तक वायु सुषुम्नानाड़ीके अभ्यन्तरमें गमन न करे, तब तक अश्विनीमुद्रा के सहारे गुह्य आकुञ्चन करना होगा, इस प्रकार कुम्भकयोगसे वायु आवद्ध करनेसे ही कुण्डलिनी जागरिता होकर उर्द्धमें उत्थित होती है, और सहस्रारमें परमात्मासे मिलित हुआ करती है। इस मुद्राको साधन न कर सकनेसे योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती, इस लिये पहिले इस मुद्राका अभ्यास करके फिर योनिमुद्राका अभ्यास करना होता है। शिवसंहितामें लिखा है कि, इन दशों मुद्राओंकी भांति अन्य मुद्रा नहीं हैं। इनमेंसे एकको अभ्यास कर सकनेसे ही सर्वसिद्धि लाभ हुआ करती है।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितामें कहा है कि, अञ्जलिपुट उर्द्धमें विश्लिष्ट और निम्नमें संश्लिष्ट करके आवाहनी मुद्रा होगी, यह मुद्रा विपरीत होनेसे अर्थात् उर्द्धमें संश्लिष्ट और निम्नमें विश्लिष्ट होनेसे स्थापनीमुद्रा होगी। दोनों हाथोंके अंगुष्ठ उर्द्धमें बद्धमुष्टिसंयुक्त करनेसे

शि०। मातृका यन्त्र कैसा है?

गु०। ह, स, औ, : विसर्ग इन चार एक वर्णोंको एकत्र करनेसे "हसौः" होता है। इस बीजको कर्णिका करके दो दो स्वरवर्णके सहारे केशर विन्यस्त करे। अनन्तर अष्टदलविशिष्ट कमल अङ्कित करके अष्टदलमें आठ वर्ग लिखे। पद्मके बाहिर चारिद्वार और चारि कोन अङ्कित करके पद्मवेष्टन करे। ऐसा करनेसे ही मातृका-यन्त्र अङ्कित हुआ। यह यन्त्र सौभाग्यप्रद है। इस यन्त्रके चारों दिक्में रं और चारों कोनोंमें ठं लिखना होता है।

शि०। प्राणायाम कैसा है?

गु०। प्राणायाम तीन प्रकारका है; (मतान्तरमें कई प्रकार है) पहिले वामनासिकाके रन्ध्रके बीच धीरे धीरे वायु पूरण करे। अनन्तर उस वायुको दृढ़रूपसे धारणपूर्वक सामर्थ्य अनुसार कुम्भक करे। फिर धीरे धीरे दाहिनी नासिकाके रन्ध्रसे उस वायुको रेचन करना होगा, इस प्रकार प्राणायामका अनुष्ठान करनेसे देह ज्योतिर्म्मय और वायुपूर्ण हुआ करती है। निवन्धमें लिखा है कि, शुभ वा अशुभ सब कार्य्योंको आदिमें तथा अन्तमें प्राणायाम करना होता है। कालिकाहृदयमें कथित है कि, मूलमन्त्र ओंकारके सहारे तीनवार प्राणायाम करना होता है। अनन्तर चौंसठवार जपके सहारे कुम्भक करके वत्तीसवार जपके सहारे दाहिने नासापुटसे वायु परित्याग करे। फिर दाहिने नासापुटमें सोलहवार जपके सहारे वायु पूर्ण करके चौसठवार जपसे कुम्भक करके वत्तीसवार जप करते हुए वाम नासापुटसे परित्याग करे। फिर सोलहवार जपपूर्व्वक वायें नासापुटसे वायु ग्रहण और चौसठ-वार जपके सहारे कुम्भक करके वत्तीसवार जप करके दाहिने नासापुटसे वायु रेचन करे। इसी प्रकार प्राणायाम साधन करना होता है।

महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है कि, ब्रह्ममन्त्र साधन करना हो तो मूलमन्त्रके सहारे अथवा केवल प्रणवके सहारे प्राणायाम करे। पहिले दाहिने हाथका मध्यमा और अनामिकाके सहारे बायां नासापुट धारण करके दाहिने नासापुटके सहारे वायु आकर्षण करते करते आठबार मूलमन्त्र (वा प्रणव) जप करे। अनन्तर अंगुठेके सहारे दाहिना नासापुट धारणपूर्वक कुम्भकयोग करके (श्वास रोककर) बत्तीसबार इसी प्रकार जप करे। अनन्तर (दक्षिण-नासा त्याग करके) दाहिने नासाके सहारे धीरे धीरे निश्वास त्याग करते करते सोलहबार मन्त्र जप करे। पीछे इसी प्रकार बायें नासापुटसे भी पूरक, कुम्भक और रेचक करे, अर्थात् आठबार मन्त्र जप करते करते बाम नासापुटसे धीरे धीरे वायु आकर्षण करे। पश्चात् वायुरोध करके बत्तीसबार मन्त्र जप करे। अनन्तर बामनासापुट त्याग करके उसके सहारे धीरे धीरे वायु परित्याग करते करते सोलहबार मन्त्र जप करे। पुनर्वार दाहिने नासासे और बामनासासे पूर्वकी भांति क्रमसे कुम्भक, पूरक और रेचक करे।

शि०। मन्त्रका संस्कार कैसा है।

गु०। गौतमीयमें लिखा है कि, जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गोपन, मन्त्रके ये दश प्रकारके संस्कार हैं। संस्कारके बिना मन्त्रग्रहण करनेसे वह विफल होता है। मातृकायन्त्रसे जो मन्त्रवर्णका उद्धार है उसे जनन कहते हैं। उद्धृतवर्ण समूहके प्रत्येकको पंक्ति अनुसार ओंकारके सहारे पुटित करके एक एक वर्णको एक सौ बार जप करनेको जीवन कहते हैं, चन्दन जलके सहारे मन्त्रके सब वर्णोंको यं इस मन्त्रसे ताड़न करे, इसीको ताड़न कहते हैं। विश्वसार तन्त्रमें लिखा है कि, मन्त्रके सब अक्षरोंको पृथक् पृथक् लिखकर इन अक्षरोंकी संख्या अनुसार करवीर कुसुमसे रं इस

मन्त्रसे हनन करे, इसीको मन्त्रका बोधन कहते हैं। मन्त्रके सब अक्षरोंको पृथक् पृथक्‌रूपसे लिखकर अक्षरसंख्यक लाल करवीर पुष्पके सहारे रं इस मन्त्रसे एकवार अक्षर समूहको अभिमन्त्रित करके तत्वमन्त्र विधानसे अश्वत्थपत्रके सहारे अक्षर संख्याका अभिसिञ्चन करे, इसको अभिषेक कहते हैं। सुषुम्नाके मूल और मध्यस्थानसे देवमन्त्र भावनापूर्वक ज्योतिमन्त्रसे (ओं ह्रौं ७ इस मन्त्रसे) मलत्रय भस्मीभूत करे, इसे विमलीकरण कहते हैं। स्वर्ण, कुश, जल वा पुष्पवारिके सहारे ज्योतिर्मन्त्रसे मन्त्रवर्णका आप्यायन कहा जाता है। ज्योतिमन्त्रसे जलके सहारे मन्त्रवर्णोंके तर्पण करनेकाको तर्पण कहते हैं। ओं ह्रीं श्रीं इस मन्त्रसे दीपन करनेको ही मन्त्रका दीपन कहा जाता है। जप्यमान मन्त्रके अप्रकाशकरनेको गोपन कहते हैं। ये दश प्रकारके संस्कार साधकको वाञ्छित फल प्रदान करते हैं। यह सर्वतन्त्रोंमेंही गोपनीय कहके कीर्त्तित है।

शि०। मालासंस्कार कैसा है ?

गु०। गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि, कपासके सूत्रमें माला गूथकर जप करनेसे चतुर्वर्ग फललाभ होता है, यह सूत्र ब्राह्मण-कन्याके सहारे तयार कराना होता है। सफेद, लाल, काला, अथवा पट्टसूत्रके सहारे माला गूंथे। शान्तिकर्ममें सफेद वर्ण, वश्यादि अभिचारकर्ममें लाल, मुक्तिकामनामें पीला और जपादिक कर्ममें कालेसूत्रके सहारे माला गूंथना होता है, सबका अपेक्षा लालवर्णका सूत्रही श्रेष्ठ है। सूत्रका तिगुना करके फिर उसे तिगुनाकर यथाविधिसे शिल्पशास्त्र अनुसार माला गूंथे। कालिकापुराणमें लिखा है कि इस प्रकार माला गूंथकर शोधन करना होता है। पद्माकारसे नव अश्वत्थपत्र रखकर उसके ऊपर मातृकामन्त्र और मूलमन्त्र पाठपूर्वक माला गूंथे। उसके अनन्तर सद्योजात इत्यादि मन्त्रसे पञ्चगव्यके सहारे धोकर वामदेव-

मन्त्रसे चन्दन, अगर, गन्ध प्रभृति लेपन करे। अनन्तर अघोरमन्त्रसे धूप और तत्पुरुषमन्त्रसे चन्दन देकर पञ्चमन्त्र प्रत्येकमालामें एकसौ बार जप करे। मेरुमें भी एकसौ बार मूलमन्त्र जप करना होगा। अनन्तर देवताका आवाहन करके यथाशक्ति पूजापूर्व्वक होम करे। होममें अशक्त होनेसे दूना जप करना होता है। योगिनीतन्त्रमें लिखा है कि, जिस देवताके मन्त्रसे मालासंस्कार करे, उस मालासे अन्य देवताका मन्त्र न जपे। जपकालमें निज-देह कम्पन करनेसे सिद्धिहानि और मालाकम्पन करनेसे अधिक दुःख हुआ करता है। यदि जपकालमें मालामें शब्द हो तो रोग, करस्खलित होनेसे तथा सूत्र छिन्न होनेसे साधककी मृत्यु हुआ करती है।

शि०। भूतशुद्धि कैसी है?

गु०। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है कि, जो साधक श्रेष्ठ उत्तान दोनों करतल क्रोड़में स्थापन कर मनको मूलाधार चक्रमें स्थापन पूर्व्वक हुङ्कारके सहारे कुण्डलीको उत्थापित करके "हंस" —इस मन्त्रके सहारे पृथिवीके सहित उस कुण्डलीशक्तिको निज अधिष्ठानचक्रमें लाकर पृथिव्यादि तत्त्वसमुदायको जलादि तत्त्व-समुदायमें लीन करे, घ्राणेन्द्रिय गन्ध प्रभृतिके सहित पृथिवी समु-दायको जलमें लीन करे। अनन्तर रसेन्द्रिय रस प्रभृतिके सहित जल, अग्निमें लीन करे। फिर शब्द सहित आकाशको अहङ्कार-तत्त्वमें लीन करके अहङ्कारतत्त्वको भी बुद्धितत्त्वमें लीन करे। अन-न्तर बुद्धितत्त्वको भी प्रकृतिमें लीन करके ब्रह्ममें उस प्रकृतिको लय करे। ज्ञानीव्यक्ति इसी प्रकार चौबीस तत्त्वोंको लय करके चिन्ता करे कि, वामकुक्षिमें रक्तवर्ण चक्षु तथा रक्तवर्ण नयनविशिष्ट पुरुष अवस्थान करता है। यह पुरुष रक्तचर्म्मधारी और क्रोधनस्वभाव है। इसका आकार अंगुष्ठ परिमित है। यह पुरुष पापमय और

सर्वदा अधोमुखमें अवस्थान करता है, अनन्तर वामनासामें धूम्रवर्ण "यं" यह बीज चिन्तन करके इसी बीजको सोलहबार जप करते करते उस वामनासाके सहारे वायु आकर्षण करे। फिर साधक ऐसे भावना करे कि, इस आकृष्ट वायुके सहारे पापमय देह शुष्क हुई है। अनन्तर नाभिदेश "रं" इस रक्तवर्ण वह्निबीज ध्यान करके कुम्भक अर्थात् वायुरोधपूर्वक इस रं बीजको चौसठवार जप करते करते उससे उत्पन्न वह्निके सहारे पापासक्त निजशरीर दग्ध करे। अनन्तर ललाटदेशमें शुक्लवर्ण "वं" इस वरुणबीजका चिन्तन करके निश्वास परित्याग करते करते बत्तीसवार जप करके इस वरुणबीज समुत्पन्न अमृतवारिके सहारे निज दग्ध शरीरको आप्लावित करे। इसी प्रकार आपादमस्तक पर्य्यन्त अमृतवारिके सहारे आप्लावित [करके नूतन देवतामय शरीर उत्पन्न हुआ है, ऐसी भावना करे। अनन्तर मूलाधारमें पीतवर्ण "लं" इस पृथिवी बीजका चिन्तन करके देह-बीज पाठपूर्वक दिव्य अवलोकनके सहारे अर्थात् निमेषशून्य नयनसे दर्शनके सहारे निजशरीर दृढ़ करे।

गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि, अपने अङ्कमें दोनों उत्तान-हस्त स्थापनपूर्वक "सोऽहं" मन्त्रसे प्रदीपकलिकावत् हृदयस्थ जीवात्माको मूलाधारको कुलकुण्डलिनीके सहित मिलित करके सुषुम्नापथमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नाम छहो चक्र भेद करे और शिरस्थान अधोवदन सहस्रार-पद्म को कर्णिका के अभ्यन्तरस्थ परमशिव में एकत्रित करके उसमें पृथिवी प्रभृति चौवीसतत्त्व चिन्ता करके वामनासिकामें वायुबीज (यं) भावना करे। अनन्तर सोलहवार वायुबीज जप करके देह परिपूर्ण कर दोनों नासापुट धारणपूर्वक चौसठवार वायुबीजके सहारे कुम्भक करके वामकुक्षिस्थ कृष्णवर्ण पाप-पुरुषके सहित शरीरशोषण करे; उसके अनन्तर इस बीजको

बत्तीसवार जप करके वायु रेचन करना होता है। उसके बाद दाहिने नासापुटमें वह्निवीज (रं) चिन्तन करके सोलहवार इस वीजको जपपूर्वक वायुके सहारे देह पूर्ण करे। और दोनों नासापुट धरके चौसठवार रं वीज जपके सहारे कुम्भकयोगसे कृष्णवर्ण पाप पुरुषके सहित शरीरको मूलाधारस्थ अग्निके सहारे दग्ध करना होगा। फिर बत्तीसवार रं वीजको जप करके वामनासापुटसे वायु परित्याग कर देवे। अनन्तर वामनासापुटमें श्वेतवर्ण चन्द्रवीज (ठं) चिन्तन करके सोलहवेर इस वीजको जपके सहारे ललाटमें ले जावे और दोनों नासिका धारणपूर्व्वक चौसठवार वरुणवीज (वं) जपपूर्व्वक ललाटदेशस्थ चन्द्रसे विनिर्गत सुधाधाराके सहारे मातृकावर्णमय समस्त देह रचित करे, फिर बत्तीसवार पृथिवीज (लं) जपके सहारे देहको दृढ़ीभूत भावना करके दाहिने नासापुटसे वायु परित्याग करे। इसी प्रकार भूतशुद्धि करनी होती है।

शि०। गुरु! भक्ति और वैराग्यके सहारे परिवर्द्धित मनादिरूप ज्ञान तथा निदिध्यासनजनित आत्म साक्षात्काररूप विज्ञान इस दोनोंको विशेष करके मुझसे कहिये।

गु०। शरीर प्रभृति सारे पदार्थ हमारे नहीं हैं; किन्तु इन सबको हमारा कहके प्रतीति होनेका नाम माया है और उसके सहारेही संसार परिकल्पित हुआ करता है। हे वत्स! इस मायाके आदि दो रूपनिर्द्दिष्ट हैं, विक्षेपशक्ति और आवरणशक्ति। इसमेंसे पहिली महत्तत्त्वादि ब्रह्मा पर्य्यन्त स्थूल और सूक्ष्मभेदसे विश्वको प्रकाश करती है। और दूसरी अखिलज्ञानको आवरण करके अवस्थिति करती है। चैतन्य अप्रकाशित रहनेसे मनुष्यलोग विक्षेपशक्ति कल्पित जगतको सत्य कहके विश्वास करते हैं। जैसे भ्रमवशसे रसरीमें सर्पज्ञान होता है, वैसे ही अधिष्ठान तत्त्वज्ञान

विचार करनेसे कुछ भी नहीं है। मनुष्यलोग जो कुछ सुनते और देखते हैं वह सब ही स्वप्नदृष्ट वस्तुकी भांति मिथ्या है। यह देह संसाररूप वृक्षकी दृढ़मूलस्वरूप है और यही पुत्रदारादिकी उत्पत्ति की मूल है—इस लिये इस देहके न रहनेसे आत्माका कुछ भी नहीं है; अर्थात् पुत्रादिकी उत्पत्ति नहीं होती। देह दो प्रकार की है, स्थूल और सूक्ष्म। स्थूलदेह स्थूलपञ्चभूत (अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन समस्त पदार्थमय) है। सूक्ष्म-शरीरका नाम लिङ्गदेह है—यह लिङ्गदेह सूक्ष्मभूत (अर्थात् रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द) और अहंकार बुद्धि तथा पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और मनरूपी अन्तरेन्द्रिय इन अट्ठारहों पदार्थोंकी स्वरूप है। इस देहमें मनुष्यलोग अहंबुद्धि किया करते हैं। हे वत्स! मनुष्यादि शरीर विकृति (अर्थात् जन्य) ईश्वर शरीर मूल-प्रकृति (अर्थात् नित्य) है; यह शरीर जड़पदार्थ है। इसी निमित्त पण्डितलोग इसे क्षेत्र कहके निर्देश करते हैं, जीवदेहसे विभिन्न जीवसे निरामय परमात्माका वैलक्षण्य नहीं है। मुमुक्षु लोग जीवमें परमात्माकी कदापि भिन्नज्ञान न करें। और अभिमान, दम्भ, हिंसा प्रभृति मानसिकवृत्ति परित्याग करें। अन्यकी को कुई निन्दा सहना काय मन वचन और भक्तिके सहारे गुरु सेवन तथा सब प्राणियोंके सहित सरल व्यवहार करें। और बाहिर तथा भीतरमें शौच अवलम्बन करें दूसरेकी अनिष्टचिन्ता परनिन्दा तथा अन्यको हाथ आदिसे प्रहार न करें; और निरहङ्कार होकर देहके जन्म जरामरण आलोचना करें। स्नेहशून्य होकर पुत्र दारा धनादिकी आसक्ति परित्याग करें और इष्टानिष्ट समागममें चित्तको समभावसे रखकर ईश्वरमें अन्यान्य विषयासक्ति अर्पण करें। जनसम्बाधरहित विशुद्ध स्थानमें वास करके प्राकृत लोगोंका सह-वास परित्याग करें। सर्वदा शास्त्र और तत्त्वज्ञानमें उद्योग तथा समय समयमें वेदान्त शास्त्रकी आलोचना करें।

हे वत्स! आत्मा, बुद्धि, प्राण, मन और देह तथा अहङ्कारसे अतिरिक्त चिदात्मस्वरूप और नित्यशुद्ध इस प्रकारका निश्चय जिस ज्ञानमें उत्पन्न होता है, उसी ज्ञानका नाम ज्ञान है—परमात्मा साक्षात्कारका नाम विज्ञान है। इस विज्ञानके सहारे सर्वव्यापी सच्चिदानन्दस्वरूप अव्यय निरुपाधि और सर्वदा समानावस्थापन्न स्वप्रकाशके सहारे देहादि प्रकाशक है; इस लिये स्वयं प्रकाश-विशिष्ट सङ्गरहित अद्वितीय सत्य ज्ञानस्वरूप तथा निज प्रभाके सहारे समस्त जगतके द्रष्टा उस परमात्माको जाना जा सकता है।

शि०। गुरु! इस समय कुछ उपदेश प्रदान करिये जिससे कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो सकूं।

गु०। जब तक जीवात्मा अविवेकवशसे देह और इन्द्रियादि में अहंबुद्धि परित्याग नहीं करता, तब तक वह सुख दुःखादि भोग किया करता है। मनुष्यलोग विषयभावना करते करते निद्रित होकर जैसे स्वप्नावस्थामें उस चिन्तित विषयका मिथ्या समागम लाभ करते हैं और उस अवस्थामें इस अलीक वस्तुसे स्वयं निवृत्त नहीं हो सकते; किन्तु जाग्रत अवस्थामें विवेकशक्तिके सहारे निवृत्त होते हैं, उसी प्रकार जीव देहाभिमानावस्थामें मिथ्या संसार आरोप करके उस अवस्थामें स्वयं उससे निवृत्त नहीं हो सकता। जीवात्मा अविद्याप्रभावसे देहाभिमानी होकर राग द्वेषादि संकुल मिथ्यासंसारमें आबद्ध होता है। अन्तःकरण ही संसारका कारण तथा सुख दुःखादि भोक्ता है, जीवात्मा अन्तःकरण के सहित मिलित तद्गत सुख दुःखादि भोग किया करता है। अलक्तसन्निहित निर्म्मल स्फटिकमणि स्वाभाविक शुक्लवर्ण होने पर भी अलक्तके प्रतिबिम्बके सम्पर्कसे लालवर्ण लक्षित होती है; वैसे ही विशुद्ध आत्मा अन्तःकरण तथा इन्द्रियादि सन्निधानमें संसारी करके प्रतीत हुआ करता है। हे वत्स! ज्ञानादि गुण-

विशिष्ट आत्माको अन्तःकरणके सहारे अनुमान करके स्थिर करना होता है। वह आत्मा अन्तःकरण सम्बन्ध वशसे अन्तःकरणके अविवेकरूप गुणलाभ कर विषयादि भोग करके अन्तःकरण गुणमें आवद्ध हो अनिच्छुक होकर तथा संसारमें लिप्त हुआ करता है। जीवात्मा रागद्वेषादिरूप अन्तःकरण गुण लाभ करके सदसत्कार्य्य करता है; उस सदसत्कार्य्यवशसे उसे सदसद्गति लाभ होती है, जीव खण्डप्रलय पर्य्यन्त इसी भांति भ्रमण करता है; खण्डप्रलयके समयमें वासना और अदृष्टके सहित अन्तःकरणमें मिलित होकर (अर्थात् दोनोंमें एकतालाभ करके) अनाद्यविद्यामें लीन हुआ करता है। पुनर्वार सृष्टिकालमें पूर्ववासना तथा अदृष्टके सहित आविर्भूत होता है; इसी प्रकार जीवात्मा कुलालचक्रकी भांति भ्रमण करता है। जिस समय जीव पूर्वपुण्यबलसे शान्त प्रकृति-वाले साधुलोगोंके बीच जन्मता है, उस समय ईश्वरमें भक्ति और उनकी लीला सुननेसे अत्यन्त श्रद्धालाभ करता है; अनन्तर भक्ति होनेसे उसे अनायासही ईश्वर स्वरूप विज्ञान होता है। विज्ञान होतेही जीवात्मा आर्य्योपदिष्ट शास्त्र श्रवण, मनन तथा निदिध्या-सनादिके सहारे सत्य आनन्दमय आत्माको जीवात्मासे अभिन्न और देह, इन्द्रिय, मन, प्राण तथा अहङ्कारसे विभिन्नज्ञान करके सद्यही मुक्तिलाभ करता है; यह मैंने निश्चय उपदेश किया। जो व्यक्ति मेरे इन सब उपदेश वाक्योंको ग्रहण करके सर्वदा मनही मन आलोचना करेगा, उसे संसार दुःख कदापि स्पर्श न कर सकेगा। हे वत्स! तुम भी पवित्रान्तःकरण होकर मेरे उपदेश वाक्योंको ग्रहण करके सर्वदा मनही मन आलोचना करो तो उसे संसाररूप दुःखराशि तुम्हें स्पर्श न कर सकेगी। और तुम कर्म्मबन्धनसे भी मुक्तिलाभ कर सकोगे।